औरंगज़ेब

(१६१८-१७०७)

•

यदुनाथ सरकार

औरंगज़ेब

(१६१८–१७०७)

प्रकाशक

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवेट

बम्बई

औरंगज़ेब

(१६१८–१७०७ ई०)

•

लेखक

सर यदुनाथ सरकार, सी० आई० ई०

एम्० ए०, डी० लिट्० (आनररी),

आनररी एस्० आर० ए० एस्० (लण्डन),

एफ्० आर० ए० एस्० (बंगाल),

कारस्पान्डिग मेम्बर—रायल हिस्टारिकल सोसाइटी (इंगलैण्ड)

•

प्रकाशक

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड

बम्बई • दिल्ली

प्रकाशकका वक्तव्य

इतिहासाचार्य सर यदुनाथ सरकार कृत 'ए शार्ट हिस्ट्री आफ़ औरंगजेब' का यह सशोधित सक्षिप्त हिन्दी संस्करण हिन्दी संसारको भेट करते हुए हमें विशेष हर्ष होता है। औरगजेबकी जीवनी तथा उसके शासन-कालके भारतीय इतिहासका सविस्तार अध्ययन करनेमें इस अस्सी-वर्षीय तपस्वीने पूरे पच्चीस वर्ष (१९००-१९२४ ई०) तक अथक परिश्रम किया था। तदर्थ अत्यावश्यक आधार-ग्रन्थों तथा अन्य ऐतिहासिक सामग्रीको एकत्र करनेमें उन्होंने कोई बात नही उठा रखी थी। यही कारण था कि मोटी-मोटी पाँच जिल्दोंमें प्रकाशित उनका लिखा हुआ औरंगजेबका इतिहास तबसे ही एक प्रामाणिक इतिहास-ग्रन्थ मान लिया गया है। इधर इन पिछले पच्चीस वर्षोंमें औरंगजेज या उसके शासन-काल सम्बन्धी जो भी नई सामग्री यदा-कदा प्राप्त होती रही है उसका भी समुचित उपयोग कर वे समय-समयपर अपने ग्रन्थमें आवश्यक सुधार भी करते रहे है। पुनः इस हिन्दी संस्करणको तैयार करवाते समय उन्होने आज तककी सारी पिछली खोजोका साराश भी उसमे सम्मिलित्त कर उसे सर्वथा प्रामाणिक और आधुनिकतम बना दिया है। यो औरंगजेब सम्बन्धी उनकी इन पिछले साठ वर्षोंकी समस्त सूक्ष्मतम खोजों, गहरे अध्ययन तथा गम्भीर चिन्तन-का परिणाम हमे इस हिन्दी ग्रन्थ-रत्नमे एकत्र देखनेको मिलता है।

सर यदुनाथके इतिहास-ग्रन्थ सर्वथा प्रामाणिक तथा घटनाओसे परिपूर्ण होते है, तथापि उनमे कही नीरसता नही आने पाई है। उनकी लेखन-शैली इतनी रोचक है कि उनके ग्रन्थोमे उपन्यासकी-सो सरसता मिलती है और पाठक बिना रुके प्रारम्भ से अन्त तक उन्हे बराबर पढ़ता ही जाता है। अपने प्रमुख नायककी जीवनीका इतना सजीव वर्णन लिखने पर भी सर यदुनाथके विवरण तथा विवेचन मे उसके प्रति या विरुद्ध किसी प्रकार का पक्षपात या कोई असतुलित भावना देखनेको नही मिलती है। जिस स्पष्टताके साथ वे उसके गुणो तथा सफलताओंका उल्लेख करते है, उसी तत्परता और विस्तारके साथ उसकी त्रुटियों और भूलोंको भी वे अपने पाठकोंके सम्मुख खोलकर रख देते है। अपने शासन-कालके अन्तिम वर्षों-में अदृष्ट कठोर नियतिके साथ अन्त तक लगातार दृढतापूर्वक जूझते हुए

तथा दिनोदिन अधिकाधिक अशक्त एवं विश्रृंखलित होते एक पतनोन्मुख साम्राज्यपर बडी मेहनत और धीरजके साथ शासन करते हुए बेवस औरगजेका जो मार्मिक चित्र सर यदुनाथने हमारे सामने प्रस्तुत किया है, वह भारतीय इतिहास साहित्यमे सर्वथा अनुपम है।

औरगजेबका व्यक्तिगत इतिहास भी एक तरहसे बहुत-कुछ भारतका ही साठ वर्षोका इतिहास है। ईसाकी सत्रहवी शताब्दी के सारे उत्तरार्द्ध-में एकमात्र उसका ही शासन-काल (१६५८-१७०७) पड़ता है। हमारे देशके इतिहासमे यह अर्द्ध शताब्दी बहुत ही महत्त्वपूर्ण थी। औरंगजेबके समयमें मुग़ल साम्राज्य अपनी चरम सीमाको पहुँच गया। मुसलमानी सत्ताने भारतमे अन्तिम बार अपना आधिपत्य ही नही बढ़ाया था, किन्तु धार्मिक दृष्टिसे उसकी कट्टरताका पूर्ण उत्कट स्वरूप भी तब देख पडा। औरगजेब स्वय प्रकाण्ड विद्वान्, सुयोग्य जागरूक कर्मठ शासक और चरित्र-वान् सदाचारी धर्मपरायण व्यक्ति था। यह निर्भीक योद्धा एक बहुत ही चतुर सुकुशल सेनापति भी था। उसकी बुद्धिमत्ता और गूढ कूटनीतिका लोहा उसके शत्रु भी मानते थे। इतना सब होते हुए भी इस अनुभवी सम्राट्के इस दीर्घकालीन शासनका अन्तिम परिणाम सर्वथा विपरीत ही हुआ। अद्वितीय विस्तारवाले इस महान् साम्राज्यके निकट भविष्यमें होने-वाले घोर पतन और पूर्ण विश्रृखलनके चिन्ह भी औरंगजेबकी मृत्युसे पहिले ही स्पष्टतया देख पडने लगे थे। तब तक साम्राज्यका विगत गौरव बहुत-कुछ मिट चुका था, उसका सारा वैभव विलीन होने लगा था, आर्थिक स्थिति बिगडकर उसका दिवाला निकल चुका था, शासन-संगठन छिन्न-भिन्न हो गया था और उस लम्बे चौड़े साम्राज्यमे सुव्यवस्था तथा शक्ति बनाए रखना भी सम्राट् और उसके अधिकारियोके लिए बिलकुल ही एक असम्भव बात हो गई थी।

हमारे देशके इतिहासमे अब एक सर्वथा नए युगका प्रारम्भ हुआ है। हमारे अंग्रेज विजेता यहाँसे बिदा लेकर हमे स्वाधीन कर गए है। धर्मके आधारपर भारतका बटवारा हो जानेसे हमारे सम्मुख कई एक नई अन-पेक्षित समस्याएँ उठ खडी हुई है। आर्थिक कठिनाइयाँ और भुखमरोकी भयंकर उलझने हमारी राहमे बाधक बन रही है। सारे देशमे भ्रष्टाचार और असन्तोष साथ-ही साथ निरन्तर बढते जा रहे है। किन्तु फिर भी देश और समाजके नव-निर्माणका कार्य नही रोका जा सकता। अपने विगत

पतनकी पुनरावृत्ति नही होने देनेके लिए हमें अपने उस भूतकालीन जातीय जीवनका ठीक-ठीक अध्ययन कर उसकी त्रुटियों और कमज़ोरियोको जानने तथा अब उन्हें दूर करनेका प्रबल प्रयत्न करना होगा। किन-किन कारणों-से मुग़ल साम्राज्य विफल हुआ तथा तब समूचे भारतमे राजनैतिक एकता स्थापित होनेपर भी क्यों यहाँ एक सुसंगठित पूर्णतया समन्वित भारतीय राष्ट्रका निर्माण नही हो सका था, इन महत्त्वपूर्ण विचारणीय प्रश्नोका सही उत्तर जानकर भविष्यमे उनको ओर विशेष ध्यान देना होगा। इन सब बातोको ठीक तरह समझने-बूझनेके लिए औरगजेबके शासन-कालका गहरा अध्ययन अत्यावश्यक है। इस ग्रन्थके उन्नीसवें अध्यायमे सर यदुनाथने इन्ही सब प्रश्नोंकी सविस्तार विवेचना की है, जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथा विचारोत्पादक है। कई एक समस्याएँ, जो औरगजेबके समयमें भारतीय राष्ट्रके सम्मुख थी और तब किसी प्रकार सुलझाई नही जा सकी, आज भी बहुत-कुछ उसी रूपमे हमारे सामने खड़ी है। अतएव हमे पूर्ण विश्वास है कि हिन्दीमें प्रकाशित औरगजेबका यह सक्षिप्त इतिहास ज्ञान-वर्द्धनके साथ ही हमारे राष्ट्र के नव-निर्माणमें भी बहुत सहायक हो सकेगा।

ग्यारह वर्ष पहिले हमने सर यदुनाथ कृत 'शिवाजी'का संक्षिप्त हिन्दी संस्करण प्रकाशित किया था। उसका हिन्दी संसारमें बहुत आदर हुआ है, और दो वर्ष पहिले हमें उसका द्वितीय संशोधित संस्करण निकालना पडा। उससे प्रोत्साहित होकर अब सर यदुनाथ कृत 'औरंगजेब'का यह संक्षिप्त हिन्दी संस्करण प्रकाशित कर रहे है। जहाँ तक हमें ज्ञात है हिन्दीमें अब तक औरंगजेबका ऐसा सच्चा और प्रामाणिक जोवन-चरित्र प्रकाशित नही हुआ; यो यह ग्रन्थ हिन्दीके ऐतिहासिक साहित्यकी एक बहुत बड़ी कमी पूरी करता है। आशा है कि हिन्दी भाषा-भाषी इस ग्रन्थका हृदयसे स्वागत करेगे।

हम सर यदुनाथके बहुत ही कृतज्ञ है कि उन्होंने ऐसे महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ-रत्नको प्रकाशित करनेका हमें सुअवसर दिया। सीतामऊ (मालवाके) कर्मठ साहित्य-प्रेमो महाराजकुमार डा० रघुबोरसिहके भी हम बहुत ही अनुगृहीत है। अपने इतिहास-गुरु सर यदुनाथके मूल अंग्रेजो ग्रन्थका यह हिन्दी सस्करण तैयार करवानेमे उन्हे स्वयं अत्यधिक परिश्रम करना पडा है। इस हिन्दी अनुवादकी भाषामें सर यदुनाथकी मनचाही

सरलता, सरसता और प्रवाह लाना कोई आसान बात नही थी। परन्तु एक इतिहासकार होनेके साथ ही महाराजकुमार एक उच्चकोटिके सफल गद्य-लेखक भी है, अतएव उन्हे इस प्रयत्नमे पूर्ण सफलता मिली। इस हिन्दी सस्करणकी भाषामे सारे अत्यावश्यक सशोधन कर उन्होने उसे ऐसी अच्छी तरह सँवार दिया है कि एक अनुवाद होते हुए भी यह ग्रन्थ सर्वथा मौलिक हिन्दी रचना ही जान पडती है। सर यदुनाथके समान हमे भी "दृढ विश्वास है कि हिन्दी साहित्यकी उनकी इस अमूल्य सेवाके लिए हिन्दी भाषा-भाषी उनके चिर-ऋणी रहेगे।"

नाथूराम प्रेमी

भूमिका

समकालीन मौलिक ऐतिहासिक उपादानोंके आधारपर लिखकर मैने पाँच जिल्दोमें अपने अंग्रेजी इतिहास-ग्रन्थ "हिस्ट्री आफ औरंगजेब"को सन् १९२५ मे पूरा किया था। उस ग्रन्थकी रचना करते समय मैने उस कालके इतिहास-विषयक छपे हुए सारे आधार-ग्रन्थोके सिवाय फ़ारसी, मराठी, अग्रेजी, फ्रेच और पुर्तगाली भाषाओमे प्राप्य हस्तलिखित इतिहास-ग्रन्थों, समकालीन लेख-सग्रहों, शाही दरबारके अखबार, आदि सारे उपादानोका भी पूरे पच्चीस वर्ष तक लगातार अध्ययन किया था। उस कालके इतिहासके लिए मेरा यह अंग्रेजी ग्रन्थ पूरी तरह प्रामाणिक मान लिया गया है। अपनी उच्चतम परीक्षाओमें मुग़ल-कालीन भारतीय इतिहास पढ़ानेके लिए सब ही भारतीय विश्व-विद्यालयोंने इस ग्रन्थको अपनी पाठ्य-पुस्तक बनाया। किन्तु उसको उन पाँचो जिल्दोकी पृष्ठ-संख्या कुल मिलाकर कोई दो हजारसे भी अधिक हो जाती है, एवं विश्व-विद्यालयोंके विद्यार्थियोकी सुविधा तथा उपयोगके लिए उस विस्तृत इतिहासको संक्षिप्त कर कोई पाँच सौ पृष्ठोके एक सुसम्बद्ध ग्रन्थके रूपमें "ए शार्ट हिस्ट्री आफ़ औरंगजेब"के नामसे प्रकाशित किया था। इस सक्षिप्त इतिहासमें मैने कई एक विवेचनात्मक नए महत्त्वपूर्ण अध्याय जोड़ दिए थे। किन्तु अंग्रेजी भाषा न जाननेवालोके लिए तो औरंगजेबके शासन-काल सम्बन्धी मेरी सारी खोजें एव ये ग्रन्थ अब तक बिलकुल ही अज्ञात रहे हैं।

किसी भी अन्य भारतीय भाषामें अपने इस ग्रन्थका अनुवाद करवानेसे पहिले उसको हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दीमें ही इस प्रस्तुत पुस्तकके रूपमे प्रकाशित करना अधिक उचित जान पड़ा। मेरे सुयोग्य प्रिय शिष्य सीता-मऊ (मालवाके) महाराजकुमार डाक्टर रघुबीरसिहकी निष्ठापूर्ण साधना तथा हिन्दी साहित्यकी उन्नतिके लिए हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर ग्रन्थमालाके सुप्रसिद्ध संस्थापक श्री प्रेमीजोके उत्साहपूर्ण उद्योगके फलस्वरूप ही अपने ग्रन्थका यह सशोधित हिन्दी संस्करण प्रकाशित कर सकनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिसके लिए मै उन दोनोंका अनुगृहीत हूँ। उसमेंसे कुछ नगण्य विवरणों तथा कई एक वर्णनात्मक अशोंको छोड़कर इस अनुवाद के लिए मैने अपने उक्त अग्रेजी ग्रन्थ "ए शार्ट हिस्ट्री आफ़

औरंगजेब" को और भी संक्षिप्त कर दिया है। किन्तु अंग्रेजीके उस मूल ग्रन्थकी सारी सारभूत बातो तथा महत्त्वपूर्ण राजनैतिक विवेचनोका यहाँ पूराका-पूरा ही अनुवाद किया गया है। इस हिन्दी अनुवादको तैयार करनेमे कौन-कौन-सी विशेष बातोका ध्यान रखा जावे, इसकी भाषा कैसी हो, आदि प्रश्नो सम्बन्धी अनुवादके लिए सारे आवश्यक निर्देश महाराजकुमारके साथ बैठकर उनकी सलाहसे मैने सविस्तार तय किए थे। हिन्दी अनुवादका काम इतिहासके एक प्राध्यापकको सौपा गया था। उन्होने बडी मिहनतसे यह कार्य पूरा किया, परन्तु वह अनुवाद मेरी रुचिके अनुसार नही बन पाया था, एव महाराजकुमारने स्वय ही उस अनुवादमे सारे आवश्यक सशोधन कर उसे यह वर्तमान स्वरूप दिया। इस संशोधित अनुवादको ध्यानपूर्वक पढने तथा उसमे यत्र-तत्र उचित सुधार करनेके बाद ही छपनेके लिए उसे प्रेसमे देनेकी मैने अनुमति दी। मेरे सक्षिप्त अग्रेजी इतिहासके प्रकाशित होनेके बाद जो बीस वर्ष बीत चुके है उनमे कई एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक खोजे हुई है। इस हिन्दी संस्करणमे उन नवीनतम खोजोके परिणामोका भी मैने समावेश कर दिया है, जिससे इस सशोधित हिन्दी सस्करणका महत्त्व बहुत बढ गया है। अपने ढगके ऐसे एकमात्र महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थको तैयार कर उसे हिन्दीमे प्रकाशित करवानेके लिए महाराजकुमार रघुबीरसिहने जो प्रयत्न किए है, तदर्थ मै उनका अभिनन्दन करता हूँ, और मुझे दृढ विश्वास है कि हिन्दी साहित्यकी उनकी इस अमूल्य सेवाके लिए हिन्दी भाषा-भाषी उनके चिरऋणी रहेगे।

बहुत चाहनेपर भी इस ग्रन्थकी भाषा मेरे हिन्दी ग्रन्थ 'शिवाजी' कीसी सरल नही हो सकी, जिसे ८-१० वर्षीय बालक भी आसानीसे समझ सकता है। मुग़ल साम्राज्यके इस ध्वसक सम्राट्के पचास-वर्षीय शासनकालका विवरण लिखते हुए कई एक राजनैतिक वाद-विवादो तथा दार्शनिक समस्याओकी विवेचना करना अनिवार्य हो जाता है, जिन्हे शिवाजी (हिन्दी) की-सी सरल शैलीमे ठीक तरहसे लिख सकना सम्भव नही था, क्योकि तत्सम्बन्धी विभिन्न अग्रेजी शब्दोके लिए उपयुक्त सरल सुज्ञात हिन्दी पारिभाषिक शब्दोका अब तक बहुत-कुछ अभाव ही है।

हमारी मातृ-भूमिके जीवनमे एक नये महत्त्वपूर्ण युगका प्रारम्भ हुआ है, एव हमारे लिए तो औरगजेब-कालीन इतिहास बहुत ही दिलचस्प,

उपयोगी और उपदेशप्रद है। औरंगजेबके समकालीन इतिहासकारोंमें मुसलमानोकी संख्या ही अधिक थी। औरगजेबके इस पचास-वर्षीय शासन-कालका उन्होंने जो पूरा सविस्तार विवरण लिखा है, उससे भी यह बात बिलकुल ही स्पष्ट हो जाती है कि मुसलमान उलेमाओं (धार्मिक विद्वानों) द्वारा निश्चित विधिसे सगठित धर्म-प्रधान शासन किस प्रकार एक बड़े शक्तिशाली साम्राज्यको भी सब तरहसे बरबाद कर सकता है, और तब क्योंकर वहाँकी जनता, मुसलमान और हिन्दू दोनोंको ही भयंकर दुर्दशा, पूर्ण दारिद्रय, नैतिक पतन तथा विदेशियोके हाथों पराजय और उनके आधिपत्य तकका सामना करना पड़ता है। अपने गुण-लाभ सिद्ध करनेके लिए इस धर्म-मूलक शासन-पद्धतिको औरंगजेबके पचास-वर्षीय लम्बे शासन-कालमे सबसे अच्छा अवसर मिला था। औरंगजेबकी विद्वत्ता अगाध थी; वह बहुत ही सदाचारी और कर्मठ शासक था; व्यक्तिगत व्यसन या भोग-लिप्सा उसे छू भी नही गए थे, और अपने नब्बे वर्षके लम्बे जीवन भर वह लगातार एक साधारण मजदूरकी ही तरह कड़ी मिहनत करता रहा। उस दृढ़-प्रतिज्ञ कर्मनिष्ठ सम्राट्के कोषमें उसके पूर्वजोंका संचित अटूट धन भरा हुआ था और साथ ही भारतके-से धन-धान्यपूर्ण सुसमृद्ध उपजाऊ महादेशकी वार्षिक आय भी वहाँ बराबर पहुँचती रहती थी। उसकी प्रजा ईमानदार, चतुर और प्रारम्भमें तो स्वामिभक्त भी थी। किन्तु अपने जीवन-कालका अन्त होते-होते उसने उन्हे विद्रोही और दरिद्री भी बना दिया था। धर्म-मूलक कट्टर मुसलमानी राज्यका यही अन्त है!

सुशिक्षित संसारमें यह कथन सुविख्यात हैं कि 'भूतकालका विवेचन कर वर्तमानको शिक्षा देना ही इतिहासका प्रधान कार्य है, जिससे भावी पीढियोको पूरा-पूरा लाभ पहुँच सके।' अतएव उसके समकालीनोके आँखो-देखे विवरणोंके आधारपर लिखा गया औरंगजेबका प्रामाणिक इतिहास भारतीय शासन एव संस्कृतिके नेताओके लिए स्थायी महत्त्वका एक बहुत ही हितकर उदाहरण है।

यदुनाथ सरकार

विषय-सूची

भाग 1

अध्याय १

आदि जीवन-काल : १६१८-१६५२ ई०

१. उसके शासन-कालका महत्त्व

औरगजेबका जीवन-चरित्र कोई ६० वर्षका भारतवर्षका इतिहास ही हो जाता है। १७ वी शताब्दीके पिछले पचास वर्षो तक (१६५८-१७०७)वह शासन करता रहा। उसका शासन-काल अपने इस देशके इतिहासमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उसके आधि-पत्यमे मुगल-साम्राज्यकी सीमाएँ अपनी अतिम हद तक पहुॅच गई थी। प्रारम्भिक कालसे लेकर अंग्रेजी राज्य की स्थापना होने तक भारतमें ऐसे विशाल साम्राज्यकी स्थापना कभी नही हुई थी। गजनी से लेकर चटगॉव तक और काश्मीरसे लेकर कर्नाटक तक भारतीय महादेश एक ही शासकके आधीन था। इस्लामने भारतमें अपना आखिरी कदम इसी शासन-कालमे बढ़ाया। विस्तार मे अभूतपूर्व होते हुए भी इस विशाल-सामाज्यकी राजनैतिक एकता अक्षुण्ण थी। इस साम्राज्यके विभिन्न प्रातोका प्रबध छोटे राजाओके हाथमे न रह कर सीधे बादशाह द्वारा नियुक्त कर्मचारियो द्वारा ही होता था। इसी विशेषताके कारण औरंगजेबका भारतीय साम्राज्य अशोक, समुद्रगुप्त या हर्षके साम्राज्यसे कही अधिक विशाल तथा परिपूर्ण था।

किंतु जिस शासन-कालमे इतना विशाल भारतीय साम्राज्य स्थापित हुआ जितना अंग्रेजोके आधिपत्यसे पहले कभी नही हुआ था, उसी समयमे इस साम्राज्यके पतन व छिन्न- भिन्न होनेके लक्षण

भी स्पष्ट दिखाई देने लगे। फारसके नादिरशाह व अफगानिस्तानके अहमदशाह ने मुगल बादशाहतका खोखलापन व उसकी राजधानी दिल्लीकी महत्त्वहीनता सिद्ध कर दी थी। मराठोने दिल्लीके साम्राज्यमे अपना एकाधिपत्य स्थापित कर मुगल सम्राटोको तिरस्कृत किया था। किंतु इन सबसे बहुत पहले, औरगजेबकी आँखे बद होनेसे भी पूर्व, मुगल साम्राज्यके खजाने और गौरवका दिवाला निकल चुका था, उसकी शासन-व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी थी, और मुगल-राजसत्ताने देश मे शाति व राज्यकी एकता बनाये रखनेमे अपनी असमर्थता स्वीकार कर ली थी।

औरगजेबका शासनकाल दो और बातोके लिए भी उल्लेखनीय है। इन्ही दिनो अल्पकालीन मराठा-राजवशके भग्नावशेषोमे से मराठा जातीयताका (Nationality) उद्भव हुआ, और सिख सम्प्रदायने भी इसी शासन-कालमे सैनिकरूप धारण करके मुगल-साम्राज्य के विरुद्ध तलवार उठाई। अतएव ईसाकी १८ वी तथा प्रारम्भिक १९ वी शताब्दियोकी प्रमुख ऐतिहासिक धाराओका प्रारभ औरंगजेबके शासन-कालमे उसकी नीतिके कारण ही हुआ।

मुगल-साम्राज्य दूजके चाँदके समान बढता हुआ अपने पूर्णत्वको पहुँचा और उसके बाद ही पुन स्पष्ट रूपसे घटने लगा, तब तो उसी शासन-कालमे एक नये युगके प्रभातकी झलक राजनैतिक आकाशमे दिखाई दी। भारतके भावी शासकोने अपने पैर अच्छी तरह जमा लिये थे। ईस्ट इडिया कम्पनीने १६५३ ई० मे मद्रास प्रात व १६८७ई० मे बवई प्रातकी स्थापना की थी। १६९० ई०मे कलकत्ताकी नीव पडी। इस प्रकार युरोपवासियोके हाथमे आये हुए इन आश्रयस्थानोने एक साम्राज्यके भीतर दूसरे ही स्वाधीन राज्यका रूप धारण कर लिया।

१७वी शताब्दीके आखिर तक मुगल-साम्राज्यकी जड़ भीतर ही भीतर खोखली हो गई थी। ख़जाना खाली पड़ा था। मुगल-सेना दुश्मनो के हाथों पराजित व अपमानित हो चुकी थी, देशमे अलग-

अलग खड-राज्य स्थापित होने लगे और मुगल-साम्राज्य छिन्न-भिन्न होनेको ही था। साम्राज्यका नैतिक पतन भौतिक पतनसे भी अधिक भयकर था। लोगोकी निगाहमे मुगल-साम्राज्यके प्रति आदरका भाव नाम-मात्रको भी नही रह गया था, सरकारी कर्मचारी ईमानदारी व कार्य-कुशलता सर्वथा खो चुके थे, मन्त्रियो और राजाओ दोनोमे ही शासन-पटुताकी पूरी-पूरी कमी थी, सेना बिलकुल निस्तेज तथा बलहीन हो चुकी थी।

इस सर्वव्यापी पतनका कारण क्या था ? सम्राट न तो व्यसनी था और न बुद्धिहीन या आलसी ही। उसकी मानसिक सतर्कता प्रसिद्ध थी। वह राजकाजमे उसी लगनसे काम करता था जो अधिकतर मनुष्य विषय-भोगोमे दिखाते है। धार्मिक पुस्तको या आचार विचारसबधी ग्रथोमे सगृहीत मानवीय ज्ञान तथा विद्याके भडारपर उसने पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया था। साथ ही अपने पिताके शासन-कालमे उसे युद्ध तथा कूटनीतिकी पूरी-पूरी शिक्षा भी प्राप्त हो चुकी थी।

फिर भी ऐसे सम्राटके ५० वर्षके शासनका परिणाम निकला पूर्ण असफलता और घोर अशाति। यही राजनैतिक विषमता उसके शासन-कालको राजनीति और भारतीय इतिहासके विद्यार्थीके लिए बहुत ही शिक्षाप्रद तथा चित्ताकर्षक वना देती है।

२. औरंगजेबके जीवनकी दुःखांत कहानीका विकास

औरंगजेबका जीवन एक लम्बी दु.खात कहानी थी, वह एक ऐसे मनुष्यकी कहानी थी, जो जीवन-भर अदृश्य परंतु निष्ठुर कठोर भाग्यके साथ असफलतापूर्वक लडता ही रहा और जिसने यह दिखा दिया कि किस प्रकार कठिनसे कठिन पुरुषार्थ भी समयके चक्रके सामने विफल ही होता है। ५० वर्षके कठिन शासनका अत घोर असफलतामे ही हुआ, तथापि बुद्धि, चरित्र और साहसमे औरंगजेबका स्थान एशियाके बड़ेसे बडे शासकोंमे है। इतिहासके इस दुःखांत

कथानकका विकास आश्चर्यजनक पूर्णताके साथ एक पूरे नाटकके परपरागत क्रमानुसार ही घटित हुआ ।

औरगजेबके जीवनके प्रारभिक ४० वर्ष राज्यके इस उच्चतम पदके उपयुक्त बननेकी तैयारीमे, लगातार कठिन आत्म-शिक्षणमे ही व्यतीत हुए (मेरे बडे ग्रथका खड १) । इस प्रारभिक कालके वाद एक वर्ष सिहासनके लिए कठिन युद्धमे वीता (खड २)। इस युद्धमे उसकी सारी शक्तियोकी पूरी-पूरी परीक्षा हुई, जिनके परिणाम—स्वरूप उसकी वीरता, साहस व बुद्धिमत्ताने दिल्लीका सुनहला छत्र पारितोषिकके रूपमे उसे दिया । शासन-कालके पहले २३ वर्ष शाति व समृद्धिपूर्ण थे, तब वह उत्तरी भारतकी राजधानियोमे स्थायी रूप से रहा (खड ३) । उसके मार्गसे सब शत्रु हट चुके थे । भारतका विशाल साम्राज्य उसकी आज्ञाओको सिरमाथे चढाता था, और उसके दृढ व सतर्क शासनके परिणामस्वरूप धन व सस्कृति बढ रहे थे । तब औरगज़ेब सासारिक सुख और यशकी सर्वोच्च चोटीपर पहुँच गया-सा जान पडने लगा था । उसके जीवन-नाटकका यह तीसरा अक था । इसके पश्चात उसका पतन प्रारभ हुआ । निर्दयी विधाताने यूनानी दु खात कथानक (Greek Tragedy) के समान उसके कुल-मे ही उसका शत्रु पैदा कर दिया । शाहजहाँका विद्रोही पुत्र वहुत दिनों तक अपनी जीतका आनन्द न ले सका, उसका प्यारा पुत्र मुहम्मद अकबर १६८१ ई० मे अपने पिता औरगजेबके ही विरुद्ध विद्रोही बन बैठा ।

इस पराजित विद्रोही शाहजादेने मराठा राजाके यहाँ शरण ली और साथ ही वह औरगजेबको भी दक्षिण खीच ले गया, औरग-जेबके अन्तिम २६ वर्ष प्रवासमे वही बीते । साम्राज्यका कोष, उसकी सेना व संगठित शासन-पद्धति और स्वय सम्राट का स्वास्थ्य भी लगातार असफल युद्धमे नष्ट हुए । परन्तु प्रारभमे उसके इन प्रयत्नो-की विफलता और उसके जीवनके आगामी दु खपूर्ण अन्तको भाग्य-चक्रने औरगजेब व उसके समसामयिकोकी आँखोसे छिपा रक्खा था ।

उसके जीवनके चौथे भागमे (जो इस इतिहासके चौथे खंडमे वर्णित है) ऊपरी दृष्टिसे सब कुछ ठीक ही मालूम होता था । बीजापुर व गोलकुण्डाके राज्य साम्राज्यमें मिला लिए गए थे; सगरका बेरड़ सामन्त अधीनता स्वीकार करने पर विवश हो गया था, मराठा राजा मार डाला गया था, उसकी राजधानी जीत ली गई थी, और उसका सारा कुटुम्ब भी सन् १६८९ ई०में बन्दी बनाया जा चुका था । यों तब औरगजेवकी विजयकी सम्पूर्णतामे कोई त्रुटि नही दिखाई देती थी । इस समय साम्राज्यकी चमक-दमकसे चकाचौध होकर अधिकतर लोग उसके भविष्यके बारेमे कुछ भी सोच न पाते थे, तथापि कुछ विचारशील पुरुषोको आगामी पतनके अशुभ लक्षणोकी झलक इधर उधर स्पष्ट देख पडने लगी थी । अपने जीवनके तीसरे भागमें जो बीज औरगजेबने फलकी ओर ध्यान दिये बिना अनजाने ही बोये थे, चौथे भागमे वे उगने लगे और पाँचवे अर्थात् अन्तिम भागमे उनकी विनाश-कारिणी फसल उसे ही काटनी पड़ी ।

औरगजेबके जीवनकी यह दु.खान्त कथा उसके इन अन्तिम १८ वर्षमे (१६८९-१७०७) घटित हुई जिसका विवरण पाँचवे भागमें किया गया है । धीरे धीरे किन्तु साथ ही अधिकाधिक स्पष्टताके साथ यह दु खपूर्ण कथानक विकसित होता है, और अन्तमे औरगजेबने अपने विरुद्ध इकट्ठी हुई इन शक्तियोका असली स्वरूप व समयकी सच्ची विरोधी गतिको पहचान लिया; फिर भी उसने सघर्षसे मुँह नही मोडा । इस सघर्षकी यह पूर्ण असफलता उसको व उसके अधिकारियोको पूरी तरह ज्ञात हो गई, तथापि उसकी कोशिश पूर्ववत् चलती ही रही । उसने नये साधनों तथा उपचारोका प्रयोग किया और राजनैतिक परिस्थितिमे परिवर्तन और शत्रु-सेनाके सचालन आदिकी नूतन पद्धतिके साथ ही वह भी अपनी चाले वदलता रहा । प्रारम्भमे वह अपने सेनाध्यक्षोको युद्धमे भेजता था और स्वय केन्द्रसे उनका सचालन करता था । उसके कुछ सेनापति अपने कार्यमे असफल होते, रहे । तब ८२ वर्षका यह वयोवृद्ध सम्राट् स्वय युद्धस्थलमे उतर पड़ा

और ६ वर्ष (१६९९-१७०५) तक उसने स्वय युद्ध सचालन किया। जव मृत्युका प्रथम सन्देश उसके पास पहुँचा तभी जाकर वह अहमद-नगरको लौटा। तभी वडे दु खके साथ उसने साफ-साफ देखा कि अहमदनगरमे ही उसके जीवन-नाटकका अन्तिम दृश्य खेला जावेगा, यही उसकी जिन्दगीके सफरका खातमा होना वदा था।

३. उसके इतिहासकी आधार-सामग्री

सौभाग्यवश मुगल-कालीन भारतकी साहित्यिक भाषा फारसीमे लिखी हुई औरगजेवकी जीवनसम्वन्धी सामग्री वहुत अधिक मिलती है। सबसे पहिले हमारे सामने 'पादशाह नामा' आता है, जिसमे तीन विभिन्न लेखकोने वारी वारीसे शाहजहाँके राज्य-कालका सरकारी वृत्तान्त तीन अलग अलग भागोमे लिखा है। 'आलमगीर नामे' मे औरजेगवके राज्य शासनके पहिले १० वर्षोका वर्णन है। उसके राज्य-कालके पिछले ४० वर्षोका वर्णन उसकी मृत्युके वाद सरकारी कागज-पत्रोके आधार पर सक्षेपमे लिखी गई पुस्तक 'मासीर-इ-आलमगीरी' मे मिलता है।

इनके बाद अन्य गैर सरकारी इतिहासोमे मासूम, वगालके रोज-वानी सैनिक काव्यकार, आकिलखाँ, और खफीखाँके ग्रथ उल्लेखनीय है। इन ग्रथो की रचना सरकारी कर्मचारियोने की थी, किन्तु वे वादशाहके सामने जानेवाले न थे। यही कारण है कि राज्याधिकारियोके इन वर्णनोमे सरकारी इतिहासोमे न पाई जानेवाली अनेक गुप्त वातोका हाल मिलता है, परन्तु उनकी तारीखो व नामोमे कई वार गलतियाँ भी पाई जाती है, तथा उनके वहुत-से वर्णन वहुत ही सक्षिप्त तथा अधूरे ही होते है।

दो हिन्दुओने भी फारसी भाषामे औरगजेबके राज्यकालका इति-हास लिखा है। एक 'नुस्खा-इ-दिलकश' है। इसे औरगजेवके सेना-नायक दलपतराव बुँदेलाके उत्साही कर्मचारी भीमसेन वुरहानपुरीने लिखा था। वह वहुत ही उद्योगी और तीव्र बुद्धिवाला यात्री था।

भौगोलिक विशेषताओंकी ओर उसकी दृष्टि विशेष तौर पर जाती थी मथुरासे मलाबार तक जो कुछ भी उसने देखा उसका पूरा-पूरा विवरण उसने लिखा है। बाल्यकालसे लेकर उसने प्रायः अपना सारा जीवन दक्षिणमे ही बताया था जिससे वहाँकी घटनाओ सम्बन्धी इतिहासके-लिए उसका यह ग्रथ बडा ही उपयोगी है। इसी प्रकार गुजरातके पाटण नगरमे जीवन भर रह कर शेख-उल्-इस्लामकी सेवा करनेवाले कर्मचारी, ईश्वरदास नागर रचित 'फतूहात-इ-आलमगीरी' ग्रन्थ है, जिसमे राजपूतो सम्बन्धी ऐतिहासिक विवरण बहुत महत्त्वपूर्ण है।

इन साधारण इतिहासोके अतिरिक्त हमे उस समयकी विशिष्ट घटनाओपर खास तौरपर प्रकाश डालनेवाली अनेक पुस्तिकाएँ भी मिलती है। इनमे तत्कालीन महान् व्यक्तियो और घटनाओके विशेष वर्णन है, जैसे नियामत खाँ अलीकृत गोलकुण्डाके घेरेका वर्णन, शहाबुद्दीन तलीशकी कुचबिहार, आसाम और चिटगाँवकी विजयसम्वन्धी डायरीं, व औरगजेबके शासनके अन्तिम समयसे प्रारम्भ होने वाले कालपर प्रकाश डालनेवाले इरादत खाँ, आदि बहादुरशाह प्रथमके कुछ कर्मचारियोके सस्मरण। गोलकुण्डा और बीजापुरके दोनो दक्षिणी राज्योके इतिहासोसे भी उन राज्योके प्रति किए गए मुगलोके व्यवहारपर प्रकाश पडता है। आसामसम्वन्धी इतिहासके लिए हमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण तद्देशीय 'बुरजी' ग्रन्थ मिलते है।

औरंगजेबके राज्य-कालके अनेकानेक विशिष्ट कालोपर अधिक एव नया प्रकाश डालनेवाले बहुत-से मौलिक साधन प्रथम वार मुझे मिले है, जिनमे दिया हुआ विवरण उपयुक्त सरकारी वृत्तान्तोसे भी कही अधिक महत्त्वपूर्ण है। इनमे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है शाही दरवारकी घटनाओ का तत्कालीन हस्तलिखित दैनिक विवरण (अखवार-इ—दरवार—इ—मुअल्ला), जो जयपुर राज्यके मुहाफिजखाने और रायल एशियाटिक सोसाइटी लंडनके पुस्तकालयमें सुरक्षित है। साथ ही साथ ईसाकी १७वी

शताब्दीमे भारतके ऐतिहासिक रंगमंचके अभिनेताओ, तत्कालीन महत्त्वपूर्ण पुरुषोके निजी पत्रोको भी भूला नही जा सकता है। मेरे निजी सग्रहमे औरगजेबके शासन-कालके ऐसे कोई छः हजार पत्र हैं, जिनमेसे एक हजारसे अधिक अकेले औरगजेवने ही लिखे थे। इन पत्रोमे हमे उस समयकी घटनाओका ज्यो-का-त्यों वर्णन मिलता है। अपनी निजी उद्देश्य-पूर्तिके लिए इतिहासकारो द्वारा की गई कोई भी आवश्यक काट-छॉट हम उनमे नही पाते है। तत्कालीन भारतीय इतिहासके निर्माताओकी आशाओं तथा आशकाओ, योजनाओ और उनके व्यक्तिगत मतोका सच्चा चित्रण हमे उनमे मिलता है।

औरगजेबके समयमे आनेवाले विभिन्न यूरोपियन यात्री, टेवरनियर, बरनियर, करेरी, मनुची, आदिने भी उसके राज्य एव शासनका विस्तृत विवरण लिखा है। इनकी रचनाओमे उस समयकी सामाजिक स्थिति, व्यापार तथा उद्योग-धन्धो और भारतमें ईसाई धर्मके प्रचारके इतिहासका पूरा-पूरा उल्लेख है। इन सब बातोके लिए यह रचनाएँ नि सन्देह बहुत ही उपयोगी है।

४. जन्म और शिक्षा

मुहीउद्दीन मुहम्मद औरगजेब, शाहजहाँ और मुमताज़ महलकी सातवी सन्तान था। इसका जन्म दोहद* मे १५ जीकाद, सन् हिजरी १०२७ (२४ अक्तूबर, १६१८ ई०) के दिन हुआ था। यही औरगजेब बादमे आलमगीर प्रथमके नामसे दिल्लीके राज्यसिहासन पर बैठा। उसकी तीव बुद्धि और स्वाभाविक विलक्षण स्मृतिके विवरणपर हमे सहज ही विश्वास हो जाता है। कुरानका ज्ञान तथा मुहम्मद पैगम्बरके (हदीस) परम्परागत कथनोसम्बन्धी उसका

* दोहद (२२° ५० उ०, ७४° २० पू०) बम्बई सूबेके पचमहाल जिलेमे इसी नामके तालुकेका प्रधान शहर है। यह शहर पश्चिमी रेलवेके दोहद नामक स्टेशनसे दक्षिणमे वसा है।

अध्ययन गम्भीर और सम्पूर्ण था, यह वात उसके पत्रोमे स्पष्टतया झलकती है। हर समय वह उनके उपयुक्त उदारण देने को तैयार रहता था। अरवी व फारसी भाषाओपर उसका पूरा पूरा अधिकार था, तथा उन भाषाओके पडितकी तरह उन्हे लिख और वोल सकता था। उस समय तक मुगल-दरवारके घरेलू जीवनमे हिन्दुस्थानीका प्रयोग होने लगा था, यही उसकी मातृभाषा भी थी। उसे हिन्दीका भी साधारण ज्ञान था। साधारण वातचीतमे वह हिन्दीकी लोक-प्रिय कहावतो को भी काममे लाता था।

निरर्थक-काव्य साहित्यकी औरगजेव उपेक्षा करता था। प्रशसात्मक काव्यसे उसे घृणा थी। उपदेशात्मक, सुसम्मत कविता उसे पसन्द थी। धार्मिक ग्रन्थ और विवेचनाएँ, कुरानकी टीकाएँ, मुहम्मदके जीवनसम्बन्धी वृतान्त, इमाम मुहम्मद गजलीकी कृतियाँ मुनीर-निवासी शेख शर्फ याहिया और शेख जेनुद्दीन कुतुव मुही शीराजीके चुने हुए पत्र तथा इसी प्रकारके अन्य लेखकोकी रचनाएँ वह वडे प्रेमसे पढता था।

चित्रकारी उसे कभी भी पसन्द न रही थी। और अपने राज्य-कालके दस वर्षकी पूर्तिके उपलक्षमे होनेवाले उत्सवके समय उसने गायन विद्याको अपने राज-दरवारसे निकाल वाहर किया था। चीनी मिट्टीके सुन्दर वर्तन उसे वहुत ही प्रिय थे। अपने पिताके समान स्थापत्य कलासे उसे कोई प्रेम न था। अपने राज्य-कालमें उसने कोई भी उल्लेखनीय सुन्दर मसजिद,* सुविशाल भवन या

---

* दिल्लीके लाल किलेकी मोती मस्जिदमे हमे एक उल्लेखनीय अपवाद अवश्य मिलता है। १० दिसम्वर, १६५७ ई० को इसकी नीव डाली गई और पाँच वर्षमे वनकर पूरी हुई। इसके वनानेमे एक लाख साठ हजार रुपये व्यय हुए थे (आ० ना०, पृ० ४३८)। लाहौरमे औरंगजेवकी वनवाई मसजिद उस शहरमे सर्व-सुन्दर नही है। अपनी वेगम दिलरस वानूकी कब्र पर औरंगावादमे उसने जो मकवरा वनवाया था, वही उसके शासन-कालका सर्व-श्रेष्ठ स्मारक है।

मकबरा नही बनवाया। उसकी विजय-सूचक साधारण मसजिदे और दक्षिण व पश्चिमके राज-पथोपर पाई जाने वाली सरायें आदि अवश्य पाई जाती है।

५. हाथीसे मुठभेड़

बाल्यकालकी एक घटनाने औरगजेबकी ख्याति सारे भारत-वर्ष मे फैला दी थी। २८ मई, १६३३ के दिन शाहजहॉने आगरामे जमनाके समतल तटपर सुधाकर और सूरत-सुन्दर नामक दो हाथियोकी लडाईका आयोजन किया। कुछ दूर तक दौडनेके बाद वे दोनो हाथी किलेके उस झरोखेके नीचे, जहॉ सुवहमे बादशाह दर्शन देता था, आपसमे भिड गये। हाथियोकी यह लडाई देखनेको उत्सुक शाहजहॉ शीघ्रतासे वहॉ पहुँचा। उसके तीनो बडे पुत्र उससे कुछ कदम आगे घोडेपर सवार चल रहे थे। युद्ध देखनेके अभिप्रायसे औरगजेब हाथियोके बहुत ही निकट पहुँच गया।

कुछ समय बाद दोनो हाथी एक दूसरेको छोडकर पीछे हटे। अपने प्रतिद्वन्द्वीको पास न पाकर सुधाकरने वही खडे औरगजेबपर हमला कर दिया। यह चौदह-वर्षीय शाहजादा अपने घोडेको सम्हाले वही डटा रहा और नि शक होकर उसने आक्रमण करते हुए हाथीके सिरपर भाला फेका। चारो ओर आतक छा गया और लोग भागने लगे। हाथीको डरानेके लिए पटाखे आदि छोडे गए पर सब प्रयत्न व्यर्थ हुए। हाथी वढा चला आया, और अपने बडे-बडे दॉतोकी टक्कर मारकर उसने औरगजेबके घोडेको धरतीपर गिरा दिया। परन्तु वह बहादुर शाहजादा फुर्तीसे उठ खडा हुआ और उसने खडे खडे ही तलवारसे उस क्रुद्ध हाथीका सामना किया। उसी समय उसका बडा भाई शुजा घोडा दौडा कर वहॉ जा पहुँचा और अपने भालेसे उस हाथीको घायल किया। राजा जयसिह भी वहॉ आ गया और उसने भी हाथीपर वार किया। सूरत-सुन्दर हाथी भी तब तक फिरसे युद्धके लिए उस ओर आया। भालोकी चोटो और पटाखोकी

आवाजसे त्रस्त सुधाकर चिघाड़ता हुआ भागा और सूरत-सुन्दरने उसका पीछा किया। इस प्रकार औरंगजेब बच गया। शाहजहाँने उसे छातीसे लगाया और 'बहादुर' की पदवी देकर उसकी वीरताकी प्रशसा की। दरबारियोने भी मुक्तकंठसे समर्थन करते हुए कहा कि पुत्र भी पिताके समान पूरा साहसी था, और यों उन्होने स्मरण दिलाया कि अपनी जवानीमे किस प्रकार केवल तलवार हाथमे लिए हुए शाहजहाँने भी जहाँगीरके सामने एक जगली शेरका सामना किया था।

जब शाहजहाँने इस अविवेकी साहसके लिए प्यारपूर्वक उसे डाँटा, तब औरगजेवने उत्तर दिया कि इस 'युद्धमे यदि मैं मारा भी जाता तो लज्जाकी बात न होती। मृत्यु तो वादशाहोपर भी अपना पर्दा डालती है, इसमे अपमान क्योकर होता है।' १३ दिसम्बर१६३४के दिन औरगजेबको १० हजार घोडोका शाही मनसब मिला।

६. बुन्देला युद्ध, १६३५

ओरछानरेश वीरसिह देवने जहाँगीरके आदेशसे अबुल फजलका वध किया और और इसी प्रकार उसका कृपापात्र बनकर बहुत धनी तथा शक्तिशाली हो गया। सन् १६२७ ई० मे उसका पुत्र जुझार-सिह गद्दीपर वैठा और शाहजहाँके राज्य-कालमे विद्रोही हो गया। उसने गोडोकी पुरानी राजधानी चोरागढको घेरकर वहाँके राजा प्रेमनारायणको मार डाला। वहाँ दस लाखका खजाना भी उसके हाथ लगा। मृत राजाके पुत्रने शाहजहाँकी शरण ली (१६३५ ई०)।

शाहजहाँने बुंदेलखण्डपर आक्रमण करनेके लिए तीन सेनाएँ भेजी। बुन्देलोकी एक दूसरी शाखाके वशज देवीसिहको राजसिंहासनपर वैठानेका वचन दिया, जिसपर उसने इन सेनाओकी पूरी पूरी सहायता की। औरगजेव इन तीनो सेनाओका सर्वोच्च नायक बनाया गया था, परन्तु उसे ये अधिकार नाम-मात्रको ही दिये गए थे। सेनाके पिछले हिस्सेमे ही उसे रहना पडता था, तथापि उसकी

सलाह लिए बिना सेनापति कुछ भी नही कर सकते थे।

२ अक्तूबर, १६३५ ई० को ओरछाके निकट देवीसिंहने एक पहाड़ीपर धावा बोल दिया और ४ अक्तूबरको मुगलोने ओरछापर अधिकार कर लिया। जुझार हिम्मत हारकर धामोनी भाग गया और वहाँसे नर्मदा पार कर चौरागढ चला गया। मुगलोने १८ अक्तूबरको धामोनीपर कब्जा करनेके बाद उसका पीछा किया और चाँदा तथा देवगढके गोड राज्यो तकमे उसे जा खदेडा। अन्तमे जुझार जगलके बीच सोता हुआ गोडो द्वारा मार डाला गया। ओरछामे वीरसिहके बनाए हुए श्रेष्ठ मन्दिरको तोड कर उसके स्थान पर मसजिद बनाई गई। इस चढाईमे एक करोडका लूटका माल मुगलोके हाथ लगा, जिसमे वीरसिहका गुप्त कोष भी सम्मिलित था।

७. औरंगज़ेबकी दक्षिण की प्रथम सूबेदारी

मलिक अम्बरकी मृत्युके कुछ समय बाद सन् १६२७ मे जब शाहजहाँ गद्दीपर बैठा, तब उसने प्रारम्भसे ही दक्षिणमे आक्रमण-पूर्ण नीति बरतनी शुरू की। अहमदनगरके निजामशाही राज्यकी नई राजधानी दौलताबादपर उसने अपना अधिकार जमा लिया, और साथ ही उस राज्यके अन्तिम सुलतान हुसेनशाहको भी कैद कर लिया। किन्तु उसी समय एक नई उलझन पैदा हो गई। बीजापुर (आदिलशाही) और गोलकुण्डाके (कुतुबशाही) सुलतानोने अपने अपने राज्यसे लगे हुए अहमदनगरके नष्ट-भ्रष्ट राज्यके बाकी रहे प्रदेशोपर अधिकार करनेकी चेष्टा की। सुविख्यात मराठा राजा शिवाजीके पिता शाहजीने बीजापुर राज्यको सहायतासे एक नए निजामशाह सुलतानको अहमदनगर राज्यके सिहासन पर बैठाया, जो उनके हाथकी कठपुतली ही था, और तब उसके नामसे अहमदनगर राज्यके बाकी रहे प्रदेशोपर शासन करना आरम्भ किया।

शाहजहाँने वहाँ अपना अधिपत्य जमानेके भरसक प्रयत्न किये। सुव्यवस्थित शासन कार्यके लिए दौलतावाद और अहनदनगरको खानदेश सूबेसे अलग कर, उन्हे अलग ही सूबेदारके सिपुर्द किया (नवम्बर, १६३४) । युद्ध-सचालनके लिए फरवरी, १६३६ ई० मे सम्राट स्वय दक्षिण आया । ५० हजार सैनिकोकी तीन मुगल सेनाएँ बीजापुर और गोलकुण्डापर आक्रमण करनेके लिए तैयार की गई और ८००० सैनिकोंकी एक और चौथी सेनाने महाराष्ट्रपर आक्रमण किया, तब तो कुतुबशाह डर गया। उसने मुगलोका अधिपत्य स्वीकार करके प्रति वर्ष दो लाख हूण (दक्षिणी भारतका सिक्का) देना स्वीकार किया ।

स्वतन्त्र बने रहनेके लिए बीजापुर सुलतान तो मुगलोका सामना करनेको तत्पर हुआ । तब मुगलोंकी तीनों सेनाओने वीजापुर राज्यमे घुसकर वहांके गाँवो व खेतोंको उजाडा और वहाँकी प्रजाको वे गुलाम वनाने लगी । अन्तमे मई १६३६ ई०मे समझौता हो गया । इस सधिसे अहमदनगरका सारा निजामशाही राज्य दो भागोमे वाँटा गया । वीजापुर सुलतानको भीमा और सीना नदियोके बीचवाला सोलापुर और बाँगीका, उत्तरपूर्व ओर भालकी और चिडगुपका, पूना जिला, और उत्तरी कोंकणके प्रदेश मिले, जिनकी कुल आय२० लाख हूण की (८० लाख रुपये) होती थी । अहमदनगरका बाकी रहा सारा राज्य मुगल साम्राज्यके अधीन कर दिया गया । इसके अतिरिक्त आदिलशाहने मुगल सम्राट का आधिपत्य भी स्वीकार कर लिया और अपने ही समान मुगलोकी अधीनतामें रहने वाले पड़ोसी, गोलकुण्डा राज्यके सुलताननने मेल रखनेका वादा किया । गोलकुण्डा राज्य की सीमा मजेरा नदी तक मान ली गई । इस युद्धकी हानि-पूर्तिके लिए २० लाख रुपये भी देने स्वीकार किये । परन्तु आदिलशाह पर कोई कर नही लगाया गया ।

इस प्रकार दक्षिणका मामला तय करके शाहजहाँने दक्षिणमे मुगल राज्यकी दक्षिणी सीमा निर्धारित कर दी, जिसे दक्षिणके सव

राज्योने स्वीकार कर लिया। सम्राट उत्तरी भारत को लौट गया। जाते समय औरगजेबको दक्षिणी सूबोका सूबेदार वनाया (१४ जुलाई १६३६), और अब औरगाबाद उसकी राजधानी वनी। खिडकी नामक गॉवके स्थानपर मलिक अम्वरने यह शहर वसाया था और अपने तीसरे लडकेके नामपर इसका नाम 'औरगावाद' रखनेकी आज्ञा शाहजहॉने भी दी थी।

८. औरंगज़ेबका परिवार

औरगजेबके चार पत्नियॉ थी —

(१) दिलरस बानू—फारसके शाह इस्माइल सफावीके छोटे पुत्रके प्रपौत्र शाह नवाजखॉकी वह पुत्री थी। इसका विवाह ८ मई १६३७ को आगरामे बडी धूमधामसे औरगजेबसे हुआ था। मुहम्मद अकबरके जन्मके समय प्रसूति मे ही इसकी मृत्यु ८ अक्तूबर, १६५७ को औरगाबादमे हुई थी। उसे औरगाबादमे ही दफना दिया गया। मृत्युके बाद वह 'रुबिया-उद्-दौरानी' याने 'आधुनिक-पवित्रात्मा-रुबिया' नामसे कहलाई। उसका मकवरा दक्षिणी ताजमहलके नाम से प्रसिद्ध है। अपने पिताकी आज्ञासे औरगजेबके पुत्र आजमने उसकी मरम्मत करवाई थी। प्रतीत होता है, कि वह बहुत ही उद्धत स्त्री थी और फारसके राजवशीय होनेका उसे बडा गर्व था। औरगजेव भी उससे डरता था। ('ऐनेकडोट्स आफ औरगजेब' स० २७)।

(२) रहमत-उन्निसा—प्रचलित नाम 'नवाब बाई'—कश्मीरके अन्तर्गत 'राजौरी' राज्यके राजा राजूकी वह पुत्री थी। पहाडी राजपूत घरानेमे उसका जन्म हुआ था। उसके पुत्र बहादुरशाहने स्वय सिहासनपर बैठनेके बाद उसकी झूठी वशावली तैयार कराई थी कि उसके आधारपर बहादुरशाह स्वयको सैयद घोषित कर सके। उसने घाटीके तले फरदापुरमे एक सराय बनवाई और औरगावाद शहर के पास ही बाईजीपुरा उपनगर बसाया। उसके पुत्र मुहम्मद सुलतान और मुअज्जमने कुसगतिमे पडकर बादशाहकी आज्ञाओका उल्लघन

किया, जिसके कारण उसके जीवनके अन्तिम दिन दुखमय ही रहे। उसके उपदेशोका मुअज्जमपर कोई भी असर नही हुआ और अन्तमे वह कैद कर लिया गया। अपने पति व पुत्रोंके कई वर्षोके वियोगके वाद दिल्लीमे ही उसने अपनी जीवन-लीला समाप्त की (१६९१ई०)।

(३) औरगावादी महल—औरंगाबादमे शाहजादेके हरममें प्रवेश करनेके कारण ही उसकी इस तीसरी पत्नीको यह नाम दिया गया था। इसकी मृत्यु वीजापुरमे प्लेगके कारण १६८८ई०मे हुई थी।

(४) उदयपुरी महल—यह कामवख्शकी माँ थी। वेनिसके समकालीन यात्री मनुचीके कथनानुसार वह दाराशिकोहके हरममे रहने वाली जार्जिया देशकी दासी थी। दाराकी हारके बाद वह अपने नए स्वामीकी उपपत्नी बन गई। इस समय उसकी अवस्था किशोर थी। वृद्धावस्था तक सम्राट उससे प्रेम करता रहा और सम्राट की मृत्यु तक उसपर वह अपना प्रभुत्व और सौन्दर्य-प्रभाव बनाए रही। उसकी सुन्दरताके प्रभावके कारण ही उसकी मद्यपानकी आदतपर औरगजेबने कभी ध्यान नही दिया और उसके पुत्र कामवख्शके अनेकों अपराध क्षमा किए। औरगजेवके समान पाक मुसलमानको अपनी इस दुर्वलताके लिए अवश्य ही कभी-कभी आत्म-ग्लानि हुई होगी।

इसके अतिरिक्त बादशाहके जीवनमे एक और प्रेम-लीलाका विवरण मिलता है। प्रेमिकाकी चंचलता, निपुणता, संगीत और सौन्दर्य ही इसके कारण थे। यह स्त्री थी हीराबाई, जो जैनावादी नामसे प्रसिद्ध हुई। मीर खलील नामक व्यक्तिके साथ औरगजेवकी माँकी वहिनका विवाह हुआ था। यह नवयुवा दासी उसीकी उपपत्नी थी। दक्षिणकी सूबेदारी के दिनोमे एक वार औरंगजेव अपनी मौसीके घर बुरहानपुर गया। तव वहाँ ताप्तीके तटपर वागमे टहलते समय मौसी की अन्य दासियोके साथ उसने हीरावाईको एक वार विना घूँघटके देखा। शाहजादेकी उपस्थितिकी उपेक्षा कर फलों से लदे हुए आमके वृक्षपरसे हीरावाईने वड़ी चचलता पूर्वक रसमय भावसे एक आम तोड़ा। इस घटनासे औरंगज़ेवपर उसके अद्वितीय सौन्दर्यका प्रभाव

पड़ा और वह उसपर मोहित हो गया। बडी अनुनय-विनय करके उसे वह अपनी मौसीके यहाँसे ले आया और जी-जानसे उसपर निछा-वर हो गया। औरजबकी सारी प्रार्थनाओको अनसुनी करके हीरा-बाईने उसे एक दिन मद्यपानके लिए वाध्य किया। निराश होकर अन्त मे जब औरगजेबने प्याला ओठोसे लगाना चाहा त्योही हीराबाईने उसके हाथसे मदिराका वह प्याला छीन लिया और वोली—मेरा आशय केवल तुम्हारा प्रेम परखना था न कि तुम्हे पापके गढ़ेमे गिरानेका। इस प्रेमिका की जीवन-लीला उसके यौवन-कालमे ही समाप्त हो गई। इसकी मृत्युका शाहजादेको बडा ही दु ख रहा। औरगाबादमे एक सरोवरके पास उसे दफनाया गया।

औरगजेबके अनेक सन्ताने थी। उसकी प्रधान बेगम दिलरस बानूके ही पाँच बच्चे हुए—

(१) जेबुन्निसा—यह पुत्री १५ फरवरी १६३८ ई०को दौलता-बादमे पैदा हुई। इसकी मृत्यु २६मई १७०२ को हुई। दिल्लीमे काबुल-दरवाजेके पास 'तीस हजार वृक्षवाले' बागमे इसे दफनाया गया था। रेलवे बनानेके लिए इसका मकबरा तुड़वा दिया गया। अपने पिताकी-सी तीव्र बुद्धि और साहित्य-प्रियता उसमें भी थी। इसका निजी पुस्तकालय भी बहुत बड़ा था। अनेको विद्वान् उसके आदेशानुसार नए-नए ग्रन्थ लिखने और हस्तलिखित पुस्तकोकी नकल करनेके लिए नियुक्त थे, जिनको वह अपने निजी खर्चसे ही पर्याप्त वेतन देती थी। वह स्वय कविता भी करती थी। औरंगज़ेब कवितासे घृणा करता था, एव कवियोको आश्रय देकर वह शाही दरबारसे न प्राप्त होनेवाली इस बड़ी कमीको पूरा करती थी। 'मख़फी' (अज्ञात)उपनामसे उसने अनेकों गीत फारसीमे लिखे। परन्तु 'दीवाने मख़फी' नामक जो ग्रथ आजकल प्राप्त है, वह उसका लिखा नही है।

(२) जीनत-उन्निसा—बादमे वह 'पादिशाह बेगम' नामसे प्रसिद्ध हुई। इसका जन्म भी ५ अक्तूबर १६४३ ई० को औरगाबादमे हुआ था। अपने वृद्ध पिताकी मृत्यु-पर्यन्त कोई २५ वर्ष तक दक्षिणमे वह

शाही राजघरानेका सारा काम-धन्धा देखती रही। अपने पिताके बाद भी वह कई वर्षो तक जीवित रही, और औरंगजेबके उत्तराधिकारी उसे आदरकी दृष्टिसे देखते थे, वह एक महान-कालकी पवित्र स्मृति समझी जाती थी। इतिहास-लेखकोने उसकी पवित्रता और दान-शीलताकी बड़ी प्रशसा की है। इसकी मृत्यु ७ मई १७२१ ई० को दिल्ली मे हुई और 'जीनत-उल्-मसजिद' नामक आलीशान मसजिदमे उसे दफनाया गया।

(३) जुवदत्-उन्निसा — इसका जन्म २ सितम्बर १६५१ ई० को मुलतानमे हुआ था। इसका विवाह अपने सगे चचेरे भाई भाग्य-हीन दाराशिकोहके दूसरे पुत्र सिपरशिकोहके साथ ३० जनवरी १६७३ ई० को हुआ और फरवरी १७०७मे उसकी मृत्यु हुई।

(४) मुहम्मद आजम—इसका जन्म २८ जून १६५३ ई० को बुरहानपुरमे हुआ। पिताकी मृत्युके बाद वह उत्तराधिकार के लिए युद्ध करता हुआ सन् १७०७ ई० की जून मे जाजवमे मारा गया।

(५) मुहम्मद अकवर—इसका जन्म ११ सितम्बर १६५७ ई० को औरगावादमे हुआ। भारत छोडकर वह फारस चला गया और वही नवम्बर १७०४ मे मर गया। उसे मशहदमे दफनाया गया।

नवावबाईसे बादशाहके तीन सन्तानें हुई :—

(६) मुहम्मद सुलतान—इसका जन्म १९ दिसम्बर १६३९ई० को मथुरामे हुआ। वह कैदखानेमे ही ३ दिसम्बर १६७६के दिन मरा। ख्वाजा कुतवुद्दीनकी कब्रके घेरेमे उसे दफनाया गया।

(७) मुहम्मद मुअज्जम— इसका जन्म ४ अक्तूबर १६४३ ई० को बुरहानपुरमे हुआ। उसकी मृत्यु १८ फरवरी १७१२मे हुई। इसका उपनाम शाह आलम था और यही बहादुरशाह प्रथमके नाम से अपने पिताके बाद गद्दीपर बैठा।

(८) बदरुन्निसा—जन्म ७ नवम्बर १६४७ ई०, मृत्यु ९ अप्रैल १६७० ई०।

(९) औरंगाबादी महलसे बादशाहको केवल एक ही लडकी, मेहर्-उन्निसा, १८ सितम्बर १६६१ को हुई। इसका विवाह उसके सगे चचेरे भाई मृत मुरादबख्शके पुत्र इजीदबख्शके साथ २७ नवम्बर १६७२ को हुआ, और उसकी मृत्यु जून १७०६मे हुई।

(१०) मुहम्मद कामबख्श—वह उदयपुरी महलका पुत्र था। इसका जन्म २४ फरवरी १६६७ ई० को दिल्लीमे हुआ। उत्तराधिकार-प्राप्तिके लिए युद्ध करता हुआ वह ३ जनवरी १७०९ ई० को हैदराबादमे मारा गया।

६. औरंगजेबका बल्ख़-युद्ध १६४७

दो वर्ष तक गुजरातकी सूबेदारी करनेके बाद औरंगजेब बल्ख़ और बदख्शाँका सूबेदार तथा प्रधान सेनापति नियत किया गया (२१ जनवरी १६४७ ई०)। बल्ख और बदख्शाँके ये प्रान्त हिन्दुकुश पर्वतके उस पार, काबुलके ठीक उत्तरमे बुखारा राज्यके आश्रित थे। वहाँका सुलतान नजर मुहम्मदखाँ एक कमजोर और अयोग्य शासक था। अनेक अधिकारियोको अपने पदसे अलग करनेके कारण सन् १६४५ मे उसके विस्तृत राज्यके कई भागोमे विद्रोह हो गया। ये दोनो प्रान्त तैमूरकी राजधानी समरकन्दकी राहमे थे और एक समय बाबरके पूर्वजोका उनपर अधिकार रहा था। शाहजहाँने उनपर अपना अधिकार जमानेके लिए सेनाएँ भेजी।

शाहजादे मुरादबख्शने बडी सरलतासे जून, १६७४ मे इनपर अधिकार कर लिया था। परन्तु मुराद मध्य एशियामे रहना नही चाहता था और उजबेगोका सामना करनेसे हिचकता था, एव अपनी पिताकी इच्छाके विरुद्ध दो माह बाद ही वह बल्ख़ छोडकर चला आया। शाही सेना पीछे बिना नायकके रह गई। वहाँकी परिस्थिति सम्हालनेके लिये तब औरंगजेब भेजा गया। अलीमर्दानखाँ उसका प्रधान सहायक था। पग-पग पर उन्हे उजबेग सैनिक-दलोका सामना करना पडा। उन्हे हराता हुआ औरंगजेब आगे बढा और ७ अप्रैल १६४७

ई०को वह बलख शहर तक जा पहुँचा ।

नजर मुहम्मदका ज्येष्ठ पुत्र अब्दुल अजीजखाँ एक योग्य तथा शूरवीर सेनापति था । उसने बुखारा राज्यकी रक्षा का भार उठाया। उसकी आज्ञासे उजबेग योद्धाओंके बडे-बड़े दल बलख प्रान्तके विभिन्न स्थानोपर एकत्रित होकर मुगल सैनकोको यत्र-तत्र घेर लेनेका प्रयत्न करने लगे । बलखसे ४० मील वायव्यमे अकचासे शत्रुओको भगाने लिए जब औरगजेब बलख शहरसे चला तब उसे नित्य-प्रति उजबेगों का सामना करना पडा । इसी समय उजबेगोकी एक और सेना बुखारासे भी आ पहुँची । यह समाचार पाकर औरगज़ेबको बलख शहर लौट जाना पडा । कभी न थकने वाले चपल शत्रुओंसे मुगलों को निरन्तर युद्ध करना पड रहा था । साथ ही शाही सेनामे खाने-पीनेके सामानकी कमी थी । एक-एक रोटीका मूल्य अब दो रुपया तक हो गया था और पानी भी ऐसे ही मँहगे दामो मिलने लगा था। फिर भी पर्याप्त मात्रामे इनका मिलना कठिन था । परन्तु इतने कष्ट और कठिनाइयोके होते हुए भी औरगजेबके धीरज, दृढता और नियत्रणने फौजमे किसी प्रकारकी अव्यवस्था या शिथिलता नही आने दी ।

अपनी दृढ-निष्ठासे औरगजेब अपने उद्देश्यमे सफल हुआ । अन्त मे अब्दुल अजीजने सन्धि कर लेनेकी इच्छा प्रगट की । औरगजेबको हराकर पस्त कर देनेकी उसकी आशाएँ विफल हुई । औरगजेबके धैर्य व दृढतासे वह बहुत ही प्रभावित हुआ था । एक दिन जब घमासान युद्ध चल रहा था तब सन्ध्याकी नमाजका समय हो जानेपर औरगजेबने युद्ध-क्षेत्रमे ही चादर बिछाई और नमाज पढ़नेके लिए बड़ी ही नि शकतापूर्वक घुटने टेककर वैठ गया । उस समय आसपास जो भयकर युद्ध हो रहा था उसकी ओर औरगजेब़ने कोई ध्यान नही दिया । इस समय उसके पास ढाल,तलवार, आदि कोई भी शस्त्र नही थे । बुखाराकी सेना यह दृश्य देखकर आश्चर्यमे पड गई और अब्दुल अजीजके दिलमे आदर और श्रद्धा उमड आई और वह वोल उठा "युद्ध बन्द कर दो, ऐसे मनुष्यसे लड़ना, अपने सर्वनाश को ही

बुलावा देना है।"

सन्धिका प्रस्ताव करते हुए अब्दुल अजीजने प्रार्थना की कि वलख प्रान्त उसके छोटे भाई सुभान कुलीको दे दिया जावे। औरगजेवने यह प्रस्ताव बादशाहकी स्वीकृतिके लिए भेजा। शाहजहाँने यह निश्चय किया कि शाही सम्मान वनाने रखनेके हेतु, यदि नजर मुहम्मद बादशाहसे क्षमा-याचना करे तो यह जीता हुआ सारा देश उसे वापिस दे दिया जावे। नजर मुहम्मदके माफी माँग लेनेपर वलख का किला पहली अक्तूबरको नजर मुहम्मदके प्रतिनिधियोको सौप दिया और तब मुगल सेना काबुलको लौट पडी। हिन्दुकुशकी घाटियाँ पार करते समय मुगल सेनाको सामने और पीछेसे उजवेगो और हजाराओ के आक्रमणोका निरन्तर सामना करना पडा, जिससे धन-जनकी बहुत हानि हुई। इस युद्धके फलस्वरूप एक इच भी नई जमीन मुगलोके हाथ नही आई, फिर भी इसपर लगभग चार करोड़ रुपयो का खर्च उठाया गया।

बल्खकी इस चढाईके बाद मार्च १६४८से जुलाई १६५२ तक औरगज़ेब मुलतान और सिधका सूबेदार रहा। इस बीच वह ईरा-नियोसे कन्धार छीन लेनेके लिए दो बार वहाँ भेजा गया (जनवरी-से दिसम्बर १६४९ और मार्चसे जुलाई १६५२ ई०)। मुलतान और सिधके प्रान्तोमे बसनेवाली अफगान और बलूच जातियाँ वहुत ही जगली और पिछडी हुई थी। मुगल साम्राज्यके इन सीमान्त प्रदेश-वासियोको औरगजेब नाम-मात्रके लिए मुगल साम्राज्यके अधीन कर सका। इन प्रान्तोके व्यापारको फिरसे बढानेके उद्देश्यसे औरगजेबने वहाँ बहुत-सी सुविधाएँ दी। इसी हेतु समुद्रीय व्यापारके लिए सिन्धु नदीके निचले भागमे एक नया बन्दरगाह स्थापित किया और वहाँ नावो आदिके ठहरनेके स्थान भी बनवाए।

१०. औरंगज़ेबका कंधारके घेरे डालना, १६४९-५२

भारतवर्षमे पश्चिमी दिशासे आनेवाले मार्गके मुख-द्वारपर स्थित

तथा दक्षिणसे काबुलको जाने वाली राहको रोकनेवाला कंधारका यह किला, इन दो महत्वपूर्ण मार्गोकी निगाहबानी करता है। कंधारसे आगे पूरे ३६० मील तक समतल मैदान चला गया है और उस मैदानके पश्चिमी छोरपर हेरातका सुप्रसिद्ध किला स्थित है। हेरातके पास ही हिन्दूकुशकी पर्वतश्रेणीकी ऊँचाई कम होने लगती है जिससे कि मध्य एशिया और फारससे भारतपर आक्रमण करने-वालों को यहाँ हिन्दूकुश पार करनेमे कोई कठिनाई नही होती थी। हेरातसे भारतको आनेवाली इसी राहपर स्थित होनेके कारण कधारका किला सैनिक दृष्टिसे बहुत ही महत्वपूर्ण है। जिस समय काबुलका सूबा दिल्ली साम्राज्यमे सम्मिलित था, उन दिनो भारतकी सुरक्षाके लिए अत्यावश्यक मोर्चोकी श्रेणीमे कन्धार प्रधान और सबसे अधिक महत्व-पूर्ण माना जाता था।

ईसाकी सत्रहवी शताब्दीमे हिन्द-महासागरपर पुर्तगालियोकी जल-सेनाका एकाधिपत्य बना हुआ था, जिसके कारण भारतसे फ़ारसकी खाडी तकके जल-मार्ग प्रायः बन्द-से ही थे। ऐसे समय कन्धारका व्यापारिक महत्व उसके फौजी महत्वसे किसी भी भाँति कम न था। भारतवर्ष और मसाले उत्पन्न करनेवाले द्वीपोसे पश्चिमी देशोमे जानेवाला सारा व्यापारी सामान थल-मार्ग द्वारा मुतलान, पिशन और कन्धारकी राह ही फारस और यूरोप जाता था। सन् १६१५ ई० के लगभग प्रति वर्ष विभिन्न मालसे लदे हुए कोई १४ हजार ऊँट इस मार्गसे फारस जाते थे। इसी कारण कुछ ही समयमे कन्धार शहर वस्तुओके आदान-प्रदानका एक बहुत बड़ा व्यापारिक और धनपूर्ण केन्द्र बन गया।

अपनी इस भौगोलिक स्थितिके कारण कन्धारका क़िला भारत-वर्ष और फारसके शासकोंके बीच कशमकशका एक प्रधान कारण बन गया था। जहाँगीरकी वृद्धावस्थामे शाह अब्बासने ४५ दिन तक उसका घेरा डाले रहनेके बाद उसपर अधिकार कर लिया था (१६२३ई०)सन् १६३८ ई०मे वहाँके ईरानी सूबेदार अलीमर्दानखाँने

अपने स्वामीकी अप्रसन्नता से डरकर यह किला शाहजहाँको चुपचाप सौप दिया। पर ईरानी चुपचाप बैठनेवाले नही थे। केवल ५७ दिनके घेरेके बाद (फरवरी, १६४९ ई० मे) उन्होने यह किला मुगलोसे सदा के लिए छीन लिया। किलेकी मुगल सेनाको सहायता भेजनेमे शाहजहाने बहुत देरी कर दी थी।

पर मुगल-साम्राज्यकी मान-रक्षाके लिए इस किलेको ईरानियोसे वापिस छीन लेना अत्यावश्यक था। इसके लिए शाहजहाँके पुत्रोने कन्धारके तीन घेरे डाले, जिनमे हर बार वहुत सा द्रव्य व्यय हुआ तथापि एक भी घेरा सफल नही हुआ। कधारका पहला घेरा १४ मई १६४९ को ओरगजेब और वजीर सादुल्लाखाँके सेनापतित्वमे ५० हजार सैनिकोने डाला था। पर किला मुगलोकी छोटी तोपोकी मारसे परे था। भारी तोपोके अभावके कारण उस किलेकी दीवारो-को तोडकर उस पर आक्रमण करना असम्भव था। शाहजहाँके शासन-कालके सरकारी इतिहासकारको भी स्पष्ट रूपसे स्वीकार करना पडा था कि—"तुर्कोके विरुद्ध निरन्तर काम पडनेके कारण लम्बे समय तक चलनेवाले युद्धो और किलोके बचाव तथा उनपर आक्रमण करनेकी कलामे ईरानी बहुत ही निपुण हो गए थे। शस्त्र-विद्यामे निपुण होकर उन्होने कन्धारके किलेको भारी तोपो तथा। सुशिक्षित तोपचियोसे इस प्रकार सुसज्जित किया था कि .... शाही सेनाके सारे प्रयत्न व्यर्थ हुए"। ५ सितम्बरको औरगजेब कन्धारसे लौटनेके लिए रवाना हुआ। कन्धारसे २० मील उत्तरपश्चिममे अरगधब नदीके तीरपर मुगल सेनापति कलीचखॉ और रुस्तमखॉ दक्खिनीका ईरानी सेनासे डटकर मुकाबिला हुआ जिसमे उन्होने ईरानियोको बुरी तरह हराकर कुश्क-इ-नखुदसे आगे तक पीछा किया।

दूसरी बार कन्धारको वापिस लेनेकी तैयारियॉ और भी बडे पैमानेपरकी गई। २ मई १६५२ ई० को फिरसे औरगजेब और सादुल्लाखॉने किलेको जा घेरा। दीवारोको तोडनेके लिए तोपे दागी गई और उसकी खाइयो तक खन्दके खोदी गई। खाइयोंका पानी सुखाने

का भी पूरा–पूरा प्रयत्न किया गया। रात्रिमे 'चेहल जीना' (चालीस-सीढीवाले) बुर्जके पीछेवाली पहाडीके सिरेपर धावा किया। परन्तु ये सब प्रयत्न विफल हुए क्योकि युद्ध-विद्यामे ईरानी सेना जितनी निपुण थी मुगल सेना उतनी ही अयोग्य थी। मुगलोके तोपचियोके निशाने तक ठीक नही लगते थे, जिससे किलेपर उनकी गोलाबारीका कोई भी असर नही हो सका।

एक माहके भीतर ही आक्रमण-सम्बन्धी सामानकी कमीके कारण खाइयोके पानी को सुखाने और सुरग लगानेका कार्य बन्द करना पडा। दो माहकी गोलदाजीके बाद भी किलेकी दीवारोमें कही भी जरा-सी दरारे न पड सकी। अन्तमे शाहजहॉकी आज्ञा पाकर घेरा उठा लिया गया और ९ जुलाईको मुगलसेना पीछे भारतके लिए लौट पड़ी।

शाहजहॉ औरगजेबकी इस असफलतापर बहुत ही क्रुद्ध हुआ और औरगजेबकी अयोग्यताको ही इस विफलताका कारण बताता रहा। पर वास्तवमे इस युद्धके सचालनका कार्य काबुलसे स्वय बादशाह ही सादुल्लाखॉके द्वारा करता था और प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कार्यको आरम्भ करनेसे पहिले उसकी अनुमति लेनी पडती थी।

औरगजेबपर लगाए गए अयोग्यता-सम्बन्धी इस दोषका प्रतिकार अगले वर्ष ही होगया, जब उससे भी अधिक द्रव्य व्यय कर और पूरी तैयारीके बाद भी कन्धारके हमलेमे बुरी तरह हार खाकर दाराशिकोहको विफल मनोरथ लौटना बडा। फारसका शाह गर्वपूर्वक कहा करता था कि दिल्लीके बादशाह सोना देकर ही किला चुराना जानते है, भुजाओके बलसे युद्धमे किले जीतना उन्हे नही आता। मुगलोके विरुद्ध उनकी इन सफलताओसे ईरानी सेनाका यश बढना स्वाभाविक ही था। कई वर्षो तक ईरानियोके आक्रमण-की यह आशका भारतके पश्चिमी सीमा प्रान्तोपर निरन्तर बनी रही। फारसके इस योद्धा शाहकी मृत्युके वाद ही औरगजेव और उसके मत्रीने शान्तिसे सॉस ली।

अध्याय २

दूसरी बार दक्षिणकी सूबेदारी

(१६५२-१६५८ ई०)

१. मुग़लोंके दक्षिणी सूबोंकी दुर्दशा एवं दुर्गति : वहाँकी आर्थिक कठिनाइयां

कन्धारसे काबुल लौट आनेपर औरगजेब दूसरी बार दक्षिणका सूबेदार बनाया गगा (१६५२ ई०)। औरगजेवने मई १६४४ मे जब दक्षिण की सूबेदारी छोडी थी, तबसे वहाँकी शासन व्यवस्थामे कोई उन्नति नही हुई। निस्सन्देह उन सूबोमे असाधारण शान्ति बनी रही थी, किन्तु इन बरसोमे बहुत-सी जोती हुई उपजाऊ जमीन पुन पडत रहकर जगलोमे बदल गई थी। किसानो की सख्या भी घट गई तथा उनकी आर्थिक स्थिति बिगड गई और साधन भी पहिलेसे न रहे, जिनसे इन सूबोकी आय बहुत कम हो गई। इस दुर्दशाका कारण शीघ्रातिशीघ्र सूबेदारोकी बदला-बदली होते रहना और उनमेसे कईका सर्वथा अयोग्य होना ही था।

दक्षिणी सूबोपर शाही कोषका अत्यधिक धन व्यय होता रहा था। वहाँ की भी पूरी पूरी वसूली नही हुई। दक्षिणमे मुगलोके आधीन सारा प्रदेश सूबोमे बँटा हुआ था, जिनकी वार्षिक आय तीन करोड़ ६२ लाख रुपये थी। परन्तु १६५२ ई० मे इसकी एक तिहाईसेकम केवल १ करोड रुपये ही वसूली हो पाए थे । इस

प्रकार इन सूबोकी आय खर्चसे भी कम होनेके कारण इन प्रान्तोंमे सुप्रन्बध वनाए रखने के लिए इस कमीकी पूर्ति साम्राज्यके अन्य समृद्धिशाली प्रान्तोकी आयसे की जाती थी ।

दक्षिण पहुँचकर औरगजेबको इस कठिन आर्थिक परिस्थितिका सामना करना पडा । जागीरोकी निर्धारित आयका एक अश-मात्र ही वास्तवमे वसूल हो पाता था । औरगजेबको दक्षिणमे नियुक्त करते समय शाहजहाँने वहाँ खेती-बाडी सुधारने, उसे बढाने और किसानोकी दशा सुसमृद्ध बनानेकी ओर विशेष ध्यान देनेपर खास तौरसे जोर दिया था । औरगजेबने भी उसकी इन आज्ञाओंके पालनका वचन दिया था । अतएव इन सब बातोके लिए पर्याप्त समय, धन और आवश्यक सहायकोके लिए उसने बादशाहसे प्रार्थना की थी । निरन्तर युद्धोके कारण फैली हुई अराजकता, तथा उसी कारणसे उजड़े हुए प्रदेशोमे दस वर्षोके अव्यवस्थित शासन-प्रबन्धको केवल दो या तीन ही वर्षो मे सुधारना सभव नही था । वहाँ जाकर औरगजेबने ज़मीनका जो बन्दोबस्त किया उससे उसकी यह सूबेदारी दक्षिणी भारतकी मालगुजारी-व्यवस्थाके इतिहासमे चिर-स्मरणीय हो गई ।

२. मुर्शिदकुलीख़ां—उसका चरित्र और उसका मालगुज़ारी बन्दोबस्त

खुरासान-निवासी मुर्शिदकुलीखाँ कन्धारसे भागे हुए ईरानी सूबेदार अलीमर्दानखाँके साथ ही आकर भारतमे बस गया था । एक वीर योद्धाके गुणोके साथ ही उसमे शासन-व्यवस्थाकी भी अपूर्व योग्यता विद्यमान थी । औरगजेबके दीवानकी हैसियतसे इन दक्षिणी सूबोकी मालगुजारी प्रथामे उसने अनेकानेक महत्त्वपूर्ण सुधार किए । उसकी अपनी यह नई योजना बहुत ही सफल हुई ।

इससे पहिले दक्षिणमे मालगुजारीकी कोई भी स्थायी व्यवस्था नही थी । जमीनको अलग-अलग विभागोमे बाँट कर उनकी सीमाएँ निश्चित करना, खेतोका क्षेत्रफल मापना, प्रति बीघाके हिसाबसे माल-

गुजारी-कर निर्धारित करना, अथवा मालगुजार और किसानोके बीच कुल उपजके बटवारे आदिके उचित तरीकोको निश्चित करना, आदि बाते पहिले दक्षिणमे कभी प्रचलित नही रही। वहाँका किसान एक जोडी बैल और एक हलसे ही मनचाही जमीन जोत लेता था, चाहे जो फसल वह बो सकता था, तथाप्रति हलके हिसावसे राज्यको थोडा-सा कर देकर छुटकारा पा लेता था। मालगुजारीकी दर भी हर स्थानमे अलग-अलग थी, जो अधिकतर शासकोकी इच्छानुसार ही निर्धारित की जाती थी। छोटे-छोटे हाकिम किसानो पर मनचाहा अत्याचार और अपनी धुनके अनुसार पैसा वसूल करते थे। वरसो तक लगातार वर्षाके अभावके कारण तथा मुगलोके साथ होनेवाले निरन्तर युद्धोके फल स्वरूप वे पूरी तरह वर्बाद हो चुके थे। अत्याचार-पीडित किसान घर छोड-छोडकर भाग गए, आबाद गाँव उजड गए और खेत पडत रहकर जगलोमे बदल गए।

इस नये दीवानने टोडरमलकी सुप्रसिद्ध व्यवस्थाको दक्षिणमे भी प्रचलित कर वहाँ सुधारका आयोजन किया। योग्य हाकिमोकी सुव्यवस्थित देख-रेखमे कठिन परिश्रम करके किसानोको वहाँ फिरसे बसाया। प्रत्येक गाँवमे आवश्यक लोगोको आबाद कर वहाँ के जरूरी-जरूरी कार्यकर्ताओका ठीक-ठीक प्रबन्ध कर उन गाँवोकी ऐसी सुव्यवस्था की कि उनका काम सरलतापूर्वक चल सके। सब जगह चतुर बुद्धिमान् अमीनो और ईमानदार पैमायश करनेवाले, जमीन नापने, खेतोके रकबे, आदि का ठीक लेखा रखने और खेतीके योग्य जमीनको पहाडी भूमि तथा नदी-नालोसे पृथक निश्चित करनेके लिए उपयुक्त कार्यकर्ता नियुक्त किए गए। जिस गाँवका मुकद्दम (मुखिया) मर जाता था, तब उसी गाँवसे चुनकर ऐसे योग्य और चरित्रवान् व्यक्तिको ही वहाँका मुकद्दम बना देते, जो खेतीकी देखभाल और गाँवकी तरक्की के लिए प्रयत्न कर सके। गरीब प्रजाको शाही खजाने से पशु, बीज और खेतीके लिए अन्य आवश्यक चीजे खरीदनेके लिए तकावी दी जाती थी, जिसे फसलके समय किश्तोके रूपमे सुविधानुसार

वसूल करते थे ।

स्थानीय परिस्थितिके अनुसार अपनी सूझ-बूझसे ही वह प्रत्येक जगहकी व्यवस्थामे आवश्यक हेर-फेर कर देता था । जहाँके किसान पिछड़े हुए थे, आबादी कम थी और जहाँ सारा देश उजडा पड़ा था वहाँ उसने प्रति हलकी दरसे मालगुजारी निश्चित करनेकी प्रथा ही कायम रखी । दूसरे कई स्थानोमे खेतोमे उत्पन्न पैदावारको बाँटनेकी प्रथा आरम्भ की ।

मालगुजारी सम्बन्धी उसके बन्दोबस्तका तीसरा तरीका उत्तरी हिन्दुस्तानकी तरह बहुत ही लम्बा-चौडा और पेचीदा था । इस प्रथा-के अनुसार कुल उपजका एक चौथाई भाग सरकार वसूल करती थी, चाहे वह उपज अनाजकी हो या कन्द-मूल, फल या बीज, आदि किसी भी दूसरे प्रकारकी वस्तु ही क्यो न हो । बीज बोनेसे लेकर काटने तकका समय, फसलकी हालत, उसकी उपज, बोई गई जमीन का रकबा, बाजार-भाव आदिको देखकर ही प्रति बीघेके हिसाबसे माल-गुजारी की रकमका स्थायी मान रुपयोंकी निश्चित रकमके रूपमे तय किया जाता था । यों यह प्रथा दक्षिणके मुगल सूबोंमे प्रथम बार प्रचलित की गई, जो बादमे भी कई शताब्दियों तक 'मुर्शिदकुलीखाँ की धारा' के नामसे कहलाई । उसकी निरन्तर सावधानीपूर्वक निजी देखरेखके कारण ही इस उत्तम प्रबन्धसे कृषिमे शीघ्र ही उन्नति हुई और राज्यकी वार्षिक आय बढ गई ।

३. दक्षिणमे औरंगज़ेबके शासन--सुधार

औरगजेबने सूबेदारी सम्हालते ही राज्य-शासनको सुव्यवस्थित करनेके लिए बूढे और अयोग्य अधिकारियोंको हटाकर महत्त्वपूर्ण पदोपर विश्वसनीय तथा परखी हुई योग्यतावाले व्यक्तियोको नियुक्त किया । सेनाकी उच्चत्तम योग्यता बनाए रखनेके लिए उसने विपुल धनकी आवश्कयता को समझकर उसका भी उचित प्रवन्ध किया ।

सैनिक-सगठन मे जो-जो कुप्रथाएँ तथा कमजोरियाँ घुस गई थी,

उन्हे दूर करनेके लिए उसने एक अनुभवी सेना-नायकको नियुक्त किया, जिसने बडी ही तत्परता और चतुराई से सेनाकी प्रवन्ध—व्यवस्थामे उचित सुधार किए। उसने प्रत्येक किलेमे जा-जाकर वहाँ की सारी विभिन्न छोटी-मोटी वस्तुओ, शस्त्रागारो और अन्न-भडारों का स्वय निरीक्षरण किया, और जो-जो कमियाँ उसे देख पडी उन्हे तत्काल ही पूरा किया। जो-जो वृद्ध और निकम्मे सैनिक तोपचियो-के कामपर नियुक्त किए गए थे, उन्हे वाध्य किया कि वे तोप चलाने की विद्या पूरी तरह सीख ले। ऐसे तोपची जो निशानेवाजीमे विलकुल ही असफल रहते थे वे अपने पदसे अलग कर दिए जाते थे। अपाहिज और बूढे सैनिकोको, उनकी सेवाका खयाल करके, पेन्शने दे दी गई। इस अफसरने फौजकी योग्यता वढानेके साथ ही साथ लगभग ५०,००० रु० की सालाना बचत भी की।

४. गोलकुंडा राज्यकी सम्पत्तिः मुग़लोंके साथ उसके विरोधके कारण

गोलकुण्डा बहुत ही उपजाऊ और सिचाईके साधनोसे पूरी तरह सुसज्जित देश था। वहाँकी जनसख्या बहुत अधिक और वहाँके निवासी बडे ही परिश्रमी थे। इस राज्यकी राजधानी हैदराबाद, केवल एशिया ही नही, सारे ससारमे हीरोके व्यापारका प्रधान केन्द्र था। कई उद्योग-धन्धोके लिए प्रसिद्ध होनेके कारण यहाँपर बहुत-से विदेशी व्यापारी भी एकत्रित रहते थे। बगालकी खाडीमे मछलीपट्टम शहर इस राज्यका प्रधान तथा ही बहुत सुविधापूर्ण बन्दरगाह था।

यहाँके जगलोमे हाथियोके बड़े-बडे झुड मिलते थे, जिनसे राज्य की सम्पत्तिमे वृद्धि ही होती थी। तम्बाकू और ताड यहाँ बहुत अधिक मात्रामे होते थे, जिससे तम्बाकू और ताडीपर लगाए करोसे राज्यको काफी आमदनी हो जाती थी।

गोलकुण्डाके सुलतानसे लडनेके लिए औरगजेबके पास अनेक कारण थे। दो लाख हूणका वार्षिक कर सदैव उसपर बकाया ही

रहता था। प्रत्येक तकाजेके उजरके जवाबमे मुगल सूबेदारको वह कुछ कारण बताकर अधिक समयकी ही माँग किया करता था।

५. मीरजुमला--उसकी जीवनी और पद

सन् १६३६ ई० की सधिके समय मुगल साम्राज्य और दोनो दक्षिणी राज्योकी सीमाएँ स्पष्ट रूपसे निर्धारित कर दी गई थी। कृष्णा नदीसे कावेरी पार तजोर तक कर्णाटिक प्रदेश था, जिसमे विजयनगर राज्यके भग्नावशेष छोटे-छोटे हिन्दू राज्य सर्वत्र फैले हुए थे। उन राज्योपर अब एकाएक मुसलमान शासकोका आधिपत्य होने लगा। चिलका झीलसे पेनार नदी तकके प्रदेशोको जीतती हुई गोलकुण्डाकी सेनाओने उस राज्य की सीमाओको बगालकी खाडी तक फैला दिया।

दक्षिणी ओर बढते हुए जिजी और तजोरके किनारेको वशमे कर बीजापुर राज्य अब पूर्वकी ओर बढने लगा। विजयनगरके अन्तिम अवशेषोको सगठित करते ही चन्द्रगिरी राज्यकी स्थापना की गई थी। पूर्वमे नेलोरसे पाँडिचेरी तक और पश्चिममे मैसूरकी सीमा तक यह राज्य फैला हुआ था। उत्तर और दक्षिण दोनो दिशाओंमे इन दोनो मुसलमानी राज्योके बीचमे यह राज्य अब घिर गया। इसे हडप लेने के लिए गोलकुण्डा और बीजापुर राज्योके बीच अब एक कशमकश शुरू हुई। इस राज्यको जीतनेमे गोलकुण्डाके वजीर मीर-जुमलाका बहुत बड़ा हाथ था।

मुहम्मद सैयद, जो इतिहासमे मीरजुमलाके नामसे प्रसिद्ध है, फारस देशके आर्दिस्तान प्रान्तका रहनेवाला सैयद था। वह इस्फहानमें रहनेवाले तेलके व्यापारीका पुत्र था। युवावस्थामे ही अपनी जन्मभूमि छोड़कर वह दक्षिणी भारतके सुलतानोके दरवारमे भाग्यपरीक्षाके लिए चला आया (१६३० ई०)। हीरे-जवाहरातका व्यापारी वनकर वह अत्यधिक धनवान् हो गया। उसके आश्चर्यजनक गुणोसे बहुत प्रसन्न होकर अब्दुल्ला कुतुवशाहने उसे अपना प्रधान मन्त्री वना

लिया। अपनी उद्योगशीलता, व्यापार-चातुर्य्य, शासन-क्षमता, युद्ध-कुशलता और जन्मजात नेतृत्व शक्तिके कारण मीरजुमलाको अपने प्रत्येक कार्यमे सर्वथा निश्चित सफलता मिलती रही। राज्य-शासन और युद्धक्षेत्र, दोनोमे ही अपूर्व योग्यताके कारण वह शीघ्रही गोल-कुण्डाका वास्तविक शासक बन गया। अपने स्वामीकी आज्ञानुसार कर्णाटक पहुँचकर मीरजुमलाने बहुतसे यूरोपियन गोलन्दाजो तथा तोपे ढालनेवालोको अपनी सेनामे भरती कर लिया, और यो उसने अपनी सेना अधिक शक्तिशाली, रणदक्ष और सुनियन्त्रित बना ली, तथा शीघ्र ही कडप्पा जिलेपर अधिकार कर लिया, और अब तक दुर्गम समझे जानेवाले गडीकोटाके पहाडी किलेको जीत लिया। कडप्पाके पूर्वमे स्थित सिधौतको* जीतते हुए उसके सेनापति अर्काट जिलेके उत्तरमे स्थित तिरुपति और चन्द्रगिरी तक बढते चले गए। गडे हुए खजानेकी खोज कर-करके उन्हे लूटा, जिससे मीर-जुमलाको अटूट सम्पत्ति प्राप्त हो गई। इन विजयो द्वारा उसने अपनी कर्णाटक-की जागीरको एक राज्यमे परिणत कर लिया। इस प्रकार वह अपने स्वामीसे पूर्णतया स्वतन्त्र होकर सचमुच ही कर्णाटकका वास्तविक राजा बन बैठा। अतमे ईर्ष्यालु दरबारियोके उकसानेपर कुतुबशाह ने आज्ञापालन न करनेवाले अपने इस कर्मचारीको दबानेका खुल्लम-खुल्ला बीडा उठाया।

६. कुतुबशाहकी मुग़लोंसे अनबन, १६५५

अब मीरजुमला अपने लिए एक उपयुक्त रक्षककी खोजने लगा। उसने बीजापुरके अधीन रहकर उस राज्यकी सेवा करनेका प्रस्ताव किया, तथा साथ ही वह मुगलोसे भी दोस्ती गाठनेका प्रयत्न करने लगा। औरगजेब मीरजुमलाके समान सुयोग्य सहायक और सलाह-कारको मुगल साम्राज्यका प्रधान मन्त्री बनानेके लिए बडा ही उत्सुक

* कडप्पा शहर से सिधौत ९ मील पूर्वमे और गंडीकोटा ४२ मील उत्तर-पश्चिम मे है। दोनो ही शहर पेनार नदी के किनारे स्थित है।

था। गोलकुण्डामे स्थित मुगल दूतके द्वारा औरंगजेबने मीरजुमलासे गुप्त पत्र-व्यवहार आरम्भ किया, और मुगलोंकी नौकरी स्वीकार करने पर बादशाहसे अनेक उपहार दिलानेका उसे वचन दिया। पर औरगजेबके प्रस्तावको स्वीकार करनेकी मीरजुमलाको कोई जल्दी न थी, एव उसने एक वर्षके बाद उत्तर देनेकी इच्छा प्रकट की।

इसी समय वजीर मीरजुमलाके पुत्र मुहम्मद अमीनने कुतुबशाह के प्रति अपने बर्तावसे गोलकुण्डामे एक सकटपूर्ण परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी। इधर कई वर्षोसे गोलकुण्डाके दरबारमें मीरजुमलाका प्रतिनिधि बनकर वह राज्य-शासन का कार्य करता था। वह खुले-आम दरबारमे भी सुलतानका बहुत ही कम अदब करता था। एक दिन वह नशेमे लड़खडाता हुआ दरबारमे आया, और खुद सुलतान की गद्दीपर जा लेटा और कै करके उसने गद्दीको खराब कर दिया। उसके व्यवहारोसे तग हुए सुलतानसे अब रहा न गया, उसने मुहम्मद अमीन को सकुटुम्ब कैदखानेमे बन्द कर दिया और सारी जायदाद जब्त कर ली (२१ नवम्बर १६५५ई०)। दीर्घ कालसे औरगजेब इसी अवसरकी प्रतीक्षा कर रहा था।

१८ दिसम्बरके दिन औरगजेबको बादशाहके पत्र मिले जिनमे मीरजुमला और उसके पुत्रकी मुगलोंकी शाही सेवा मे नियुक्तिकी सूचना थी, साथ ही कुतुबशाहको आज्ञा दी गई थी कि वह इन दोनों को शाही दरवारमे जानेसे न रोके, तथा उनकी जायदादपर कोई प्रतिवन्ध न लगावे। औरगजेबने यह आज्ञा-पत्र तुरन्त ही कुतुवशाह के पास भेज दिया और उसके न मानने या उसके पालन करनेमें देरी होनेपर युद्धकी धमकी दी। साथ ही साथ उसने अपनी सेना गोलकुण्डा की सीमाकी ओर वढ़ाई। किन्तु कुतुबशाहने मुगलोके इन शाही फ़रमानोकी कोई परवाह न की।

मुहम्मद अमीनके कैद होने की ख़वर सुनकर २४ दिमम्वरको शाहजहॉने कुतुवशाहको एक पत्र लिखकर आदेश दिया कि मीर-जुमलाके कुटुम्वको मुक्त कर दे। साथ ही औरंगजेवको सतुष्ट

करनेके लिए, मुहम्मद अमीनके न छोडे जानेपर ही गोलकुण्डापर आक्रमण करनेकी उसे आज्ञा दे दी (२९ दिसम्बर)। औरगजेबने अब गोलकुण्डाको नष्ट करनेके लिए पूरी चतुराईसे काम लिया। शाहजहाँ को २४ दिसम्बरवाले जिस पत्रमे साफ तौरपर कैदियोंको छोड देनेकी आज्ञा दी गई थी, उसे पाकर उसके अनुसार कार्य करानेके लिग औरगजेबने कुतुवशाहको कुछ भी अवसर नही दिया। उसने घोषित कर दिया कि कुतुवशाहका कैदियोको न छोड़ना ही शाही आज्ञा-भगका स्पष्ट उदाहरण है। गोलकुण्डापर आक्रमण करनेके लिए इसी एकमात्र कारणकी आवश्यकता थी।

६. गोलकुण्डा राज्यपर औरंगज़ेबकी चढ़ाई, १६५६

औरगजेबकी आज्ञानुसार उसके ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद सुलतानने नान्देरके पास गोलकुण्डाकी सीमा पार की (१० जनवरी १६५६), और अपनी सेना लेकर एकदम हैदरावाद चढ दौड़ा। उसी माहकी २० तारीखको स्वय औरगजेब भी अपने पुत्रकी सहायताके लिए औरगाबादसे चल पडा।

मुहम्मद सुलतान गोलकुण्डा राज्यमे प्रवेश कर चुका था; उसके बाद ही अब्दुल्लाको शाहजहाँका २४ दिसम्बरवाला कड़ा पत्र मिला। शाहजहाँकी आज्ञानुसार अब्दुल्लाने मुहम्मद अमीनको उनके कुटुम्व और नौकरो सहित औरगजेबके पास तत्काल भेज दिया और साथ ही क्षमा-याचनाका एक पत्र भी शाहजहाँको लिखा। परन्तु औरगजेबने ऐसा षड्यत्र रचा था कि उसकी क्षमा-याचनाका यह पत्र ठीक समयपर न पहुँच सके और अब्दुल्लाका बचाव किसी भी प्रकारसे न होने पावे। हैदराबादसे २४ मीलकी दूरीपर मुहम्मद अमीन आकर औरंगजेबसे (सभवत. २१ जनवरीको) मिला, परन्तु औरंगजेबने युद्ध बन्द करना अस्वीकार कर दिया, और इसी बहाने कि अभी तक अब्दुल्लाने कैदियोकी जायदाद वापिस नही की, वह हैदराबादकी ओर बढता ही गया। कुतुबशाहकी अन्तिम आशाएँ भी नष्ट होगईं।

मुगल सवारोंके दल इतनी तेजीसे हैदराबाद तक जा पहुँचे कि वह आश्चर्यचकित ताकता ही रह गया । अब उसे अपना सम्पूर्ण सर्व-नाश निश्चित देख पडा, तब तो वह २२ जनवरीको रात्रिको अपनी राजधानी हैदराबाद छोडकर गोलकुण्डाके किलेमे जा पहुँचा ।

इस प्रकार भाग जानेसे उसके प्राण बच गए । औरंगजेबने मुहम्मद सुलतानको जो आदेश दिए थे, उनसे अब्दुल्लाके प्रति औरंग-जेबका प्राणघातक विरोध बहुत ही स्पष्ट हो जाता है । उसने लिखा था "कुतुब-उल्-मुल्क बहुत ही कायर है और सभवत: वह बिलकुल ही सामना न करेगा । इस समाचारके मिलते ही उसपर जोरोसे धावा बोल दो और यदि तुमसे हो सके तो उसके शरीरको उसके सिरके भारसे हलका कर दो । इस उद्देश्यको पूरा करनेके लिए चतुराई, फुर्ती और हाथकी सफाई ही सफल साधन है ।"

२३ जनवरीको आक्रमणकारी हैदराबादसे २ मील उत्तरमें स्थित हुसैन-सागर नामक तालाबपर पहुँच गए । गोलकुण्डाके राज-दरबारमे सर्वत्र घबड़ाहट मची हुई थी । दूसरे दिन शाहजादा मुह-म्मद हैदराबादमे दाखिल हुआ । कुतुब-उल्-मुल्ककी बहुतसी सामग्री और अनेकों भडार, जिनमे अगणनीय बहुमूल्य वस्तुएँ और अनेकों अप्राप्य ग्रन्थ थे, मुहम्मद सुलतानने लूट लिये ।

दूसरे दिन गोलकुण्डाका घेरा डाला गया । मुगलोंने उसे तीन ओरसे घेर लिया, केवल पश्चिमकी ओर कोई भी सेना न थी । गोल-कुण्डाका घेरा ७ फरवरीसे ३० मार्च तक चलता रहा । उसका सचालन बड़ी ही शिथिलतासे हुआ, क्योकि मुगल शाहजादेके पास जो भी युद्ध-सामग्री थी इससे इस दुर्गम गढको किसी भी प्रकार हानि पहुँचाना सभव न था ।

इसी समय अब्दुल्लाके दिल्लीमे रहनेवाले प्रतिनिधिने दारा-शिकोह और शाहजादी जहाँनाराके जरिये बादशाहसे मेल कर लिया । इनके द्वारा उसने बादशाहके सामने औरंगजेबके सारे षड्-यन्त्रोंका सच्चा हाल रख दिया । किस प्रकार अब्दुल्लाको धोखा

देकर उसे मारनेके लिए भरसक प्रयत्न किए गए, किस प्रकार बादशाहकी आज्ञा-पालनका उसे समुचित अवसर तक नही दिया गया, किस प्रकार बादशाहके फरमान राहमे ही रोक लिए गए, और किस प्रकार उसके प्रति शाहजहॉकी कृपा-दृष्टिकी अवहेलना की गई, आदि बाते दूतने स्पष्ट कर दी। इस पर विवेकशील शाहजहॉ भी क्रोधसे उबल पडा। उसने एक कडा पत्र औरगजेबको लिखा और उसे गोलकुण्डाका घेरा उठाकर तत्काल उस राज्यकी सीमासे बाहर चले आनेका हुक्म दिया।

बादशाहका यह अन्तिम आदेश पाते ही तदनुसार ३० मार्चको घेरा उठाकर औरगजेब गोलकुण्डासे चल पडा। चार दिन बाद एक प्रतिनिधिके जरिये मुहम्मद सुलतानका विवाह अब्दुल्ला कुतुबशाहकी लडकीसे कर दिया गया। गोलकुण्डाके सुलतानको युद्ध-हानि और शेष करके रूपमे लगभग एक करोड रुपयोके साथ ही साथ रामगिरका जिला (वर्तमान माणिकद्रुग और चिन्नर जिले) मुगलोको देना पडा। २१ अप्रेलको मुगल सेना पीछ लौट पडी।

गोलकुण्डाके पडावमे २० मार्चको मीरजुमला औरवजेबकी सेवामे उपस्थित हुआ। उसका ठाट-बाट एक शाहजादेका-सा था, वह एक साधारण अमीर-सा नही देख पडता था। उसके साथ थे—६ हजार घुडसवार, १५,००० पैदल, १५० हाथी और बहुत ही सुशिक्षित कई एक तोपखाने। तुरन्त ही उसे शाही दरबारमे बुलवाया गया और ७ जुलाईको वह दिल्ली पहुँचा। उसने बादशाहको १५ लाखकी वस्तुएँ उपहारमे भेट की, जिनमे २१६ रत्ती वजनवाला एक बडा हीरा भी था। उसे तुरन्त ही ६ हजारीका मनसब दिया गया। कुछ ही समय पहिले सादुल्लाखॉकी मृत्यु हो जानेसे प्रधान मन्त्रीका पद खाली हो गया था, अब मीरजुमला उस पदपर नियुक्त किया गया।

८. औरंगजेबका बीजापुरपर आक्रमण १६५७

बीजापुरके राजघरानेका ७वॉ सुलतान मुहम्मद आदिलशाह ४ नवम्बर

१६५६ को मर गया। उसके प्रधान मन्त्री खान मुहम्मद और उसकी बेगम बडी साहिबाके प्रयत्नोंसे इसे मृत सुलतानके एक १८वर्षीय पुत्र, अली आदिलशाह द्वितीयको सिहासनपर बैठाया गया। औरगजेबने तत्काल शाहजहाँको लिखा कि "अली वास्तवमे मृत सुलतानका पुत्र नही है, वह तो एक अनाथ बालक है जिसे मुहम्मद आदिलशाहने हरममे रखकर पाला था।" इसलिए औरगजेबने शीघ्र ही बीजापुर-पर आक्रमण करनेकी आज्ञा चाही। आदिलशाहकी मृत्युके साथ ही कर्णाटिकमे बहुत ही गडबड़ी मच गई, जमीदारोने पहिलेसे अधिक अपने अधिकारमे कर ली। राजधानीकी अवस्था इससे भी बुरी थी। बीजापुरी सरदार एक दूसरेसे और शासन-सत्तामे हाथ बटानेके लिए प्रधान मन्त्री खान मुहम्मदसे लड रहे थे। इस अस्त-व्यस्त दुर्दशाको और भी उलझानेके लिए उन सरदारोंसे मिलकर औरगजेब षड्यन्त्र भी करने लगा। बीजापुरराज दरबारके अनेक प्रमुख व्यक्ति अपनी सेना सहित मुगल राज्यमे आकर शाही सेवा स्वीकार करनेको उत्सुक थे। सहायताका वचन देकर उन्हें अपनी ओर मिलानेमे औरगजेब सफल हुआ। मीरजुमलाकी सहायतासे दूसरोको भी बहका लेनेकी उसे पूर्ण आशा थी।

२६ नवम्बरको शाहजहाँने आक्रमणकी आज्ञा देते हुए बीजा-पुरके मामलेको अपनी इच्छानुसार तयकर डालनेकी औरगजेबको पूरी स्वतत्रता दे दी। कुछ दरबारसे और कुछ जागीरोसे एकत्रित करके अनेक अफसरो सहित कोई २०,००० सैनिक स्वयं मीरजुमलाके साथ औरगजेबकी सहायताके लिए भेजे गए। इस प्रकारके युद्धकी आज्ञा देना बीजापुरके प्रति सर्वथा अन्याय था। बीजापुर कोई आश्रित राज्य नही था; वह तो एक स्वतत्र राज्य था जो मुगलोंका सहायक मित्र था। बादशाहको बीजापुरके उत्तरा-धिकारके विषयमे कोई आज्ञा देने या उसे अस्वीकार कर उसमे फेरफार करनेका उसे कोई न्यायपूर्ण अधिकार नही था। मीरजुमला १८ जनवरीको औरंगाबाद पहुँचा और उसी दिन ज्योतिषियों द्वारा

बताये हुए शुभ मुहुर्तमे उसके साथ औरगजेव वीजापुरआक्रमणके लिए चल पड़ा। २८ फरवरीको वे वीदरकी सीमापर पहुँचे और २ मार्चको वहाँके किलेका घेरा डाला। सिद्दी मरजानने डटकर सामना किया। उसने अनेक वार आक्रमण किए और खाइयोपर आक्रमण कर मुगलोको आगे वढ़नेसे रोकने का भी उसने सतत् प्रयत्न किया। पर अन्तमे मुगलोकी वहुत वड़ी सेनाके आगे एक न चली। मीर-जुमलाके सुशिक्षित तोपचियो ने किलेकी दीवारोको वडा नुकसान पहुँचाया। किलेके दो वुर्ज़ गिर गए तथा नीचेकी दीवालकी मुँड़ेर और उसके वाहरी भाग भी भग हो गए।

खाईके यो भर जानेसे २९ मार्चको मुगल सेनाने आक्रमण किया। मुगलो द्वारा चलाए हुए गोलेकी एक चिनगारी वुर्ज़के पीछे रखे वारूद और गोलेके रखनेके मकानमे गिरी। एक भयकर धडाका हुआ। अपने दो पुत्रो और अनेको साथियों सहित मरजान वुरी तरह घायल हुआ। विजयी मुगल अपनी खाइयोसे निकल कर दौड़ पड़े और शहरमे जा घुसे। भयंकर मार-काटके साथ वचे हुए शत्रु सैनि-कोको खदेड़ दिया गया। सिद्दी मरजानने मृत्यु-शय्यापर पड़े-पड़े अपने सात पुत्रोको किलेकी चावी देकर औरंगजेवके पास भेजा। इस प्रकार वीदरका दुर्गम किला केवल २७ दिनके घेरेके वाद ही जीत लिया गया। वीदरमे जो सामग्री हाथ आई उसमे नकद १२ लाख रुपये, ८लाख की कीमतकी वारूद, गोलियाँ, अनाज तथा अन्य वस्तुओके अतिरिक्त २३० तोपे भी थी।

इसके वाद औरगजेवने महावतखाँके साथ १५ हजार अच्छे घोडोवाले अनुभवी घुडसवार भेजे कि आगे जाकर शत्रुसैनिकोंके एकत्रित दलोको मार भगावे और पश्चिममे कल्याणी तक तथा दक्षिणमे गुलवर्गा तकके सारे वीजापुर राज्यमे लूट-मार कर उसे उजाड दे। मुगलोकी इस सेनाने १२ अप्रेलको शत्रुओका सामना किया। लगभग वीस हजार वीनापुरी सैनिक अपने मुख्य सेनापति खान मुहम्मद, अफजलखाँ, और रणदुल्ला तथा रैहानाके पुत्रोके

नेतृत्वमें मुगलोंपर आक्रमण करने लगे। शत्रुसे घिर जानेपर तथा शत्रुओके घबरा देनेवाले आक्रमणोंके समय भी योग्य सेनापतिके अनुरूप महाबतने अपने सवारोको पूरी तरह नियन्त्रणमे रखा। अन्तमें उचित अवसर देखकर उसने भी बीजापुरियोंपर धावा बोल दिया तब तो बीजापुरी भाग खड़े हुए।

वीदरसे ४० मील पश्चिममे, गोलकुण्डासे सुप्रसिद्धतीर्थ तुलजा-पुर जाने वाले पुराने मार्गपर, कन्नड प्रदेश तथा चालुक्य राजाओं-की प्राचीन राजधानी कल्याणी शहर स्थित है। २७ अप्रेलको औरग-जेब थोड़ी-सी सेना लेकर रवाना हुआ, और सिर्फ सात ही दिनमे कल्याणी पहुँच गया, और एकदम उसका घेरा डाल दिया। किले-की रक्षा करनेवाली शत्रुसेना उसकी दीवारोंपरसे दिन-रात गोलियो-की अविरल वर्षा करती रही। उन्होने मीरजुमलाकी खाईयोंपर बड़े जोरोंसे आक्रमणकर वहाँ भयकर मार-काट मचाई, पर उससे उन्हें कोई लाभ न हुआ। एक बार खानपानकी सामग्री सुरक्षापूर्वक लानेके लिए कार्यवशात् जाते हुए स्वय महाबतको भी कल्याणीसे दस मील उत्तर-पूर्वमे शत्रुओने जा घेरा। देर तक घमासान युद्ध होता रहा। इस युद्धमे शत्रुओके हमलेका सामना करनेका भार राजपूतोंपर ही पड़ा। खान मुहम्मदके घुड़सवार राव छत्रसाल तथा उसकी हाड़ा फौजपर टूट पड़े, पर राजपूतोंकी पत्थरके समान सुदृढ पक्ति अचल रही एवं शत्रुओंका आक्रमण विफल हुआ। राजा रायसिह सीसोदियापर बीजापुरवाले बहलोलखाँके पुत्रोंने आक्रमण किया और शत्रुओके हमलेमे वह घायल होकर घोडसे गिर पड़ा। इसी समय सहायताके लिए दूसरी सेना जा पहुँची। महाबतखाँके आक्रमणने शत्रुओंको तितर-बितर कर दिया और वे भाग खड़े हुए।

इधर जबकि औरगजेब इस घेरेको सफल बनानेका प्रयत्न कर रहा था तभी उसके पडावसे सिर्फ ४ मील दूरीपर ३० हजार बीजा-पुरी सेना एकत्रित हुई। २८ मईको किलेके चारों ओर तम्बुओका पर्दा छोड़कर अपनी अधिकांश सेना सहित शत्रुओकी इस सेनाकी

ओर चल पडा । घमासान युद्ध मेउत्तरके घुडसवारोके सतत् आक्रमण अन्तमे सफल हुए । मुगल सेनाने शत्रुओको दाएँ वाएँ दोनो तरफसे घेरकर अन्तमे मार भगाया । ठीक उनके पडाव तक शाही फौजने उनका पीछा किया तथा जो उनके हाथ पडे उन्हे पकड़ लिया और दूसरोको मार डाला । वीजापुरी पडावमे जो भी सामान मिला, वह सव शस्त्र, स्त्रियाँ, घोडे, सामान ढोनेवाले जानवर और अन्य सभी असवाव लूट लिया गया ।

यहाँ घेरा वड़े ही जोरोसे चल रहा था, पर उधर अवीसीनिया-निवासी दिलावर भी डटकर पूरे साहसके साथ शाही सेनाका मुका-वला कर रहा था । २९ जुलाईको शाही फौजने खाईकी उस पार स्थित कल्याणीके एक बुर्जपर कव्जा कर लिया । यहाँपर ही वडी घमासान लडाई हुई । फिर भी आक्रमणकारी किलेमे उमड़ पडे और इस ओरका हिस्सा वहाँके रक्षकोसे छीन लिया । १ली अगस्तको दिलावरने किलेकी चावियाँ मुगलोको सौप दी । उसे मुगलोकी ओरसे सम्मानसूचक वस्त्र दिए गए और वीजापुर लौटनेकी आज्ञा भी उसे मिल गई ।

कल्याणीके किलेके जीत जानेके वाद बीजापुरके सुलतानने सन्धि-की बातचीत प्रारम्भ की । दिल्लीमे रहनेवाले बीजापुरके प्रति-निधियोने दाराको मिलाकर बादशाहका अनुग्रह प्राप्त करनेका भी सफल प्रयत्न किया । अन्तमे यह तय हुआ कि आदिलशाह बीदर, कल्याणी और परेण्डाके किले और उन्ही किलोके आसपास का राज्यका भाग भी मुगलोको दे दे, तथा उसके अतिरिक्त युद्धमें हुई मुगलोकी हानिकी पूर्तिके लिए एक करोड़ रुपया भी चुकावे । इन शर्तोपर सन्धि करके सेना सहित बीदर लौट जानेके लिए शाहजहाँने औरगजेवको हुक्म दिया ।

अध्याय ३

शाहजहाँका बीमार पड़ना तथा उसके पुत्रोंका विद्रोह

१. शाजहांका ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह

अपने राज्य-कालके ३० वर्ष पूरे कर ७ मार्च १६५७ को शाहजहाँने ३१वेमे पैर रखा। उसका शासन-काल अपने पूर्वजोके समान ही सम्पन्न था। इस महान् मुगल बादशाहके अधिकारमे हिन्दकी जो दौलत थी उसे देखकर विदेशी भी चकित रह जाते थे। उत्सवोके समय बुखारा फारस, तुर्की व अरबके राजदूत तथा फ्रान्स, इटली, आदि देशोके यात्रीवहाॅ के 'तख्त-इ-ताउस' (मयूर-सिंहासन), कोहिनूर हीरे तथा अन्य मणियोको आश्चर्यसे देखते थे। सफेद सगमर्मरके महल बनाना उसे पसन्द था, वे सादे व सुन्दर होनेके साथ ही उतने ही मूल्यवान समझे जाते थे। मुगल साम्राज्यके आश्रित सरदार धन और शान-शौकतमे दूसरे कई देशोके राजाओको भी मात करते थे। मुगलोके 'आश्रित साम्राज्य''की सीमा उससे पहलेके सभी बादशाहोसे वहुत अधिक दूर तक बढ गई थी। देशके भीतर अटल शान्तिका राज्य था। कृषकोको पालनेकी ओर पूरा ध्यान दिया जाता था। प्रजाको कष्ट देनेवाले कठोर हाकिम जनताकी शिकायतपर वहुधा अलग कर दिए जाते थे। सभी ओर सम्पदा और ऐश्वर्य बढते ही जा रहे थे। उस दयालु और विवेकशील शासकको सदैव

सुयोग्य अधिकारी घेरे रहते थे। उसका दरबार सम्पूर्ण देशकी विद्वत्ता और चातुर्य्यका एकमात्र केन्द्र बन गया था। पर इन महान् विद्वानो, सेनापतियो और मन्त्रियोको कराल काल एक-एक करके उठाता जा रहा था। उनकी मृत्युपर बादशाह नई पीढीके नवयुवाओमे उनका उपयुक्त उत्तराधिकारी नही पाता था। वह स्वय भी अब ६७ वर्षका हो चुका था। उसके बाद क्या होगा, इसका सोच विचार उसे सदैव बना रहता था।

शाहजहाँके चार लडके थे। सब वयस्क थे, और सबको प्रान्तोके शासन व सेनाओके नायकत्वका पूरा-पूरा अनुभव हो चुका था। पर उन सबमे आपसमे कोई भी भ्रातृ-स्नेह नही था। दारा और औरगजेबमे तो विशेषरूपसे वैमनस्य हो गया था, जो दिनोदिन इतना अधिक बढ रहा था कि सारे साम्राज्यमे उसकी चर्चा होती थी। उनमे शान्ति बनाए रखनेके लिए औरगजेबको राजधानीसे दूर भेजकर उसे दारासे अलग रखनेका विशेष प्रयत्न किया जाताथा। शाहजहाँने स्पष्टरूपसे सकेत कर दिया था कि एक ही माँसे उत्पन्न इन चारोमे सबसे बढे दाराको ही वह राजगद्दी देगा। शाहजहाँ दाराको धीरे-धीरे पूरे साम्राज्यका एकमात्र अधिकारी बनाने और राज्य-शासनमे पूर्णतया दीक्षित करनेके लिए कई वर्षोसे उसे अपने पास ही राजधानीमे रखता था। प्रतिनिधियो द्वारा अपने प्रान्तोकी व्यवस्था करवानेकी सुविधा भी दाराको दे दी गई थी। साथमे बादशाहने उसे इतने अधिकार और ओहदे दे रखे थे कि वह किसी भी सम्राट्से कम नही था। बादशाह तक पहुँचनेके लिए सभीको दाराकी कृपा प्राप्त करना पडती थी।

दारा इस समय ४२ वर्षका था और उसने अपने प्रपितामह अकबरके ही आदर्शको अपने सामने रखा था। विश्व-देववादी दर्शनमे उसका विश्वास था एव इसी इच्छासे प्रेरित हो उसने तालमद, बाइबिल, मुसलमान सूफी और हिन्दू वेदान्त, आदि दर्शनोका अध्ययन किया था। जिन सार्वभौमिक धार्मिक तथ्योपर सभी धर्मोमे मतैक्य

है और जिनको कट्टरपन्थी लोग प्राय अपने अन्धविश्वासके कारण बाह्याचरण-मात्र समझते है, उनका उद्घाटन करके हिन्दू और मुसलमानी धर्मोमे समन्वय करना ही उसका प्रधान उद्देश्य था। हिन्दू योगी लालदास और मुसलमान फकीर सरमद, दोनोंका ही समान रूपसे शिष्य था और दोनोसे उसने उनकी उद्धारक धार्मिक विचारधाराओको ग्रहण किया था। तथापि वह इस्लामका विरोधी नही था। उसने मुसलमान सन्तोके जीवन चरित्रोका सग्रह किया था। वह मुसलमान सन्त मियाँ मीरका शिष्य भी कहा गया है जो कदापि कोई काफिर नही हो सकता था। पवित्रात्मा जहाँनारा भी उसे अपना आध्यात्मिक गुरू मानती थी। अपनी धार्मिक रचनाओकी भूमिकामे स्वय दाराने जो शब्द लिखे है वे इस बातके स्पष्ट प्रमाण है कि उसने इस्लामके आवश्यक सिद्धान्तोंकी कभी अवहेलना नही की। उसने तो केवल सूफियोके व्यापक सिद्धान्तोके प्रति आदर एवं विश्वास प्रगट किया था और यह सूफी सम्प्रदाय मुसलमानोका ही एक प्रमुख फिरका था। फिर भी हिन्दू दर्शनकी ओर झुकाव होनेके कारण प्रयत्न करनेपर भी वह अपने को कट्टर-पन्थी और एकमात्र इस्लामका माननेवाला सिद्ध नही कर सकता था, और न सब मुसलमानोको अपने झण्डेके नीचे एकत्र कर वह गैर-मुसलमानोंके विरुद्ध धर्म-युद्ध ही प्रारम्भ कर सकता था।

इस प्रकार पिताके अत्यधिक प्रेमने दाराकी बड़ी हानि की। उसे हमेशा दरबारमे ही रखा जाता था और कन्धारके तीसरे घेरेको छोड़कर वह कभी प्रान्तीय शासन-व्यवस्थाके लिए अथवा युद्धमे सेना-सचालनके हेतु बाहर नही भेजा गया। युद्ध और राज्य करनेका कोई भी उसे अनुभव नही मिल सका। कठिनाई और खतरेकी कसौटीपर कसकर मनुष्यको आजमाना कभी नही सीखा। सेनाके साथ भी उसका अपना कोई सम्पर्क नही रहा था, इस प्रकार धीरे-धीरे वह उत्तराधिकारके लिये होनेवाले उस युद्धके अयोग्य हो गया, जो मुगलोमे योग्यतम अधिकारीकी परीक्षाके लिए प्रत्यक्ष-परीक्षाका

साधन समझा जाता था । पर उसके एकछत्र प्रभाव उसकी अतुल सम्पदा, उसमे शील, सयम और दूरदर्शिता बिलकुल ही नही बढा सकते थे, उसके चारो ओर अनावश्यक झूठी चापलूसीने उसमे दिल्लीके सिहासनके उत्तराधिकारी युवराज होनेकी स्वाभाविक भावना और उद्‌ण्डता अवश्य उत्तेजित की थी । उसे मनुष्य-चरित्र पहचाननेका अभ्यास नही था । स्वाभिमानी और सुयोग्य व्यक्ति अवश्य ही ऐसे घमण्डी और अविवेकी स्वामीसे दूर रहा करते होगे । दारा एक प्रेमी पति, लाडला पुत्र और प्यारा पिता था, पर सकटापन्न प्रजाको अधिकारमे रखनेमे वह असफल ही रहा। पुश्तोसे चली आती हुई शान्ति और सम्पदाने उसकी नसोका रक्त ठडा कर दिया था । परिणामस्वरूप वह बुद्धिमानीके साथ कोई सगठन या साहसपूर्वक कार्यका खतरा उठा सकनेमे सर्वथा अयोग्य ही था । सतत परिश्रम करनेकी क्षमता उसमे न थी । कभी आवश्यकता पडनेपर हारके मुखमे पहुँचकर यी साहसपूर्ण वीरोचित दृढता दिखाकर मृत्युसे खेलते हुए विजय-श्री को छीन लाना, दाराके लिए सर्वथा एक अनहोनी बात थी । फौजी-सगठन और युद्धावश्यक व्यूह-रचना तो उसकी शक्तिके बाहर बाते थी । सच्चे जन्मजात सेनापतिके समान युद्धके समय शान्ति और पूर्ण विचार-बुद्धिसे उसकी विभिन्न गतियोका उपयुक्त रीतिसे सचलान करने का उसने कभी अभ्यास नही किया । युद्धकलासे अनजान इस नौसिखिया योद्धाको भाग्यवशात् सिहासनके लिए होनेवाले युद्धमे औरगजेब जैसे चतुर सिद्धहस्त सेनानायकका सामना करना पडा ।

२. शाशजहाँकी बीमारी (१६५७) और उसके परिणाम स्वरूप साम्राज्यमे अव्यवस्था

६ सितम्वरको शाहजहाँ एकाएक दिल्लीमे बीमार पड गया । एक हफ्ते तक शाही हकीम उसकी चिकित्सा करते रहे, परन्तु उन्हे सफलता नही मिली । उसकी बीमारी बढती ही गई । नित्य लगने-

वाला शाही दरबार भी बन्द कर दिया गया। झरोखेमे बैठकर प्रजाको दर्शन देना भी बादशाहके लिए सम्भव नही था। अन्तमें एक हफ्ते के बाद हकीम बीमारीपर कुछ काबू पा सके। पर बादशाह-की शारीरिक दशामे बहुत ही थोडा सुधार हुआ था, इसलिए उसने आगरा जाकर अपनी प्यारी बेगमके मकबरेके पास ही मृत्यु-पर्यन्त शान्ति-पूर्वक जीवन व्यतीत करनेका निश्चय किया। तदनुसार २६ अक्तूबरको वह आगरा पहुँचा ।

शाहजहाँकी इस बीमारीके दिनोमे दारा रात-दिन लगातार उसकी शय्याके पास बैठा उसकी देखभाल करता था । उसने बडी मिहनतसे बादशाहकी सेवा की थी। सिहासन प्राप्त करनेके लिए उसने कोई भी आतुरता नही दिखाई थी। इस बीमारीके प्रार-म्भिक दिनोमे जब शाहजहाँ जीवनसे निराश होकर परलोककी तैयारी करने लगा, तब राज्यके कुछ विश्वस्त दरबारियो और प्रधान अधिकारियोको बुलाकर उसने उनके सामने अपनी अन्तिम इच्छा प्रगट की और हुक्म दिया कि वे उसी दिनसे दाराको बादशाह मानकर उसकी आज्ञा माने। तथापि अपनी स्थिति सुदृढ बनानेके लिए दाराने राजसिहासन ग्रहण नही किया, और वह अपने पिताके नामपर ही शासन-कार्य करता रहा। उसने औरगजेबके विश्वासपात्र साथी मीरजुमलाको वजीरके पदसे हटा दिया और उसे, महाबत खाँ और अन्य अधिकारियोको सेना सहित दक्षिणसे लौट-कर दरबारमे आनेकी आज्ञा दी।

आधे नवम्बर तक शाहजहाँ अच्छा होकर इस योग्य हो गया कि उन सब आवश्यक बातोको, जो तब तक उसे नही बताई जाती थी, वह सुन सके। एक खबर यह थी कि शुजाने स्वयको बादशाह घोषित कर दिया था और वह बगालसे दिल्लीकी ओर बढा आ रहा था। शाहजहाँकी स्वीकृति प्राप्त कर २२ हजार सैनिकोंकी फौज अपने ज्येष्ठ पुत्र सुलेमानशिकोह और मिर्जा राजा जयसिहकी अधीनतामे दाराने उसके विरुद्ध भेजी। शीघ्र ही इस प्रकार चिन्ता-

जनक समाचार गुजरातसे भी आए। वहाँ ५ दिसम्बरको मुरादने अपना राज्याभिषेक कर लिया और औरंगजेबसे सन्धि करके उसको अपना साथी बनाया। इसलिए उसी माहके अन्त तक आगरासे मालवामे दो शाही सेनाएँ भेजी गई, एक औरंगजेबको दक्षिणसे आगे आनेसे रोकनेके लिए और दूसरी गुजरातमे जाकर मुरादको वहाँसे निकाल भगानेके लिए। इनमे पहली सेना मारवाडके महाराजा जसवन्तसिहके मातहत भेजी गई। मालवाके सूबेदार शायेस्ताखाँको दरबारमे वापिस बुला लिया गया एव उसकी जगह वह मालवाका सूबेदार नियुक्त किया गया। कासिमखाँको गुजरातका शासक बनाकर दूसरी सेनाका नायकत्व स्वीकार करनेके लिए प्रलोभन दिया गया था। शाहजहाँने सरदारोसे विनयपूर्वक कह दिया था कि वे शाहजादोको जानसे न मारे और बिलकुल अनिवार्य न होने तक उनसे कोई प्राणघातक युद्ध भी न करे। पहले तो वे उन शाहजादो को न्यायपूर्वक समझाकर अपने अपने प्रान्तोको लौट जाने दे अन्यथा उन्हेकेवल अपनी शक्तिका डर दिखावे। केवल अनिवार्य परिस्थितिमे युद्ध करने की उन्हे ताकीद की गई।

शाहजहाँकी बीमारीमे दारा अपने विश्वासी एक-दो मन्त्रियोंको छोडकर और किसीको भी बादशाह तक नही जाने जाने देता था। पत्र-वाहकोपर कडी नजर रखता था, और अपने भाइयोके पास बगाल, गुजरात व दक्षिण जानेवाले दूतो और पत्रोको भी उसने रोक दिया था। अपने भाइयोके उन दूतोपर, जो दरबारमे रहते थे, वह नजर रखता था जिससे कि वे अपने मालिकोको वहाँका हाल न भेज सके। पर इन सावधानियोसे और भी अधिक हानि हुई। दूर-स्थित शाहजादो और प्रजाने इस प्रकार समाचार बन्द हो जानेके कारणका यही अनुमान लगाया कि बादशाह मर चुका है। परिणाम-स्वरूप मुगल उत्तराधिकारके बिए एकबारगी अशान्ति-अव्यवस्था फैल गई।

अपने हाथोसे लिखे हुए और उसी की मोहरवाले शाहजहाँके पत्र

शाहजादोंके पास पहुँच गए थे, और उनके स्वस्थ हो जानेका निश्चित समाचार उन्हे मालूम हो चुका था, फिर भी वे यही कहते रहे कि वे पत्र शाहजहाँकी हस्तलिपिकी नकल करनेमे सिद्धहस्त दाराने ही लिखे थे, और तब शाही मुहर भी उसके अधिकारमे आ चुकी होगी। इसलिए तीनों छोटे भाइयोने बादशाहको यह निश्चय कराते हुए पत्र लिखे कि उडती हुई अफवाहोको सुन-सुनकर उनके हृदय विचलित हो उठे है, अतएव वे अपनी आँखोसे पिताके दर्शन कर उसकी वास्तविक स्थिति जाननेके लिए आगरा आ रहे है।

३. गुजरात में मुरादबख्शका स्वयंको बादशाह घोषित करना

शाहजहाँका सबसे छोटा पुत्र मुहम्मद मुरादबख्श शाही कुटुम्बमें सबसे नीच स्वभाववाला व्यक्ति था। अपनी योग्यता साबित करनेका अवसर उसे बलखमे, दक्षिणमे और गुजरातमे दिया गया था, परन्तु हर जगह वह विफल ही रहा। वह मूर्ख, विलासी और क्रोधी था और अवस्था बढनेपर भी उसके चरित्रमें कोई भी सुधार नही हुआ था। न तो उसने कभी अपनी वासनाओ को दबाना सीखा था और न उसे कामकाजमे व्यस्त रहनेका अभ्यास ही था। सैन्य-संचालनमे योग्यताकी कमीकी पूर्ति उसकी शारीरिक शक्ति नही कर पाती थी।

मुरादके मार्ग-रक्षकोके हाथो कैद करवा दिया और पत्रके असली लेखकोकी बात गुप्त रखी गई। सूर्योदयसे कुछ पहले ही वह छीना हुआ जाली पत्र मुरादके पास लाया गया। उस समय वह अपने विलास-उपवनमे शराबके नशेमे झूम रहा था। उसकी रात्रि-क्रीडाओ-की थकान भी तब तक दूर न हुई थी। अतएव पत्र देखते ही आग-बबूला हो उठा और शीघ्र ही अली नकीको अपने सामने पेश करने की आज्ञा दी। अत्यधिक क्रोधसे कापते हुए उसने अली नकीको भालो-से मार डाला और गरजते हुए बोला "अरे नीच ! मेरे इतने उप-कारोके बदलेमे भी तूने विद्रोही होकर धोखा ही दिया।"

मुराद इस समय एक बडी सेना सगठन कर रहा था, जिसके लिए उसे धनकी अत्याधिक आवश्यकता थी। एव उसने शाहवाजखॉ नामक खोजाको शस्त्रोसे सुसज्जित ६,००० योद्धाओके साथ सूरतके धनाढ्य बन्दरगाहसे कर वसूल करनेके लिए भेजा। रक्षाके साधनो-से रहित उस शहरको शीघ्र ही कब्जेमे करके शाहवाजखॉनेउसे लूटा। कुछ डच कारीगरोकी सहायतासे शाहबाजखॉने सूरतके किलेकी दीवारो-के नीचे खाइयॉ खुदवाई और उनमेसे एकमे बारूद भरकर उस किले को उडानेकी भी कोशिश की। अन्तमे २० दिसम्बर १६५७ ई० को यह किला उसके अधिकारमे आ गया। इस किलेकी सारी युद्ध-सामग्री और वहॉका खजाना मुरादके हाथ लग गए, और साथ ही वहॉके दो धनाढ्य सौदागरोसे जबरन ५ लाख रुपये भी कर्ज मे लिये।

उधर शाहजहॉकी खतरनाक बीमारीकी खबर सुननेके बाद ही विश्वस्त दूतो द्वारा मुराद और औरगजेबमे गुप्त पत्र व्यवहार भी आरभ हो गया था। दाराके विरुद्ध सहायता करनेके लिए उन्होने शुजाको भी आमन्त्रित किया, पर शुजाके अत्यधिक दूर होनेके कारण उनमे कोई निश्चित या व्यवहारिक आयोजन नही बन पाया। किन्तु मुराद और औरजेबके बीच एक सगठित षड्यन्त्रकी पूरी योजना बन गई। सूरतकी इस सफलताके वाद मुरादने मुरव्वजुद्दीनके नामसे अपने आपको बादशाह घोषित कर दिया (५ दिसम्बर)।

मुगल साम्राज्यके बटवारे-सम्बन्धी एक सन्धि औरगजेबने तैयार की और कुरानको साक्षी कर उसका पालन करनेका वचन देते हुए उसे मुरादके पास भेजी, जिसकी शर्ते यो थी —

१. पजाब, अफगानिस्तान कश्मीर और सिन्ध मुरादके अधिकार मे रहेगे और इनपर वह एक स्वतन्त्र बादशाहके रूपमे शासन करेगा। मुगल साम्राज्यका शेष भाग औरगजेब के अधिकारमे रहेगा।

२. युद्धमे प्राप्त सामग्रीका एक तिहाई हिस्सा मुरादको मिलेगा और दो तिहाई भाग औरगजेबको दिया जावेगा।*

मुराद पूरी तैयारियाँ करके अहमदाबादसे २५ फरवरी १६५८ई० को रवाना हुआ और मालवामे देपालपुरके पास १४ अप्रेलको औरग-जेबकी सेनाके साथ जा मिला।

४. गृह-युद्धसे पहिले औरंगजेबकी चिंताएँ और नीति

बीजापुरकी युद्ध-समाप्तिसे (४ अक्तूबर १६५७ ई०) लेकर सिहासन-प्राप्तिके लिए हिन्दुस्तानकी ओर रवाना होने (२५ जनवरी-१६५८ ई०) तकका समय औरगजेबने अनेक चिन्ताओं और सकटो मे ही काटा। घटनाएँ बडी शीघ्रतापूर्वक घट रही थी, और उन्हे रोकना या किसी भी प्रकार टालना उसके लिए असभव था। नित्य-प्रति उसकी तत्कालीन स्थिति सकटपूर्ण होती जा रही थी और भविष्य सर्वथा अधकारपूर्ण था। किन्तु इस समय जिन-जिन छोटी-बड़ी कठि-नाइयोपर उसने विजय प्राप्त की वे सब हमे उसकी धीरता, चतुराई और सैन्य-प्रबन्धकी उसकी क्षमता और नीति-कुशलताकी प्रशसा करनेके लिए बाध्य कर देती है।

---

* शर्ते स्वय औरंगजेबके पत्रोमे (आदाब-इ-आलमगीरी, पृ०७८), उसके हाकिम आकिलखाँ रजीके इतिहासमे (पृ० २५) और 'तजकीरात-उस-सलातीन-उस्-चगताइया' मे स्पष्टरूपसे दी है। इनसे बरनियरकी उस कल्पित कहानीका पूरी तरह निराकरण होता है, जिसके अनुसार दाराको हरानेके बाद मुरारको पूरा राज्य देकर स्वय फकीर बनने तथा मक्का जानेका औरंगजेबने वादा किया था।

चारो ओर यह समाचार फैल गया था कि सन्धि करने और अनावश्यक सेनाको दक्षिणसे वापिस बुलानेके लिए बादशाहने हुक्म दिया है। इस प्रकार अपने दीर्घ-कालीन और इस खर्चीले बीजापुर-युद्धसे कोई भी लाभ प्राप्त करनेकी औरगजेबकी सारी सभावनाएँ दुर्भाग्यवश देखती आँखो नष्ट हो रही थी।

बीजापुरसे सधि होनेकी आशाएँ किस प्रकार दिन-दिन कम होती गई, किस प्रकार पिछले वादेके अनुसार राज्यभाग और धन-प्राप्तिके लिए उसने अनेक प्रयत्न किए, बीजापुर द्वारा स्वीकार कराई हुई सधिकी कडी शर्तोको किस प्रकार एकके बाद दूसरीको वह ढीला करता गया, और अन्तमे बीजापुरसे कुछ भी प्राप्ति कर सकनेकी आशा खोकर, किस प्रकार दक्षिणको एकदम छोड उसने अपना सारा ध्यान और साधनोको उत्तर भारतमे अपनी चालोकी सफलताके लिए गाल दिया, आदि बातो की पूरी कहानी 'आदाब-इ-आलमगीरी' मे सग्रहीत औरगजेबके पत्रो द्वारा स्पष्ट हो जाती है।

कल्याणीसे ४ अक्तूबर १६५७ई०को चलकर औरगजेब ५ दिन मे ही बीदर पहुँच गया। इस किलेकी मरम्मत की गई थी तथा उसमे आवश्यक सामग्री और सेना का ठीक-ठीक प्रबन्ध किया गया था। उसी माहकी १८ तारीखको वहाँसे चलकर वह १७ नवम्बरको औरगाबाद पहुँचा। इससे पहले ही २८ अक्तूबरके आसपास औरगजेबने एक बहुत ही आवश्यक कार्य कर लिया था। उसने सेना भेजकर नर्मदा पार करने सारे स्थानोपर अपना अधिकार कर लिया और यो दक्षिण के शाही हाकिमो और दारामे होनेवाले सारे पत्र-व्यवहारको रोक दिया।

आरम्भसे ही औरगजेबने तय कर रखा था कि जब तक शाहजहाँकी मृत्युका निश्चय नही हो जावे तब तक वह विद्रोह का झडा न उठावेगा, परन्तु शीघ्रताके साथ घटनेवाली इन घटनाओने उसे दूसरा ही रास्ता पकडनेको बाध्य किया। दक्षिण सम्बन्धी दाराकी नीति अब पूरी तौरसे मालूम हो चुकी थी। अशक्त शाहजहाँको उसने

बाध्य किया कि मुरादको गुजरातकी सूबेदारीसे हटाकर वह उसे बरारका सूबेदार बनावे। इस प्रकार औरंगजेबसे लेकर बरार मुराद को दिया गया, ताकि दोनों भाइयोंमें आपसी झगड़ा बना रहे। दारा-ने दिसम्बरके अन्त तक अपने इन दोनो भाइयोके बिरोधमे दो सेनाएँ दक्षिणको भेजी तथा औरगज़ेबके सशक्त सहायक शायेस्ताख़ाँको उसके मालवा प्रान्तसे वापस दरबारमे बुलवा लिया। इसी समय मीरज़ुमलाको भी शाही फरमान मिला कि वह औरगजेबको छोड़कर दिल्ली चला जावे। इस फ़रमानको न मानना ही विद्रोहके समान होगा। औरगजेबके अन्य अफसरोंको भी इसी प्रकारके कई पत्र मिले।

५. सिंहासन-प्राप्ति के लिए औरंगज़ेब की तैयारियाँ

औरगजेबने देखा कि बादशाह होनेकी आशा पूरी करने या केवल स्वतन्त्रतापूर्वक बने रहनेके लिए प्रयत्न करनेका समय अतमे अब आ ही गया है। जनवरी १६५८के लगभग उसने अपना सारा कार्यक्रम निश्चित कर लिया और उसीके अनुसार शीघ्रतापूर्वक कदम उठाने लगा।

करनेकी हिदायत की गई तथा उसे सतुष्ट रखकर औरगजेवकी गैर-हाजरीके समय दक्षिणमे गडबड न होने देनेका समुचित प्रबन्ध करने की आज्ञा दी गई। मित्रताके ,नाते बहुत-से उपहार बीजापुरकी राजमाता (बडी साहिबा) को भेजे गए। जो धन देनेका वादा उससे पहले किया जा चुका था उसे भेज देने तथा साथ ही उसकी गैरहाजरी-मे बीजापुरी उपद्रव न कर शान्ति बनाए रखे, इसके लिए प्रार्थना की गई।

गुप्त रूपमे राजधानीके दरबारियो और प्रातोके (विशेष कर मालवाके) उच्च पदाधिकारियोसे मिलकर औरगजेब बडी तत्परता-के साथ षड्यन्त्र रच रहा था। शाहजहाँके चारो पुत्रोमे अपनी योग्यता और अनुभवके लिए औरगजेब ही सबसे अधिक प्रसिद्ध था। सभी स्वार्थी सरदार और बडे अधिकारी उसे भारतका भावी वादशाह मानते थे। इसलिए भविष्यमे अपनी रक्षाके लिए सभी उसकी मदद करनेको उत्सुक रहते थे, अधिक नही तो गुप्त रूपसे उसको सहायता देनेका ही पूरा-पूरा विश्वास दिलाते थे।

नये सैनिक लगातार भरती किए जा रहे थे। गोल-बारूद बनाने के लिए गधक, सीसा, शोरा, आदि बहुत अधिक मात्रामे खरीदा गया, और दिल्लीपर चढाई करनेके लिए बारूद तथा तोडे, आदि अन्य आवश्यक चीजे दक्षिणी किलोसे मगवा ली गई। इस प्रकार बढ़ते-बढते औरगजेबकी यह सेना चुने हुए ३०,००० सिपाहियोकी हो गई। इसके सिवाय उसके साथ मीरजुमलाका बहुत ही सुशिक्षित तोपखाना भी था, जिसमे अग्रेज और फरासीसी तोपची नियुक्त थे।

सेना और सामग्रीके साथ ही साथ औरगजेबके पास सुयोग्य अधिकारियोका भी एक बहुत बडा दल था, जिससे उसका पक्ष बहुत ही सुदृढ हो गया। दक्षिणकी सूबेदारी करते समय उसने अपने पास बहुत ही योग्य कर्मचारियोका एक गुट्ट बना लिया जो उसके पक्के सहायक थे। कुछ तो कृतज्ञतावश ही उसके साथ थे, किन्तु प्रायः अन्य सबके हृदयोमे औरगजेबके प्रति अगाध भक्ति और श्रद्धा थी।

सिहासन-प्राप्तिके लिए प्रयत्न करनेके इरादेसे औरंगजेब ५ फरवरी १६५८ ई० को औरंगाबादसे चल पड़ा। १८ वी तारीखको वह बुरहानपुर पहुँचा। सैन्य-संगठनके हेतु तथा अन्य तैयारियाँ करनेके लिए यहाँ वह एक माह तक ठहरा रहा। मार्च २०को बुरहानपुरसे चलकर उसने अपने ससुर शाहनवाजखाँको पकड़कर कैद कर लिया, क्योंकि वह शाहजहाँके प्रति अपनी स्वामिभक्ति छोडनेको तैयार न था। बिना किसी विरोधके उसने ३ अप्रेलको अकबरपुरके घाटेपर नर्मदा नदी पार की। इस समय उत्तरमे उज्जैनकी ओर जाते हुए १३ अप्रेल-को उज्जैनसे कोई २६ मील दक्षिणमे देपालपुरके पास उसे पता चला कि मुराद भी उससे पश्चिममे कुछ ही मीलकी दूरीपर आ पहुँचा था। दूसरे दिन दोनों भाइयोकी सेनाएँ देपालपुरके तालाबके पास मिल गई। उनसे एक ही दिनकी यात्राकी दूरीपर सेनाके साथ जसवन्त-सिह डटा हुआ था। संध्या होते-होते दोनो शाहजादोंने चवल नदी-की सहायक नदी गभीरके पश्चिमी तटपर स्थित धरमत गाँवमे (उज्जैन से १४ मील दक्षिण-पश्चिममे) पड़ाव डाला। दूसरे दिन मुगल-सिहासनके उत्तराधिकारके लिए होनेवाले युद्धका प्रारम्भ हुआ।

भाग १

अध्याय ४

सिंहासन के लिए युद्ध; औरंगजेब की विजय

१ धरमत मे जसवन्तसिंह; उनकी कठिनाइयाँ

खरईरी, १६५८ ई० के अन्तिम दिनोमे जसवन्त सिंह अपनी सेना सहित उज्जैन पहुचा। परन्तु औरगजेबका क्या इरादा है ? वह किस राहसे आगे बढ रहा है ? उसकी सेना कहाँ तक आ गई है ? आदि बातोका उसे कुछ भी पता नही था। औरगजेवकी चढ़ाईकी सूचना जव उसे मिली, तब उसने सुना कि वह शाहजादा मालवामें आ पहुँचा था एवं बड़ी ही तेजीके साथ वह उज्जैनकी ओर बढ रहा था।

यह समाचार सुनकर जसवन्तसिंह वहुत ही घवडा गया, और उज्जैनसे १४ मील दक्षिण-पश्चिममे धरमतके सामने ही पड़ाव डाला तथा दक्षिणसे आनेवाले शत्रुका मार्ग रोकनेको तत्पर हुआ। इसी समय उसे एक और चिन्तापूर्ण समाचार मिला, उसने सुना कि मुराद भी औरगजेवके साथ मिल गया था (१४ अप्रेल, तथा दोनो उससे एक ही दिनकी यात्राकी दूरीपर आ गए थे।

जसवन्तसिंह इसी उम्मीदसे मालवा आया था कि उनके विरुद्ध शाही सेनाके आनेका समाचार सुनकर ही ये विद्रोही शाहजादे वापिस अपने प्रान्तोको लौट जावेगे। अव उसने स्पष्ट देखा कि उसके

शत्रुओने आगे बढनेका पूरा-पूरा निश्चय कर लिया था और वे किसी भी हालतमे युद्ध-मार्गसे पीछे नही हटेगे।

शाहजहाँकी यह आज्ञा कि अंतमे विवश होकर ही इन शाहज़ादोंसे लड़ा जाय, जसवन्तसिहके लिए एक बड़ी बाधा थी। इधर औरंगजेब सोच-विचार कर अपनी बुद्धिके अनुसार ही अपनी नीति निश्चित करता था और अपने निर्णयके अनुसार चलता था; उधर बेचारा जसवन्तसिह बड़ी ही असमंजसमे पडा हुआ था। अब शत्रु क्या करेगा यह जाने बिना वह अपनी नीति निश्चित नही कर सकता था।

उसकी सेनामे अनेकों परस्पर-विरोधी दल भी थे। राजपूतोकी विभिन्न जातियोके सैनिकोमे खानदानी वैमनस्यके कारण बहुधा कोई भी एकता नही पाई जाती थी। प्रत्येकको अपनी जातिके गौरव और महत्त्वका अभिमान रहता था, जिससे उनमे आपसी वैमनस्य बना रहता था। साथ ही हिन्दू और मुसलमान सेनानायकोमे भी कोई आपसी मेल नही था। धरमतमे एकत्रित सारी फौज भी किसी एक ही सेनानायककी अधीनतामे न थी। कासिमखाँको जसवन्तसिहकी सहायता करनेका ही हुक्म था, उसके आश्रित होकर कार्य करनेका आदेशउसे नहीमिला था। साथ हीअनेक मुसलमान अधिकारी गुप्त रूपसे औरंगजेबके पक्षमे थे। कासिमखाँ और उसकी सेना युद्धके खतरेसे सदैव दूर ही रहे, जिससे इस युद्ध का पूरा भार राजपूतोपर ही पड़ा।

अन्ततः सेनानायककी दृष्टिसे भी जसवन्तसिह कभी औरंगज़ेबकी बराबरी नही कर सकता था। जसन्तसिहकी दोषपूर्ण योजनाओ और युद्ध-भूमिमे उसके सेना-संचालनसे उसकी अनुभवहीनता और तुनकमिज़ाजी ही प्रमाणित होती है। उसने युद्धके लिए ठीक स्थान नही चुना। एक छोटेसे मैदानमे अपनी सेनाको इस तरह एकत्रित कर रखा था कि उसके घुड़सवार न तो स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी चतुराई ही दिखा सकते थे और न तीव्र गतिसे वे शत्रुपर आक्रमण ही कर पाते थे। जिन टुकड़ियोकी सहायताकी आवशश्कता

रहती थी, उनकी भी वह समयपर सहायता नही कर पाता था। एक बार युद्धारम्भ होनेके बाद अपनी सेनापर वह आवश्यक नियन्त्रण भी नही रखसका। ऐसा प्रतीत होता था कि वह एक छोटी टुकड़ीका ही संचालक-मात्र था। उसने आवश्यकतानुसार अपने तोपखानेका उपयोग न करनेकी भी भयंकर गलती की। इसके विपरीत जरूरत पड़नेपर औरंगजेबके फारासीसी औ अंग्रेज तोपचियोने अपनी तोपों-के मुँह फेरकर राजपूतोपर ऐसी भयंकर गोलावारी की कि उससे वे सारे मारे गए। वास्तवमे इस युद्धमे तलवारोंने तोपोका सामना किया था, तोपखानेने सहज ही घुडसवारोपर विजय प्राप्त कर ली।

२. धरमत का युद्ध

यद्यपि औरंगज़ेबकी सेनाका सगठन और उसका तोपखाना अधिक श्रेष्ठ था, फिर भी दोनों सेनाओकी संख्या प्रायः समान ही थी, प्रत्येक सेना मे कोई ३५,००० सैनिक थे।

१५ अप्रेलको सूर्योदयके दो घंटे वाद दोनो विरोधी दलोका आमना-सामना हुआ। अपना नियमित सगठन क़ायम रखते हुए औरगजेबकी सेना शाही सेनाकी ओर आगे वढ़ी। राजपूतोके दल एक ही स्थानपर एकत्रित थे। औरगजेबने उनपर गोलियाँ चलाना शुरू कर दिया। स्वतन्त्रतापूर्वक हिलने-डुलनेके लिए राजपूतोंको पर्याप्त जगह भी नही थी, एव प्रत्येक क्षण अनेकों राजपूत गोलियोंके शिकार होने लगे। इसी समय उनकी सेनाका अग्र भाग युद्धके लिए आगे वढा। इसका सचालन मुकन्दसिह हाड़ा, दयालदास झाला, अर्जुनसिह गौड, सुजानसिह सीसोदिया, आदि वीर कर रहे थे तथा उसमे उन्हींकी जातियोंके चुने हुए वीर सवार थे। वे अपनी सारी सैनिक योजनाओंको भूलकर "राम! राम!" के जयनादके साथ शत्रुओपर शेरोंकी तरह टूट पडे।

प्रधान सरदार मुर्शिदकुलीखा वीरतापूर्वक लडता हुआ मारा गया, तथा उसके साथी सैनिक घबडा उठे। परन्तु तोपोकी कोई हानि नही हुई। तोपखानेमे होते हुए ये आक्रमणकारी औरअजेबकी सेनाके अगले भागपर झपटे। यहाँ कुछ समयके लिए हाथोहाथ घमासान युद्ध हुआ। राजपूतोका यह दल इस प्रारम्भिक सफलतासे उन्मत आगे बढता हुआ औरगजेबकी सेनाके मध्य तक घुस गया। उस सारे दिनके युद्धमे यह समय ही सबसे अधिक सकटपूर्ण था। अगर राजपूतोके इस आक्रमणको तब न रोका जाता तो औरगजेवको सफलता नही प्राप्त होती।

परन्तु शाहजादेकी सेनाके इस भागमे बहुत ही चुने हुए वीर अनुभवी सैनिक थे। उनके पैर किसी प्रकार भी नही उखडे। राजपूतोका आवेगपूर्ण आक्रमण उनके चारो ओर मडराता ही रह गया। उस दिनका सबसे भयकर और निर्णयात्मक युद्ध यही हुआ। औरगजेबकी सेनाके इस सुसगठित एव बहुत बड़े भागका सामना करनेमे ही राजपूतोकी सारी शक्ति नष्ट हो गई।

कासिमखाके अधीन मुगल सेनाने जसवन्तसिहकी कोई सहायता नही की। जसवन्तसिहकी सेनाके इस आक्रमणमे उन्होने हाथ नही बटाया। राजपूतोके आक्रमणके इस आकस्मिक तूफान मे पडकर औरगजेबकी जो सेना अलग-अलग हो गई थी, वह फिरसे राजपूतोके पीछे सम्मिलित हो गई, जिससे राजपूतोका वापस लौटना असभव हो गया। तब तक औरगजेब ने परिस्थितिको अच्छी तरह समझ लिया था, वह स्वय सेनाके इस मध्य भागके साथ आगेकी ओर बढा। उसके साथ ही मध्य सेनाके दाए और बाए पक्षोको लेकर शेख मीर और सफशिकनखाने अपने सामने औरगजेबकी सेनाके अगले भागसे लडते हुए राजपूतो को दोनो ओरसे जा घेरा। आक्रमणमे लगे हुए सारे राजपूत सरदार एक-एक कर मारे गए। अपनी मुख्य फौजसे राजपूतोके इस दलका कोई भी लगाव नही रहा था। उनपर सामने और दाए-बाएसे भयकर आक्रमण हुए। धीरे-धीरे उनकी

सख्या बहुत कम रह गई । बड़ी ही अविश्वसनीय वीरताके साथ लड़ते हुए वे सब युद्ध-भूमिमे काम आए ।

तब तक सारे युद्ध-क्षेत्रमे सर्वत्र लड़ाई छिड चुकी थी । मुकुन्द-सिहके ये राजपूत साथी जब दूसरी ओर बढ गये, तब उनके इस हमलेके प्रभावसे सम्हलकर औरगजेबके तोपचियोने अपने तोपोको ऊची पहाड़ीपर पुन. जमा दिया, एव वे जसवन्तसिहकी सेनाके मध्य भाग-पर जोरोसे गोलाबारी करने लगे ।

शाही फौज एक बडे संकड़े मैदानमे सिमट गई थी । इस मैदानके दोनो बाजुओपर गहरी खाइयाँ तथा दलदल थी, जिससे शाही सैनिक स्वतन्त्रतापूर्वक घूम नही सकते थे । अब अपनी वीर सेनाके हरोलको यो नष्ट होते, तथा औरगजेबको विजयपूर्वक आगे बढ़ते देख, जसवन्त-सिहकी प्रधान सेनाके दाए बाजूसे रायसिह सिसोदिया, सुजानसिह बुन्देला और अमरसिह चन्द्रावत अपने सैनिको सहित युद्ध-भूमिसे भाग खडे हुए तथा अपने-अपने घरोको लौट गए ।

उसी समय मुरादने अपनी सेना लेकर जसवन्तके पडावपर आक्र-मण किया । यह पड़ाव युद्ध-भूमिके पास ही था । उसके अनेकों रक्षकोको मार भगाया तथा उनमेसे देवीसिह बुदेलाने मुरादके प्रति आत्मसमर्पण कर उसकी शरण ली । फिर वहाँ से आगे बढ़ते हुए युद्ध-भूमिमे पुनः आकर उसने शाही फौजकी बाई बाजूपर हमला किया । थोड़ी ही देरमे शाही फौजके इस भागकासेनापति इफ्तारखां मारा गया, और वहाँ की सेनाका सफाया हो गया ।

२. जसवन्तसिह और शाही सेना का युद्ध-भूमि छोड़ना

रायसिहके भागनेसे जसवन्तकी सेनाकी दाहिनी बाजू बिलकुल अरक्षित रह गई थी । इफ्तारखाके मारे जानेसे अब उसकी बाईं बगल भी निर्बल हो गई । इस समय तक उसकी प्रधान सेना भी भागने लगी थी । कासिमखाके मातहत मुसलमान सेना अभी तक युद्धसे दूर ही थी, औरगजेबकी सेना सहित बढते देख उसने भी भागना

आरभ कर दिया। अब जसवन्तकी बची हुई सेनापर सामनेसे औरंगजेब, बाईं ओरसे मुराद, और दाहिनेसे सफशिकनखा हुंकार करती हुई भयंकर बाढ़के समान घेरते हुए तेजीसे बढ रहे थे। स्वयं महाराजा सजवन्तसिहको भी दो घाव लग चुके थे और शत्रुके बढ़ते हुए इस प्रवाहमे वीर-गति पानेके लिए वह अपना घोड़ा बढ़ानेको उत्सुक हो उठा। पर उसके मन्त्रियों और सेनापतियोने उसकी लगाम थामकर उसे युद्ध-भूमिसे जोधपुरके लिए रवाना होनेको बाध्य किया। उसे लेकर वे जोधपुरकी ओर चले। शाही सेना की हार तब तक सुनिश्चित तथा सर्वथा सुस्पष्ट हो गई थी। जसवन्तसिहके युद्ध-क्षेत्रसे चल देनेके बाद रतनसिह राठौड शाही सेनाका सेनापति बना और वह इस युद्धको चलाए गया; किन्तु अब तो यह युद्ध शत्रुको उलझाए रखकर उन्हे रणक्षेत्र छोडकर जानेवालोका पीछा न करने देने तथा यो उनके पृष्ठ भागकी रक्षाका प्रयत्न-मात्र बन गया था। शाही सेनामे भगदड मच चुकी थी एवं इस हारी हुई बाजीको पलट देना रतनसिह और उसके उन मुट्ठी-भर वीर राजपूतोंके लिए कदापि संभव नही था। कुछ समय तक वीरतापूर्वक लड़ते रहनेके बाद अन्तमे रतनसिह भी खेत रहा, और उसके साथ ही शाही सेनाकी ओरका रहा सहा विरोध भी समाप्त हो गया। किन्तु भागती हुई शाहीसेनाका किसीने पीछा नही किया। दोनो ही पक्ष युद्धमे पूरी तरह थक चुके थे। जीतने वालोंके सामने विजयमे प्राप्त लूटका सारा माल प्रस्तुत ही था। विजयी शाहज़ादोंने दोनों शाही सेनापतियोके पड़ावपर अपना अधिकार कर लिया। इनके साथ ही सारी तोपे, तम्बू, हाथी, खज़ाना, आदि सब-कुछ उनके हाथ लगा। सैनिकोने भी शाही फ़ौजके सिपाहियोका सारा सामान लूट लिया।*

---

* फारसी भाषामे प्राप्य आधार-ग्रन्थो मे दिए गए वर्णनो के आधार पर ही धरमत के युद्ध का वृतान्त मैंने पहिले लिखा था। इस युद्ध-का विवरण हमे दो समकालीन हिन्दी तथा राजस्थानी काव्य-ग्रन्थो मे भी मिलता है—खड़िया जगाकृत "वचनिका" (१६५८) तथा कुम्भकर्ण

लूटमे प्राप्त इस सारे माल-मतेकी अपेक्षा युद्धमे प्राप्त विजयके फलस्वरूप मिलनेवाला यश ही औरगजेबके लिए अधिक महत्त्वपूर्ण था। उसकी भावी सफलताके लिए धरमतका यह युद्ध एक शुभ सगुन बन गया। एक ही हाथमे उसने ऊचे चढे हुए दाराको अपनी बराबरीका बना डाला और कुछ हद तक अपनी विजय द्वारा औरगजेब ने उसकी हीनता भी सिद्ध कर दी। सशयमे पडे हुए लोगोकी हिचकिचाहटका अब अन्त हो गया। चारो भाइयोमे कौन भाग्य-

---

कृत "रतन रासो" (१६७५ ई०)। जसवन्तसिह का चचेरा भाई, रतलाम का शासक रतनसिंह राठौर भी इस युद्ध के समय शाही सेना-के साथ था एवं इस युद्ध मे वह काम आया। रतनसिंह राठौर ने इस युद्ध मे क्या किया, उसने किस प्रकार युद्ध किया तथा वह किस प्रकार अन्त मे वीरता पूर्वक लड़ता हुआ मारा गया, इन्ही बातो का समकालीन विवरण हमे इन दोनो काव्य-ग्रन्थो मे मिलता है। इन दो ग्रथो मे दी गई बातो के आधार पर मेरे पहिले के विवरण मे यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन किया जाना आवश्यक हो गया था। 'आलमगीर-नामे' के आधार पर अब तक यह विश्वास किया जाता था कि रतनसिंह राठौर भी प्रारम्भिक आक्रमण मे मुकुन्दसिह हाड़ा के साथ था और तभी जूझ मरा, किन्तु इन ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि रतनसिंह मुकुन्दसिह हाड़ा के साथ तब नही गया था। दूसरे, युद्ध-क्षेत्र से रवाना होते समय बाकी रही शाही सेना के सचालन का भार जसवन्तसिंह ने रतनसिंह को सौपा था। जसवन्तसिंह के रवाना होने के बाद भी रतनसिंह ने वीरता-पूर्वक शाहजादो की सेना का सामना किया, और वह तथा उसके सारे साथी युद्ध करते हुए खेत रहे। इस युद्ध मे रतनसिंह के कोई ८० घाव लगे थे। यो जसवन्तसिंह के रवाना होने के बाद भी कुछ समय तक युद्ध चलता रहा तथा रतनसिह और उसके साथियो के मारे जाने पर ही उसका अन्त हुआ। इन काव्य-ग्रन्थो के आधार पर महाराजकुमार डा० रघुवीरसिह द्वारा सुझाए गए इस युद्ध-सम्बन्धी इन दो सशोधनो को उचित मानकर यहाँ उसका यह विवरण लिखते समय मैने उन्हे पूर्णतया स्वीकार किया है। इस विषयक विशद विवेचन के लिए देखो—डा० रघुवीरसिह कृत 'रतलाम का प्रथम राज्य' (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली)।

लक्ष्मीका दुलारा है, यह जाननेमे अब उन्हे कठिनाई नही होती थी ।

जैसे ही जसवन्तसिह और कासिमखाने पीठ फेरी वैसे ही औरगजेबकी सेनाने जय-घोष किया । औरगजेब धरतीपर उतर पडा, और वही रणभूमिमे घुटने टेककर बैठ गया, तथा हाथ जोडकर उसने विजय प्रदान करनेवाले उस परमपिताको धन्यवाद दिया ।

इस युद्धमे शाही फौजके कोई ६ हजार सैनिक काम आए । इस हानिमे अधिकाश सख्या राजपूतोकी ही थी । राजस्थानकी हर एक राजपूत जातिके वीरोने इस प्रकार युद्धमे जान देकर अपनी स्वामिभक्ति दिखाई तथा अपना वीरोचित कर्तव्य निबाहा । रतलाम, सीतामऊ और सैलानाके राजघरानोके आदि-पुरुष, रतनसिह राठौडकी स्मृतिमे उसके वशजोने युद्ध-भूमिमे ही जहाँ उसके शवकी दाह-क्रिया की गई थी, वहाँ सगमरमरका एक सुन्दर स्मारक बनवाया ।

४. औरंगजेब का आगरा की ओर बढ़ना

विजयके दूसरे दिन दोनो शाहजादे उज्जैन पहुचे । वहाँसे चलकर २१ मार्चको वे ग्वालियर आए । यहाँपर उन्हे मालूम हुआ कि दारा भी एक बडी सेनाके साथ धौलपुर आ गया है, तथा उसने चम्बल नदीके सारे सुज्ञात तथा कामलायक घाटोको अपने अधिकारमे कर लिया । तब तो औरगजेबने एक स्थानीय जमीदारकी सहायताली । उसने धौलपुरसे ४० मील पूर्वमे भदौलीके पास एक निर्जन घाटका पता लगाया जहाँ केवल घुटनो तक ही पानी था । इस घाटपर दाराने कोई सैनिक या पहरेदार नही रखे थे ।

अब देरी करना अनुचित था । २१ मईको ग्वालियर पहुचनेपर उसी शामको औरगजेबकी सेनाकी एक मजबूत टुकडी तीन सेनापतियो और तोपफानेके साथ रातोरात चलकर इस घाटपर पहुची, और दूसरे दिन प्रात कालमे कुशलता-पूर्वक नदीको पार किया । सेनाका मुख्य भाग ग्वालियरके पास ही रुक गया था । २२ मईको औरगजेब स्वय ग्वालियारसे चला । दो पड़ावोकी यात्रा समाप्त

करके अपनी शेष सेनाके साथ उसने भी २३ मईको उसी घाटपर नदी पार की। राह उबड़-खाबड़ थी, घाट पहुचनेमे सैनिकोको बडा कष्ट हुआ। रास्तेमे लगभग १५,००० आदमी प्यासके कारण मर गए। किन्तु इस प्रकार चम्बल पार करनेका सैनिक महत्त्व बहुत अधिक था। उसने एक ही चालसे शत्रुके सारे मोर्चोको निरर्थक बना दिया और लम्बी-चौड़ी खाइयाँ खोदकर तोपे जमानेमे दाराने जो मेहनत की थी वह सारी व्यर्थ हो गई। आगराका मार्ग औरगजेबके लिए खुला पडा था। अब चम्बलका किनारा छोड़कर दाराको पीछे लौटना पड़ा कि वह राजधानीकी रक्षाके लिए प्रयत्न करे। अनेको भारी तोपे दाराको नदीपर ही छोड़ देनी पड़ी, जिससे वह अगले युद्धमे कमजोर पड गया। औरगजेबकी विजयी सेना चम्बलसे उत्तरकी बढती गई और तीन दिनमे ही आगरासे कोई १० मील पूर्वमे सामूगढके पास शत्रुके सामने आ डटी।

५. धरमत के युद्ध के बाद दारा की हलचले

चम्बल नदीके तीरपर जा पहुचनेके लिए दारा १८ मईको चल पड़ा। आगरासे रवाना होते समय वहाँके किलेके दीवान-आममे उसने जब अपने वृद्ध पितासे बिदा ली तब एक बहुत ही दर्दनाक दृश्य वहाँ उपस्थित हुआ। २३ मईको धौलपुर पहुचकर उसने आसपासके चम्बल नदीके सारे घाटोपर अधिकार कर लिया। उसका उद्देश्य था कि बिना युद्ध किए ही यो औरगजेबकी सेनाको आगे बढनेसे रोक दे, जिससे सुलेमान शिकोहको सेना सहित आकर मिलनेका अवसर मिल जाए। पर शीघ्र ही उसने सुना कि औरगजेबने धौलपुरसे ४० मील पूर्वमे २३ मईको ही नदी पार कर ली है। तब तो वह हड़बड़ाकर आगराकी ओर लौट पडा और आगरा शहरसे कुछ ही दूर सामूगढ़के पास उसने पड़ाव डाला। औरगजेब भी २८ मईको वहाँ पहुचा।

औरगजेबके आनेका समाचार सुनते ही दारा उसी दिन अपनी

फ़ौज सम्हालकर पडावसे बाहर निकला, मानो वह युद्ध करने ही जा रहा हो। परन्तु शत्रु सेनाको देखकर रुक गया, और देखने लगा कि शत्रु क्या करता है। सन्ध्या समय वह अपने पडावको लौट आया। यही उसकी भयकर भूल थी। औरगजेबकी सेना सध्यामे बहुत कम थी तथा उसके सैनिक कडी धूपमे बिना पानीके दस मीलकी यात्रा करनेके कारण थक चुके थे। दाराकी फौज बिलकुल ताजा व तैयार थी। दिन भर गर्मीमे घटो बेकार रहनेसे सैनिक और हाथी-घोडे, आदि सब बुरी तरह थक गए। उधर चतुर औरगजेबने अपनी सेनाको सध्या व पूरी रात्रि भर आराम देकर अगले दिनके युद्धके लिए पूरी तरह ताजा कर लिया।

६ सामूगढ़ का युद्ध, २९ मई १६५८

२९ मईको प्रात.कालमे दाराने अपनी सैन्य-पक्तियोको सुसज्जित किया। उसके पास लगभग ५०,००० सेना थी। राजपूत सैनिको और दाराके ईमानदार पक्षपातियोपर ही इस सेनाकी पूरी-पूरी शक्ति निर्भर थी। परन्तु उसके साथकी फौजमे लगभग आधी सेना ऐसी थी, जिसपर कोई विश्वास नही किया जा सकता था। इसके अनेक मुखियोको औरगजेबने फोड़ लिया था, जिनमे ख़लीलुल्लाख़ाका नाम विशेषरूपेण उल्लेखनीय है। अपनी फौजके अग्र भागके सामने दाराने अपना सारा तोपखाना एक कतारमे जमा दिया। इसके पीछे उसके पैदल बन्दूकची थे और बाद मे थे हाथी। सबसे पीछे घुडसवारोकी सेनाका बडा समूह था। दाराका तोपख़ाना भारी होनेसे अधिक क्रियाशील न था। उसके तोपची भी औरगजेबके तोपचियोकी अपेक्षा कही अधिक अयोग्य थे। उसके घोड़े तथा सामान ढोनेवाले जानवर भी बहुत-कुछ बेकार व अनुपयोगी थे।

इसके विरुद्ध औरगजेबके साथ अनुभवी कुशल साहसी वीरोकी सेना थी। उसके श्रेष्ठ तोपख़ानोकी कतारोका मीरजुमलाके युरोपीय गोलन्दाज़ संचालन कर रहे थे और गोला-बारूद भी उनके पास पर्याप्त

मात्रामे था। पूर्ण आज्ञाकारिता और सुदृढ संगठन ही उसकी सेनाकी प्रधान विशेषताएं थी। विना किसी हिचकिचाहट या आशका किए आज्ञा-पालनकी शिक्षा उसके सारे अधिकारियोंको पूर्ण रूपसे दी गई थी।

मध्यान्ह तक उनका युद्ध आरंभ हो गया। दारा एकदम आक्रमणके लिए उतारू हो गया। उसका तोपखाना दूरीपर स्थित-शत्रु-सेनाकी बहुत ही थोड़ी हानि कर पाया। इस समय अपना गोली वारूद वचा रखनेकी औरंगजेवने वुद्धिमानी की।

एक घटे तक इस प्रकारकी गोलाबारी होनेके बाद दाराने हमलेका हुक्म दिया। रुस्तमखांकी मातहत उसकी बाई ओरकी फौज नगी तलवारे लेकर भयकर युद्ध-नाद करती हुई विरोधी शत्रुओं-पर टूट पड़ी। औरगजेवके वन्दूकचियों और उनके मुखिया शफशिकन-खांने बंदूकोंकी घातक वाढ़के साथ इस आक्रमणका सामना किया। परन्तु यह धावा तोपो तक नही पहुंच पाया और न उन्हे नष्ट करनेमें ही उसे कोई सफलता मिली। धीरे-धीरे इस आक्रमणका वेग कम होता गया। तव तो रुस्तमखा दाहिनी ओर मुड़ा और औरंगजेव की सेनाकी ओर झपटा। पर औरगजेवकी मध्य सेनाकी दाहिनी वाजूवाली फौजको लिये वहादुरखाने रुस्तमखाका मार्ग रोका। तव घमासान द्वन्द्व-युद्ध प्रारम्भ हुआ। वहादुरखां घायल होकर गिरा। तव तक इस्लामखां और शेख मीर उसकी सहायताके लिए पहुँच गए थे। अव रुस्तमखांके विरोधियोकी सख्या वहुत अधिक हो गई, उवर वह वुरी तरह थक गया था। उसका हाथ भी वुरी तरह घायल हो गया था। फिर भी कोई १०-१२ अन्य साहसी वीरों सहित मार-काट द्वारा अपनी राह वनाता हुआ वह शत्रु सेनाके वीचोंवीच जा पहुँचा और वहाँ अनेक शत्रुओको मारकर वही खेत रहा। दाराकी सेनाके वाएँ पक्षके कुछ थके हुए सैनिक अव सिपर शिकोहके साथ पीछेको लौट पड़े।

इसी समय औरंगजेवकी बाई ओर इससे भी भयकर युद्ध मचा

हुआ था। वहाँ छत्रसाल हाडाके नेतृत्वमे राजपूतोकी शाही फ़ौज अपनी पूरी शक्तिके साथ मुरादपर झपटी। राजपूतोने यो प्रयत्न किया कि मुराद व औरगजेब की सेनाए अलग-अलग हो जावे। राजा रामसिह राठौड़ मुरादके हाथीपर झपटा और जोरसे उपहासपूर्वक चिल्लाया कि "तू दारासे सिहासन छीनने चला है", तथा राजाने मुरादपर अपना भाला फेका। किन्तु निशाना चूक गया और शाह-जादेने एक ही बाणसे राजाको मार गिराया। मुरादको घेरनेका प्रयत्न करनेवाले दूसरे राजपूत भी एक-एक कर मारे गये। मुदारके हाथी का महावत मारा गया और उसके चेहरेपर भी तीन घाव लगे। उसके हाथीका हौदा शत्रुओके तीरोसे भरकर काँटोसे पूर्ण साहीकी पीठ-सा दिखाई देने लगा। इस आक्रमणके वेगने उसे हाथी सहित पीछेकी ओर धकेल दिया।

विजयी राजपूत अब मध्यकी ओर बढे तथा मुरादकी सहायताके के लिए आते हुए औरंगजेबपर टूट पड़े। राजपूत औरगजेबके पास तक जा पहुचे और उसपर आक्रमण किया। पर उस शाहज़ादेके रक्षकोने वैसी ही वीरतासे उनका सामना किया। वे बिलकुल ही थके न थे, इसलिए राजपूतोकी उनके सामने एक न चली। फिर भी राजपूत प्राणोका मोह छोडकर बहु-सख्यक शत्रुओसे लडते ही रहे। छत्रसाल हाडा, रामसिह राठौड, भीमसिह गौड़, शिवाराम गौड, आदि वीर योद्धा एक-एक कर काम आए। राजा रूपसिह राठौड़ जानपर खेलकर अपने घोड़ेसे कूद पडा। नगी तलवार लिये वह औरगजेबके हाथीकी ओर लपका। औरगजेबको नीचे गिरा देनेके इरादेसे उसके हौदेकी रस्सियाँ उसने काटनेका प्रयत्न किया। हाथीके पैरपर उसने तलवारका वार किया। किन्तु वह स्वयं ही औरगजेबके शरीर-रक्षको द्वारा मारा गया। बचे-खुचे राजपूत भी युद्धमे काम आए। इस प्रकार दाराकी बाईं और दाई दोनो ही ओरकी सेनाए इस समय तक नष्ट ही गईं।

७ सामूगढ़के युद्ध में दारा; युद्धका अंत

युद्धके आरम्भमे ही दारा सेनाके मध्यमे अपनी जगह छोड़कर रुस्तमखाकी सहायता करनेके लिए औरंगजेबकी सेनाके,दाहिने पक्षकी ओर चला गया था। इससे बढकर खतरनाक गलती हो नहीं सकती थी। यों सेनाके प्रधान सेनापतिकी हैसियतसे अपनी सेनापर नियन्त्रण तथा संचालन सम्बन्धी जो अधिकार दारा को प्राप्त होना चाहिए था उसे वह यो एकबारगी खो बैठा। सारी मुगल सेनामे पूरी गड़बड़ मच गई। पुन. स्वयं आगे आकर उसने अपने ही तोपखानेको गोला-बारी करनेसे रोक दिया। केवल इस एक गलतीसे ही दाराकी जो हानि हुई वह अनेक कारणोसे होनेवाली अन्य भारी हानियोंसे कहीं अधिक थी। अब दारा अपने सामने खड़े शत्रुके तोपखानेसे बचनेके लिए दाहिनी ओर मुड़ा और शेख मीरकी सेनासे जा भिड़ा।

इस समय औरंगजेबके आसपास कोई सेना नही रह गई थी। पर दारा स्वय थक गया था। साथ ही रणभूमिकी कठिनाइयोके कारण कुछ समयके लिए वह रुक गया। उसके आक्रमणकी तेजी बहुत-कुछ कम हो गई और उसने विजय प्राप्त करनेका यह स्वर्ण अवसर हमेशाके लिए खो दिया। क्योकि इतनी सी देरमें औरगजेबने अपनी सेनाएँ सम्हाल ली और आवश्यकतानुसार उन्हे नये ढंगसे जमा दिया। उधर दाराको छत्रसाल हाड़ाकी सेनाकी सहायताके लिए अपनी सेनाकी दाहिनी ओर मुड़ जाना पड़ा। इस लम्बी और थकानवाली आवाजाहीसे उसके सैनिक थक गए। उस तेज धूपमे दम घोटनेवाली धूलकी आँधीके बीच, जलती हुई वालुकापूर्ण भूमिपर उन्हे चलना पड़ रहा था, और दुर्भाग्यसे प्यास वुझानेके लिए एक बूंद पानी भी नसीव न हो सका था।

अव तक औरंगजेवकी सेना अपने स्थानपर दृढ़तासे डटी हुई थी। किन्तु अपने पिताकी सेनाको लेकर शाहजादा मुहम्मद सुलतान अब दारापर आक्रमण करनेके लिए तेज़ीसे आगे वढ़ा। इसी समय औरंगज़ेवकी दाहिनी ओरवाली विजयी सेना भी दारा की फ़ौजपर

हमला करनेके लिए घूम पडी। दाई और बाई, दोनो ओरसे दाराके सैनिकोपर लगातार गोलियोकी बौछार पड़ रही थी। अब वास्तवमे युद्धका अत आ गया था। अपने मुख्य सेनापतियोकी मृत्युकी सूचना दाराको मिल चुकी थी। अब अपने सामने तोपे लिये औरगजेबकी सेना उसकी ओर बढी आ रही थी। खुद दाराका हाथी ही अब गोलियोका निशाना बना, जिससे घबराकर यह हाथी अपने रखवालोपर ही हमला करने लगा। अभागे दाराके लिये अब यह अनिवार्य होगया कि वह उस हाथीको छोडकर घोडेपर बैठे। तत्काल ही उसकी सेनाके सारे विरोधका अत हो गया। पूरे रणक्षेत्रमे फैले हुए उसके सैनिकोने हौदा खाली देख उसे मरा समझ लिया। प्यास और थकानके कारण वे पहले ही अधमरे हो गए थे, अब गर्म लूके थपेडे खाकर प्यासके मारे ही कई मर गए, हथियार उठाने तककी उनके हाथ-पैरमें तब ताकत न रही थी। शाही फौजमे अब जो कोई बचे थे वे एकदम रण-क्षेत्र छोडकर भाग खडे हुए। कुछ खानदानी अनुचरोको छोड़कर अब दाराके पास कोई न ठहरा, वह बिलकुल अकेला रह गया। उसके वे साथी उसे रणक्षेत्रसे आगराको ले चले।

औरगजेबका सामना करनेवाला अब कोई नही रहा था; फिर भी उसने भागते हुए शत्रुओका पीछा नही किया, क्योकि इस युद्धमे उसे पूर्ण विजय प्राप्त हुई थी। दाराकी सेनाके कोई दस हजार सैनिक काम आए। शाही सेनाकी ओरसे मारे जानेवाले ९ राजपूत और १९ मुसलमान उच्च पदाधिकारी सेनानायकोके नामोका उल्लेख मिलता है।

इस युद्धमे खेत रहनेवाले इस वीर सेनानियोमे ५२ लड़ाइयोका विजेता बूंदी-नरेश राव छत्रसाल हाड़ा विशेष उल्लेखनीय था। धरमत और सामूगढकी दो लडाइयो मे हाड़ा राजघरानेके कुल मिलकार कोई बारह राजपुत्र काम आए। अपने सैनिकोको लेकर इस वशके प्रत्येक घरानेके अधिपतिने युद्धक्षेत्रमे अपनी स्वामिभक्तिका स्पष्ट प्रमाण दिया। ईरानियो और उजबेगोके विरुद्ध लड़े जानेवाले

युद्धोंका वीर-विजेता सुप्रसिद्ध रुस्तमख़ाँ उर्फ़ फिरोज़ जंग भी इस युद्धमे काम आया। औरंगजेबके पक्षका प्रथम श्रेणीका केवल एक ही नायक आजमख़ा मरा और केवल अत्याधिक गर्मी ही उसकी मृत्युका कारण हुई।

८ आगराकी घटनाएँ और शाहजहाँका कैद होना; जून १६५८

सामूगढ़के विनाशकारक युद्धसे भागकर अपने कुछ नौकरोके साथ दारा रात्रिको ९ बजे आगरा पहुचा और शहरवाले अपने मकानमे जा छूपा। शाहजहॉने सदेश भेजा कि किलेमे आकर वह उससे मिले। परन्तु दारा तो शरीर और मन, दोनोसे ही पूर्ण-तया हतोत्साह और मृत-प्रायसा हो रहा था। उसने क़िलेमे जाना अस्वीकार करते हुए कहला भेजा कि मै अपनी इस दुर्दशामें किस प्रकार शाहशाहको मुँह दिखा सकता हूं। मेरे सामने जो लम्बी यात्रा है उसके लिए बिदाईका आशीर्वाद दीजिए और आज्ञा दीजिए कि मै यहीसे अपनी यात्रापर चल पड़ूं।

प्रात काल ३ बजे वह अभागा शाहजादा अपनी पत्नी, पुत्रों और दस-बारह नौकरोको लेकर आगरासे दिल्लीके लिए रवाना हुआ। शाहजहाँकी आज्ञानुसार शाही खजानेसे सोनेकी मोहरें लादकर उसके साथ भेज दी गई। अपने पासके हीरे, जवाहरात और नगद रूपये, आदि जो कुछ भी इस जल्दीमे ले जा सका वह साथ लेता गया। उसके पक्षवालोके छोटे-छोटे गिरोह रास्तेमें दो दिनो तक आ-आकर उसके साथ होते गए। दिल्ली पहुँचते-पहुँचते उसके पास ५,००० सैनिकों की एक अच्छी सेना तैयार हो गई।

सामूगढ़के युद्धके वाद औरंगजेबने जाकर मुरादको वधाई दी, और कहा कि यह विजय मुदराकी ही वीरताका परिणाम थी, इसलिए उसी दिनसे मुरादके राज्य-कालका प्रारम्भ माना जाना चाहिए।

सामूगढकी युद्ध-भूमिसे चलकर ये विजेता दो मजिल पार कर १ली जूनको आगराके पास पहुँचे और वहाँ शहरके बाहर नूरमंजिल या धाराके बागमे उन्होने पड़ाव डाला। यहाँ वे दस दिन तक ठहरे रहे। दिन प्रति-दिन अनेको दरबारी, सरदार और हाकिम शाही पक्ष छोड़कर उनके साथ मिलने लगे। दाराके पुराने अधिकारियोने भी यही किया।

सामूगढके युद्धके दूसरे दिन औरगजेवने सीधे शाहजहाँको एक पत्र लिखा। शत्रुओके कारण विवश होकर इस समय उसे जो कुछ भी करना पड रहा था, उसके लिए उसने क्षमा माँगी। नूरमज़िल पहुचनेपर शाहजहाँके हाथका लिखा हुआ पत्र उसे मिला। बादशाहने उसे मिलनेके लिए बुलाया था। कुछ सोच-विचारके बाद उसने अपने मित्रो (विशेषकर शायेस्ताखा और खलीलुल्लाखा) की सलाहपर यह निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया। मित्रोने उसे भडकाया कि आगराके किलेमे घुसते ही एक तातारी स्त्री-रक्षक द्वारा उसे मरवा डालनेका शाहजहाँने षडयन्त्र रचा है।

अन्तमे अब औरगज़ेब खुले-आम शाहजहाँका विरोध करनेको उतारू हुआ। आगरा शहरपर अधिकार कर वहाँ अमन-चैन बनाए रखनेके लिए ३ जूनको ही औरंगज़ेबने अपने बडे लड़के मुहम्मद सुलतानको वहाँ भेज दिया था। शाहजहाँने आगरेके किलेके दरवाजे बन्द करवाकर आक्रमणका सामना करने की तैयारी की। ५ जूनको आगराके किलेका घेरा डाला गया, किन्तु गोला-बारी कर उस किलेको तोडनेमें औरगजेबका तोपखाना विफल ही हुआ। अगर ठीक तौरपर उस किलेका घेरा डालकर उसे जीतनेके लिए प्रयत्न किया जाता तो उसमे कई माह या सभवत वर्ष भी लग जाते और ये दोनो विजयी भाई आगरामे ही रुके रह जाते, तथा उधर दाराको अवसर मिल जाता कि वह पुन नई सेना एकत्रित कर उसे सुसज्जित कर डाले। इसलिये औरगजेबने अपनी सेनाको भेजा कि वह जमुनाकी ओर खुलनेवाली किलेकी खिड़कीके पासके बाहरी

भागपर अधिकार कर ले । इस प्रकार क़िलेकी सेनाके लिये आवश्यक जल-प्राप्तिका साधन बन्द हो गया । क़िलेके कुछ पु राने अनुपयोगी कुओंका पानी खारा और बिलकुल पीने योग्य न था । यह हालत देख बादशाहके अनेक हाकिम तथा मुफ्तमें पानेवाले कई आलसी दरबारी भी चुपचाप क़िलेके बाहर खिसक गए ।

इन परिस्थितियोमे भी शाहजहॉने तीन दिन तक किलेके दरवाजे नही खोले । उसने स्वय औरगजेबसे एक बहुत दर्दनाक व्यक्तिगत प्रार्थना की कि वह अपने जीवित पिताको प्यासो न मारे । पर उसके उत्तरमे औरगजेबने यही कहा कि "यह सब आपकी ही करनीका फल है" । अपने चारो ओर षडयन्त्र और विनाश देखकर प्यासे व्याकुल वृद्ध बादशाहने आत्मसमर्पण करनेका निश्चय किया । ८ जूनको उसने औरगजेबके अफसरोके लिए किलेके दरवाज़े खोल दिए, तव तो वह स्वय महलके हरममे क़ैदी बना दिया गया । अब उसे विवश होकर किलेमे दरबार-आमसे लगे हुए कमरोमे ही रहना पडा । उसके सारे अधिकार छीन लिये गए । क़िलेके भीतर और बाहर मजबूत पहरे बैठा दिए गए कि उसको छुड़ानेका प्रयत्न विफल ही रहे । उसके पास रहनेवाले खोजापर भी कड़ी नजर रखनेका हुक्म हुआ ताकि वे उसके कोई भी पत्र बाहर न ले जा सके । आगराका अटूट खजाना, भारतके महान् शक्तिशाली बादशाहोकी तीन पुश्तोमें सगृहीत वह सारा धन , सहज ही औरगजेवके अधिकारमे आ गया ।

१० जूनको शाहजादी जहॉनारा वहनके नाते औरगजेवको मनाने और उसपर अपना प्रभाव डालनेके लिए उससे मिलने आई । शाह-जहाँकी ओरसे उसने चारों भाइयोमे साम्राज्यको बॉट देनेका प्रस्ताव भी पेश किया । परन्तु औरगजेबने इस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया उसका ऐसा करना स्वाभाविक ही था ।

६ मुरादबख्शकी कैद और मृत्यु

दाराका पीछा करनेके लिए १३ जूनको औरगजेव आगरासे

रवाना हुआ । पर मुरादके ईर्ष्यालु और हठी बर्तावके कारण कठिन परिस्थिति उत्पन्न हो जानेसे उसे मार्गमे ही मथुरामे रुक जाना पड़ा । इस शाहजादेके दरबारी दिन-रात उसे भड़काया करते थे और कहते थे कि धीरे-धीरे सारी हुकूमत उसके हाथसे निकलकर औरगज़ेबके ही हाथमे चली जा रही थी और इस प्रकार औरगजेब ही धीरे-धीरे सर्वेसर्वा बनता जा रहा था। इन सलाहकारोके बहकानेमे आकर मुराद खुल्लम-खुल्ला औरगजेबका विरोध करने लगा। उसने अपनी सेना भी बढा ली और औरगजेबके पास आना-जाना भी उसने बन्द कर दिया ।

परिस्थिति बडी ही नाजुक होगई । परन्तु औरगजेबने २३३ घोडे और २० लाख रुपये देकर मुरादके सन्देहको मिटा दिया । साथ ही मुरादको युध्द मे लगे हुए घावोके अच्छे हो जाने के उपलक्षमे, तथा भागते हुए दाराके विरुद्ध युद्ध-यात्राकी योजनाको पूरी करनेके उद्देश्यसे औरगजेबने मुरादको भोजनोत्सवके लिए आमन्त्रित कर दिया । भाईका यह निमन्त्रण स्वीकार कर २५ जूनको शिकारसे लौटते हुए मुराद औरगजेबके पडावमे जा पहुचा ।

औरगजेबने सादर उसका स्वागत किया । उसे खूब खिलाया और शराब पिलाकर नशेमे चूर कर दिया । जब उसे नशा आगयी, तब उसके हथियार छीन लिये गए और वह कैद करके ग्वालियरके सरकारी कैदखानेमे भेज दिया गया । मुरादके पक्षवालोको उसके दुर्भाग्यकी कहानी बहुत देर बाद मालूम हो सकी । दूसरे दिन उसकी नेता-रहित सेनाने औरगजेबकी सेवा स्वीकार कर ली । मुराद ग्वालियरके किलेमे तीन साल तक जीवित रहा । अन्तमें सिहासनारूढ होनेका स्वप्न देखनेवाला यह अभागा शाहज़ादा ४ दिसम्बर १६६१को उसी किलेके कैदखानेमे दो गुलामो द्वारा कत्ल कर दिया गया तथा उसकी लाश किलेमे ही दफना दी गई ।

अध्याय ५

उत्तराधिकार-प्राप्तिके लिए युद्ध; दारा और शुजा का अन्त

१. सामूगढ़के बाद दाराका पीछा

५ जून १६५८को दारा दिल्ली पहुँचा। वहाँ राजधानीमें एक नई सेना तैयार कर उसे पूरी तरह सुसज्जित करनेकी उसने कोशिश की। परन्तु एक सप्ताहके बाद ही दिल्ली छोड़ वह लाहौरके लिए चल पड़ा। बहुत दिनो तक वह पजाबका सूबेदार रह चुका था, और इस समय उसका ईमानदार हाकिम गैरतखा उस प्रान्तका सूबेदार था। दारा ३ जुलाईको लाहौर पहुचा और वहाँ डेढ माह तक युद्धकी तैयारियाँ पूरी करनेमे लगा रहा। उसने २०,००० सैनिकोंकी फौज इकट्ठी की। सतलजके तलवान और रूपारके घाटोकी रक्षाके लिए भी उसने सेनाके सुसज्जित दस्ते भेजे।

इसी बीचमे औरगज़ेबने दाराके अधिकारियोसे इलाहाबाद छीन लेनेके लिए खान-ए-दौरानको वहाँ भेजा, तथा बहादुरखाँको पीछा करनेका हुक्म दिया। वह स्वयं भी ६ जुलाईको दिल्लीकी ओर बढा। दिल्लीमे तीन हफ्ते रहकर उसने पुराने शासनमे फेरफार कर एक नये सुदृढ प्रबन्धकी स्थापना की। अन्तमें २१ जुलाईको आलमगीर गाजीके नामसे वह स्वय राजगद्दीपर बैठा। खलीलुल्लाखां पंजाबका शासक नियुक्त किया गया और दाराका पीछा करनेवालोकी सहायता करनेके लिए उसे भेजा।

५ अगस्तकी रात्रिको रूपारके पास बहादुरखाँने एकाएक सतलज पार की। दाराके सेनानायकोको अब व्यासकी ओर पीछे हटना पड़ा। परन्तु जब औरगज़ेब दिल्लीसे सतलज पहुचा, तब १८ अगस्तको दारा लाहौरसे मुलतानकी ओर भाग गया, और वह अपने कुटुम्ब और ख़ज़ानेको भी साथ ले गया। यह यात्रा उसने जल-मार्गसे नाव द्वारा की।

औरगजेबकी सेना ३० अगस्तको लाहौरसे दाराके पीछे-पीछे चली। १७ सितम्बरको औरगजेव खुद इन पीछा करनेवालोमे जा मिला। पर दारा १३ सितम्बरको मुलतानसे भी आगे भागा। मुलतानके पाससे ३० सितम्बरको औरगजेब शुजाके आक्रमणका सामना करनेके लिए पीछे दिल्लीको लौट पडा। परन्तु इससे दाराका पीछा करनेमे किसी तरहकी ढिलाई नही आई।

सक्करमे औरगजेबकी सेनाको २३ अक्तूबरके दिन मालूम हुआ कि भक्खरके किलेमे अपनी बडी तोपें और बहुत-सा माल-असबाब छोडकर दारा स्वय सेहवानकी ओर भाग गया था। उसके सारे सैनिको और एकमात्र विश्वासपात्र सरदार दाऊदखाने भी उसका साथ छोड दिया। तेजीसे बढते-बढ़ते ३१ अक्तूबरको शाही फौज सेहवानमे दाराके पास आ पहुची। दाराको घेरनेके इरादेसे उन्होने सिन्धुके दोनो किनारोपर अधिकार कर लिया। परन्तु दाराकी नावे अधिक अच्छी थी, एव खुली नदीके बीचोबीच तेजीसे अपनी नावे निकालकर २ नवम्बरको वह सेहवानसे चल पडा और थत्ता जा पहुचा (१३ नवम्बर)। शाही फौज फिर तेजीसे आगे बढी और उसके पीछे-पीछे थत्ता पहुची (१८ नवम्बर), परन्तु वहाँ उन्हे पता लगा कि गुजरातकी ओर जानेके लिए दारा तव कच्छकी खाड़ी पार कर रहा था। पीछा करने वालोको अब औरगजेबने वापिस दरबारमे बुला लिया। नावोके अभावसे पीछा करनेवालोको इस बार सफलता न मिली।

२ राजपूतानामें दारा; दोराईका युद्ध

थत्तासे ५५ मील पूर्वमे स्थित बादिन छोड़कर दाराने कच्छके रणको (नवम्बरके अन्तमे) पार किया, तथा भुज और काठियावाड़में नवानगरकी राह ३,००० सैनिकोके साथ वह अहमदाबाद पहुंचा। इस प्रान्तका नया सूबेदार शाहनवाजख़ां दाराके साथ हो गया (९ जनवरी १६५९)। सूरतके तोपखानोको भी वह ले आया और बडी तेजीसे वह आगराकी ओर चल पड़ा। रास्तेमे उसे अजमेर आनेके लिए जसवन्तसिहका सन्देश मिला। वहॉ अपने राठौडो और दूसरे राजपूतोके साथ दारासे मिल जानेका उसने वादा किया था। परन्तु दारा वहॉ पहुचे उससे पहिले ही खजवामे (५ जनवरी) मिर्ज़ा राजा जयसिहकी सहायतासे औरगजेबने जसवन्तसिहको अपनी ओर मिला लिया था। औरंगजेब अब उसके बिलकुल नजदीक आ पहुचा था, इसलिए उसके साथ लड़नेके सिवाय दाराके लिए दूसरा कोई चारा न रहा। अजमेरसे चार मील दक्षिणमे दोराईकी घाटीमे औरगजेबको रोकनेका उसने निश्चय किया। उसके दोनो बाजू विटली और गोकला पहाड़ियोसे सुरक्षित थे; और अजमेरका समृद्धिशाली शहर ठीक उसके पीछे था। अपनी सेनाके दक्षिणमे दोनो पहाड़ियोके बीचकी समतल भूमिमे उसने एक दीवाल वनवाई, और उसके सामने खाइयॉ और अनेक स्थानो पर छोटी-छोटी बुर्जे भी वनवाई।

दक्षिण दिशासे औरंगजेवने इस मोर्चेवन्दीका सामना किया और १ मार्च १६५९की सध्यासे ही उसने शत्रुपर गोला-बारी शुरू कर दी। परन्तु शत्रुकी खाइयाँ वड़ी ही दुर्गम थी और दाराके तोपखाने तथा वन्दूकचियोने अपने ऊचे और सुरक्षित स्थानसे औरंगजेवके अरक्षित पैदलों और वन्दूकचियोपर मौत उगलना आरम्भ किया। १४ मार्चको औरंगजेबने अपने सेनापतिको एकत्रित कर आक्रमणकी एक नई योजना तैयार की। उसने निश्चय किया कि उसकी सेनाका

एक बडा दल शत्रु सेनाके बाए पहलूपर शाहनवाजखाकी सेनापर जोरोसे आक्रमण करे । उधर जम्मूके पहाडी राजा राजरूपके पहाडी सैनिकोने गोकला पहाड़ीपर चढनेका एक अज्ञात मार्ग ढूंढ निकाला था, एव राजरूपको हुक्म हुआ कि वह अपने सैनिकोके साथ चुपचाप उस पहाडीकी चोटीपर चढकर वहाँ अधिकार जमा ले ।

१४ मार्चकी सध्या-समय शाही फौजने शाहनवाजखाके मोर्चोपर धावा कर दिया । औरगजेबका तोपखाना पुन फुर्तीके साथ गोला-बारी करने लगा, जिससे दाराकी सेनाके दूसरे भाग वहाँसामने होकर बाई ओरके अपने साथियोको शत्रुके आक्रमणका विरोध करनेमे सहायता न दे सके । दाराकी सेनाने डटकर सामना किया और अपने मोर्चोकी रक्षा करती रही, फिर भी अन्तमे शाही फौजने सारी शत्रु-सेनाको रणभूमिसे खदेड दिया और खाइयोके किनारे तकके सारे मैदानपर अधिकार कर लिया ।

इस समय तक पहाडीके पीछेसे धीरे-धीरे चढकर राजरूपके सैनिक गोकलाकी चोटीपर जा पहुचे, और वहाँ अपना झडा गाड़कर उन्होने जोरोसे जयनाद किया । यह देखकर कि शत्रु उनके पीछे भी जा पहुचे, दाराकी सेनाका बायाँ पहलू पूरी तरह निराश होकर भाग खड़ा हुआ, किन्तु उनमेसे कई फिर भी बराबर डटे रहे और वीरता पूर्वक लडते रहे । अन्तमे जब उन खाइयोपर जोरोसे हमला हुआ, तब दाराकी सेना नही टिक सकी, सैनिक तथा सेनापति, सब रणभूमि-से भाग खडे हुए और रात्रि के बढते हुए अन्धकारसे उन्हे भागनेमे पूरी-पूरी सहायता मिली ।

गोकला पहाडीके शत्रुओके हाथमे पड जानेसे दाराकी हालत बहुत ही खतरनाक हो गई, और अब अधिक टिक सकना दाराके लिए सभव नही रहा । एव केवल बारह साथियोको लेकर अपने पुत्र सिपर शिकोहके साथ वह सिरपर पैर रखकर गुजरातकी ओर भागा । जसवन्तसिहकी आज्ञानुसार हजारो राजपूत युद्ध-क्षेत्रके पास एकत्रित हो गए थे, अब दाराकी सेनाकी सारी सामग्री और

सामान ढोनेवाले उसके बहुत-से जानवर उन्होने लूट लिये ।

३ दाराका भागना एवं अन्तमें पकड़ा जाना

दोराईके युद्धके समय दाराने अपना सारा खजाना और हरम अजमेरके अनासागरके किनारे ही छोड दिया था । आवश्यकता पड़नेपर वहाँसे उन्हे ले जानेकी पूरी-पूरी तैयारी थी । एव १४ मार्चकी रातको दाराके साथी उन्हे लेकर अजमेरसे चल दिए और १५ मार्चकी शाम तक मेडतामे दारासे जा मिले । परन्तु दाराका पीछा करनेके लिए औरगजेबने जयसिह और बहादुरखाके सेनापतित्वमे एक शक्तिशाली सेना पहिले ही भेज दी थी । इसलिए दाराको कही भी विश्राम करनेका कोई अवसर नही मिला । पहलेकी-सी ही शीघ्रतासे उसे वहाँसे भागना पड़ा । मेड़ता छोड़ते समय उसके साथ केवल २,००० सैनिक थे । गुजरातकी ओर भागते समय उन्हे बहुत अधिक कष्ट भोगना पडे । साथ ही साथ उनके कुछ घोडे और ऊँट गर्मी और बहुत अधिक थकावटके मारे मर गए ।

दारासे पहले ही हर जगह औरगजेबके पत्र पहुंच चुके थे । अहमदाबादसे लौटकर उसके दूतने दाराको सूचना दी कि यदि वह उस शहरमे घुसनेका प्रयत्न करेगा तो उसका विरोध किया जावेगा । यह सुनकर दाराकी रही-सही आशाएँ भी विलीन हो गई । इस निराशापूर्ण हालतको देखकर दारा और उसके साथी हक्के-बक्के रह गए । अब क्या करे, कहाँ जावे, यही सोचते-सोचते घबड़ा उठे । इस प्रकार अन्तमे सिर्फ़ एक घोडा, एक बैल-गाडी, पाँच ऊटोपर औरतो-को लिए तथा अन्य कुछ ऊटों पर सामान लादे, इने-गिने थोड़े-से नौकरोको साथ लेकर एशियाके सबसे सुसमृद्ध शक्तिशाली साम्राज्यका मनोनीत युवराज दीन-हीन वेशमे पुन. उस उजाड़ रणको पारकर मईके प्रारम्भमे सिन्धकी दक्षिणी सीमापर जा पहुंचा ।

यहाँ भी सिन्धुके निचले हिस्सेमे आगे जाना उसके लिए संभव नही था । औरगज़ेबने ख़लीलुल्लाख़ाको लाहौरसे दक्षिणमे भक्खर

भेज दिया था। सिन्ध सूबेके स्थानीय अधिकारी और जयसिहकी सेनाके आगे बढे हुए दस्ते दाराको उत्तर, पूर्व और दक्षिण-पूर्वसे घेरे हुए आगे बढ रहे थे। दाराके लिए भाग निकलनेका सिर्फ एक ही रास्ता खुला था, एव वह उत्तर-पश्चिम को मुडा। उसने सिन्धु नदी पार की और कन्धारकी राह ईरान भाग जानेके इरादेसे वह सेहवान जा पहुँचा।

जयसिह अजमेरसे दाराके पीछे-पीछे बढता आ रहा था। बडी कठिनाइयाँ सहते हुए उसने छोटे-बडे रण तथा कच्छ द्वीपको पार किया। इसपर भी बडी दृढताके साथ वह चलता ही गया, और ११ जूनको सिविस्तानकी सीमापर सिन्धु तक जब वह पहुचा, तब उसे ज्ञात हुआ कि दारा भारतकी मुगल सीमा पार कर चुका था। अब सिन्धुके किनारे-किनारे चलता उत्तरकी राह हिन्दुस्तानकी ओर चल पडा।

दाराका कुटुम्ब ईरान जानेके बिलकुल ही विरुद्ध था। उसकी प्यारी बेगम नादिरा बानू इस समय बहुत बीमार थी। इसलिए दाराने अपना विचार बदल दिया और दादरके जमीदार, मलिक जीवाँसे मित्रताके नाते सहायता पानेकी आशासे वह उधर चल पड़ा। बोलन घाटीकी भारतीय सीमाके छोरसे नौ मील पूर्वमे स्थित दादरकी यह जमीदारी थी। कई वर्ष पहले मृत्युकी सजा-प्राप्त इस अफगानी सरदारके जीवन और स्वतन्त्रताके लिए दाराने बादशाहसे सफलतापूर्वक प्रार्थना की थी। अब उसी कृतज्ञ जीवाँसे सहायता पानेकी आशा कर दारा दादर पहुचा। सम्भवत ६ जूनके लगभग सरदार उसे अपने घर ले गया और आदरपूर्वक वहाँ उसका पूरा प्रबन्ध किया।

दादर जाते समय मार्गकी तकलीफोके कारण नादिरा बानूकी बीचमे ही मृत्यु हो गई थी। इस दु खसे दारा पागल हो उठा। उसकी लाशको अपने आध्यात्मिक गुरु मियाँ मीरके ही कब्रिस्तानमे गड़वानेके उद्देश्यसे दाराने नादिरा बानूकी लाशको

ल हौर भिजवा दिया। उसकी रक्षाके लिए उसने बाकी बचे हुए हुए अपने ७० सैनिकोको भी अपने परम भक्त अधिकारी गुलमुहम्मदके साथ जाने या उसके साथ ईरान जानेकी दोनो बातोमेसे एक चुन लेनेकी पूरी स्वतत्रता दी। इस प्रकार उसके सच्चे अनुचरोमेसे अब एक भी दाराके पास न रहा।

कृतज्ञ अफ़गानी सरदारने दाराकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा की थी, परन्तु अब लोभने उसे आ घेरा। उसने विश्वासघात करके ९ जूनको दारा, उसके छोटे लड़के और उसकी दोनो पुत्रियोको क़ैद कर उन्हे बहादुरख़ाके सुपुर्द कर दिया।

४ दाराका अपमान और उसकी मृत्यु

जब ये कैदी दिल्ली पहुचे, तब उन्हें अपमानपूर्वक राजधानीकी सड़कोपर घुमाया गया (२९ अगस्त)। एक मैली-कुचैली छोटी-सी हथिनीपर खुले हौदेमे दाराको बैठाया गया। उसके बगलमे उसका दूसरा पुत्र सिपर शिकोह था। शिसकी उम्र इस समय केवल १४ वर्षकी ही थी। इनके पीछे हाथमे नगी तलवार लिये उनके क़ैदखानेका वह भयंकर अफसर गुलाम नफरबेग वैठा था। ससारके सबसे समृद्ध साम्राज्यका उत्तराधिकारी आज लम्बी यात्रामे फट गए मैले-कुचैले मोटे कपड़े पहने, जिन्हे गरीबसे गरीब भी नही पहने, वैसी काली-कलूटी पगड़ी सिरपर लपेटे था। उसके गलेमे न तो हीरोके कण्ठे ही थे और न उसके शरीरपर कोई जवाहरात ही सुशोभित थे। उसके पैरोमे वेड़ियाँ थी, उसके हाथ अवश्य खुले थे। अगस्तकी चमचमाती धूपमे अपने विगत ऐश्वर्य और गौरवके स्थानोंमे इसी वेशमे उसे घुमाया गया। इस अपमानकी मरणान्त पीड़ाके कारण उसने सिर भी नही उठाया और न किसी ओर उसने नजर ही डाली। तोड़कर कुचली हुई शाखाके समान वह वैठा था।

जनताकी हर एक भावना करुणामे परिणत हो गई। उसे देखनेको एक वडी भीड़ एकत्रित हुई थी। वरनियर लिखता है

कि हर जगह दाराके दुर्भाग्यपर लोग रोते और कलपते दिखाई पडते थे।

उसी शामको औरंगजेबने दाराके भाग्य-निर्णयके लिए अपने मन्त्रियोसे गुप्त परामर्श किया। बर्नियरके आश्रयदाता दानिशमन्द-खाने उसकी प्राण-रक्षाकी सिफारिश की। पर शायेस्ताखाँ, मुहम्मद अमीनखा, बहादुरखा और हरममे रोशनआराने धर्म और राज्यकी भलाईके लिए उसकी मौतकी माँग पेश की। बादशाहसे तनख्वाह पानेवाले दब्बू धर्म-गुरुओने उसे इस्लामके विरुद्ध आचरण करनेके दोषमे मौतकी सजा पाने योग्य बताकर मृत्यु-दण्डके फरमानपर दस्तखत कर दिए।

३० तारीखको दरबारमे जात समय मार्गमे विश्वासघातक मलिक जीवाँके (जो अब एक हजारी का मनसबदार बनकर बख्तियार-खा कहलाता था) विरुद्ध जनताने बलवा कर दिया, जिससे दाराकी मौत और निकट आ गई। उसी रात्रिको नजरबेग और अन्य गुलामोंने खवासपुरामे दाराके कैदखानेमे जाकर सिपर शिकोहको दाराके पाससे छीन कर दाराको मार डाला और दाराके टुकडे-टुकड़े कर डाले। औरंगजेबके हुक्मसे उसकी लाश हाथीपर रखकर शहरके सारे मार्गोपर घुमाई गई और अन्तमे हुमायूँके मकबरेके नीचे एक गढेमे उसे गडवा दी।

५. सुलेमान शिकोहका अन्त

सुलेमान शिकोहने अपने हारे हुए चाचा शुजाको मुगेर तक खदेड़ा। इसी समय १६५८की मईके आरम्भमे उसके पिता दाराने उसे आगरा वापस बुला भेजा, जिससे उसने जल्दी-जल्दी शुजाके साथ सन्धिकी और आगरा लौट पडा। २ जूनको जब वह इलाहाबादसे १०५ मील पश्चिममे पहुँचा तब उसे सामूगढमे अपने पिता के सर्व-नाशका समाचार मिला। उसके श्रेष्ठ सेनापति जयसिह, दिलेरखाँ तथा अन्य शाही हाकिमोने तत्काल ही उसका साथ छोड़ दिया। वे औरंगज़ेबसे मिल गए। ४ जूनको सुलेमान इलाहाबादको लौट

गया । वहाँसे उसने गगाके उत्तरी किनारे होते हुए पहाड़ोके पास नदियाँ पार करके विना रुकावटकी आशंकाके अपने पितासे पजाबमे जा मिलनेका निश्चय किया ।

सुलेमान तेजीसे चला, परन्तु हर दिशामे शक्तिशाली शत्रु-सेना उसका मार्ग रोके हुए थी, एव अन्तमे शरणके लिए सुरक्षित स्थानकी खोजमे वह श्रीनगरके पहाडोकी ओर भागा । गढ़वालमे श्रीनगरके राजा पृथ्वीसिंहने इसी शर्तपर उसे आश्रय देना स्वीकार किया कि वह अपनी सारी सेना छोड़ दे और अपने कुटुम्वियो और केवल १७ नौकरोको ही साथ लावे । इस जंगली परन्तु सुरक्षित आश्रयमे सुलेमान एक साल तक शान्तिपूर्वक रहा ।

किन्तु अपने सब भाइयो पर विजय पाकर अंतमे औरंगजेवने सुलेमानकी ओर ध्यान दिया । गढवालका राजा वृद्ध था । अपने शरणागत आश्रितको धोखा देकर ऐसा लज्जाजनक पाप-पूर्ण कार्य करनेको वह राजी न हुआ । परन्तु उसका पुत्र युवराज मेदिनीसिह अधिक व्यवहार-कुशल संसारी व्यक्ति था । अपने आश्रयदाताके इस निश्चयको सुनकर सुलेमानने वर्फ़ीले पहाड पार कर लद्दाख पहुचनेका प्रयत्न किया । किन्तु उसका पीछा किया गया, तव वह घायल हुआ और पकड़ लिया गया । औरगजेवके अधिकारियोको उसे सौंप दिया गया, जो उसे २ जनवरी १६६१को दिल्ली ले आए ।

५ जनवरीको सुलेमान कैदीके रूपमे दिल्लीके महलोके दीवान-खासमे अपने भयकर चाचाके सामने लाया गया । औरगजेवने वातचीतमे उसके प्रति ऊपरी दयालुता दिखाई और उसने जोरसे वोलते हुए दृढतापूर्वक वचन दिया कि उसे किसी भी हलतमे पोस्ता* नही पिलाया जावेगा ।

---

* पोस्ता एक पेय है, जो अफीमके फूलोंको तोड़कर उन्हें पानीमें एक रात भिगोकर बनाया जाता है। उसे पीनेवाले अभागे दिन-प्रतिदिन दुर्बल होते जाते हैं और क्रमशः अपनी सारी शारीरिक व मानसिक शक्ति खोकर, अन्तमें संज्ञाहीन होकर मर जाते हैं ।

कैदी सुलेमान ग्वालियर भेज दिया गया। औरंगजेबने अपनी दृढ प्रतिज्ञा तोड दी और अभागे सुलेमान शिकोहको अत्यधिक अफीम पिला-पिलाकर मई १६६२मे मार डाला।

६. उत्तराधिकार-प्राप्तिके युद्धमें शुजाके विरुद्ध पहली चढ़ाई; बहादुरपुरका युद्ध

बगालका सूबेदार, शाहजहाका दूसरा पुत्र शाहजादा मुहम्मद शुजा बहुत ही बुद्धिमान व्यक्ति था। उसका स्वभाव सुशील और वर्ताव नम्रतापूर्ण तथा सहृदय था। पर उसने अपने प्रान्तके शासनकी आवश्यक देख-रेख नही की, जिससे वह बहुत ही बिगड गया था, उसकी सेना क्रमश अयोग्य होती जा रही थी। उसके मातहतके सभी महकमोका कार्य सुस्त और ढीला-ढाला हो गया था। उसकी मानसिक शक्तियॉ भी यदा-कदा ही चेतन होकर अपनी चमक दिखाती थी। अब भी वह मिहनतके साथ काम कर सकता था, परन्तु अपनी धुनके अनुसार कभी-कभी और तब भी कुछ कालके लिए ही वह अपने आलस्यको छोड पाता था।

शाहजहॉकी बीमारीकी अतिशयोक्तिपूर्ण खबरे शुजाके पास बगालकी तत्कालीन राजधानी राजमहलमे पहुॅची। उसने उसी समय अपने आपको सम्राट घोषितकर अपना अभिषेक किया, तथा इस अवसरपर उसने अबुल फौज नासिरुद्दीन मुहम्मद तीसरा तैमूर दूसरा सिकन्दर शाह शुजा गाजीका नया खिताब धारण किया।

राजमहलसे रवाना होकर वह २९ जनवरी १६५८को बनारस पहुॅचा दाराने अपने पुत्र सुलेमान शिकोहको शुजाका सामना करनेके लिए भेजा था। मिर्ज़ा राजा जयसिह और दिलेरखा रुहेला जैसे अनुभवी और योग्य सेनानायक सुलेमान शिकोहके साथ उसकी सहायताके लिए भेजे गए थे।

१४ फरवरीके दिन प्रात कालमे सुलेमानने बहादुरपुरमे शुजाके पड़ावपर एकाएक हमला किया। यह स्थान बनारससे ५ मील उत्तर-

पूर्वमे है । यह हमला इतना अचानक हुआ कि बंगालके सुस्त सोते हुए सैनिक अपने नायकों सहित सब-कुछ पीछे छोड़कर भाग गए । शुजा भी बड़ी कठिनाईसे हाथीपर बैठकर शत्रुओंके घेरेसे निकल सका । उसने भागकर अपनी नावोमे शरण ली । इन नावोपरसे होनेवाली गोला-वारीके कारण ही शत्रु-सेनाको नदी तटसे दूर ठहरना पडा ।

उसकी भय-त्रस्त सेना थल मार्गसे पटनाकी ओर भागी । शुजाने मुगेरमे खाइयो और अपने तोपखानेसे सारा रास्ता रोक लिया । इस कारण सुलेमानको मुगेरसे १५ मील दक्षिण-पश्चिममें सूरजगढ नामक स्थानपर एकाएक जाना पड़ा । वह आगे बढ ही नही पा रहा था । परन्तु इसी समय धरमतकी पराजयके समाचार उसे मिले, जिससे विवश होकर उसे ही शीघ्रतापूर्वक सन्धि करनी पडी । ७ मईको उसने शुजाको बगाल, पूर्वी विहार और उड़ीसाका प्रदेश दे दिया और वह वापस आगराके लिए रवाना हुआ ।

२१ जुलाईको दिल्लीमे राजदण्ड धारण करनेपर औरंगजेवने शुजाको एक मैत्रीपूर्ण पत्र लिखा, जिसमे विहारका पूरा प्रान्त शुजाके अधिकारमे दे दिया था, तथा उसे और उपहार देनेका वचन भी औरग-जेवने दिया ।

दाराका पीछा करते हुए सुदूर पजाब पहुँचे औरगजेबकी गैर-हाजरीके समाचारोने शुजाकी महत्त्वाकांक्षाको पुनः जाग्रत कर दिया । इस कारण शुजा ३० दिसम्वरको इलाहावादसे भी आगे तीन दिनकी यात्राकी दूरीपर स्थित खजवा नगर तक जा पहुँचा । यहाँ उसने सुलतान मुहम्मदको अपना मार्ग रोके हुए पाया । इसी समय (२० नवम्बर) औरंगजेव तेजीसे चलकर दिल्लीकी ओर वापस आया था और २ जनवरी १६५९को औरंगजेव शुजाके पड़ावसे ८ मील पश्चिममे कोड़ा नामक स्थानपर अपने पुत्रके साथ आ मिला । इसी दिन मीरजुमला भी दक्षिणसे वहीपर आ पहुचा ।

७. खजवामें जसवन्तका विश्वासघात तथा औरंगजेबकी दृढ़ता

४ जनवरीको औरगजेब अपनी सुसज्जित सेनाको ठीक क्रमसे जमाकर उसके साथ बढता हुआ शत्रु-पडावसे एक ही मीलकी ,दूरी-पर सामने आ डटा । उसी रातको मीरजुमलाने दोनो सेनाओके बीच पड़नेवाली एक छोटी पहाडीपर ४० तोपे चढाई जहाँसे शत्रुओके सारे पडावपर बडी ही आसानीसे गोला-वारी हो सकती थी ।

५ जनवरीके दिन सूर्योदयसे कुछ ही घटे पहले औरगजेवकी सेनामे कुछ हो हल्ला मच गया। अन्धेरेकेकारण यह गड़वड़ी वहुत बढ गई । शाही सेनाकी दाहिनी टुकडीके नायक महाराज जसवन्त-सिहने औरगजेबसे बदला लेनेके लिए एक गहरा षड्यन्त्र रचा था । कहा जाता है कि उसने शुजाको लिखा था कि रात्रिके समाप्त होते-होते स्वय शाही फौजपर रणभूमिके पीछेसे हमला कर देगा और शुजा भी उसी समय गडबडीमे पडी हुई शाही फौजपर तेजीसे टूट पडे, जिससे दोनो ओरसे घिरकर शाही सेना बीचमे ही नष्ट हो जावेगी। इसलिए आधी रातके कुछ समय बाद ही औरंगजेवको छोड अपने राजपूत सैनिकोके साथ वापस जानेके लिए जसवत अपने डेरेसे रवाना हुआ और अपनी राहमे पड़ने वाले शाहजादे मुहम्मद सुलतानके पड़ावपर हमला कर दिया । इन राजपूतोके जो कुछ भी हाथ पडा उसे वे लूट ले गए। औरगजेबके कई पडाववालोको उन्होने यो लूटा। तब राजपूतोने आगराकी राह ली। परन्तु अधेरेमे इस आक्रमणके कारण औरगजेबके सामनेवाली फौजमे भी गडवडी मच गई ।

परन्तु रात्रिके समय डेरा छोडकर आक्रमण करनेका साहस शुजा को न हुआ । इस समय औरगजेवने वडे ही शान्त दिमागसे सारी परिस्थितिको सम्हाल लिया । जसवन्तके फौज सहित भागने और आक्रमण करनेकी खबर औरगजेबको मिली, तब वह आधी रातकी नमाज पढ़कर ईश्वरोपासनामे लगा हुआ था । उसने अपनी प्रार्थना समाप्त की और अपने डेरेसे निकल तख्त-ए-रवाँ (पालकीनुमा

कुर्सी) पर चढकर उसने अपने हाकिमोंको आवश्यक हुक्म दिए ।

इस प्रकार औरगजेब दृढतापूर्वक डटा रहा और उसने अपनी फौजमे किसी भी प्रकारकी गड़बड़ी न मचने दी । भिन्न-भिन्न दस्तोके नायकोको उसने हुक्म दिया कि वे अपने-अपने स्थानपर साहसके साथ डटे रहे । घबराकर भागनेवाले लोगोको भी वापस इकट्ठा करनेकी ताकीद की । ५ जनवरीका प्रात काल होते-होते बहुत-से स्वामिभक्त सेनानायक और हाकिम फिरसे लौटकर औरंगजेबके झडेके नीचे चले आए । शुजाके २३,००० सैनिकोका सामना करनेके लिए अब भी उसके पास ५०,००० से अधिक सैनिक थे । एव औरगजेबने शुजाके साथ युद्ध करनेमे देरी करना ठीक नही समझा ।

खजवा का युद्ध

शुजाको मालूम था कि शत्रुकी तिगुनी फौजके सामने वह परम्परागत युद्ध-प्रणालीके अनुसार नही लड सकेगा । इसलिए उसने सारी फौज तोपखानेके पीछे एक कतारमे खड़ी की । शुजाने शत्रुपर आक्रमण कर अपनी सेनाकी सख्यामे कमी को यो पूरी करनेका निश्चय किया ।

तोपों, गोलो और बन्दूकोंकी भयकर गर्जनाके साथ ५ जनवरी १६५६ ई० के दिन प्रात.काल ८ बजे युद्ध आरम्भ हुआ । दोनों पक्षकी सेनाए एक दूसरेसे भिड़ गई और तीरोकी बौछार होने लगी । सैयद आलमने तीन मतवाले हाथियोको अपने सामने खदेड़ते हुए बादशाहके बाएं पहलूपर हमला किया, इस आक्रमणका सामना न कर सकनेके कारण इस पहलूकी शाही सेना भाग खड़ी हुई । उसी समय औरगजेबके मरनेकी गलत खबर भी शाही सैनिकोमे फैल गई, जिससे बहुतसे शाही सैनिक भाग खड़े हुए । इसके बाद शत्रुओकी सेनाने शाही सेनाके बिचले भागपर हमला किया, तब वहॉ औरगजेबकी रक्षाके लिए सिर्फ २,००० सैनिक ही रह गए थे । पर शाही सेनाके पिछले दो दस्तोने अब आगे बढकर शत्रुओंकी राह रोक ली ।

बादशाह स्वयं बाई ओर मुड़ा और उसने सैयद आलमको आगे बढ़नेसे रोका और जिस राहसे वह आया था उसी रास्ते उसे खदेड़ दिया ।

किन्तु तब भी वे तीन मदमस्त हाथी आगे बढ़ते ही जा रहे थे । उनमेसे एक तो औरगज़ेबके हाथीके पास आ पहुँचा । युद्धकी यह एक विकट घड़ी थी । पर अपने हाथीके पैरोको जजीरोंसे जकडकर बादशाहने उसे वहाँसे हटने न दिया । इस कारण औरंगजेबका हाथी भाग न सका और चट्टानकी तरह अटल बना ही खडा रहा । शत्रुके हाथीका महावत गोलीसे मार दिया गया और शाही महावत इस मस्त हाथीपर पीछेसे चढ बैठा, और उसे अपने वशमे कर लिया । तब बादशाह दाहिनी ओरकी सेनाकी मददके लिये मुडा, जिसे शाहजादे बुलन्द अख्तरके सेनापतित्वमे शत्रुओकी सेनाने बुरी तरह परेशन कर रखा था । शत्रुओके इस दलकी सख्या अधिक न थी, तथापि उसने ऐसे साहसके साथ आक्रमण किया कि शाही सेनाके पैर उखड गए थे, उसमे गडबडी मच गई और वह भागने लगी थी । इतनी बडी कठिनाइयो और विपत्तिकी घड़ीमे भी औरगजेब शान्तचित्त बना रहा और उसकी स्थिर बुद्धिने उसका साथ न छोडा । उसके किसी भी सैनिक चालका कोई भ्रमपूर्ण अर्थ न लगा ले, इसलिए अपने नौकरो-के द्वारा अपना वास्तविक उद्देश्य उसने अपने सेनानायकोंको पहले सूचित कर दिया और उनसे निडरतापूर्वक लड़नेके लिए कहा गया ।

तब औरगज़ेब सेनाके मध्यकी ओर बढ़ता हुआ अपनी पिछड़ती हुई दाहिनी टुकडीमे जा शामिल हुआ । उस दिनके युद्धकी यही निश्चयात्मक घडी थी । शाही फौजके दाहिने पक्षने अब लौटकर शत्रुपर आक्रमण किया और बड़ी ही बहादुरीसे लडते हुए भयकर मार-काटके साथ अपने शत्रुओको साफ कर दिया ।

उसी समय जुल्फिकारखाँ और सुलतान मुहम्मदके नायकत्वमे शाही सेनाने आगे बढकर हमला किया, जिससे शत्रु-सेनाकी पहली कतार तितर-बितर होने लगी । तब सारी शाही सेना आगे बढी

और उसने शुजाकी सेनाके मध्य भागको चारों ओरसे घेर लिया। तोपोंके गोले शुजाके सिरपरसे होकर जा रहे थे, एव वह हाथी जैसी खतरनाक और प्रमुख सवारीको छोड़कर घोड़ेपर जा बैठा।

शुजाके ऐसा करते ही युद्धका अन्त हो गया। उसके सैनिकोंने अपने स्वामीको मरा हुआ समझा। एक ही क्षणमे बची-खुची बगाली सेना तितर-बितर होकर भाग खडी हुई। शुजाको भी अपने पुत्रो और सेनानायक सैयद आलम सहित रण-क्षेत्रसे भागना पडा। शाही सेनाने उसके सारे पडाव और सामानको लूट लिया।

६. शुजाका पीछा करना और बिहारमे युद्ध

खजवाके युद्धमे विजयी होनेके दूसरेदिन औरगजेबने शामको शुजाका पीछा करनेके लिए एक सेना भेजी। शुजा मुँगेरको भागा और वहाँ उसने १५ दिन तक शत्रुका सामना किया (६ फरवरीसे ६ मार्च) । इस प्रकार शुजा बगालके मार्गको रोके रहा।

मार्चके आरम्भमे मीरजुमला मुँगेर पहुँचा। उसने खडगपुरके राजा बहरोजकी शाही फौजको मुँगेरके किलेसे दक्षिण-पूर्वमे जो घाटियाँ और जगल हैं, उनमेसे ले जाकर उसे शुजाकी फौजके पीछे पहुँचा दिया, तब तो शुजा मुँगेरसे ६ मार्चको भागकर साहिवगज पहुँचा। वहाँ एक दीवाल बनाकर वह उस सकडी घाटीका मार्ग रोके रहा (१० मार्च से २४ मार्च)। पर शाही सेनानायकोने वीरभूमि और चटनगरके जमीदारको अपनी ओर मिला लिया तथा उसकी सहायता और निर्देश पाकर शाही सेना २६ मार्चको सूरी जा पहुँची।

परन्तु इसी समय शाही सेनामे यह झूठी अफवाह फैली कि दारा अजमेरके पास विजयी होकर अब राजपूत राज्योसे अपना बदला ले रहा था, जिसके कारण मीरजुमलाके मातहत राजपूत सैनिकोके दल अपने दूरस्थ घरोको वापिस लौटनेके लिए रवाना हो गए। उस समय तक पीछे हटता-हटता शुजा मालदा जिले तक

जा पहुँचा था (६ अप्रेल) । शाही फौजने १३ अप्रेलको राजमहल-पर अधिकार कर लिया । इस प्रकार गगासे पश्चिमका सारा प्रदेश शुजाके हाथसे निकल गया ।

अब दोनो पक्षोमे चलनेवाला यह युद्ध मगर और शेरके युद्धके समान विचित्र द्वन्द्व हो गया । शुजाके साथ अब केवल ५,००० सैनिक ही रह गए थे । थलपर शुजाकी शक्ति अब अत्यधिक कमजोर हो गई थी । उधर मीरजुमलाकी थल-सेना बहुत ही शक्तिशाली थी । उसके साथ ही शुजाके पास बडी-बडी तोपे थी जिन्हे विदेशी बन्दूकची चलाते थे । बगालका पूरा नव्वारा (जल-सेना) भी उसके ही अधिकारमे था, जिससे शुजाको एकसे दूसरी जगह जानेकी बडी सुविधा थी । यो उसकी थल-सेनाकी शक्ति कई गुनी बढ जाती थी । इसके विपरीत नावोके अभावमे मीरजुमलाकी थल-सेनाकी सारी शक्ति और उसके सारे प्रयास व्यर्थ हो जाते थे ।

शुजाने गौर किलेसे ४ मील पश्चिममे टॉडा नामक स्थानको अपना प्रधान सैनिक-केन्द्र बनाया और गगाके पूर्वी तटके अनेक स्थानोपर खाइयॉ खोदी । परन्तु मीरजुमलाने दूर-दूरसे नावे उपलब्ध की, तथा औरगजेबने भी पटनाके शासकके नायकत्व मे एक और सेना उसकी मददके लिए भेजी । गगाके बाऍ किनारेपर आगे बढते हुए शुजाके दाहिनी ओरवाली फौजके पीछे तक पहुचकर शुजाकी सेनाका ध्यान दूसरी तरफ भी बॅटाना इस सेनाका प्रधान उद्देश्य था ।

शाही फौज पूरे पश्चिमी तटपर फैली हुई थी । सुदूर उत्तरमे मुहम्मद मुराद बेग राजमहलमे था । शाहजादा स्वय अधिकाश सेनाको लिए जुल्फिकारखॉ और इस्लामखॉके साथ दक्षिणमे १३ मीलकी दूरीपर दोगाची स्थानपर शुजाके सामने डटा हुआ था । लगभग ८ मील दक्षिणमे दूनापुरमे अली कुलीखॉ नियुक्त था । मीरजुमला ६ या ७ हजार सेना सहित मुगल सीमाके दक्षिणतम

किनारेपर, राजमहलसे २८ मील दक्षिणमे सूती नामक स्थानमें अधिकार जमाए बैठा हुआ था। दोगचीके पड़ावसे मीरजुमलाके आदेशानुसार शाही सेनाने शुजापर दो बार सफलतापूर्वक आक्रमण किए। परन्तु उसका तीसरा प्रयास असफल रहा, तथा उसमे शाही सेनाको बड़ी हानि उठानी बडी, क्योकि इस बार शुजा सजग हो चुका था और तब तक उसने अपनी रक्षाकी पूरी तैयारी कर ली थी। इस प्रकार ३ मई १६५९को इस आक्रमणमे व्यर्थ ही शाही सेनाके चार ऊचे पदाधिकारी और सैकडो सैनिक काम आए। इसके सिवाय लगभग ५०० शाही सैनिकोको शत्रुओने कैदी भी बना लिया।

८ जूनको अधिक रात गए शाहजादा मुहम्मद सुलतान दोगाचीमें अपने डेरेसे चुपचाप भाग कर शुजासे जा मिला। बहुत दिनोसे मीरजुमलाके सलाहके अनुसार ही काम करते-करते वह घबरा उठा। उसकी इच्छा थी कि स्वतन्त्र होकर वह राज्य करे। शुजाने उसे अपनी पुत्री गुलरुख़ बानू व्याह देने और तब राजगद्दी प्राप्त करनेमे उसकी सहायता करनेका गुप्तरूपसे वचन दिया था। इस प्रकार उस मूर्ख शाहजादेको शुजाने अपनी ओर मिला लिया। यह समाचार सुनकर मीरजुमलाने दृढतापूर्वक अपने सैनिको को सूतीमे शान्त रखा। शाहजादेके भागे जानेके दूसरे दिन सुबहमे वह दोगाचीमें शाहजादेके डेरेपर गया, और वहाँ उसने अमन और अनुशासन स्थापित किया। दूसरे नायकोने मीरजुमलाको अपना एकमात्र सेनानायक और अधिकारी मानकर उसकी आज्ञानुसार चलनेका वादा किया। इस प्रकार सारी फौज इस बडी आफतसे बच निकली। इस सेनाने केवल एक ही आदमी खोया और वह था स्वय शाहजादा।

उसके कुछ ही दिनो बाद बगालकी घनघोर वर्षाके कारण युद्ध स्थगित हो गया। मीरजुमलाने मासुमा-बाजारमे डेरा डाला और बाकी फौज जुल्फिकारखाँकी अध्यक्षतामे राजमहलमे ठहरी रही। वर्षाके कारण राजमहलके आसपासका स्थान एक दलदलपूर्ण तालाब

बन गया था। शहरकी खाद्य-सामग्रीको भी शुजाने रोक दिया। इस तरह मुगल सेनाके पास खानेके लिए नाम-मात्रको भी अन्न नही रहा। ऐसी ही दशामे अपने बेडेको लेकर शुजाने अकस्मात् हमला किया और २२ अगस्तको उसने राजमहल शहर जीत लिया, तथा मुगलोके सारे सामान-असबाबपर भी अधिकार कर लिया।

१०. बंगालमें युद्ध

मीरजुमला बेलघाटमे डेरा डाले हुए था। दिसम्बर १६५९ के आरम्भमे शुजा राजमहलसे उसके विरुद्ध बढा। शुजाने शाही फौजपर दो बार आक्रमण किए जिनसे विवश होकर मीरजुमलाको मुर्शिदाबाद लौटना पडा। उसके साथ ही साथ शुजा भी नाशीपुर तक चला गया। परन्तु इसी समय बिहारका शासक दाऊदख़ाँ एक दूसरी फौजके साथ टाडाकी ओर जा रहा था। यह ख़बर पाते ही शुजा २६ सितम्बरको नाशीपुर छोड सूती होता हुआ टाडाकी ओर बढा। मीरजुमलाने तुरन्त ही उसका पीछा कर ११ जनवरी १६६० को नाशीपुर फिरसे जीत लिया। इस प्रकार गगाके पश्चिमका पूरा प्रदेश शुजाके हाथसे निकल गया। अब मीरजुमला सामदा द्वीपके उत्तरमे राजमहल, अकबरपुर और मालदा होता हुआ एक लम्बा चक्कर काटकर एकाएक दक्षिणकी ओर पलटा और पूर्वकी ओरसे टॉडा जा पहुचनेका उसने आयोजन किया। पटनासे सहायतार्थ लाई गई १६० नावोके द्वारा उसने अपनी फौजको गगाके पार उतारा और राजमहलसे १० मील दूर दाऊदख़ाँसे जा मिला।

शत्रुओकी अपेक्षा अब शुजाकी सेना बहुतही कम रह गई थी। उसके भागनेके लिए फरवरी १६६०मे केवल दक्षिणका ही एकमात्र रास्ता रह गया था और वह भी था बहुत ही खतरनाक। इसी समय शाह-जादे मुहम्मद सुलतानने भी शुजाका साथ छोड दिया और दोगाचीके मुगल डेरे आकर फिरसे वह शाही फौजमे आ मिला (८ फरवरी)। पर मुहम्मद सुलतानका बाकी रहा सारा जीवन जेलमे ही बीता।

६ मार्चको मीरजुमला मालदा पहुँचा और वहाँ वह एक माह तक शुजाके विरोधको पुरी तरह समाप्त कर देनेके लिए आखिरी हमलेकी तैयारी करता रहा। मालदासे कुछ मील दूर महमूदाबादके अपने डेरेसे ५ अप्रेलको वह निकला। दस मील दूर जाकर महानन्दा नदीके अख्यात घाटपर डटी हुई शत्रु-सेनाकी छोटी-सी टुकड़ीपर उसने अचानक ही हमला कर दिया। गडबडीमे शत्रु घाटेकी उथली राह चूक गए, जिससे कोई १,००० से ज्यादा सैनिक नदीमे डूबकर मर गए।

परन्तु मीरजुमलाकी इस चालसे इस चढाईका अन्तिम परिणाम बहुत ही जल्द निकल गया। शुजाकी शक्तिका पूरी तरह अन्त हो गया। वह ६ अप्रेलकी सुबह टाँडाको भागा और अपनी बेगमोको उसने हुक्म दिया कि वे बिना कपड़े बदले ही उसके साथ भागनेको तैयार हो जावे। उसका खजाना और कुछ चुनी हुई सामग्री चार नावोपर लादकर नदीकी राह आगे रवाना कर दी गई। शाम होते-होते वह खुद भी रवाना हो गया। उसके दो छोटे लड़के (बुलन्द अख्तर और जैनुल्आबदीन), उसके प्रधान सेनानायक, कुछ सैनिक, सेवक और खोजे, आदि कुल मिलाकर ३०० व्यक्ति यो ६० नावो पर बैठकर उसके साथ चले।

दूसरे दिन (७ अप्रेलको) मीरजुमलाने टाडापर अधिकार करके वहाँ शान्ति स्थापित की। उसने सारी सामग्री, जो कि लुटेरोके पास थी या किसी भी तरह उनसे मिल सकी, एकत्रित कर उसे जब्त कर लिया। शुजाकी फौज भी ९ अप्रेलको उसके साथ आ मिली। दस दिनके वाद मीरजुमला टाँडासे ढाकाके लिए रवाना हुआ।

११. शुजाका बंगाल छोड़ना एवं उसका अन्त

अपने सौभाग्य, सम्पति और यशका दिवाला निकालकर शुजा १२ अप्रेलको वगालकी दूसरी राजधानी ढाका पहुँचा। पर वहाँ उसको शरण न मिली। वहाँके सारे जमींदार उसके विरुद्ध उठ

खडे हुए, जिससे ६ मईको वह ढाका छोड जल-मार्गसे समुद्रकी ओर चला। ढाका छोडनेके दो दिन बाद उसके पास ५१ जहाज पहुँचे, जिन्हे अराकानके राजाके चटगाँव-वाले सूबेदारने भेजा था। बगालका प्रान्त जीतनेकी उसकी आशाए उसने अब छोड दी, और कडा दिल करके जगली माघोके प्रदेशमे चले जानेका उसने निश्चय कर लिया।

यह समाचार सुनकर उसके कुटुम्बियो और अनुचरोमे कुहराम मच गया। परन्तु शुजा औरगजेबके हाथो पडकर दाराशिकोह और मुरादबख्शकी-सी अपनी दुर्गति कराना नही चाहता था। १२ मई १६६०को वह अपने पूर्वजोकी जन्मभूमि भारत तथा जिस बगालपर उसने २० वर्षसे अधिक शासन किया था, उन्हे हमेशाके लिए छोडकर चल दिया। अराकानकी इस जल-यात्रामे उसके कुटुम्बी और ४० से कम अन्य आदमी उसके साथ थे।

अपने नए निवास-स्थानमे भी शुजाको शान्ति न मिली। वहाँके राजाको मारकर उसका राज्य छीन लेनेके लिए उसने षड्यन्त्र रचा। वह चाहता था कि उस के बाद एक बार वह आगे बढकर पुन बगालमे अपना भाग्य परख ले। अराकानके राजा को षड्यन्त्रकी खबर लग गई और उसने शाह शुजाको कत्ल करनेका आयोजन किया। तब तो शुजा कुछ आदमियोको साथ ले जगलमे भाग गया। माघ लोगोने उसका पीछा किया और अन्तमे उसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े कर दिए (डच रिपोर्ट-फरवरी, १६६१)।

भाग ३

अध्याय ६

राज्य-कालका पूर्वार्द्ध; उसकी रूपरेखा

१. औरंगज़ेब के राज्य-कालके दोनों अर्द्धांशोंमे विभिन्नताएँ; औरंगज़ेबकी व्यक्तिगत हलचले

औरगजेबका सारा शासन-काल स्वाभाविकरूपेण ही पच्चीस-पच्चीस वर्षोंके दो समान भागोमे बँट जाता है। पहले अर्धांशमे वह उत्तरी भारतमे था, और दूसरा उसने दक्षिणमे ही बिताया। पहले कालमे उत्तर भारतको ही ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त हुआ। यह बात सिर्फ इसलिए ही नही थी कि उस समय औरगजेबका निवास उत्तरी भारतमे था, बल्कि इसलिए कि इसके समयके सारे सार्वजनिक और सैनिक कार्योका सूत्रपात उत्तरी भारतमे ही हुआ था। इस प्रथम पूर्वार्द्धमे औरगजेबने दक्षिणकी ओर अधिक ध्यान नही दिया। परन्तु शासन-कालके उत्तरार्द्धमे स्थिति बिलकुल ही बदल गई थी, क्योकि उस समय राज्यकी सारी शक्तियाँ दक्षिणमे ही जुटी हुई थी। बादशाह स्वयं अपने कुटुम्बी, दरबारियो, बड़े-बड़े हाकिमो और सारी सेनाके साथ पूरे पच्चीस वर्ष तक दक्षिणमे ही डटा रहा। इन बरसोमे उत्तरी भारतका महत्त्व घट जाना स्वाभाविक ही था। इस अनिच्छापूर्ण देश-निकालेके दिनोमे दक्षिणमे पड़े हुए सारे अधिकारी तथा सैनिक उत्तरी भारतमे अपने-अपने घरोको वापिस जानेके लिए

लालायित रहते थे। यह हालत यहाँ तक पहुँची थी कि घर जानेके लिए उत्सुक एक अफसरने दिल्लीमे केवल एक वर्षका अवकाश बितानेके लिए बादशाहको एक लाख रुपये भेंट करना स्वीकार किया। राजपूत सैनिकोकी भी शिकायत थी कि जीवन-भर अपने घर और कुटुम्बसे इतनी दूर दक्षिणमे पडे रहनेके कारण उनके वश धीरे-धीरे नष्ट हो रहे थे। सम्राट् तथा सब सुयोग्य अफसरोका सारा ध्यान उस एक ही ओर केन्द्रित होनेके कारण उत्तरी भारतका शासन स्वाभाविकतया ढीला होकर धीरे-धीरे बिगडता ही गया, साम्राज्यकी प्रजा दिन-प्रति दिन गरीब होती गई। समाजकी ऊपरी कक्षा वालोके आचार-विचार भ्रष्ट हो रहे थे, और उनका नैतिक तथा मानसिक पतन होनेके कारण, उनकी अकर्मण्यता ऐसी बढ़ती जा रही थी कि समाजके लिए उनकी उपयोगिता नाम-मात्रको ही रह गई थी। यह परिस्थिति पूरे पच्चीस वर्ष तक बनी रही, जिस अरसेमे भारतीय समाजकी एक पूरी पीढ़ी निकल गई। अतएव अन्तमे साम्राज्यके कई एक भागोमे उपद्रव उठ खड़े हुए और अराजकता फैल गई।

औरगजेबके शासन-कालके पूर्वार्द्धकी सारी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ उत्तरी भारतके किसी एक ही स्थानमे केन्द्रित न हुई, किन्तु उनका स्थान बडी तेजीसे समय-समयपर बदलता ही रहा। मुगल साम्राज्यके शाही झण्डे भारतकी आखिरी पश्चिमी सीमापर काबुलसे लेकर उसकी अन्तिम पूर्वीसीमामे नामरूपकी पहाड़ियों तक फहरा उठे। उसी प्रकार अपनी उत्तरी सीमाके पहाड़ोसे भी परे तिब्बतसे लेकर साम्राज्यकी दक्षिणी सीमाके पार बीजापुर तक शाही सेना जा पहुँची थी। बड़ी दूर-दूरके अनेको विभिन्न जगली इलाकोंमें विद्रोहकर अराजकता फैलानेवाले किसानो और राजाओके विरुद्ध सेनाएँ भेजी गई। इसी कालमे हमे बादशाहकी असहिष्णुताका सच्चा नग्न स्वरूप दिखाई पड़ता है।

शासन-कालके दूसरे वर्षमे १३ मई १६५९ ई० को औरगज़ेब

बडी धूमधामके साथ सिहासनपर बैठा और अपनी विजयके उपलक्षमे बहुत बडा जलसा किया । इसके बाद अत्यधिक समय तक वह अपनी राजधानीमे ही रहा और वहीसे राज्यका शासन-प्रबन्ध तथा उसकी देख-भाल करता रहा । उसके सिहासनारूढ़ होनेके अवसरपर विदेशी मुसलमानी राज्योकी ओरसे बधाई देनेके लिए आनेवाले एलचियोंका उसने उसी राजधानीमे पूरे ठाठ-बाटके साथ स्वागत किया । इन विदेशी मेहमानोके लिए उसने साम्राज्यके वैभवका ऐसा प्रदर्शन किया कि उसे देख वर्साईकी महान् समृद्धिको देखनेवाली आँखे भी चौधिया गई । शासन-कालके ५वे वर्षमे वह दिल्ली छोड़ ८ दिसम्बर १६६२को काश्मीर यात्राको निकला और १८ फरवरीको वहाँसे वापिस लौट आया । फरवरी १६६६ मे पिताकी मृत्युके कारण उसे आगरा जाना पड़ा । जब तक शाहजहाँ कैद रहा औरगजेबका आगरेमे अपना दरबार नही लगाना स्वाभाविक ही था; उन दिनों वह प्राय: दिल्लीमे ही रहा ।

सन् १६७४ ई० मे अफरीदियोंके भयानक विद्रोहके कारण पेशावरके पास रहकर सेनाका संचालन करनेके लिए वह हसन अब्दाल गया और २६ जून १६७४से २३ दिसम्बर १६७५ तक वह वहाँ रहा; इस यात्रासे वह २७ मार्च १६६६ को दिल्ली वापिस लौटा । सन् १६७९ ई० मे महाराजा जसवन्तसिहकी मृत्युपर वह उसके राज्यको मुगल साम्राज्यमे मिलानेके लोभसे अजमेर गया । अगले दो वर्ष उसने राजपूतानेमे ही बिताए । फिर अपने राज्य-कालके पच्चीसवे वर्ष मे वह दक्षिणकी ओर बढा । उसने अपने राज्यके अन्तिम पच्चीस वर्ष कठिन और फलहीन परिश्रममे वहाँ बिताए; उसके जीवनका अन्तभी उसी सुदूर दक्षिणमे ही हुआ ।

औरगजेबका पहला राज्यारोहण हिजरी सन् के अनुसार पहली जीकाद १०६८ हि० (२१ जुलाई १६५८) को हुआ था, किन्तु उसका दूसरा राज्याभिषेक २४ रमजान १०६९ हिज्री (५ जून १६५९) को हुआ । उसकी आज्ञा थी कि सरकारी कागज-पत्रोंके लिए

उसके राज्य-कालके वर्षका प्रारम्भ पहली रमजानसे गिना जाए ।

किन्तु धार्मिक उपवास और ईश्वरोपासनाके इस मासमे भोज और आनन्दोत्सव मनानेमे कठिनाइयॉ होती थी, एव चौथे वर्षसे वह रमजानकी समाप्तिके दूसरे दिन (कभी ईदसे ही और कभी एक दिन बाद) सिहासनपर बैठकर राज्यारोहणका वार्षिक उत्सव मनाना आरम्भ करता था, और अगले दस दिन तक ये उत्सव होते रहते थे । राज्य-कालके २१वे वर्ष (१६७७ ई०) मे राज्याभिषेककी तिथिपर उत्सव मनाने, सरदारोसे भेट लेने तथा अन्य किसी भी प्रकारके वैभवका प्रदर्शन करने की औरगजेबने पूरी मनाही करदी ।

२ औरंगजेबकी बीमारी; १६६२

राज्यारोहणके ५वे वर्षके आरम्भमे वह सख्त बीमार हो गया । बीमारीमे भी लगातार परिश्रम करने और धार्मिक कार्य-क्रमोमे लगे रहनेके कारण उसकी बीमारी बढती ही गई । रमजानके उपवासो से (१० अप्रेलसे ९ मई १६६२) उसकी कमजोरी बढती गई । १२ मईको उसे बुखार हो गया । तब हकीमोने उसका इतना खून निकाला कि वह मारे कमजोरीके यदा-कदा बेहोश हो जाता था । उसके चहरे पर मुर्दनी भी छा गई ।

पॉच दिन तक उसकी दशा ऐसी ही बनी रही । परन्तु—औरग-जेबमे आत्मबल बहुत था । उस दिन शामको तथा दूसरे दिन भी लकडीका सहारा लेकर उसने कुछ ही समयके लिए दरबारमे दर्शन दिए और शाही झण्डोकी सलामी ली । वह एक माह तक बीमार रहा, परन्तु तब जनताको कभी घबराने या भय करनेका कोई कारण नही रह गया । २४ जूनको उसके पूर्ण स्वस्थ होनेका उत्सव मनाया गया । डेढ माह तक उसकी इस बीमारीके समय भी चारो ओर शान्ति बनी रहना उसकी शासन-सत्ताकी सुदढता एव उसके निजी प्रभावका अनोखा प्रमाण था ।

स्वस्थ होनेपर शारीरिक शक्ति प्राप्त करने तथा अपना स्वास्थ सुधारनेके लिए उसे काश्मीर जानेकी सलाह दी गई । मई १६६३

ई० के आरम्भमे वह लाहौरसे कश्मीरके लिए रवाना हुआ। श्रीनगर-मे उसने ढाई माह आरामसे काटे। वह लौटकर २९ सितम्बर १६६३ को लाहौर और अगली १८ जनवरीको दिल्ली पहुँचा।

३. प्रान्तोंमे विद्रोह

राज्य-कालके इन आरम्भिक २५ वर्षोमे मुगल साम्राज्यकी सीमासे लगे हुए कुछ छोटे-छोटे प्रदेशोको जीत लिया गया।

इन बरसोमे मुगल-साम्राज्यकी आन्तरिक शान्ति भगके प्रधानया तीन कारण हुए :—

(१) राज्यारोहणके समय अन्य भाइयोके साथ उत्तराधिकार-प्राप्तिके लिए होने वाले अनिवार्य युद्ध।

(२) शासन-कालके १२वे वर्षमे हिन्दू-मन्दिर तोडनेकी नीति अंगीकार करनेके फलस्वरूम हिन्दुओके विद्रोह।

(३) साम्राज्यके अधीन राजाओके विद्रोह। सुदूर जगलों या सम्राज्यके एकान्त प्रदेशोके हाकिम भी यदा-कदा सम्राट्की आज्ञाओका उल्लघन कर कभी-कभी विद्रोह कर बैठते थे।

यदा-कदा अपने आपको औरगजेबका मृत भाई या भतीजा घोषित करनेवालोने भी कई विद्रोह आरम्भ किए थे। परन्तु ये उपद्रव स्थानीय ही रहे।

बीकानेरका राव करण दाराकी आज्ञानुसार औरगजेवकी आज्ञा लिये बिना ही सन् १६५७ ई० मे उत्तरी भारतको लौट आया था। उसने नये बादशाह औरगजेबको समय-समयपर दिए जाने वाले उपहार तथा कर भेजना एव दरबारमे स्वय उपस्थित होना भी बन्द कर दिया। एवं १६६० ई० मे उसके विरुद्ध सेना भेजी गई, तब राव करणने हार मान ली और बादशाहकी सेवामे उपस्थित होकर क्षमा-प्रार्थना की। तब औरंगजेबने उसे क्षमा कर दिया।

दूसरा महत्त्वपूर्ण विद्रोही पूर्वी बुन्देलखण्डमे महेवाका राजा चम्पतराय था। मई १६५८ मे वह औरंगजेबसे जा मिला था,

परन्तु जब शुजा खजवाकी ओर बढ रहा था तव वह शाही सेनासे भाग खडा हुआ और घर लौटकर उसने फिर लूटमार शुरू कर दी। उसे दबानेके लिए बादशाहने १० फरवरी १६५९को एक फौज भेजी। उस प्रदेशके सब लोग चम्पतारायके विरुद्ध हो गए थे। वह एकसे दूसरी जगह भागता फिरा और बादशाही फौज उसका लगातार पीछा करती ही रही। अन्तमे उसके ही झूठे मित्रोने उसके साथ विश्वासघात किया। बीमारीके कारण वह बहुत ही कमजोर हो गया था, एव शत्रुओसे अपना बचाव नही कर सकता था। इसलिए कैद किए जानेसे बचनेके लिए आधे अक्तूबर (सन् १६६१ ई०) के लगभग उसने आत्महत्या कर ली।

४. पालामऊ, आदि देशों की विजय

बिहारकी दक्षिणी सीमापर पालामऊ जिला है। वह सारा प्रदेश जगली है एव वहाँ समतल भूमि नही है। घाटियोमे दूर-दूर बसे हुए छोटे-छोटे गावोकी आबादी बहुत ही कम है। १७वी व १८वी शताब्दीमे वहॉपर प्रधानतया द्रविड जातिके चेरे लोगोकी बस्ती थी। १६४३ ई० मे मुगलोने वहॉके प्रताप चेरे नामक राजाको अपना मनसबदार बना लिया और उससे एक लाख रुपया सालाना कर वसूल करने लगे। परन्तु इतना अधिक कर देना उसके लिए सम्भव न था, एव वह उसे चुका न सका और बहुत-सा कर देना बाकी रह गया।

अप्रेल १६६१मे बादशाहकी आज्ञासे बिहारके सूबेदार दाऊदखॉने पालामऊपर चढाई कर दी। दिसम्बरमे मुगल सेना पालामऊके पास जा पहुँची और शहरपर हमला किया। तब तो वहॉका राजा रातोरात किलेसे निकलकर भाग गया। मुगलोने दूसरे दिन पालामऊपर कब्जा कर लिया। इस प्रकार पालामऊ बिहारके सूबेमे मिला दिया गया।

१६६५ ई० मे काठियावाड-स्थित नवानगर राज्यमे उत्तरा-

धिकारके लिए आपसी झगड़ा हुआ जिसमे मुगल सूबेदारको हस्तक्षेप करना पडा । जूनागढके फौजदारने झूठे हकदारको मारकर वास्तविक हकदारको गद्दीपर बैठाया । (फरवरी १६६३)।

५. अनाज-करका अन्त: बादशाहके इस्लामी फ़रमान

राज्यारोहणके, दूसरे जलसेके बाद ही औरगजेबने तो आवश्यक हुक्म दिए । उत्तराधिकारके युद्धके कारण उत्तरी भारतकी खाद्य-स्थिति चिन्तनीय हो गई थी । अनाज, अकालके समयकी-सी वढी हुई कीमतोपर बिक रहा था । साम्राज्य-भरमे जगह-जगह पर आयात-कर लगनेसे यह कठिनाई और भी बढ गई थी । नदीके सब घाटो, पहाडोके बीजकी घाटियो तथा विभिन्न सूबोकी सरहदोपर मालका दसवाँ हिस्सा राहदारी अर्थात् रास्तोकी देख-रेख एव उन्हे सुरक्षित रखनेके करके रूपमे लिया जाता था । आगरा, दिल्ली, लाहौर और बुरहानपुर, जैसे बडे-बड़े शाहरोमे बाहरसे लाई गई हर खाद्य वस्तुपर पण्डरी नामक कर लिया जाता था । औरगजेबने राहदारी और पण्डरी, दोनो कर मुगल साम्राज्यके खालसा इलाकोमे बन्द कर दिए, एव जमींदारो और जागीरदारोको उसने अपने वहाँ भी ऐसा ही करनेकी सलाह दी । शाही हुक्मकी तामील की गई जिससे कम अनाजवाले स्थानोमे आवश्यक अनाज विना वाधाके जाने लगा । अन्नकी कीमत भी पुन. काफी घट गई । औरंगजेबने १६७३ मे वहुत कम अमदनीवाले असुविधा-जनक कई एक अन्य करोको भी वन्द कर दिया । (देखो मेरा ग्रन्थ 'मुगल एडमिनिस्ट्रेशन' अध्याय ५) । तमाकू पर चुगी-कर १६६६ ई० मे वन्द किया गया ।

दाराशिकोहके विधर्मी कृत्यो और सिद्धान्तोके विरुद्ध अपने आपको इस्लामका कट्टर अनुयायी कहकर औरगजेवने गद्दीपर अधिकार किया था । दूसरी वार राज्याभिषेक (१६५६) होनेके कुछ समय वाद ही औरगजेवने मुगल साम्राज्यमे कट्टर इस्लामकी

पुनर्स्थापनाके लिए और लोगोके जीवनको कुरान शरीफके नियमानुसार बनानेके लिए निम्नलिखित नये फरमान निकाले —

(१) अब तक मुगल बादशाहोके सिक्कोपर कलमाकी मुहर लगती थी, परन्तु अब औरगजेबने इसे बन्द करवा दिया ।

(२) ईरानके पुराने बादशाह तथा उनके बाद वहॉके मुसलमान शासकोके समान भारतके मुगल बादशाह भी अब तक प्रति वर्ष नौरोज का त्योहार मनाते थे । वह दिन उत्सव और आनन्दका दिन मानते थे । उस दिन सूर्य मेष राशिमे प्रवेश करता है, एव ईरानके अग्नि-उपासक पारसियोके नये वर्षका यह पहला दिन होता था । औरगजेबने इस उत्सवको न मनानेका हुक्म दिया, और नौरोजके उत्सवके स्थानमे राज्याभिषेकके दिनका उत्सव मनानेका तरीका चलाया । औरगजेबके समयमे यह दिन रमजान माहके बाद ही मनाया जाता था ।

(३) पैगम्बरकी आज्ञाए अमलमे लाई जाती रही है, यह देखने एव सार्वजनिक सदाचारकी जॉचके लिए एक मुहतसिव नियुक्त किया गया । कुरानमे जिन बातोका विरोध किया गया है, उन्हे वह बन्द करता था, जैसे शराब पीना, भग तथा अन्य नशीली चीजोका व्यवहार, जुआ खेलना, व्यभिचार-कर्म, आदि । परन्तु अफीम और गॉजेके व्यवहारकी रोक नही की गई थी । धर्म-विरोध विचारो व कार्योके लिए और नमाज न पढने तथा उपवास तोडनेके जुर्मोकी सजा देना भी उसीका काम था । इसके हाथके नीचे कुछ मनसबदार एव अहदी भी नियुक्त थे, जो उसकी आज्ञाओको अमलमे लाते थे ।

(४) १३ मई १६५९को सब प्रान्तोमे भगकी पैदावार रोकनेके लिए हुक्म निकाला गया ।

(५) सारी टूटी और पुरानी मसजिदो और ख़ानकाहो की मरम्मत की गई और उनमे इमाम, मुअज्जिन और ख़तीब नियुक्त किए गए, जिन्हे नियमित रूपसे साम्राज्यके ख़जानेसे तनख्वाह मिलती थी ।

औरगजेबकी धार्मिक कट्टरता अवस्थाके साथ बढ़ती ही गई। अपने निजी विचारोंके अनुसार अपनी प्रजाके जीवनको उदासीनता-पूर्ण गम्भीरता प्रदान करनेके लिए औरंगजेबने जो-जो प्रयत्न किए उनका यहाँ सक्षेपमे उल्लेख किया जा सकता है।

(६) गद्दीपर बैठनेके बाद ग्यारहवे वर्षमे उसने शाही दरबारमे गवैयोको अपने सामने नाचने-गानेसे मना कर दिया। धीरे-धीरे दरबारमे गाने-वजानेकी पूरी मनादी कर दी गई।

कला-प्रेमियोने आम जनतामे औरगजेवकी खिल्ली उडाकर बदला निकाला। वह जब मसजिदको जा रहा था तब एक शुक्रवारके दिन कोई एक हजार गवैये एकत्रित हुए। उनके साथ सुरुचिपूर्वक सजे हुए लगभग बीस जनाजे थे। वे सब बहुत जोर-जोरसे दुखित होकर रोते-चिल्लाते जा रहे थे। औरगजेबने दूरसे ही उन्हे देखा और उनका रोना भी सुना। इस सबका कारण जाननेके लिए उसने अपने आदमी भेजे। गवैयोने जवाबमे कहला भेजा कि अपनी आज्ञा द्वारा बादशाहने सगीत-विद्याको मार डाला है, इसलिए उसे अब कब्रमे गाडनेके लिए जा रहे है। बादशाहने उत्तर दिया कि उसे अच्छी तरह ही गहरा दफनाया जावे।

(७) चान्द्र वर्ष और सौर वर्षके अनुसार बादशाहकी इन दो जन्म तिथियोपर वह सोने और चाँदीसे तुलता था। अब इस प्रथाको बन्द कर दिया गया।

(८) आगरा किलेके हाथी-पुल दरवाजेपर जहाँगीरने १६६८ मे पत्थरके दो हाथी रखवाए थे, बादशाहने उनको वहाँसे हटवा दिया।

(९) एक दूसरेको प्रणाम करनेकी अब तक प्रचलित हिन्दू तरीका काममे लानेकी अप्रेल १६७० ई० मे दरबारियोको मनादी करदी गई। उन्हे आज्ञा दी गई कि वे सलाम-अलै-कुम करे, जिसका अर्थ आपको शान्ति मिले' होता है।

(१०) अपने जन्म-दिवसके सारे उत्सवोको मनाना उसने मार्च १६७० ई० मे बन्द कर दिया। शाही नगाड़ा अब तक सारे

दिन-बजा करता था, इसके बाद वह दिन-भरमे केवल तीन घण्टे ही बजने लगा। अपने राज्य-कालके इक्कीसवे वर्षमे (नवम्बर, १६७७ ई०) उसने राज्यारोहणके दिन हर साल मनाई जानेवाली खुशियाँ भी बन्द कर दी।

(११) बडे-बड़े राजाओको जव उनका राज्य सौपा जाता था उस समय बादशाह स्वय उनके तिलक या टीका करता था। यह एक हिन्दू प्रथा होनेके कारण मई १६७९मे बन्द कर दी गई।

(१२) अकबरने यह प्रथा भी प्रचलित की थी कि बादशाह प्रति दिन प्रात काल महलके ऊपरके झरोखेमे बैठकर जनताको दर्शन देता और उनकी सलामी लेता था। अकबरके उत्तराधिकारियोने भी यह प्रथा कायम रखी। परन्तु औरगजेबने इसे भी बन्द कर दिया, क्योकि यह प्रथा किसी भी कार्यसे पहले सुबहमे अपने इष्ट-देवकी मूर्तिके दर्शनकी हिन्दू-प्रथा की नकलमात्र थी।

(१३) कब्रोवाले मकानोकी छतें बनवाना, कब्रोपर चूना पुतवाना और फकीरोके मजारोपर औरतोका तीर्थ करने जाना, आदि बाते कुरानके विरुद्ध होनेके कारण उसने बन्द कर दी। किन्तु इस प्रकार लोगोको एकबारगी सुधारनेका औरगजेबका यह प्रयत्न असफल ही रहा। लोगोकी इच्छाके विरुद्ध इन कडे नियमोको पहले एकदम जबरदस्ती लागू करके बाद उनमे आवश्यक सुधार किए बिना ही उन्हे ढीला कर देनेसे उसके शासनका बहुत ही उपहास हुआ। मनुची ने लिखा है—"जब औरगजेब गद्दीपर बैठा तब शराब पीना, एक बहुत ही साधारण बात थी। एक दिन उसने गुस्सेमे भर कर कहा कि सारे हिन्दुस्तानमे ऐसे दो ही आदमी थे जो शराब नही पीते थे, एक तो प्रधान काज़ी और दूसरा वह स्वय। पहले इस विषयके बहुत कडे नियम थे, बादमे धीरे-धीरे उन्हे शिथिल कर दिया गया, क्योकि ऐसे बहुत कम लोग थे जो छिपकर न पीते रहे हो। उसके मंत्री भी स्वय पिया करते थे और दूसरोसे भी उनका यही अनुरोध होता था। सगीतको बन्द करनेवाली आज्ञाका भी यही हाल हुआ।

नामसे इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। हिन्दुस्तानमे एक व्यापारीकी तरह आनेके बाद यहाँ ही वह नग्न फकीर हो गया। दिल्लीमे दाराशिकोहके साथ उसकी भेट हुई। दाराने उसका बहुतआदर-सम्मान किया और शाहजहाँके साथ भी उसकी भेट कराई गई। वह विश्व-देवता-वादी था। यद्यपि मुहम्मदके लिए उसके हृदयमे अत्यधिक श्रद्धा थी, फिर भी इस्लाम धर्मकी अनेक परम्पराओं और कई विचारोमे उसका विश्वास नही था।

सरमदके मामलेको सुनकर उसका विचार करनेके लिए इस्लाम धर्मके कट्टर विद्वानोका एक दल नियुक्त किया गया। उस दलने धर्म-विरोधके अपराधमे उसे मृत्यु-दण्ड दिया। परन्तु इस दण्डका असली कारण राजनैतिक ही था, सरमदने दाराको सिहासन दिलवाने-का पूरा आश्वासन दिया था।

१६७२ ई० मे तीन बडे ख़लीफाओको गाली देनेके अपराधमे मुहम्मद ताहिर नामक एक शिया दीवानका सिर काट लिया गया। एक पुर्तगाली पादरी मुसलमान हो गया, उसके बाद वह फिर ईसाई हो गया। उसका यह आचरण धर्म-विरुद्ध माना गया एव सन् १६६७ ई० मे धर्म-भ्रष्ट होनेके अपराधमे उसे औरगाबादमे मृत्यु-दड दिया गया। बोहरा जातिके धर्म-गुरु सैयद कुतुबुद्दीन अहमदाबाद-मे रहते थे। बादशाहकी आज्ञानुसार उन्हे तथा उसके सात सौ अनुयायियोको मरवा डाला गया।

७. विदेशी मुसलमान राज्योंके साथ औरंगजेबका सम्बन्ध

व्यापार द्वारा भारतसे सबन्धित अनेक मुसलमानी राज्योसे राजगद्दीपर बैठनेके उपलक्षमे औरगजेबको बधाई देनेके लिए आए हुए अनेको राजदूतोका उसने स्वागत किया।

अपने शानदार राज्याभिषेकके कुछ समय बाद ही नवम्बर १६५९मे सैयद मीर इब्राहिमको ६ लाख ६० हजार रुपये देकर

मक्का-मदीना भेजा कि वहाँके सन्तो, मसजिदों और मजारोके नौकरों, फ़कीरों और सैय्यदोको यह रकम बाँट दी जावे ।

जब औरगजेब भारतपर एकछत्र शासन कर रहा था, तब सन् सन् १६६१ ई० मे ईरानके शाह अब्बास द्वितीयने उसे बधाई देनेके लिए अपने तोपचियोके नायक बुदाक बेगको अपना राजदूत बनाकर बड़ी ही शानशौकतके साथ उसे भारत भेजा ।

ईरानके राजदूतके आनेका समाचार सुनकर मुगल-दरबारमे एक हलचल-सी मच गई ? बादशाहसे लेकर एक साधारण सिपाही तकने समझ लिया कि अब उसकी तथा उसके देशकी परीक्षाका समय आया । आगन्तुकोकी उपस्थितिमे उनकी प्रतिष्ठा और मर्यादामे यदि कोई भी त्रुटि दिखाई दी तो सारे मुसलमानी राज्योमे हिन्दुस्तानकी हँसी होगी ।

२७ जुलाई १६६१ ई० के दिन इस राजदूतको वापस ईरान लौटनेकी आज्ञा मिली । नवम्वर १६६३ मे शाह अब्बासके पत्रका उत्तर लेकर औरगजेबने अपना एक राजदूत ईरान भेजा । इस्फाहनके दरबारमे उसकी शाहसे भेट हुई पर उसके साथ बडी ही रुखाईका व्यवहार किया गया । उसकी हसी भी उड़ाई गई, जिसका उसके हृदयपर बडा प्रभाव पडा । उसके सामने ही फारसके बादशाहने भारतपर चढाई करनेकी कई वार धमकी दी । ईरानमे एक साल रहनेके वाद अन्तमे उसे वापिस लौटनेकी आज्ञा मिली । उसके साथ ही औरगजेबके नाम एक व्यगपूर्ण पत्र भी भेजा गया । शाह अब्वासके प्रति अपने क्रोधको औरंगजेबने इसी बेचारे राजदूतपर उतारा । ठीक काम न कर उसनेका उसपर अपराध लगाकर उसे पदच्युत भी कर दिया । बादशाहने उससे मिलना भी स्वीकार नही किया ।

शाह अब्वास १६६७ ई० मे मर गया और तव ईरान द्वारा भारत-पर हमलेकी वात भी जहाँकी तहाँ रह गई । औरगजेवने अन्त तक सदैव ईरानकी सीमापर कडी निगाह रखी । वल्ख और वुखारा (१६६१ और १६६७ ई० मे) काशगार (१६६० ई० मे),

उरगज (खीव), कुस्तुन-तुनियाँ (१६६० ई० मे), और (१६६५ और १६७१ ई० मे) अबीसीनिया के राजदूत भी औरगजेबके पास आए ।

सात वर्षसे भी कम समयमे (१६६१ से १६६७ ई०) औरगजेबने २१से अधिक लाख रुपया राजदूतोको भेजने और उनका स्वागत करनेमे खर्च किया । इसके अतिरिक्त सन् १६६८ ई० मे भारतकी शरण लेनेंवाले काशगारके पिछले बादशाह अब्दुल्ला खॉको भी हर साल ११ लाख रुपया प्रति वर्ष देता था । मक्काके प्रधान शरीफको भी हर साल सात लाख रुपया भेजा जाता था ।

८. आगराके किलमें शाहजहॉका कैदी-जीवन और औरंगजेबके साथ उसका संघर्ष

जिस दिन शाहजहॉने अपने विजयी पुत्रके लिए आगरा किलेके दरवाजे खोले उसी दिन वह जन्म-भरके लिए कैद होगया । एक शाहशाहके लिए यह एक बहुत ही कटु अनुभव था । बडी कशमकशके बाद विवश होकर ही उसने यह परिस्थिति स्वीकार की थी । दारा और शुजाके नाम शाहजहॉके लिखे पत्रोको राहमे ही पकडवाकर आगराके किलेसे उन पत्रोको लेजानेका प्रयत्न करनेवाले उसके खोजा दूतोको औरगजेबने कडी सजाएँ दी । परिणामस्वरूप औरगजेबने उसपर और भी अधिक कडा पहरा लगा दिया । तब तो शाहजहॉको उसके विरोधियोने चारो ओरसे घेर लिया था । उससे कोई भी मिल नही सकता था । उसकी कही हुई एक-एक बात तकको सरकारी जासूस औरगजेब तक पहुँचा देते थे । लिखने का सामान भी इस भूतपूर्व बादशाहके पाससे हटा दिया गया ।

लोभ-लोलुपताके वश होकर औरगजेबने मुगलोमे सबसे अधिक शानदार इस वादशाहको उसके पतनके बाद भी शन्तिसे न रहने दिया, उसके विपरीत उसकी प्रतिष्ठाको कम करनेका निरन्तर प्रयत्न किया जाता था । शाहजहॉके नित्य-प्रति पहनने तथा आगरेके किलेमें

सुरक्षित रखे जानेवाले हीरा, मोती आदि जवाहिरातोको लेकर पिता-पुत्रमे काफी झगड़ा हुआ। शाहजहाँ यह कभी नही भूल सकाकि ये उसकी निजी सम्पत्ति थे और न्यायकी दृष्टिसे औरगजेबका राज्य और साथही राज्यके खजाने तथा माल-मत्तेपर भी कोई अधिकार नही था। इसके जवाबमे औरगजेब कहता था कि शाही खजाना तथा माल जनताके हित-कल्याणके लिए है। यही कारण है कि उनपर कोई भी कर नही लगाया जाता है। बादशाह खुदाका चुना हुआ उसका रक्षक-मात्र है, जो उसकी इस अमानतको अपने अधिकारमे रखकर उसे लोगोके उपकारमे लगावे। इस प्रकार सिहासनारूढ होनेपर अब आगरेकी सारी जायदाद उसकी हो चुकी थी।

आगरेसे भागते समय दारा भी अपनी स्त्रियो और लडकियोके २७ लाखके जवाहिरात आगरेके किलेमे छोड गया था। अरगजेबने उन्हे भी माँगा। शाहजहाँ बहुत समय तक विरोध करता रहा, परन्तु अन्तमे उसे औरगजेबकी बात स्वीकार करनी ही पडी। दाराके यहाँ गाने-नाचनेवाली स्त्रियोको भी औरगजेबने माँगा। किलेपर अधिकार करते ही औरगजेबने (८ जून १६५८) वहाँके सारे शाही जेवर, कपडे, सामान और किलेके कमरोपर तक अपनी मुहर लगवा दी थी। सारे मालको बडी सख्तीके साथ जब्त कर उसे उसे पूरी सावधानीपूर्वक निगरानीमे रखनेकी उसने आज्ञा दी थी।

मुहम्मद सुलतानके चले जानेपर मुतमाद नामक हिजडा ही आगरेके किलेका प्रधान अधिकारी बन गया। उसने शाहजहाँके साथ बडी सख्ती और बहुत ही दुर्व्यवहार किया और उसकी देख-भालमे भी काफी असावधानी दिखाई। उसके व्यवहारसे कभी-कभी यही झलकता था कि स्वय शाहजहाँ उस हिजडेका एक दीन दास था।

कैदके पहले वर्षमे पिता-पुत्रमे वहुत ही कटुतापूर्ण पत्र-व्यवहार होता रहा। इस सारे वाद-विवादमे औरगजेव अपने आपको सदैव एक धर्म-भीरु न्यायशील शासक सावित करनेका प्रयत्न करता रहा।

वह यह भी कहता रहा कि जनताके हित तथा उनमे धार्मिक सुधार करनेके लिए ईश्वरने उसे अपना एक तुच्छ साधन-मात्र बनाया है। साथ ही उसने अपने पिताके शासनको अयोग्यतापूर्ण, असफल और अन्यराययुक्त बताया। पुन. उसने अपनी न्यायपरता तथा नम्रताका पूरा-पूरा दिखावा करते हुए अपने व्यवहारको ठीक तथा न्यायसगत साबित किया। अपने विद्रोही होने और एक सुपुत्र के उपयुक्त व्यवहार न करनेके दोष लगाए जानेपर उसने तत्सम्बन्धी अपनी सफाई यह कह कर दी कि— जब तक शासन-सत्ताकी बागडोर आपके हाथमे रही, मैंने कभी आपकी आज्ञा लिये बिना कोई काम नही किया, और न मैंने अपनी सीमाका उल्लघन ही किया। आपकी बीमारीमे दाराने राजकाज अपने हाथमे लेकर हिन्दू-धर्मके सामने इस्लामको मिटानेकी तैयारीकी। आपको एक ओर बिठाकर उसने सारी राजसत्ता अपने हथोमे ले ली। देशभरमे अराजकता फैली। मै विद्रोही बनकर आगरा नही आया था, किन्तु मेरी इच्छा यही थी कि दाराकी राजसत्ताका अन्त कर, उसके इसलाम-विरोधी कार्यो और सब दूर फैलनेवाली मूर्ति-पूजाको सारे साम्राज्यसे दूर कर दूँ। मैंने परलोककी भावनासे प्रेरित होकर ही राज्य-भार उठाया, क्योकि इस्लामकी स्थापना और रक्षाके यह अत्यन्त आवश्यक था। राजसिहासन पर बैठनेमे मेरा अपना लिए स्वार्थ कुछ भी नही था।"

सम्राट्के कर्तव्य और उसकी महत्ताके बारेमे औरगजेबके विचार अवश्य ही बहुत ऊँचे और निस्पृहतापूर्ण थे। "केवल अपने शारीरिक सुखो, ऐन्द्रिक विलास तथा बाह्याडम्बरोमे ही लगे रहना बादशाहके लिए ठीक नही। उसका कर्त्तव्य है कि वह देशकी रक्षा और जनताकी भलाईमे ही अपना सारा समय बितावे।

कितनी बड़ी-बडी कठिनाइयोके होते हुए भी राज्य-सिहासन प्राप्त करनेमे उसे जो सफलता मिली, उसका विवरण करते हुए वह बड़े गौरवके साथ कहा करता था कि उसकी यह सफलता भी स्पष्टतया साबित करती थी कि उसका पक्ष सच्चा था जिससे ईश्वरने भी उसका

ही साथ दिया । अतएव एक समझदार मानवकी तरह शाहजहाँको भी इस ईश्वरेच्छित बातको मान लेना चहिए । औरगजेब तो उसका साधन-मात्र है, इसलिए औरंगजेबकी विजयको ही ठीक मानकर उससे उसे प्रसन्न होना चाहिए ।

शाहजहाँ औरगजेबके इस सारे दभ-ढकोसलेका तिरस्कार कर कहता था कि एक सच्चे मुसलमान होनेका ढोग कर औरगजेव दूसरेके मालका लुटेरा बन वैठा था । इस आरोपका उत्तर देते समय औरगजेबने बहुतही उच्च आदर्शोंका उल्लेख किया, "आपने लिखा कि दूसरोकी जायदादपर अधिकार करना इस्लाम धर्मके विरुद्ध है । एव आप स्वय जान ले कि शाही खजाना और जायदाद सारे साम्राज्यकी प्रजाके है, और प्रजाके हितार्थ ही उनको काममे लाना चाहिए । ये राज्य किसीकी भी वश-परम्परागत जायदाद नही है । राजा तो ईश्वर द्वारा नियुक्त प्रजाका रक्षक एव प्रजाके हितार्थ संगृहीत शाही खजानेकी धरोहरकीदेखरेख करनेवाला अधिकारी मात्र है ।"

अब शाहजहाँने औरगजेवको चेतावनी ही कि उनकी वारी आनेपर उसके पुत्र भी औरंगजेवके साथ ऐसा ही बर्ताव करेगे, जो उसने शाहजहाँके साथ किया था । इसके उत्तरमे औरंगजेवने पूरे ऊपरी आत्मविश्वासके साथ लिखा—"ईश्वरकी इच्छाके विरुद्ध कुछ भी नही होता है । जिस दुर्भाग्यका आपने उल्लेख किया है वह मेरे पूर्वजोको भी सता चुका है । एवं यदि यही ईश्वरकी इच्छा होगी मै किस प्रकार इससे वच सकूँगा ? अपनी नियतके अनुसारही प्रत्येक व्यक्तिको अपना-अपना फल मिलता है । मुझे इस बात का पक्का विश्वास है कि मेरी नियत पूरी तरह साफ है, अतएव मुझे यह भरोसा है कि अपने लड़कोंसे सिवाय सद्व्यवहारके मुझे कुछ नही मिलेगा ।

किन्तु अपनी डीग हाँकनेवाले औरंगजेवकी आशाओकी अपेक्षा उसके पिताकी भविष्यवाणी ही अधिक सत्य सावित हुई । अपने

पिताके प्रति किए गए इस दुर्व्यवहारका बदला उसीके चौथे पुत्र मुहम्मद अकबरने औरंगजेबसे लिया था। सन् १६६१ ई० मे जब उस शाहजादेने विद्रोह किया तब उसने अपने पिताको एक बहुत ही व्यगपूर्ण कटु पत्र लिखा। उसका वह पत्र पडकर शाहजहाँको लिखे गए औरगजेबके इन्ही पत्रोका स्मरण हो आता है। उस पत्रमें औरगजेबकी राज्य-शासनकी विफलताका उल्लेख कर उसे सलाह दी गई कि उस बुढापेमे धार्मिक जीवन बिताकर वह अपने पिता और भाइयोकी हत्याके पापोका प्रायश्चित कर ले। उसे असफल शासक भी कहा गया। अन्तमे औरगजेबसे पूछा गया था कि जब उसने स्वय अपने पिताका विरोध किया, तब इस समय वह कैसे अपने पुत्र अकबरको विद्रोही कह सकता था।

शाहजहाँके साथ औरगजेबका यह पत्र-व्यवहार बहुत ही कटु और असह्य हो गया। अन्तमे हार मानकर बूढे शाहजहाँको अनिवार्य दुर्भाग्यके सामने सिर झुकाना ही पडा, और जैसे एक बालक रोते-रोते सो जाता है वैसे ही उसने भी कुछ दिन बाद ये सारी शिकायते करना भी बद कर दी।

उसके दुखी हृदयपर एकके बाद दूसरा यो अनेक आघात हुए। दारा, मुराद और सुलेमान क्रमश मारे गए। शुजाको सकुटुम्ब माघोके देशमे जाना पडा और वहाँके अज्ञात अत्याचार सहते-सहते उनका विनाश हुआ। पर इन सारे दुखोको सहनेपर भी उसका धीरज एव ईश्वरमे उसका भरोसा ज्योका त्यो ही बना रहा। अन्त तक उसने सहनशीलता और धैर्यका ही परिचय दिया।

धर्मसे उसे शन्ति मिली। कन्नौजका सैय्यद मुहम्मद अन्त तक उसके साथ बना रहा, और यही धर्मात्मा तब उसका एकमात्र गुरु, शिक्षक और दान करानेवाला था। इस भूतपूर्व सम्राट्का सारा समय अब ईश्वरोपासना, प्रार्थना और सारे आवश्यक दैनिक धार्मिक कर्म करने, कुरान पाठ करने और भूतकालीन महान् पुरुषोका इतिहास पढनेमे ही बीतता था।

पुण्यात्मा शाहजादी जहाँनाराकी प्रेमपूर्ण सेवासे भी शाहजहाँको शान्ति मिलती थी। उसकी इस अनुरागपूर्ण परिचर्याको पाकर शाजहाँ अपनी अन्य सतानके कटु व्यवहारको भूल-सा गया। यह शाहजादी मियाँ मीरकी शिष्या थी। वह आगराके किलेके हरममे साध्वीका-सा जीवन व्यतीत करती रही। पुत्री और माताके समान अपने बूढे निरीह पिताकी सेवा करना ही उसने अपना कर्त्तव्य समझा। इसके अतिरिक्त वह दारा और मुरादकी अनाथ सतानकी भी देख-भाल करती थी। इस प्रकार के आध्यात्मिक सहयोग तथा वातावरणमे शाहजहाँने परलोक यात्राकी तैयारी की। अब मृत्युका भय उसे नही सताता था, और अपने इस कष्टपूर्ण जीवनसे मृत्यु द्वारा मुक्ति पानेकी आशामे वह उसकी बाट जोहने लगा।

९. शाहजहाँकी अन्तिम बीमारी और मृत्यु

जनवरी १६६६मे ही जाकर मुक्तिकी उसकी यह इच्छा पूरी हुई। ७ जनवरीको उसे बुखारने आ घेरा। धीरे-धीरे उसकी हालत बिगडती ही गई। इस समय वह ७४ वर्षका था। सिहासन पर बैठनेसे पहले उसे अनेक बाधाओसे पूर्ण कठिन जीवन विताना पडा था। अव शीतकालकी इस कडी ठण्डमे उसकी शक्तियोने जवाब दे दिया।

सोमवार, २२ जनवरीको उसकी दशा और भी वुरी वताई गई। उसकी मृत्यु कव हो जायगी यह कोई कह नही सकता था। अपनी मृत्युको निकट जानकर शाहजहाँने उसकी सारी कृपाओके लिए परमात्माको धन्यवाद दिया और अपने को उसीके हवाले छोड दिया। अन्तमे उसने शान्तिपूर्वक अपनी अन्तिम क्रिया सम्वन्धी आवश्यक आदेश दिए, और तव भी जीवित अपनी दोनों पत्नियो—अकवरावादी महल, फतहपुरी महल—अपनी वड़ी बेटी जहाँनारा एवं राजमहलकी अन्य स्त्रियोको वह सान्त्वना देता रहा। उसके चारों ओर सव लोग रो रहे थे। अव निराश्रित होनेवाली जहाँनाराको उसने अपनी

सौतेली बहन पुरहुनर बानू तथा अन्य महिलाओके सुपुर्द कर दिया। अपना वसीयतनामा लिखकर अपने कुटुम्बियो और नौकरोको उसने अनेक इनाम दिए, और अन्तमे उसने कुरान पढनेकी आज्ञा दी। इन अन्तिम क्षणोमे उसका कमरा स्त्रियोके रोदनसे भर गया। तथापि शाहजहाँके होशहवास ठीक थे। वह अपनी प्यारी बेगम मुमताजकी यादगार, ताजमहलकी ओर टकटकी लगाकर देख रहा था। कलमा पढ़कर फिर उसने प्रार्थना की—"ऐ खुदा! इस लोकमे मेरी गति सुधार ले, और परलोकमे मुझे नरक-यातनासे बचा ले।"

कुछ ही क्षण बाद वह चिर-निद्रामे सो गया। तब सध्याके सवा सात बज रहे थे। इस समय वह मुसम्मन बुर्जमे लेटा हुआ था, जहाँसे सामने ताजमहल दिखाई दे रहा था, यही उसकी मृत्यु हुई। शाहजहाँ चाहता था कि उसे ताजमहलमे ही दफनाया जावे कि मृत्युके बाद भी वह अपनी प्रेयसीसे दूर न रहे।

शाहजहाँकी कैदके दिनोमे इसी बुर्जके नीचेकी सीढियोका दरवाजा ईंटसे चुनकर बन्द कर दिया गया था। अब ईंटोकी इस दीवारको तोडकर किलेके अफसरोने वह रास्ता खोला और उसी राह शाहजहाँका जनाजा निकालकर जमुनाके किनारे लगी हुई नाव तक उसे ले गए। नाव द्वारा ही उस जनाजेको ताजमहल तक पहुँचाया और वहाँ उसकी प्रेयसी सम्राज्ञी मुमताज महलके रहे-सहे अवशेषोके पास ही शाहजहाँकी लाशको भी दफना दिया।

जनताको शाहजहाँकी मृत्युका बडा ही खेद हुआ। लोगोने उसकी त्रुटियो और अपराधोको भुला दिया और अब उसकी अच्छी बातोकी ही यादकर वे उनकी चर्चा करने लगे।

शहजहाँकी मृत्युसे कोई एक माह बाद औरगजेब आगरा पहुँचा और वहाँ जहाँनारासे मिला। जहाँनाराके प्रति उसने बहुत ही अनुग्रह दिखलाया और नम्रताके साथ बर्ताव किया। इन पिछले दिनोमे जहाँनाराने शाहजहाँसे निरन्तर प्रार्थना की थी कि वह औरग-

ज़ेबके अपराधोंको क्षमा कर दे । कुछ समय तक तो शाहजहाँ टालता रहा, परन्तु अन्तमे जहाँनाराकी प्रार्थनाको स्वीकार कर उसने औरंगजेबके सारे अपराधोके क्षमा-पत्रपर हस्ताक्षर कर दिए थे ।

औरंगजेबने अपने पिताके साथ जो दुर्व्यवहार किया था, वह उसकी समकालीन जनताको बहुत ही अनुचित एवं न्याय-विरुद्ध जान पडा । उस युगकी सामाजिक मर्यादाको इस प्रकार तोड़नेके कारण जनताके हृदयोमे औरगजेबके विरुद्ध बहुत ही तीव्र नैतिक रोष उठ खडा हुआ था ।

अध्याय ७

सीमाओंपर युद्ध; आसाम और अफ़ग़ानिस्तान

१. १६५८से पहले आसाम और कूचबिहारके साथ मुग़लोंके सम्बन्ध

१६वी सदीके आरम्भमे एक भाग्यवान् मगोली सैनिक, विश्वसिहने (शासन-काल १५१५–१५४० ई०) कूचबिहारमे एक राजवशकी स्थापना की जो अभी तक चला आ रहा है। विश्वसिहने हिन्दू-धर्म और सस्कृतिको पूरी तरह अपना लिया और सफलतापूर्वक राज्य स्थापित कर वहाँ सैनिक सगठन किया। उसके छोटे भाईके पुत्रने कामरूप या कूचहाजो कहलानेवाले कूचके पूर्वी भागपर अधिकार किया और वहाँपर वह स्वय राजा बन बैठा। इस राजवशकी इन दो शाखाओके आपसी सघर्षके समय कूचबिहारके राजाने बगालके सूबेदारसे सहायता माँगी, तब तो मुगलोने कूचहाजोको जीतकर उसे मुगल साम्राज्यमे मिला लिया (१६१२ ई०)। इस प्रकार मुगल साम्राज्यकी सीमा पूर्वी और मध्य आसामके अहोम राजाओके राज्यसे जा मिली।

अहोम लोग उत्तरी ब्रह्माके पहाडी भागोमे बसनेवाली 'शान जाति' की ही एक शाखा थे। १३वी सदीमे पोग राजघरानेके

एक राजकुमारने ब्रह्मपुत्राके दक्षिणी-पूर्वी कोनोपर अपना राज्य स्थापित किया और तब राहमे पड़नेवाली जातियोको जीतता हुआ पश्चिमकी ओर बढा। आसाममे बसनेपर अहोम जाति हिदू सभ्यता और धर्मके प्रभावमे आकर धीरे-धीरे बदलने लगी। हिन्दू धर्मके पुजारी, महन्त तथा हिन्दू कारीगर लोग आसाममे जा पहुँचे। वैष्णव धर्म भी वहाँ खूब फला-फूला।

सन् १६१२ ई० मे कूचहाजोको मुगल साम्राज्यमे मिला लेनेके बाद १७वी शताब्दीके इन प्रारम्भिक वर्षोमे मुगलोकी अहोमोके साथ बड़ी कशमकश होती रही। अन्तमे सन् १६३८ ई० मे जाकर सन्धि हुई, जो अगले २० वर्ष तक बनी रही।

अहोमोंका कामरूप जीतना, १६५८ ई०

१६५७ ई० मे जब शुजा बगालकी अधिकाँश सेना सहित सिहासन-प्राप्तिके लिए चला तब कूचबिहारके राजाने कामरूपको एक सेना भेजी। गौहाटीका फौजदार मीर लुत्फुल्ला शीराजी अहोमोके आक्रमणसे डर नावमे बैठकर नदीकी राह ढाका भाग गया। कामरूपकी राजधानी गौहाटीपर बिना युद्ध किए ही आसामियोंका अधिकार हो गया। वहाँ उन्होने सबकुछ लूट लिया।

यह सब १६५८ के आरम्भमे हुआ था। किन्तु जून १६६० मे मीरजुमलाको विशेष तौरसे बगालका सूबेदार बनाकर भेजा था कि वह बगालके और खास तौरपर आसाम और माघ (अराकान) के विद्रोही ज़मीदारोको दण्ड देकर उन्हे ठीक कर दे।

३. मीरजुमलाका कूचबिहार और आसाम जीतना

१ नवम्बर १६६१ ई० को ढाकासे कूच कर एक अज्ञात जंगली रास्तेसे मीरजुमला कूचबिहारमे जा पहुँचा। १६ दिसम्बरको मुगलोने राजधानीमे प्रवेश किया। राजा और प्रजा पहले ही डरकर वहाँसे भाग गए थे। सारे राज्यपर मुगलोका पूरा अधिकार हो गया।

४ जनवरी १६६२ ई० को वहाँसे रवाना होकर उसने आसामपर आक्रमण किया। घने जगल और अनेक नालोके कारण वह प्रति दिन ४–५ मीलसे अधिक नही चल सकते थे, फिर भी वे वडे परिश्रमके साथ आगे वढ़ रहे थे। मुसलमान सेना वढ़ते-वढते ब्रह्मपुत्रा तक जा पहुँची। एकके वाद दूसरा किला वह जीतती गई। अन्तमे ३ मार्चकी रातको मीर जुमलाने शत्रुकी जल-सेनाको भी नष्ट कर दिया।

१७ मार्चको आक्रमणकारी गढगाँव पहुँचे। वहाँका राजा जयध्वज राजधानी छोडकर भाग गया था। आसाम-विजयमे बहुत-सा माल मुगलोके हाथ लगा। अगली वरसात भर वही रहकर उस प्रदेशपर अपना आधिपत्य वनाए रखनेका मीरजुमलाने पूरा-पूरा प्रवन्ध किया। अपनी प्रधान सेनाको लेकर गढगाँवसे कोई ७ मील दक्षिण-पूर्वमे स्थित मथुरापुर गाँवमे ३१ मार्चको वह जा पहुँचा। इधर एक वड़ी सेनाके साथ मीर मुर्तजा अहोमोकी राजधानीपर अधिकार किए वैठा रहा। इसके सिवाय कई अन्य स्थानोपर मुगल सैनिकोके थाने स्थापित किए गए।

४. अहोमोंके साथ मुगलोके निरन्तर युद्ध; वर्षामें मुगलोंका घिर जाना

आरम्भसे ही मुगल मोर्चोपर कोई शान्ति न रह सकी। अहोमोने फिरसे रातमे छापा मारकर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। गढ़गाँवपर भी हमला हुआ पर वह असफल रहा। सारी बरसात (मईसे अक्तूवर) मुगल सेना आसाममे घिरी पड़ी रही।

आवश्यक घास-दानेके अभावमे सवारोके घोडे हजारोकी संख्यामे मरने लगे। वाहरसे किसी भी प्रकारकी मदद तो दूर रही खबर भी नही आ सकती थी।

इसलिए मीरजुमलाने अपने सारे वाहरी थाने उठा लिए। लखावसे पूर्वके सारे प्रदेशपर अहोम राजाने अधिकार कर लिया।

मुगलोंके पास केवल गढ़गाँव और मथुरापुर ही रह गए ।

अहोमोंकी आक्रमण शक्ति अब दूनी हो गई । ८ जुलाईकी रातको गढगाँवपर उन्होने जोरोसे हमला किया और एक बार तो उन्होने उस किलेके आधे हिस्सेपर भी अधिकार कर लिया, किन्तु बादमें बडी मिहनत कर मुगलोने उन्हे मार भगया और सारे किलेको पुन: अपने अधिकारसे लिया । इस प्रकार उस रात्रिकी वह कठिन घड़ी टल गई । इसके वादके सारे आक्रमण व्यर्थ ही रहे ।

अगस्तमे मथुरापुरके मुगल सैनिकोमे बडे जोरसे बीमारी फैली । ज्वर और बाढके कारण सैकड़ो सैनिक प्रति दिन मरने लगे । सारा आसाम पीडित हो उठा । अन्तमे वहाँका जीवन असह्य होनेके कारण १७ अगस्तको मुगल सेना गढगाँव लौट आई । आवा-गमनकी असुविधाके कारण बहुत-से बीमार सिपाही पीछे ही छोड़ दिए गए । पराजित अहोम लोग फिरसे आक्रमण करने लगे । प्रत्येक रात्रिको किलेके बाहर लड़ाई होने लगी । बीमारी फिर भयकर हो उठी । मीरजुमला भी एक साधारण सैनिककी भाँति रहता था । सितम्बरके तीसरे सप्ताह तक जाकर कही दशा कुछ सुधरी । वर्षा कम हुई और रास्ते फिरसे खुलने लगे ।

५. मुग़लोंकी जल-सेनाके कार्य; मीरजुमलाका पुनः आक्रमण करना

मुगल सेनाके सेनापित इब्नहसनके मातहत लखावमे रहनेवाली जल-सेनाने इस आपत्तिपूर्ण दिनोमे अपनी तथा सारी फौजकी रक्षा की । उसने ढाकाकी राह सदैव दिल्लीसें सम्बन्ध वना रखा । उसने गढगाँवका मार्ग खुला रखनेमे पूरा-पूरा सहयोग दिया, तथा अक्तूबरके आखरी सप्ताहमे बहुत-सी रसद गढगाँव भेजी । धरती सूख जानेके बाद तो मुगल सवारोको रोकना असम्भव हो गया । जयध्वज और उसके सरदार दूसरी बार नामरूपकी पहाड़ियोंकी ओर भाग गए । मीरजुमलाने फिर आक्रमण किया और

सोलापुरी होता हुआ टीपमकी ओर बढा (१८ दिसम्बर)। टीपम तक पहुँचना ही उसका लक्ष्य था। २० नवम्बरको चक्कर आजानेसे वह बेहोश हो गया १० दिसम्वरको उसकी बीमारी बहुत ही बढ गई। सारीमुगल सेनाने अब नामरूपकी ओर बढनेसे इन्कार कर दिया। अपने सेनापतिको छोड घर लौट जानेका भी वे षड्यन्त्र करने लगे।

३. आसामके साथ सन्धि

दिलेरखाँके जरिये अहोमके राजाके साथ सन्धि की गई, जिसकी शर्तें थी .—

(१) जयध्यवज अपनी लडकी और टीपमके राजपुत्रोको मुगल राजदरबारमे भेजेगा।

(२) युद्ध-हानिकी पूर्तिके लिए अहोमका राजा तत्काल ही २०,००० तोला सोना, १,२०,००० तोला चाँदी और २० हाथी मुगल बादशाहकी भेट करेगा। इसके अतिरिक्त मीरजुमला और दिलेरखाँको भी क्रमश. १५ और २० हाथी दिए जावेगे।

(३) बाकी रही युद्ध-हानिकी पूर्तिके लिए अगले बारह महीनोमे तीन लाख तोले चाँदी और ६० हाथी तीन किश्तोमे देगा।

(४) उसके बाद वह प्रति वर्ष २० हाथी टाँकेके रुपमे देगा।

(५) जब तक युद्ध-हानिको पूरी तरह नही चुकाया जावे तब तक बुरहा गुहैन, बर गुहैन, गढगौनिया फुकन और बरपत्र फुकनके पुत्र मीरजुमलाके पास शरीर-बधक रहेगे।

(६) ब्रह्मपुत्राके उत्तरी तटपर भरालीके पश्चिमसे लेकर कलिग नदीके दक्षिणतटपर पश्चिम तकका आसामका प्रदेश मुगल साम्राज्यमे मिला लिया जावेगा। इस प्रकार जगली हाथियोके प्रदेश, दुरग जिलेका आधेसे अधिक भाग मुगलोके अधिकारमे चला गया।

(७) मुगल साम्राज्य (विशेषकर कामरूप) से जिन्हे अहोम कैद कर ले गए थे, उन सब कैदियोको छोड दिया जावे। साथ ही

साथ अहोम राजा द्वारा कैद किए गए बदुली फुकनके बच्चे और स्त्री भी छोड़े जावे ।

५ जनवरी १६६३को अहोमके राजाकी पुत्री, अन्य शरीर-बधक, सोना-चाँदी, और कुछ हाथी युद्ध-हानिकी पूतिके लिए मुग़ल पडाव पर पहुँचे । पाँच दिन बाद मीरजुमला आसामसे वापस लौट पड़ा । हकीमोकी सलाहके अनुसर अन्तमे वह नावमे बैठ कर जल-मार्गसे ढाकाकी ओर चला । परन्तु ३१ मार्च १६६३को मार्गमे ही वह मर गया ।

७. मीरजुमलाके चरित्रकी महानता

सेनाकी चढाईकी दृष्टिसे मीरजुमलाका यह आसाम-आक्रमण पूरी तरह सफल हुआ । उसने राजाको अपमान-पूर्ण सन्धि करनेके लिए बाध्य कर दिया और अपना बहुत-सा युद्ध व्ययभी उससे वसूल कर लिया । सालाना नजरानेके साथ ही आसामका एक बड़ा प्रदेश पानेका वचन भी उसे मिल गया था । इस चढाईका राजनैतिक परिणाम स्थायी नही हुआ, जीते हुए जिलेपर मुगलोका कब्जा कायम नही रह सका, और उसकी मृत्युके चार वर्ष बाद ही गौहाटी भी मुगलोके हाथोसे निकल गया, किन्तु इस सारी विफलताके लिए वह किसी भी तरह दोषी नही था ।

यद्यपि मीरजुमलाकी इस चढाईमे बहुत-से सैनिक काम आए, बीमार होकर वह स्वय मर गया, और कूचबिहार और आसामके जीते हुए प्रदेश भी कुछ ही दिनो बाद अधिकारसे निकल गए, तथापि इस चढाईमे उसका उज्ज्वल चरित्र कसौटीपर कसा जाकर पूरी तरह जगमगा उठा । उस युगके किसी भी अन्य सेनानायकने उसकी-सी मनुष्यता और नीतिके साथ युद्ध-सचालन नही किया और न वैसी कठिनाइयोमे ही अपने सिपाहियो, नौकरो तथा हाकिमोपर उसके समान किसीने अनुशासन रखा । इतनी कठिनाइयो और ख़तरेमे पडकर भी कोई दूसरा नेता उसके समान अपने लोगोंका इतना

विश्वासपात्र और प्रेमपात्र नही हो सका था । बीस मन हीरे का मालिक और बगाल जैसे धनवान प्रदेशका सूबेदार होते हुए भी सामान्य सैनिकके साथ ही युद्धकी सारी असुविधाओ और कठिनाइयोको उसने भी उठाया था । कठिन परिश्रम कर तथा सारे सुख-भोगोको छोडकर ही उसने अपनी मृत्युको आमन्त्रित किया । लूटमार, औरतोकी बेइज्जती और निरीह जनतापर अत्याचर करनेकी उसने सख्त मनादी कर दी थी । उसके आदेश बडे कडे होते थे । अपने आदेशोका पालन करवानेमे वह सदैव सतर्करहता था । पहले अपराधियोको वह कडी सजा देता था, जिससे उसके बाद उस प्रकारके अपराध नही होते थे । अन्य लोगोसे उसकी तुलना करनेपर ही हम उसकी योग्यताको ठीक तरह समझ पाते है । मीरजुमला जैसे चरित्रनायक-को पाकर इतिहासकार तालीशकी लेखनी अपनी सुलभ अलकारपूर्ण भाषामे मीरजुमलाकी प्रशसा करनेके लिए बडी तेजीसे आगे बढ़ती है । किन्तु उस सेनानायकी यह प्रशसा न तो कोरी चापलूसी ही है न अत्युक्तिपूर्ण काव्य-विवरण ही, वह तो पुरुषोके एक जन्मजात नेताके प्रति उचित तथा अत्यावश्यक श्रद्धाजलि-मात्र है ।

८ मुग़लोंका कामरूप खोना; कामरूपके लिए लड़ाई (१६६७--१६८१)

आसाममे मीरजुमलाके जीते हुए प्रदेशोपर सन् १६६७ ई० तक मुगलोका अधिपत्य बना रहा । अहोमोका नया राजा चक्र-ध्वज कुछ समयसे युद्धकी तैयारियाँ कर रहा था । अगस्त, १६६७मे उसने मुगलोके विरुद्ध दो सेनाए भेजी और नवम्बरके प्रारम्भमे उसने गौहाटीपर कब्जा कर लिया[1] इसी गौहाटीमे अब अहोमोके हाकिमने अपना अड्डा जमाया । खोये हुए इस प्रदेशको फिरसे जीत लेनेके लिए मुगलोने कोशिश की, लेकिन बहुत काल तक अव्यवस्थित लडाईके बाद भी मुगलोको कोई सफलता नही मिली । सारी अहोम जाति अब मुगलोके विरुद्ध विद्रोह करनेको उठ खडी हुई, और सुसज्जित

होकर अब जलमार्गोपर भी उन्होने अपना पूरा-पूरा आधिपत्य जमा लिया।

तव तो आम्बेरके राजा रामसिहको विशेषरूपसे आसाममे नियुक्त किया गया। वहाँ पहुचते ही रामसिहने गौहाटीको जा घेरा, परन्तु गौहाटी को जीतनेके उसके सारे प्रयत्न असफल ही रहे। मार्च १६७१ ई० मे वह रगमतीको वापस लौट आया और १६७६ तक उसने कुछ भी नही किया। १६७६ ई० मे उसे वापस दिल्ली लौट जानेकी इजाजत भी मिल गई।

सन् १६७० ई० मे चक्रध्वजकी मृत्युके वाद आपसी झगड़ोंके कारण अहोम राज्यकी शक्ति बहुत ही कम हो गई। फरवरी १६७९ ई० मे अपने प्रतिद्वन्द्वी बुरहा गुहैनके भयसे वर फुकनने गौहाटी शहर मुगलोको सौप दिया। किन्तु १६८१ ई० मे गदाधरसिह अहोमोकी गद्दीपर बैठा और उसने आसानीसे गौहाटीको जीत लिया। वहाँ उसे लूटमे वहुत-सा माल मिला। इस प्रकार अन्तमे कामरूप मुगलोके हाथसे निकल गया। अब वह बगाल सूबेमे नही रहा।

सन् १६६२ ई० मे जव मीर जुमला गढगाँवमे घिरा हुआ था, कूचविहारको वहाँके राजाने वापस जीत लिया और उसने वहाँसे मुगल फौजको खदेड दिया था। शायेस्ताखाँ इस समय वगालका सूबेदार था। मार्च १६६४ मे वह राजमहल पहुंचा, तव कूचके राजाने तत्काल उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और हरजाना भी भी दे दिया। प्राणनारायण १६६६ ई० मे मर गया और उसके वाद लगभग आधी शताव्दी तक राज्यमे लगातार आपसी झगडे चलते रहे, जिससे वहाँका सारा शासन शिथिल हो गया। मुगलोने कूचविहारके दक्षिणी और पूर्वी प्रदेशोको भी अपने अधिकारमे कर लिया। कूचके राजा को वाध्य होकर मुगलोकी इस विजयको स्वीकार कर लेना पडा तथा सन् १७११ ई० की सन्धि द्वारा ये प्रदेश मुगल साम्राज्यमे सम्मिलित कर लिए गए।

६. चटगाँवके समुद्री डाकू और बंगाल में उनके उपद्रव

चटगाँवके जिलेको लेकर अनेको शताब्दियो तक बगालके मुसलमान शासको और अराकानके मगोल राजाओमे बहुत ही कशमकश होती रही थी। ईसाकी १७वी शताब्दीके प्रारम्भमे फेनी नदीको दोनो राज्योकी सीमा मान लिया गया। परन्तु उसके वाद जहाँगीरके ढीले-ढाले शासन तथा उसके उत्तराधिकारी शाहजहाँके विद्रोहके कारण बगालमे मुगलोकी सत्ता घट गई। उधर अराकानियोके बेडेमे कई विदेशी नाविक आ मिले। ये पुर्तगाली फिरगी या उनकी अधगोरी सन्तान चटगाँवमे बसकर वहाँके राजाकी स्वामिभक्त प्रजा बन गए थे, और अराकानियोके जल-बेडेमे नाविक बनकर उनके भरती होनेसे १७वी शताब्दीके उत्तरार्द्धमे इस नाविक बेडेकी शक्ति बहुत बढ गईथी। पूर्वी बगालके सारे नदी-नालो तथा जल मार्गोपर माघोका ही पूरा-पूरा आधिपत्य हो गया।

अराकानके इन समुद्री डाकुओमे माघ और फिरगी दोनो ही शामिल थे। वे हमेशा जलमार्गसे आकर बगालमे लूटमार करते थे। बगाल दिनोदिन उजाड होता जा रहा था और उनसे अपनी रक्षा करनेकी शक्ति भी निरन्तर कम होती जा रही थी। फिरगी लुटेरे अपनी लूटके मालका आधा हिसा अराकानके राजाको देकर बाकी रहा आधा भाग खुद रख लेते थे। ये लोग 'हरमद' के नामसे ही प्रख्यात थे। यह 'हरमद' शब्द जहाजी बेडेके लिए पुर्तगाली शब्द 'आरमडा' का ही अपभ्रश था। इन लोगोके जहाजी बेड़ेमे युद्ध-सामग्रीसे भरे हुए तेज चलनेवाले कोई १०० जहाज़ थे।

पूर्वी बगालमे नदी किनारेके प्रदेश उजाड और निर्जन हो जानेसे साम्राज्यकी आमदनी भी बहुत घट गई। राज्य-मर्यादाको भी असहनीय धक्का पहुँचा। प्रान्तकी रक्षाके लिए चटगाँवके इन सामुद्रिक लुटेरोको हराना अत्यावश्यक होगया।

मीरजुमलाके आरम्भ किए हुए कामको पूरा करनेके लिए शायेस्ताखाँको आज्ञा दी गई। ऊपरी दृष्टिसे उसका यह कार्य

निराशाजनक और असम्भव-सा ही प्रतीत होता था । मुगल साम्राज्य-का एक जहाज़ी वेडा वगालमे रहता था । परन्तु शाहजादा शुजाके अव्यवस्थित शासन-कालमे अफसरोंकी बेपरवाहीके कारण इस वेड़ेकी दशा बिगडती ही गई । वादमे मीरजुमलाने जव आसामपर चढ़ाईकी तव यह वेड़ा विलकुल ही वरवाद हो गया था । मुगल साम्राज्यके लिए एक नया सुसज्जित जहाजी वेड़ा वनाना ही शायस्ताखॉका पहला काम था । उसने इस कामकी ओर अब ध्यान दिया । उसकी महत्त्वाकांक्षा और उत्साहके कारण सारी कठिनाइयॉ दूर हो गई । नये जहाज वनाए गए और केवल एक वर्षके ही थोडे-से समयमे एक नई सामुद्रिक सेना लड़ाईके लिए पूरी तरह सुसज्जित कर दी गई ।

सन्दीप नामक टापू सग्रामगढ और चटगॉवके वीचोवीच स्थित है । नवम्वर १६६५ मे आक्रमण कर मुगलोने उसे जीत लिया, और वहॉ एक मुगल फौज तैनात कर दी गई । मुगलोंकी मातहतीमे नौकरियॉ देनेका प्रलोभन देकर शायेस्ताखांने फिरगियोको भी अपनी ओर मिला लिया । अराकानी और फिरगियोमे वड़ा झगड़ा हुआ, जिसमे कई एक फिरंगी मारे गए, एवं चटगॉवमे रहनेवाले सारे फिरंगी दिसम्वर १६६५मे अपना असवाव और कुटुम्वियोंको लेकर मुगल प्रदेशोंमे चले आए । उनके मुखियाओको वड़ी-वडी तनख्वाहे देकर मुगलोने उन्हे अपने जहाजी वेडेमे रख लिया । फिरगियोंके इस प्रकार मुगलोके पक्षमे आ जाने से उपद्रव वंद हो गए और वगालके लोगोंकी जानमे जान आई ।

१०. मुग़लोंका चटगॉव जीतना

शायेस्ताखॉका लडका, वुजुर्ग उम्मेदखॉ एक वड़ी [illegible]
२४ दिसम्वर १६६५ ई० को ढाकासे चल पड़ा । [illegible]
किनारे-किनारे थल-मार्गसे अराकानकी ओर [illegible]
शाही जहाजी वेडा लेकर इब्नहुसैन उसके [illegible]
दूसरेकी सहायता करता हुआ चला जा [illegible] एक

दलने फरहादखाँके नायकत्वमे आगे बढकर १४ जनवरी १६६६ ई० को फेनी नदी पार की और वह अराकान प्रदेशमे जा पहुँचा ।

मुगल जहाजी बेडेका प्रधान सेनापति २३ जनवरीको कुमरियाकी खाडीमेसे निकला और उसी दिन उसका सामना करनेके लिए दुश्मनोका जहाजी बेडा कठालियाकी खाडीसे निकल कर आगे बढा । दोनो बेडोकी मुठभेड हो गई । मुगल बेडेके आगेके जहाजोपर फिरगी डटे हुए थे, उन्होने ऐसे जोरसे हमला किया कि उसीसे इस जहाजी युद्धका नतीजा स्पष्ट हो गया । गुर्राबोमे बैठे हुए माघ नावे छोडकर समुद्रमे कूद पडे और उन गुर्राबोपर मुगलोने अधिकार कर लिया । जालियावाले माघ भाग खडे हुए ।

किन्तु दुश्मनोके बडे-बडे जहाज हुरलाकी खाडीमे होते हुए अब खुले समुद्रमे आ गए ।

दूसरे दिन सुबह मुसलमानोको दूसरी बड़ी विजय मिली । वे गोलियोकी वर्षा करते हुए दुश्मनको खदेडते आगे बढ गए । अराकानी जहाजी बेडा आगे बढनेवाले मुगल बेडेपर गोलियाँ चलाता हुआ पीछे हटने लगा और कर्णफूली नदीकी ओर लौटा । तीसरे पहर कोई तीन बजे नदीके मुहानेमे घुसकर अराकानियोने चटगाँवसे एक कतारमे खड़ाकर युद्धकी तैयारी की । साथ ही उन्होने इसी नदीके सामनेवाले किनारेपर बासोकी तीन बाड़े बनाए । किन्तु इब्नहुसैनने अपने बहुत-से जहाज पहिले ही नदीमे ऊपर भेज दिए थे, थल-मार्गसे भी हमलाकर उसने उन तीनो बाडोपर कब्जा कर लिया ।

अब तो मुगल इन सफलताओसे उत्साहित होकर दुश्मनोके जहाजोपर टूट पड़े । एक घमासान लडाई छिड गई । चटगाँवके किलेपरसे भी मुगलो पर गोला-बारी होने लगी । किन्तु अन्तमे दुश्मनोको मुगलोने मार भगाया । दुश्मनोके बहुत-से नाविक तैरकर भागे और यो उन्होने अपनी जान बचाई । किन्तु बाकी सारे नाविक या तो मार डाले गए, अथवा उन्हे कैदी बना लिया गया । कोई

१३५ जहाज विजेताओंके हाथ लगे। २५ जनवरीको चटगाँवके किलेको मुगलोंने जा घेरा। दूसरे दिन २६ जनवरीको सुबहमें यह किला इब्नहुसैनके अधिकारमें आ गया।

इसी बीच २३ जनवरीको मुगलोंके जहाजी बेड़ेको आगे बढ़नेका समाचार पाते ही फरहादखाके मातहतकी मुगल फौज भी घने जंगलोंमें होकर चटगाँवकी ओर बढ़नेका भरसक प्रयत्न करने लगी। उसके आगे बढ़नेपर माघ लोगोंने भी राहमें पड़नेवाले अपने सारे नाके छोड़ दिए। फरहादखाँ स्वयं तारीख २६को चटगाँव पहुँचा और दूसरे ही दिन इस विजयी सेनापतिने उस किलेमें प्रवेश किया। मुगलोंकी इस विजयका सबसे गौरवपूर्ण एवं सुखद परिणाम यह हुआ कि बंगालके जिन हजारों किसानोंको अराकानी समुद्री डाकू कैद कर ले गए थे और जिन्हें उन्होंने दास बना रखा था, वे अब स्वतन्त्र होकर अपने घरोंको वापस लौट आए। सूबेमें खेती और पैदावारीके बढ़ जानेसे बंगालको बहुत लाभ पहुँचा। चटगाँवमें मुगल थाना स्थापितकर वहाँ एक मुगल फौजदार नियुक्त किया गया, तथा उस शहरका नाम चटगाँवसे बदलकर इस्लामाबाद रखा गया।

११. अफ़गान, उनका चरित्र तथा मुगल साम्राज्यके साथ उनका सम्बन्ध

सारे इतिहास मे कही भी हमे अधिक काल तक बने रहनेवाले उनके किसी बडे सुसगठित राज्यकी स्थापना करनेका वर्णन नही मिलता है, और न उन विभिन्न जातियोके किसी सुचालित सघकी स्थापनाका विवरणही उनमे पाते है।

वे कभी किसी प्रकार का कोई राष्ट्र-निर्माण नही कर सके, उनका सगठन जातीय सगठनसे अधिक नही हुआ, और उनके इस जातीय सगठनमे राजपूतोके समान ही कड़े अनुशासनकी पूरी-पूरी कमी होती है। अफरीदी या यूसुफजाई जातिवाले केवल अपने-अपने मुखियाओकी ही बात सुनते है, और वह भी केवल तभी जब या तो उससे उनका स्वार्थ सधता हो या अन्य किसी कारणवश ऐसा करनेको वे राजी हो गए हो। विभिन्न कुटुम्बोके निरन्तर बनने और टूटनेवाले इन दलोके अतिरिक्त किसी भी अफगान जातिकी सुरक्षा तथा उनकी ओरसे आक्रमण करनेके लिये किसी भी प्रकारकी कोई दूसरी सेना नही होती है। किसी भी जातिके मुखियाकी सत्ता केवल नाममात्र-की होती है, और जब तक उस जातिवाले स्वेच्छासे उसे मुखिया मानते है, तब तक ही उसकी कुछ चलती है। अफगान समाजमे सारी शक्ति विभिन्न परिवारोमे ही सीमित होती है, जातीय सगठन भी उनमे नही पाया जाता है।

ये जगली अफगान मेहनती, साहसी तथा साथ ही चालाक भी होते है, उनका एकमात्र वश-परम्परागत व्यवसाय होता है उन पहाडी मार्गोपर लूटमार करना। उनकी निरन्तर बढती हुई आबादीके लिए खेतीसे होने वाली थोडी-सी आमदनी किसी भी प्रकार पूरी नही पडती है। अपने पड़ोसवाले अधिक कमाऊ व्यक्तियो तथा पासकी ही राहपरसे होकर गुजरनेवाले धनी यात्रियो-को लूटकर एकबारगी तथा आसानीसे जो आमदनी हो जाती थी उसकी तुलनामे खेती-बाड़ीसे होने-वाले लाभ बहुत ही कम तथा बड़ी देरीसे प्राप्त होते थे। उन पहाड़ोमे बसनेवाली अफरीदी, शिनवारी, यूसुफजाई और खटक जातियोको भारतसे काबुल आने-

जानेवालोंसे कर वसूल करनेका अधिकार था, यह बात मुगलोने भी स्वीकार कर ली थी। दीर्घकालीन अनुभवके बाद मुगलोने देखा कि उस प्रदेशमे शन्ति बनाए रखनेके लिए सैनिक शक्ति द्वारा इन जातियोको नियन्त्रणमे रखनेकी अपेक्षा उन्हे रुपये-पैसे देकर वशमें करना अधिक सरल था। राजनैतिक कारणोंसे बाध्य होकर यो द्रव्य दे-दिलानेपर भी कई बार उनसे आज्ञा पालन करवानेमे कठिनाई ही होती थी। यदा-कदा उनमेसे कोई न कोई झूठ-मूठ ही अपने को राजकीय या किसी पवित्र घरानेका वशज घोषित करके मुखिया बन जाता था। अपने ही खर्चसे नवयुवाओके दलोको खिलापिलाकर वह उन्हे सगठित करता और फिर अचानक विपक्षी कुनबोके खेतोपर आक्रमण कर बैठता या कभी शाही इलाकोंमे भी लूटमार करता था। जब तक यह लूटमारका तॉता न टूटता तब तक उस दलका सगठन टूटने नही पाता था। किन्तु ज्योही वे या तो बेकार होजाते या लूटमारकी सामग्रीके बंटवारेको लेकर उनमे मतभेद हो जाता तभी ये आपसमे लड़ जाते थे और साथ ही वह दल भी बिखर जाता था* ।

पूरी तरह अपनी सत्ता स्थापितकर अपनी प्रजाकी सुरक्षाके लिए शक्तिशाली मुगल बादशाह, जहॉ ये जातियॉ बसती हैं, उन घाटियोमे अपनी बडी-बड़ी सेनाऐं भेजकर उन जातियोके दलोंके सगठित विद्रोह दबाकर उनके घरोको बरबाद करवा देता था। समतल मैदानोपर सैनिक थानोको स्थापितकर वहॉ अधिकार स्थायी बनानेका प्रयत्न किया जाता था। अफगानोंकी खेती उजाड़ दी जाती और अनेको अफगानोंको तलवारके घाट उतारकर उनकी सख्या कम कर दी जाती थी। यदा-कदा कमजोर थानोंपर आक्रमणकर ये अफगान वहॉके मुगल सैनिकोको मार डालते थे। सरदीके मौसममें

---

*यूसुफ़ज़ाई जातिके एक सन्तने अपनी जातिको एक साथ ही वरदान और अभिशाप देते हुए कहा था कि "तुम हमेशा स्वतन्त्र रहो, और कभी संगठित न होओ" (एल्फस्टन, पृ० २३८)।

ये थान उठा लिए जाते थे, और ज्योही बसन्त ऋतु शुरू होती अफगानों-को दबानेका काम फिर प्रारम्भ हो जाता ।

कुछ ही वर्षोमे अफगानोकी यह आवादी फिर वढ जाती थी, जिससे मुगलो द्वारा मारे गए अफगानोकी सख्या पूरी हो जाती । तब पुन अफगानोके दलके दल पास-पडोसके प्रदेशो या व्यापारियोके कारवॉपर भूखे भेडियोकी नाई टूट पडते ।

फरवरी १६८६ ई० मे मुगल सेनाको पहली वार ऐसी हानि उठानी पडी । उस समय राजा वीरवल और उसके साथके कोई, ८,००० मुगल सैनिक स्वातकी घाटीमे मारे गए । अन्त मे विवश होकर बादशाहने इद जातियो द्वारा की जानेवाली लूटमारकी उपेक्षा कर उनके मुखियोके साथ सन्धि कर उन्हे प्रति वर्ष द्रव्य देनेका वादा किया । जहॉगीर और शाहजहॉके समयमे भी यही प्रवन्ध चलता गया ।

१२ यूसुफजाइयोका विद्रोह, १६६७ ई०

सन् १६७६ ई० मे यूसुफजाइयोने आसपासके प्रदेशोपर अधिकार करनेका प्रयत्न किया । उनके महान् व्यक्तियोमे भागू नामक एक व्यक्ति था । उसने एक व्यक्तिको झूठ-मूठ ही पुराने राजघराने का वशज बताकर मुहम्मदशाहके नामसे गद्दीपर बिठाया । भागूने उसका वजीर बनकर चढाईके लिए एक बडी फौजका सगठन किया । अटकके पास उसने सिन्धु नदी पार कर हजारा जिलेपर चढाई की । वहॉके स्थानीय शासक शादमनको जीतकर उस प्रदेशके किसानोसे उसने लगान वसूल किया । यूसुफजाइयोके एक दूसरे दलने पश्चिमी पेशावरके शाही इलाको और अटक जिलेमे लूटमार करना आरम्भ कर दी ।

बादशाहने शाही इलाकोकी रक्षाके लिए पूरा-पूरा प्रबन्ध किया और हुक्म दिया कि शाही सेनाके तीन दल आक्रमण-कारियोके प्रदेशपर आक्रमण करे । १ अप्रेल १६६७को अटकके फौजदार कामिलखॉने शत्रुओपर आक्रमण कर उन्हे नदी तक मार भगाया । इस प्रकार सिन्धु नदीके आसपासवाले शाही इलाकेमे शत्रु न रहे ।

अफगानिस्तानसे शाही सेनाके एक दलको लेकर शमशेरख़ाँने मईमे सिन्धुको पार किया। यूसुफजाइयोंके प्रदेशमे पहुँचकर उसने शाही सेनाके प्रधान सेनापतिका काम संभाल लिया। उसने उनसे अनेक लड़ाइयाँ लड़ी, तथा कईमें उसे पूरी विजय भी मिली। मंदौर की तलाईवाले प्रदेशमे खेती कर वहाँ यूसुफजाई धान पैदा करते थे। शमशेरखाँने इस प्रदेशपर अधिकार कर लिया और वहाँ यूसुफजाइयोकी सारी खेती, मकान तथा अन्य जायदाद नष्ट कर दी। पजशिर नदीके तीरपर मसूर नामक स्थान तक उसने शत्रुओंको भगा दिया (२८ जून १६६७ ई०)। इसके कुछ ही समय बाद मुहम्मद आमीनखाँको यहाँकी शाही सेनाका प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया, एव अगस्तके अन्तमे शमशीरख़ाँके सारे अधिकार मुहम्मद आमीनख़ाँने सम्हाल लिये। इस तरह अनेकानेक बार बुरी तरह हार खाने और इतनी हानि उठानेके बाद इस समय तो यूसुफजाई कुछ समयके लिए दब गए और इस पश्चिमोत्तर इलाकेमे १६७२ ई० तक उनका फिर कोई बड़ा बलवा नही हुआ।

१३. अफ़रीदी और खटकोंका विद्रोह, १६७२ ई०; मुगल सेनापतियोंपर विपत्तियाँ

१६७२ ई० मे जलालाबादके फौजदारके मूर्खतापूर्ण व्यवहारसे खैबरकी इन जातियोमे बड़ा ही असन्तोष फैला। अपने सेनापति अकमलख़ाँके नेतृत्वमे अफरीदियोने विद्रोह कर दिया। अकमलख़ाँ एक जन्मजात सेनापति था। उसने अपने आपको शाह घोषित कर दिया और इस जातीय आन्दोलनमे सम्मिलित होनेके लिए उसने सब पठान जातियोको आमन्त्रित किया। खैबरकी घाटीकी राह भी उसने बन्द कर दी।

१६७२ ई० की वसन्तमे अफगानिस्तान का सूबेदार मुहम्मद आमीनख़ाँ अपनी सेनाके साथ पेशावरसे काबुलके लिए रवाना हुआ: उनके कुटुम्बी और उनका घरेलू सामान भी इस समय उनके साथ

था। जमरूदमे उसे पता लगा कि अफरीदियोने आगे मार्ग रोक रखा था। फिर भी उसने अफगानोकी शक्तिकी अवज्ञाकी और आँख मीचकर वह अपने सर्वनाशकी ओर वढता ही गया। अली मसजिद पहुँचा और २१ अप्रेलके दिन उसने मोर्चा बनाकर खाइयाँ खुदवाई और वही पडाव डाला। जहाँसे इस पडावके लिए पानी लाते थे, रात्रिके समय अफरीदियोने उसका रास्ता भी रोक दिया। दूसरे दिन अफगानोने पड़ावकी ओरसे उतरकर मुगल सेनापर आक्रमण किया, और सारी मुगल सेनाको मौतके घाट उतार-कर उन्होने मुगल पडावको लूट लिया।

मुहम्मद आमीनखाँ और उसके कुछ उच्च पदाधिकारी किसी तरह अपनी जान बचाकर वहाँसे भाग निकले और पेशावर जा पहुँचे। परन्तु इस बार वहाँ उन्होने अपना सर्वस्य गँवाया। जुर्मानेके रूपमे एक बहुत वडी रकम देकर आमीनखाने अपनी माँ, स्त्री और पुत्रीको छुडाया। इस असाधारण विजयसे अफरीदी नेताकी ख्याति फैल गई। अब उसके साधन भी बढ गए, और दूर-दूर प्रदेशोके लोग आ-आकर उसकी सेनामे भरती होने लगे।

अफगानोकी एक जाति खटकोकी भी है। इस जातिवालोकी सख्या बहुत है, एव वे बहुत युद्ध-प्रिय होते है। खटकोकी यूसुफ-जाइयोके साथ खानदानी दुश्मनी थी। खटकोका प्रधान नायक खुशालखाँ बडा कवि था। निडर बनकर शाही सत्ताका विरोध करनेके लिए वह वर्षोसे अपनी जातिको उत्तेजित कर रहा था। १६६७ ई० मे यूसुफजाइयोपर आक्रमण करनेमे उसने मुगलोका साथ दिया था। परन्तु अब वह अकमलसे मिलकर अफगानोके इस आन्दोलनका प्राण-स्वरूप नेता बन गया। अपनी वीर-रसवाली कविताओके साथही साथ अपने अदम्य साहस तथा अनोखे शूरतापूर्ण कार्योसे भी वह अपने साथी-सैनिकोको उतेजित कर रहा था।

यह विद्रोह अब सारे अफगानोका एक जातीय आन्दोलन बन गया था, जिससे पठानोके उस सारे देशपर उसका बहुत प्रभाव पडा।

इस विद्रोहके नेतागण मुगल सेनाके साथ हिन्दुस्तान और दक्षिणमे रह चुके थे, एव शाही फौजके संगठन, योग्यता व सचालन-चतुरतासे वे पूरी तरह परिचित थे। अफगानी बड़े ही परिश्रमी होते है और वे अपने पहाडी देशमे सदैव लड़ा करते है, इस कारण युद्ध-विद्यामे वे हर प्रकारसे इन मुगलोसे श्रेष्ठ थे।

आमीनखाँकी इस हारका हाल सुनते ही बादशाहने पेशावरको अफगानी आक्रमणोसे बचानेके लिए पूरा प्रबन्ध किया। मुहम्मद आमीनखाँ पदच्युत कर दिया गया। महाबतखाँ पहले भी सफलतापूर्वक इस जातिको हरा चुका था, एव अब उसे फिरसे बुलाया गया और चौथी बार वह काबुलका शासक नियुक्त हुआ। आमीनखाँकीसी जल्दबाजी कर वैसी ही आपत्ति अपने सिरपर लेनेका साहस महाबतखाँको भी नही हुआ और खैबरका मार्ग पहले जैसा ही बन्द रहा। इस कारण बादशाह उससे बहुत नाराज हो गया और उसने स्वतन्त्र रूपसे एक बड़ी फौज, अन्य युद्ध-सामग्री और तोपखानेके साथ शुजाअतखाँको भेजा (१४ नवम्बर १६७३)। जसवन्तसिहको आज्ञा हुई कि वह भी उसकी मदद करे। परन्तु शुजाअतखाँने जसवन्तकी सलाह ठुकरा दी और अपनी मनमानी की, जिससे १६७४ ई० मे इस शाही सेनाका सर्वनाश हुआ।

शुजाअतखाँ कड़ापाकी घाटी चढा (२१ फरवरी)। उस रात बहुत अधिक पानी और बर्फ गिरा था। प्रात कालमे अफ़गानोने सरदी-पानीसे पीड़ित इस शाही सेनापर सब ओर से हमला किया। शुजाअतखाँ यह भूलकर कि वह एक सेनापति था, सेनाके आगेके भागमे जा पहुँचा और वही एक सैनिकके समान लड़ता हुआ मारा गया। जसवन्त द्वारा भेजा हुआ ५०० राठौड़ोका दल बची हुई मुगल सेनाको एकत्रित कर वापिस पड़ावपर ले आया।

शाही सेनाकी प्रतिष्ठाको पुनः स्थापित करनेके लिए स्वयं औरंगजेब रावलपिण्डी और पेशावरके बीचमे स्थित हसन अब्दाल नामक स्थानपर गया (२६ जून १६७४), और वहाँसे ही साम्राज्य-

के शासनका काम कोई डेढ वर्ष तक सम्हालता रहा । समस्त युद्ध-सामग्रीसे सुसज्जित दृढ़ सेनाओके जत्थे शत्रुओके देशमे भेजे गए । जुलाई महीनेमे अगरखांको दक्षिणसे बुलाकर खैबर घाटीका रास्ता साफ करनेका काम उसे सौपा ।

घटना-स्थलपर औरंगजेबके स्वयं पहुँच जानेसे अब मुगलोकी राजनैतिक चालो और शाही सेनाके सारे प्रयत्नोको सफलता मिलने लगी । बहुत ही थोडे समयमे मुगल सेनाने गौराई, गिलजाई, शीरानी और यूसुफजाई जातियोको बुरी तरह हराकर उन्हे उनके गाँवोसे भी निकाल बाहर किया । अगस्तके अन्तिम दिनोमे दरियाख़ाँ अफरीदीके साथियोने वादा किया कि यदि उनके पिछले अपराधोके लिए उन्हे माफ कर दिया जावेगा तो वे अफरीदी नेता अकमलका सिर काट ले आवेगे ।

इसी अरसेमे अगरख़ाँने खैबर घाटीके रास्तेको चालू कर देनेका प्रयत्न किया, परन्तु अली मसजिदके पास बडी देर तक युद्ध हुआ; अन्तमे हारकर उसे यह प्रयत्न छोड देना पड़ा । अब उसने नग्रहारपर अधिकार कर लिया और वहाँसे मार्ग खुला रखनेकी चेष्टा की । गिलजाइयोको उसने बारबार हराया और अन्तमे वे जगदलककी घाटीसे बाहर निकाल दिए गए ।

१६७५ ई० के बसन्तमे जब फिदाईख़ा पेशावरको लौट रहा था, तब अफगानोने जगदलक घाटीमे उसपर आक्रमण किया । फिदाईख़ाँकी सेनाका हरोल हार गया । परन्तु फिदाईख़ाँ की धीरता और साहसके कारण ही उसकी सेनाका मध्य भाग बच सका । इस समय अगरखाँ गडमक मे था, वह फुर्तीके साथ फिदाईख़ा की सहायताके लिए जा पहुँचा, और उसने आसपासके पहाड़ियोकी चोटियोपरसे शत्रुओको मार भगाया ।

जूनके आरम्भमे मुर्करमख़ाँ एक बडी सेनाके साथ साथ अफगानोका पीछा कर रहा था, तब बजौर प्रदेशमे खपुशके पास अफगानोने उसे बुरी तरह हराया ।

शीघ्र ही बदला लेनेके उपाय किए गए। अफ़गानिस्तानमें स्थित सारे मुगल थानोंमे सेना और युद्ध-सामग्री भेजकर उन्हें सुरक्षित तथा सुदृढ बनाया गया।

अगस्तके अन्तमे मुगल सेनाकी दो और हारोंके समाचार मिले, जो बहुत ही साधारण और नगण्य थी। परन्तु पठान प्रदेशमे, युद्धकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण सारे स्थानोपर किले और थानोपर अपनी सेना रख मुगलोने उस प्रदेशपर अपना आधिपत्य बनाए रखा। १६७५ ई० के अन्त तक स्थिति काफी सुधर गई थी एवं तब बादशाह अब्दालसे दिल्लीको लौट गया।

१४. अफ़गानिस्तानपर अमीरखांका सुयोग्य शासन, १६७८--१६९८

खलीलुल्लाके पुत्र मीरखाने शाहबाजगढीके यूसुफ़जाइयों को दण्ड देकर तथा बिहारमे दो अफगान विद्रोहियोको दबाकर अपनी योग्यताका परिचय दिया था। १६७५ ई० मे उसे अमीरखाकी पदवी मिली और १९ मार्च १६७७ ई० को वह काबुलका सूबेदार बनाकर वहाँ भेजा गया। उसने ८ जून १६७८ को अपना पद ग्रहण किया और मृत्यु-पर्यन्त २० साल तक बड़ी ही योग्यताके साथ वह अफगानिस्तानपर शासन करता रहा। वह अफगानोके हृदयपर शासन करने लगा तथा उसने उनके साथ सामाजिक सम्बन्ध भी स्थापित किए। वह अपने इन प्रयत्नोमे इतना सफल हुआ कि कबीलोके मुखिया अपनी शर्मीली और दूर रहने की आदते छोडकर बिना किसी सदेह या हिचकके उससे मिलने-जुलने लगे। वे उसके घनिष्ट मित्र हो गए। अपने कौटुम्बिक मामलोको भी सुचारु रूपसे चलानेके लिए वे उसकी सलाह लेने लगे। उसके कुशल राज्य-प्रबन्धमे उन्होंने शाही सत्ताको सताना छोड़ दिया और एक दूसरे का नाश करनेवाले पारस्परिक युद्धोमे ही अपना समय गँवाना भी उन्होने बन्द कर दिया। एक बार उसने अकलमके जत्थेको भी तोड़नेके लिए उसके अनुचरों

को गुप्त रूपसे उकसाया कि वे जीती हुई जमीनका वटवारा करनेके लिए उससे कहे। इस प्रकार अकमल और उसके साथियोमे विरोध उत्पन्न हो गया। अकमलने यह कहकर कि इतना छोटा प्रदेश इतने व्यक्तियोमे कैसे बाँटा जा सकता है, उस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया। निराश पहाडी सैनिक उसका साथ छोड क्रुद्ध होते हुए अपने-अपने घरोको लौटने लगे। अन्तमे विवश होकर अकमलको उस जमीनका बँटवारा करना ही पडा। परन्तु उस बँटवारेमे उसने अपने सम्बन्धियो और जाति-भाइयोका ही अधिक ध्यान रखा, इसलिए उसके दूसरे साथी हताश हो गए और पडाव छोडकर चले गए। अमीरखाँकी राज्य-व्यवस्था सम्बन्धी अधिकाश सफलता वास्तवमे उसकी ही पत्नी साहिबजीकी बुद्धिमत्तापूर्ण सलाह, चतुरता और कर्मशीलताके कारण हुई थी। अमीरखाकी यह पत्नी अली-मर्दानकी पुत्री थी।

अन्तमे अफगानिस्तानमे वादशाह पूर्णतया सफल हुआ। उसने अफगानोको रुपया देने तथा एक जातिको दूसरीसे लडा देनेकी नीति अगीकारकी थी। औरगजेबके शब्दोमे दो हड्डियोको तोडनेके लिए ही वह उन्हे यो परस्पर टकराता था। अब मुगल साम्राज्यके शाही प्रदेशोपर सीमान्तकी ओरसे कोई आक्रमण नही होते थे। एक नियमित रकम पहाडियोको देकर खैबरका मार्ग खुला रखा जाता था। अमीरखाँकी नीतिने अकमलके अनुयायियोमे फूट पैदा कर दी। अपने आपको शाह कहलानेवाला वह व्यक्ति जब मर गया तब अफरीदियोने मुगल साम्राज्यसे सन्धि कर ली।

❀ कलिमात्० (पृ० १६ ब) मे औरगजेबने मृत अमीरखाकी शासन-व्यवस्था सबन्धी तरीकोका वर्णन करते हुए बताया है कि वह एक न्यायी सूबेदार था और दूसरोके साथ व्यवहार करनेमे वह चातुर्य तथा युक्तिसे किस प्रकार काम वह लेता था। खर्चके लिये स्वीकृत रकमसे बचत निकालकर किस प्रकार वह घाटियोके रास्तोको आवागमनके लिए

न झुकने वाला स्वतन्त्रता-प्रेमी दृढ-निश्चय खुशालखाँ खटक अनेक वर्ष बाद तक किसी भी प्रकार इस विद्रोहको चलाए गया। बगष, यूसुफजाई जातिवाले और उसका पुत्र अशराफ भी मुगलोकी ओरसे उसके ही विरुद्ध लड़ रहे थे। पर न तो आती हुई वृद्धावस्था और न अपने पक्षको निरन्तर बढनेवाली निराशापूर्ण विवशता ही उसके कट्टर और दृढ स्वभावको बदलनेमे समर्थ हुई। वह अकेला ही पठानोकी स्वतन्त्रताके झण्डेको ऊँचा उठाए रहा। अन्तमे उसके पुत्रने ही धोखा देकर उसे शत्रुओके हवाले कर दिया। अपने देशसे सैकडो कोसो दूर, शत्रुके किलेमे कैद वह वीर तब भी उत्साहपूर्ण स्वरोमे गरज उठता था—

"मै वह व्यक्ति हूँ, जिसने औरगजेबके हृदयको बुरी तरह आहत किया, और मेरे ही कारण मुगलोको खैबरका सौदा अत्यधिक मँहगा पडा।

इस अफगान-युद्धके कारण ही कुछ वर्षो बाद होनेवाले राजपूत-युद्धमे मुगलोको अफगानोसे कोई भी सहायता नही मिली। पश्चिमोत्तर सीमापर मुगलोको निरन्तर अपनी चुनी हुई सेनाएं भेजनी पड़ती थी, जिससे दक्षिणमे शिवाजीके विरुद्ध जानेवाली सेनाएँ चाहिए वैसी अच्छी नही थी। मुगल सेनाओके इस प्रकार बँट जानेका मरहठोके नेताने पूरा-पूरा लाभ उठाया और एकके बाद दूसरी यों अनेको आश्चर्यजनक सफलताए प्राप्त की। दिसम्बर १६७६ ई०

खुले रखता था। किस प्रकार अनेको पहाडी अफगानोको शाही सेनामे जगह देकर वह उन्हे अपने लिए उपयोगी नौकर बना लेता था शाही खजानेसे, अपनी निनी जेबसे या अनियमित रूपसे वसूल किए हुए द्रव्य-मेसे बहुत-सा रुपया उन्हे रिश्वतमे देता था। (पृ० ११ ब)। २५ अक्तूबर १६८१ ई० को अमीरखाका एक पत्र औरगजेबको मिला, जिसमे लिखा था—"मार्ग-रक्षाके लिए अफगानोको छ लाख रुपया देनेकी सरकारकी ओरसे मंजूरी थी। मैने उसमेसे शिर्फ डेढ लाख रुपया खर्च किया है, और बाकी रहे साढे चार लाख रुपयोकी बचत हो गई।"

के बाद कोई पन्द्रह महीनोके समयमे शिवाजी गोलकुण्डाके राज्यये होकर कर्नाटक पहुँचा और वहाँसे मैसूर और बीजापुर होता हुआ वापस रायगढ़ लौट आया। शिवाजीके जीवनका यह काल अत्यधिक सफलतापूर्ण रहा और उसकी इन सफलताओमे कोई वाधा न होने देनेमे अफरीदियो तथा खटकोका पूरा-पूरा हाथ रहा था।

अध्याय ८

औरंगजेबकी धार्मिक नीति और उसके प्रति हिन्दुओंकी प्रतिक्रिया

अनुयायीको ईश्वरीय मार्गमे *जिहाद (कोशिश) ही उसका सबसे प्रधान एव महत्वपूर्ण कर्तव्य बताया गया है। काफिरोके देश (दार्-उल्-हर्ब) मे युद्ध करके इसको उस समय तक चलाए जाना चाहिए, जब तक कि वह इस्लामी राज्यके दायरे) दार्-उल्-इस्लाम (में पूर्णरूपसे शामिल नही हो जावे। धार्मिक एव राजनैतिक सिद्धान्तोके अनुसार ऐसी विजयके बाद उस देशके काफिरोकी सारी आबादी जीतनेवालोकी गुलाम बन जाती है।

सम्पूर्ण जनसमाजको इस्लाम धर्ममे दीक्षितकर उसका धर्म परिवर्तन करना और हर प्रकारके धार्मिक मतभेदोको मिटा देना ही मुसलमानी राज्यका आदर्श है। किसी भी मुसलमानी समाजमे कोई काफिर रहने दिया जाता है तो केवल इसी कारण कि इस दोषको मिटाना तब सम्भव नही हो। ऐसी परिस्थिति केवल कुछ ही कालके लिए रह सकती है। ऐसे विधर्मीको राजनैतिक तथा सामाजिक अधिकारोसे वचित किया जाना चाहिए कि शीघ्र ही उस व्यक्तिको वह अनोखी आध्यात्मिक ज्योति प्राप्त हो जावे और उसका नाम भी सच्चे मुसलमान धर्मावलम्बियोमे लिखा जा सके*।

---

* जिहाद-फी-सबील्-उल्लाह (कुरान, IX, २९) जिहादके लिए देखो—ह्यज़, पृ० २४३, २४८, ७१०; इंसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, १,१०४१। "और जब पवित्र माह समाप्त हो जावे, तब उन सारे व्यक्तियोको जो ईश्वरके साथ अन्य देवोका भी नाम जोड़ते हैं, जहाँ मिलें, मार डालो। ...पर यदि वे धर्म परिवर्तन करते हो तो उन्हे छोड़ दो और उन्हें अपनी राह जाने दो।" (कुरान, IX, ५,६)। 'उन विधर्मियोसे कहो कि यदि वे अपना अविश्वास छोड़ दे तो जो कुछ हो चुका है, उसके लिए उन्हे क्षमा कर दिया जावेगा। पर यदि वे पुन. उसी विधर्मी मार्गको लौट पडें...तो उनसे उस समय तक लडो, जब तक कि यह भेद-भाव दूर होकर एक ईश्वरका ही मत सर्वत्र नही फैल जावे।" (viii, ३९ ४२)।

* अरबसे बाहरके प्रदेशोके मूर्तिपूजकोके विषयमे शफीका मत है कि उनका भी नाश कर दिया जाना चाहिए, परन्तु दूसरे विद्वान् लेखकोंके मतानुसार उन्हे गुलाम बना देना ही प ीत होता है। ऐसा करनेमे मानो

२. इस्लामके अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बियोंका राजनैतिक अधिकारोंसे वंचित किया जाना

अतएव कोई भी अन्य धर्मावलम्बी किसी मुसलमानी राज्यका नागरिक कदापि नही हो सकता है । वह उस राज्यके दलित समाजका एक सदस्य बन जाता है और उसकी राजनैतिक स्थिति निकृष्ट गुलामीसे कुछ ही अच्छी होती है । राज्यके साथ उसका एक प्रकारका ठेका (जिम्मा) हो जाता है । ईश्वर द्वारा दिए हुए जीवन और धनका भोग कर सकनेके लिए इस्लामी शासक उसे जो प्राणदान देते है उसके बदलेमे उसे कई एक राजनैतिक तथा सामाजिक अधिकारों-का त्याग करना पडता है, एवं इसी उपकारके लिए कर-रूपमे कुछ धन (जजिया) देना भी उसके लिए अनिवार्य हो जाता है ।

अपनी जमीनके लिए भी उसे कर (खिराज) देना पडता है । पहिले समयके मुसलमान यह कर नही देते थे । सेनाके ख़र्च के लिए भी उसपर एक और करका भार आता है । इस करके वदलेमे यदि वह स्वय सेनामे भरती होकर सेवा करना चाहे तो भी उसे सेनामे भरती नही किया जाता है । उस विधर्मीके लिए यह आवश्यक होता है कि अपने दरिद्री वेश और दीनतापूर्ण आचरणसे वह स्पष्टतया यह वतावे कि वह विजित समाजका ही एक व्यक्ति है । मुसलमानोके अतिरिक्त कोई भी विधर्मी (जिम्मी) किसी भी प्रकारका महीन कपडा नही पहन सकता है, और न वह घोडेपर ही चढ सकता है, और न वह शस्त्र ही धारण कर सकता है । विजयी जातिके प्रत्येक सदस्यके साथ सम्मानपूर्वक पूरी-पूरी दीनता दिखाते हुए ही उसे व्यवहार करना चाहिए ।*

उन्हे अवसर दिया जाता है कि इस समय ईश्वर उन्हे फिरसे एक वार सच्चे मार्गपर आनेकी प्रेरणा दे । किन्तु साथ ही साथ उन विधर्मियोंका शरीर और माल मुसलमानी राज्यके अधीन हो जाता है । (ह्यूज़, ७१०) । 'दार्-उल्-हर्ब' के लिए देखो, इन्साइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, १, ६१७ ।

* "ज़िम्मी" या रक्षित विधर्मियोके लिए देखो—ह्यूज़. ७१०-

इस्लामी कानूनकी पुस्तकोमे दी हुई बातोके आधारपर विद्वान् काजी मुघिसुद्दीन ने अलाउद्दीन खिजलीको बताया था कि--"इस प्रकारके दुर्व्यवहारोसे जिम्मीकी पूरी-पूरी ताबेदारी, सच्चे इस्लाम धर्मके गौरवकी स्थापना और झूठे विधर्मियोका दमन स्पष्टरूपसे हो जाता है । उनको मार डालने, लूटने और कैद करनेकी भी आज्ञा पैगम्बरने हमे दी है । यहाँ हनीफा द्वारा प्रतिपादित धार्मिक व्यवस्था ही मानी जाती है । इस बडे इमामके अतिरिक्त अन्य किसी धार्मिक विद्वान्के ग्रन्थोमे हमे हिन्दुओसे जजिया कर वसूल करनेकी आज्ञा नही दी गई है । अन्य सारे मुसलमानी धर्मवेत्ताओके अनुसार हिन्दुओके लिए एक ही नियम है– इस्लाम धर्म स्वीकार करना या मृत्यु ।"

जिम्मीको कानूनी अदालतमे गवाही देनेका अधिकार नही होता है । फौजदारी कानूनसे रक्षा पाने और विवाह सम्बन्धी कई मामलोमे भी उसे अनेकानेक असुविधाए भुगतनी पडती है । उसके जिम्माका

७३१; इन्साइक्लोपीडिका आफ इस्लाम, १ ९५८-१०५१; म्यूरकृत खलीफेट, तीसरा सस्करण, १४९-१५८ ।' प्रत्येक स्वतत्र समझदार युवा जिम्मी पुरुष जजिया अन दे । अपनी अचल सम्पतिको या तो स्वय री रखे या उसे सारे मुसलमानोके मामपर वक्फ करके भी अपने ही काममे लेता रहे। दोनो ही हालतोमे अपनी ऐसी जायदाद तथा उसपर पैदा होनेवाली सारी फसलोके लिए वह ऐसा 'खिराज' अथवा भूमि-कर देता है जो मुसलमान होनेपर भी उससे वसूल होता । मुसलमानोकी सेनाको बनाए रखने के लिए अन्य जो भी कर उसपर पडते है, उन्हे चुकाना उसका प्रधान कर्त्तव्य होता है । वह मुसलमान नही है, यह बतानेके लिए उसे अपने रहन-सहनमे आवश्यक भेद रखने पडते है, जैसे कि वह अच्छे कपडे न पहने, घोडेपर न चढे, शस्त्र धारण न करे और सारे मुसलमानोके प्रति वह विशेष आदर दिखावे । अदालतोमे गवाही देने, फौजदारी कानून द्वारा उसकी रक्षा करने और विवाह जैसे महत्वपूर्ण मामलोंमे उसपर कानून द्वारा कई एक अनोग्यताएँ लादी गई है । अपने पूजापाठ तथा अन्य धार्मिक क्रियाओको लेकर कोई भी जिम्मी सार्वजनिक रूपसे न तो बातचीत-हीकर सकता है और न उसका कोई प्रदर्शन ही । ये 'जिम्मी' किसी भी हालतमे मुसलमानी राज्यके नागरिक नही हैं ।" (इन्साइक्लो०, १, पृ० ९५८:९५९) ।

करार करनेवाला होनेके कारण राज्य उसकी जान और मालकी रक्षाका भार लेता है, और उसे अपने धर्म-पालनकी भी थोड़ी-थोडी स्वतन्त्रता मिलती है। किन्तु न तो वह नए मन्दिर बना सकता है और न वह अपना पूजा-पाठ या ऐसे अन्य धार्मिक कार्य ही सार्वजनिक-रूपसे खुलेआम कर सकता है कि वे मुसलमानोके लिए क्रोधोत्पादक हो।

पहिलेके सारे अरब विजेताओने प्राय. सर्वत्र और विशेषतया सिन्धमे इसी बुद्धिमानीपूर्ण लाभदायक नीतिको अपनाया था। उन्होने अन्य धर्मावलम्बी जनताके मन्दिरो, पूजा-घरों तथा उनके धार्मिक मामलोमे किसी भी प्रकारका हस्तक्षेप या छेड़छाड नही की थी। आरम्भमे कभी स्वेच्छानुसार या नियमपूर्वक मूर्तियाँ नही तोड़ी जाती थी। धीरे-धीरे मुसलमानोकी सख्या बढ़ती गई; साथ ही काफी समय तक जब वे निर्बाधरूपसे स्वच्छन्द शासन कर चुके तब उसके फलस्वरूप उनमे धार्मिक असहिष्णुताके अंकुर फूटने लगे और धार्मिक अत्याचार करनेकी प्रवृत्ति बढ़ने लगी। *मारनेके अतिरिक्त अन्य सारे भीषणसे भीषण अत्याचर विना किसी कारणके अन्य धर्मावलम्वियोपर इसलिए किए जाने लगे कि वे अपना धर्म छोड़-कर इस्लामको ग्रहण कर ले। जजिया कर देने और रहन-सहन तथा वेश-भूषाकी रोक-टोकके साथ ही इन अन्य धर्मावलम्बियोको

---

* ईलियट, १, पृ० ४६६। "जिम्मी पुराने गिरजाघरोकी मरम्मत करवा सकते हैं, और उन्हे फिरसे बनवा भी सकते हैं, परन्तु नई जगहोमे नए पूजा घर नही बनवा सकते हैं।" इन्सा०, १, पृ० ९५९। "मुसलमानी राज्य मे नए पूजा घर बनवाना उनके लिए गैर कानूनी है; उन्हे वे भले ही अपने ही मकानो-मे बनवावे। किन्तु यदि ईसाइयोके गिरजे और यहूदियोकेदेवघर (Synagogue) गिर गए हो या बरबाद हो गए हो, तो उन्हे पुन. बनवानेकी पूरी स्वतत्रता ईसाइयो और यहूदियोको प्राप्त है।" (ह्यूज़, ७११)। "धार्मिक कानूनके अनुनार यह एक निश्चित एवं सर्व-स्वीकृत बात है कि पुराने समय के बने हुए मन्दिरोको नही गिराया जावे, साथ ही नए मन्दिरोको बनानेकी आज्ञा भी नहीं दी जावे।" औरंगज़ेबका बनारसवाला फरमान; ज० ए० सो० बं०, सन् १९११, पृ० ६८९।

कई दूसरी आशाएँ तथा डर भी दिखाए जाते थे। हिन्दू धर्म छोड़ देनेवालोंको धन अथवा सरकारी नौकरी दिए जानेका प्रलोभन दिया जाता था। हिन्दू धर्म और समाजके नेताओंपर दबाव डाला जाता था कि वे किसी भी प्रकारकी धार्मिक शिक्षा न देने पावें। हिन्दुओंके धार्मिक जुलूसों और सम्मेलनोंपर प्रतिबन्ध था कि उनमे किसी भी प्रकारका संगठन न हो सके तथा उनमें यों कहीं जातीय एकताकी भावना उत्पन्न न हो जावे। न तो कोई नया मन्दिर बनाया जा सकता था और न पुराने मन्दिरोकी मरम्मत ही की जा सकती थी। एव कुछ समय बाद सारे हिन्दू मन्दिर एकबारगी ही मिट जावेंगे, यह एक अवश्यम्भावी बात थी। परन्तु इसपर भी कई एक अधिक कट्टर इस्लामी भावनावाले मुसलमान समयसे पहलेही मन्दिरोका सर्वनाश करनेके लिए उन्हे जबरदस्ती गिरा देते थे।

बादके इस युगमे, विशेषकर तुर्कोंके शासन-कालमे, प्राचीन अरबोंके समान इन अन्य धर्मोंके प्रति सहनशीलता दिखाना घोर पाप समझा जाता था। अपने राज्यसे बाहर प्रत्येक आक्रमण और युद्धमे हिन्दुओंकी हत्या करना और उनके मन्दिरोका विनाश करना एक पुण्यदायक कार्य माना जाता था। इस प्रकार मुसलमानोंमें एक ऐसी विचारधारा उत्पन्न हो गई जिसके कारण वे स्वभावसे ही लूटमार और मानव-हत्याको पवित्रतम धार्मिक कार्योंमे गिनने लगे और इन्हें ईश्वरीय मार्गमें जिहाद समझने लगे। हिन्दूकी हत्या (क़ाफिर-कुशी) मुसलमानकी एक बड़ी विशेषता मानी जाती थी। अपनी वासनाओंको वशमे करना और अपनी इन्द्रियोंका दमन उसके लिए आवश्यक नहीं था। अपने ही समान जीवधारियोंकी एक विशेष जातिकी हत्या करना और उनका धन लूटना ही उसके लिए काफी था। केवल यही कार्य उसे आत्मिक उन्नति देकर स्वर्गके योग्य बनानेके लिए यथेष्ट माना गया।*

---

*सन् १९१० ई० में मिश्रके एक मुसलमानने बुत्रास पाशको मार डाला। यह हत्या किसी व्यक्तिगत शत्रुताके कारण नहीं की गई थी, किन्तु उसका

जिस धर्मके अनुयायियोंको यह शिक्षा दी जाती हो कि लूटमार और मानव-हत्या ही उनका प्रधान धार्मिक कर्तव्य है, वह धर्म किसी भी प्रकार मानव-उन्नति तथा संसारकी शान्तिके लिए हितकर नहीं हो सकता है।

३. कुरानके राजनैतिक आदर्शोंका मुसलमानी जनता और उसके आश्रित अन्य धर्मोंपर प्रभाव

इस्लाम अपने अनुयायियोंके सच्चे हितोकी उन्नतिमें भी कभी सहायक नही हो सका। इस्लामकी इस राजनीतिके अनुसार इस धर्मपर विश्वास करनेवाले" सारे अनुयायी एक ऐसी संस्थाके अग समझे जाते थे जिसका एकमात्र आदर्श और कार्य युद्ध ही होता था। जब तक जीतनेके लिए नए-नए स्थान और लूटनेके लिए नित्य नए धनवान काफ़िर मिलते थे, तभी तक इस राज्यमे सब तरह ख़ैरियत रहती थी। उस समय तक ही एक विशेष प्रकारकी चित्रकला, साहित्य, उद्योग-धन्धा और अन्य कलाओंको भी आश्रय मिलता था। परन्तु जब मुसलमानी राज्य-विस्तारकी चरम सीमा तक फैलकर आसाम और चटगाँवकी पहाड़ियोंपर जा टकराया, तथा महाराष्ट्रकी शुष्क चट्टानोंको राहसे हटानेका विफल प्रयास होने लगा, तब तो एकबारगी पतनसे उसे बचानेका कोई साधन ही न रह गया। राज्यका कोई भी स्थायी आर्थिक आधार नही था और शान्तिके समय अपन

एकमात्र यही राजनैतिक कारण था कि उक्त पाशा दिनशबाई ग्रामवासियोको दण्ड देनेवाली अदालत का प्रमुख था। उक्त मुसलमानको इस हत्याके अभियोगमें मिश्रके प्रधान काज़ीके सामने पेश किया गया। गवाहोंके बयानसे यह पूरी तरह साबित भी हो गया था कि उक्त मुसलमानने हत्या की थी, तथापि इस मुकद्दमेका फैसला देते हुए मिश्रके प्रधान काज़ीने कहा कि इस्लाम धर्मके अनुसार मुसलमानके लिए किसी विधर्मीकी हत्या करना कोई पाप अथवा जुर्म नही है। आजके सभ्य देशोमें भी इस्लामके सिद्धान्तोकी अविकारपूर्वक विवेचना करनेवाले सबसे बड़े धर्माधिकारीका भी यह मत था।

अस्तित्वको बनाए रखनेमे वह असमर्थ ही रहा ।

इन विजेताओमे यह योग्यता बिलकुल ही न थी कि वे शान्ति-युगके उद्योग-धन्धोमे पूरी तरहसे लग जावे और तव भी निरन्तर चलनेवाले इस अनिवार्य जीवन-सग्राममे सफलता-पूर्वक टिक सके । उनके लिए शान्तिका अर्थ होता था—'वेकारी, दुर्व्यसन, कुकर्म और घोर पतन ।

इस्लामके निश्चित सिद्धान्तोका अतिम और एकमात्र परिणाम यहीं होता था कि मुसलमान धर्मावलम्बियोको विशेप अधिकार-प्राप्त जातिका स्थान मिल जाता था । अतएव इस अधिकारी वर्गका भरण-पोषण राज्य द्वारा ही होता था, इस कारण शान्तिके समय उनका आलस्योन्मुख होना स्वाभाविक ही था । जीवन-क्षेत्रमे वे अपने पैरोपर स्वय खडे होनेमे सर्वथा असमर्थ रहते थे । राज्यके सारे ऊँचे-ऊँचे ओहदोपर नियुक्त किया जाना, मुसलमानोका ही जन्मसिद्ध अधिकार माना जाता था । इसलिए विशेष योग्यता दिखाने या किसी भी प्रकारकी मिहनत करनेके लिए कोई प्रलोभन भी उनके लिए नही रह गया था । इस प्रकार मुसलमानी साम्राज्यमे एक स्थूल शरीरवाली आलसी जातिकी सृष्टि हुई । इसी जातिने धीरे-धीरे साम्राज्यकी जडोको निर्बल बना दिया और जब उस साम्राज्यकी समृद्धिका अन्त हुआ तो उसस इसी जातिको सबसे पहिले हानि पहुँची । धनकी प्राप्तिसे आलस्य और विलास-प्रियताका उद्भव हुआ, जो इस जातिको कुकर्मोकी ओर ले गई, दुर्व्यसन और कुकर्मोके फलस्वरूप वे दरिद्री हो गए, तथा इस प्रकार उनका सर्वनाश हुआ ।

साथ ही साथ उनकी आश्रित प्रजाके साथ जो दुर्व्यवहार होते रहे थे, उनसे राज्यकी उन्नतिके लिए आवश्यक सारे साधनोका पूर्ण विकास और उपयोग नही हो सका था । जब किसी जाति या जन-समुदायको खुले-आम कानून द्वारा या हाकिमोकी स्वेच्छाचारिताके अनुसार दबाया जाता है या उनपर अत्याचार किए जाते है, तब अपने अस्तित्वको बनाए रखनेके लिए केवल पशुओका-सा जीवन व्यतीत

करके ही उन्हे सन्तोष कर लेना पड़ता है। ऐसे समय हिन्दुओंसे यह आशा रखना कि भरसक प्रयत्न कर वे उत्पादनको पूरा-पूरा बढा देगे व्यर्थ ही था। अपने शासकोंके यहाँ पानी भरना या लकड़ी चीरना ही उनके भाग्यमे बदा था। पैसा कमा-कमाकर राज्यको सौप देना ही उनका प्रधान कर्तव्य था। अपनी गाढ़ी कमाईमेसे जो कुछ भी बचाया जा सके उसे बचानेके लिए वे निकृष्ट कोटिकी चालाकी और चापलूसीको ही अपनानेमे हिचकिचाते न थे। इस प्रकारकी सामाजिक परिस्थितियोमे किसी भी मानवका शारीरिक और मानसिक विकास होना, तथा उनका उच्चतम योग्यता प्राप्त करना एक असम्भव बात थी। मानवीय आत्माका भी अपनी चरम सीमा तक विकास नही हो सकता था। मुसलमानी शासन-कालमे ज्ञान और चितनके क्षेत्रोमे हिन्दू कुछ भी नही कर पाए, एव उच्च जातीय हिन्दुओमे अवाच्छनीय कुत्सित नीच प्रवृत्तियाँ आ गई। ये दो बाते ही उनके शासनकी निन्दाके लिए पर्याप्त है। जो फल पका,उसे देखते हुए यह स्पष्ट है कि भारतमे मुसलमानी राजनैतिक वृक्ष सर्वथा निरर्थक ही साबित हुआ।

एक आधुनिक महापडित जर्मन तत्ववेत्ता का कथन है कि—

इस्लाम धर्मके अनुसार ईश्वरके प्रति सम्पूर्ण आत्मसमर्पण और उसके सामने पूरी-पूरी दीनता स्वीकार करना आवश्यक होता है, परन्तु उनका यह ईश्वर विशिष्ट गुणवाला एक युद्ध-देवता ही होता है। इस धर्मकी सारी रीति-परम्परामे कड़े अनुशासनकी भावना पूरी तरह निहित है। ......इस्लाम धर्मके सैनिक आधार एव उसके फौजी स्वरूपमे ही प्रत्येक मुसलमानमे आवश्यक गुणोंकी स्पष्ट विवेचना देख पड़ती है। उनकी अप्रगतिशीलता, उनका अक्खडपन, जमानेके साथ बदलने और उसके उपयुक्त बन सकनेकी शक्तिका अभाव, आविष्कार-बुद्धि एवं स्वाभाविक प्रेरणाका न होना, आदि मुसलमानोंमे स्वाभाविकतया पाए जानेवाले दोषोका स्पष्टीकरण भी इसी विशेषतासे हो जाता है। सैनिकका कर्तव्य तो आज्ञापालन

तक ही सीमित रहता है । बाकी रही सारी बातें अल्लाहके ही भरोसे रहती है । (एच० कैसरलिग) ।

जब राज्यके ऊँचे-ऊँचे पदोपर नियुक्तियाँ गुणोकी अपेक्षा जाति या धर्मके ही आधारपर की जाती है, तब गैरमुसलमानी जनताका बरबस यही विश्वास हो जाता है कि उस राज्यमे उनके लिए कोई स्थान या किसी भी प्रकारका सम्बन्ध नही है । विभिन्न धर्मावलम्बियो-की सम्मिलित आबादीपर जब कभी ऐसी इस्लामी धर्म-प्रधान राजसत्ता स्थापित हो जाती है, तब अल्पजनसत्तात्मक राज्य (oligarchy) तथा विदेशी शासनके सारे दुर्गुण उस राज्यमे उत्पन्न हो जाते है ।

भारतीय मुगल साम्राज्यमे तो समूची शासन-सत्ता बहुत ही थोड़े लोगोके हाथमे केन्द्रित थी । शासन करनेवाले इन अल्पसख्यको तथा शासित बहुसख्याकोमे केवल एक ही बात, धर्ममे विभिन्नता ही पाई जाती थी, जातीय गुणों, शारीरिक और मानसिक शक्तियो तथा अन्य सारी बातोमे उनमे कोई भी भेद नही था । इस शासक-समुदायके अतिरिक्त अन्य सभी इतर-धर्मावलम्बी स्वाभाविकतया यही सोचते थे कि समाज, देशकी सत्ता और सारे साधन शासकोको जनसमाजकी भलाईके लिए ही सौपे गये थे । किन्तु वे शासक इनका निरन्तर दुरुपयोग कर उन इतर-धर्मावलम्बियोको ही मिटानेके लिए भरसक प्रयत्न करनेवाले धर्मका प्रचार करनेमे रत रहते थे । ऐसा राज्य जनताकी श्रद्धा और प्रेमपर स्थित नही था । ऐसे राज्यको राष्ट्रीय कहलानेका कोई भी अधिकार नही था ।

४. मुसलमानी राज्य में धार्मिक सहनशीलता कुरान-सम्मत कानूनके विरुद्ध एवं अपवाद-स्वरूप थी

कट्टर इस्लाम धर्मके अनुसार जिस प्रकारके आदर्श राज्यकी कल्पना की गई थी, उसका स्वरूप ऊपर दिया गया है । इसमे सन्देह नही कि यदा-कदा साधारण सद्बुद्धिकी तर्कपर और राजनैतिकताकी धर्मपर विजय हो जाती थी । कई बार मानव स्वभावकी दुर्बलताके

कारण हर एक सम्राट् या हाकिमके लिए यह असम्भव हो जाता था कि वह इस भयकर असहिष्णुतापूर्ण नीतिका सर्वत्र एवं सदैव सख्तीके साथ पालन करवा सके। इसी कारण मुसलमानी शासन-कालमें कई बार ऐसे भी समय आए जब हिन्दुओके साथ सहिष्णुताकी नीति बरती गई और उनके जान-मालकी पूरी-पूरी रक्षा की गई। यदा-कदा कई बुद्धिमान और उदार विचारवाले बादशाहोंने हिदुओंको प्रोत्साहन भी दिया; साहित्य और कलाकी उन्नति करनेके लिए उनको प्रेरित किया, धन और ऊचे पद दिए और यो उनका राज्य शक्ति-शाली तथा समृद्धिपूर्ण होता गया।

परन्तु इस प्रकार अपने धर्मके प्रति अविश्वासपूर्ण यह सारी सहिष्णुता दिखाना अपवाद-स्वरूप यदा-कदा ही देखनेमें आता था। इस प्रकारकी सारी कार्यवाही मुसलमानी ससारकी दृष्टिसे इस्लामके सच्चे सिद्धान्तोके विरुद्ध एक निन्दनीय आचरण और शासकके प्रधान कर्तव्यकी अक्षम्य दुष्टतापूर्ण अवहेलना ही प्रतीत होती थी। मुसल-मान शासककी सारी सत्ता मुसलमानी सेनाकी तलवारोपर ही निर्भर रहती थी। किसी भी उदार विचारोवाले सुलतानको ये मुसलमान सैनिक ऐसा धर्मद्रोही शासक समझते जो किसी भी तरह उनपर शासन करनेके योग्य नही था।

इसलिए गैर-मुसलमानोकी वृद्धि और उन्नति तथा उनका निरन्तर अस्तित्व बना रहना ही मुसलमानी राज्यके आधारभूत सिद्धान्तोकी दृष्टिसे सर्वथा असंगत था। जब तक या तो ये सारे विरोधी नष्ट न हो जाएँ अथवा मुसलमानोके हाथसे ही सत्ता न निकल जावे तब तक ऐसा राजनैतिक समाज बहुत ही अस्थायी और अनि-श्चिततापूर्ण बना रहता था। इस प्रकार उस राज्यमे शासक और शासितोके बीच एक परम्परागत प्राचीन पारस्परिक विरोधकी भावना निरन्तर बनी रहती थी। इस भावनाके कारण ही विभिन्न धर्माव-लम्बियोके जन-समूहवाले मुसलमानी राज्यका सदैव अन्तमे विनाश हुआ है; और औरंगज़ेबके शासन-कालमें यह अनिवार्य सत्य पूरी

तरह चरितार्थ होकर ही रहा।

औरंगजेबकी धर्मान्धता और मन्दिरोंका विध्वन्स

औरगजेबने बडी धूर्ततांके साथ हिन्दू धर्मपर धीरे-धीरे आक्रमण किये। अपने राज्य-कालके पहिले ही वर्षमे बनारसके एक पुजारीको दिए गए अधिकार-पत्रमे उसने घोषित किया कि उसका धर्म नए मन्दिर बनानेकी आज्ञा नही देता, परन्तु वह साथ ही पुराने मन्दिरोको नष्ट करनेका भी आदेश नही देता है। सन् १६४४ ई० मे जव वह गुजरातका सूबेदार था, तब उसने अहमदाबादमे तत्काल ही बने हुए चिन्तामणिके हिन्दू मन्दिरमे गो-हत्या करवाकर उसे भ्रष्ट करवा दिया, और बादमे उस मन्दिरको मसजिदमे वदलवा दिया। उसी समय उसने गुजरातके और भी हिन्दू मन्दिरोको गिरवाया था। अपने शासन-कालके प्रारम्भमे ही औरगजेबने एक हुक्म निकाला था, जिसमे उसने कटकसे लेकर मेदिनीपुर तक उडीसाके प्रत्येक शहरके स्थानीय हाकिमको सारे मदिर गिरवा देनेकी आज्ञा दी थी। पिछले १० या १२ वर्षके भीतर बने मिट्टीके झोपडोमे स्थापित मन्दिरोको भी इस हुक्मके अन्तर्गत माना गया। उसने पुराने मन्दिरोकी मरम्मत करवाना भी बन्द करवा दी।

फिर ९ अप्रेल १६६९को उसने एक आम हुक्म दिया कि काफिरो-के सब शिक्षालय और मन्दिर* गिरा दिए जावे तथा उनकी धार्मिक प्रथाओको दबाया जावे। अब उसकी यह विनाशकारी कुदाल सोमनाथके दूसरे मन्दिर, बनारसमे विश्वनाथजीके मन्दिर और मथुरा-मे केशवरायजीके मन्दिरके समान बडे मन्दिरो पर भी पडी, जिन्हे सारे भारतकी समस्त हिन्दू जनता बडे ही आदर और श्रद्धाकी दष्टिसे देखती थी।

---

*औरगजेबने दिन-जिन मन्दिरोको तुडवाया उनकी सप्रमाण सूची मेरे वहत् ग्रन्थ 'औरगजेब'की तीसरी जिल्दकी परिशिष्टमे देखो।

मुसलमानोकी धर्मान्धतापूर्ण नीतिके फलस्वरूप मथुराकी पवित्र भूमिपर सदैव ही विशेष आघात होते रहे है। दिल्लीसे आगरा जानेवाले राजमार्गपर स्थित होनेके कारण मथुराकी ओर सदैव विशेष ध्यान आकर्षित होता रहा है। वहाँके हिन्दुओको दाबनेके लिए औरगजेबने अब्दुन्नबी नामक एक कट्टर मुसलमानको मथुराका फौजदार नियुक्त किया।

कई वर्ष पहले दाराने उपहारस्वरूप मथुराके केशवरायके मन्दिरमे पत्थरका जगमोहक जगला लगवा दिया था। यह बात १४ अक्तूबर १६६६ ई० को औरगजेबको ज्ञात हुई। उसने तत्काल ही हुक्म दिया कि उस जगलेको वहाँसे हटा दिया जावे। अन्तमे जनवरी, १६७० ई० मे उसने इस मन्दिरको विलकुल ही विध्वंस कर देनेकी आज्ञा दी और यह भी हुक्म दिया कि मथुरा शहरका नाम बदल कर इस्लामाबाद कर दिया जावे। साम्राज्यके सारे सूबो, परगनो, शहरो और महत्त्वपूर्ण स्थानोमे जनताके सदाचारकी देख-रेख करनेके लिए मुहतसिब नियुक्त किए गए, जिनका एक प्रधान कर्तव्य यह भी होता था कि वे हिन्दुओके तीर्थो और मन्दिरोका विध्वस कर उन्हे तहस-नहस कर दे। जून १६८०मे आम्बेर राज्यके स्वामिभक्त राजाकी राजधानीके भी सारे मन्दिर तुड़वा डाले गए।

गुजरातमे हिन्दुओको धर्मार्थ वजीफे के रूपमे जो भी जमीने दी गई थी, वे सव सन् १६७४ ई० मे जब्त कर ली गई।

६. गैर-मुसलमानोंपर जजिया कर

मुसलमानी राज्यमे रहनेकी इजाजतके लिए हर काफिरको जजिया नामक कर देना पडता था। जजिया का अर्थ होता है, वदलेमे दिया गया धन अथवा जीवन-यापन की सुविधाका मूल्य। यह कर पहिले-पहल मुहम्मदने ही लगाया था। उसने अपने धर्मानुयायियोको आदेश दिया था कि, जो लोग इस्लामके इस सच्चे मतको अगीकार नही करे, उनसे तव तक युद्ध करो जव तक कि वे

दीनतापूर्वक अपने ही हाथोसे जजिया नही चुका देवे। (कुरान, ६, २६)।

स्त्रियो, १४ वर्षसे कम उमरके बच्चो और गुलामोको इस करसे छूट दी गई थी। धनवान् होनेकी हालतमे ही अन्धो, लंगडो और पागलोको यह कर देना पडता था। गरीव होनेपर महन्त या सन्यासी भी यह कर देनेसे छूट जाते थे, परन्तु यदि वे एक धनवान् मठमे रहने-वालोमेसे होते थे तो इन मठोके मठाधीशोको उन गरीब महन्तो या सन्यासियोकी भी ओरसे यह कर चुकाना पड़ता था। करकी रकम मनुष्य की वास्तविक आमदनीके अनुपातमे नही होती थी, फिर भी जायदादके मूल्याकनके आधारपर ही कर देनेवाले साधारणत· तीन श्रेणियोमे विभाजित किए जाते थे। सबसे पहली श्रेणी मे रुपये-पैसेका लेनदेन करनेवाले, कपड़ेके व्यापारी, जमीदार और वैद्य लोग होते थे, परन्तु दर्जी, रगरेज, कुम्हार, चमार आदि व्यवसायी लोगोकी गिनती गरीबोमे होती थी। उनसे यह कर उसी हालतमें लिया जाता था यदि जीवन बितानेके लिए आवश्यक रकमके बाद भी उनकी आमदनीमेसे कुछ रुपया बाकी बचता हो। भिखारी और दिवालिये तो स्वाभाविकतया ही इस करसे बच जाते थे।

तीन श्रेणियोके लिए कर की क्रमश. १२, २४ और ४८ दरहम प्रति वर्षकी अलग-अलग दरे नियत की गई थी, रुपयोमे इनका मूल्य क्रमश ३ , ६ और १३ रुपये होता था। आबादी की गरीब जनतापर ही जज़ियाका सबसे अधिक भार पड़ता था। अकबरने इसे बन्द करके अपनी अधिकाश प्रजापरसे एक राजनैतिक असमानता एव अधोगतिके इस द्वेषपूर्ण कलकको हटा दिया था (१५६४ ई०); परन्तु औरगजेबने अकबरकी इस उदार नीतिको उलट दिया।

शाही हुक्मसे २ अप्रेल १६७६ ई० को साम्राज्यके सब भागोमे जज़िया कर फिरसे लगा दिया गया। यह कर गैरमुसलमानोसे ही वसूल होता था। दिल्ली और वहीके आस-पासके प्रदेशके हिन्दुओ-ने एकत्रित होकर इस करको हटा लेनेके लिए औरगजेबसे बडी ही

करुणाजनक प्रार्थना की। परन्तु बादशाहने यह सब सुनी-अनसुनी कर दी। इसी समय शिवाजीने तर्कयुक्त विचारपूर्ण संयत शब्दोमे एक पत्र लिखकर इस नए करकी इस अनीतिको दूर करनेके लिए औरंगजेबसे प्रार्थना की। मानवमात्रके लिए ईश्वर एक ही है, और उस ईश्वरपर सच्चा विश्वास करनेवाले सारे धर्म ईश्वरके लिए समान ही है, उस महान् सत्यकी ओर ध्यान देनेके लिए भी शिवाजी ने अपने इस पत्रमे विशेष आग्रह किया था। परन्तु शिवाजीके इस पत्रकी ओर औरंगजेबने कोई ध्यान नही दिया।*

इस करसे बहुत बडी रकम वसूल होती थी; केवल गुजरात प्रान्तमे ही जजिया करसे कोई पॉच लाख रुपये प्रति वर्ष आते थे। हिन्दुओके लिए जजिया करका अर्थ यही होता था कि प्रत्येक हिन्दू नागरिकको राज्यको दिए जानेवाले करोके अपने भागमे एक-तिहाई हिस्सा और भी यो देना पडता था। इस करके भारसे वचनेका एकमात्र उपाय इस्लाम धर्म अगीकार कर मुसलमान बनना ही था। समकालीन इतिहासकार मनुचीने लिखा है—"ऐसे अनेकों हिन्दू जो यह कर नही दे सकते थे, इस करको वसूल करनेवालों द्वारा किए जानेवाले अपमानोंसे छूटकारा पानेके लिए मुसलमान हो [illegible] और यह सब देखकर औरगजेब आनन्दित होता है।"

७. हिन्दुओंके दमन के उपाय

ही कर लिया जाता रहा। इससे राज्यकी वास्तवमे अत्यधिक हानिकी सभावना और भी बढ गई, क्योकि अब हिन्दू सौदागर मुसलमानोको प्रलोभन देकर अपने मालको उनका कहकर निकलवा देनेकी चालाकी करनेको प्रेरित होने लगे।

काफिरोपर आर्थिक दबाव डालनेकी नीति का एक और साधन यह था कि धर्म परिवर्तन करनेवालोको पुरस्कार मिलते थे। मुसलमान हो जाने की शर्तपर हिन्दुओको ऊचे पद दिए जाने, कैदसे छुटकारा पाने अथवा विवादग्रस्त जायदादपर उनका अधिकार माना जानेका प्रलोभन भी दिया जाता था।

१६७१ ई० मे एक हुक्म इस आशयका निकाला कि राज्यके कर वसूल करनेवाले सब मुसलमान ही हो। सब शासको और ताल्लुकेदारोको भी आज्ञा दी गई कि वे अपने हिन्दू पेशकारो और दीवानोको निकालकर उनके स्थानपर मुसलमानोको नियुक्त करे परन्तु प्रान्तीय अधिकारियोके हिन्दू पेशकारोको हटा देने से कई स्थानोमे शासनका चलाना भी असम्भव प्रतीत हुआ। फिर भी कुछ स्थानोमे जिलेके कर वसूल करनेके लिए हिन्दुओ की जगह मुसलमान करोडी नियुक्त हो गए। आगे चलकर अनिवार्य आवश्यकतासे विवश होकर बादशाहको माल-मत्री और तनख्वाह-नवीसके महकमोमे आधे पेशकार हिन्दू और आधे मुसलमान रखनेकी अनुमति देनी पडी। औरगजेबके शासन-कालमे कानूनगो बननेके लिए मुसलमान बनना एक लोकप्रसिद्ध कहावत हो गई थी। आज भी पजाब के अनेक कुटुम्बोके पास वे आज्ञा-पत्र सुरक्षित है जिनमे उस पदपर नियुक्ति की इस शर्तका बिना किसी हिचकिचाहटके स्पष्ट शब्दोमे उल्लेख किया गया है।

बादशाहकी आज्ञा होनेपर धर्म परिवर्तन करनेवाले कुछ व्यक्तियो को हाथीपर बिठाकर गाजे-बाजे और झण्डोके साथ बडे-बडे शहरोकी गलियोमे उनका जुलूस भी निकाला जाता था। कई दूसरे लोगोको चार आना प्रति दिनके हिसाबसे दैनिक तनख्वाहे भी मिलती थी।

मार्च १६६५ ई० मे शाही हुक्म द्वारा राजपूतोके सिवाय दूसरे सारे हिन्दुओको हाथी, घोड़े और पालकीपर चढनेकी मुमानियत कर दी गई। वे अब शस्त्र भी धारण नही कर सकते थे।

प्रति वर्ष साल भरमे कुछ निश्चित दिनोंपर भारतके विभिन्न तीर्थ-स्थानोपर हिन्दुओंके बड़े-बडे धार्मिक मेले भरते है। वहाँ दूर-दूर प्रदेशोसे हजारो स्त्री-पुरुष, बूढे और बालक एकत्रित होते है। ऐसे अवसरपर उन मेलोमे व्यापारी दूकाने लगाते है और देश-प्रदेशकी वस्तुए प्रदर्शित की जाती है। गाँवोकी स्त्रियाँ ऐसे अवसरोपर दूर-दूर रहनेवाली अपनी सखियो और सगी-सम्बन्धियोसे मिलती और इस उत्सवका आनन्द उठाती है। सन् १६६८ ई० मे औरगजेबने शाही हुक्म निकाला कि साम्राज्य भरमे कही भी ऐसे मेले न पडे।

हिन्दुओके होली और दीवाली त्योहार मनानेके बारेमे भी हुक्म हुआ कि वे बाजारसे बाहर और वह भी बहुत ही नियत्रित रूपमे मनाए जावे।

८. मथुरा जिलेके हिन्दुओंका दमन : किसानोंका विद्रोह

हिन्दू धर्मपर जब इस तरह खुले तौरसे आक्रमण होने लगे तब यह स्वाभाविक ही था कि इस तरह दबाए गए हिन्दुओमे तीव्र असन्तोष उत्पन्न हो। बादशाहकी हत्या करनेके लिए भी उसपर अनेकानेक आक्रमण किए गए, किन्तु ये आक्रमण ऐसी मूर्खतापूर्ण रीतिसे किए गए कि वे असफल ही रहे।

१६६९ ई० के आरम्भमे मथुरा ज़िलेमे हिन्दू जनताका एक भीषण विद्रोह उठ खडा हुआ। अब्दुन्नबीख़ाँ अगस्त, १६६० ई० से मई १६६९ ई० तक मथुराका फौजदार रहा था। बडे ही उत्साहके साथ उसने अपने सम्राट्की मूर्ति पूजाका अन्त करदेने की नीतिका पालन किया था।

अपने इस पदपर नियुक्त होनेके कुछ समय बाद ही उसने

हिन्दू मन्दिरके भग्नावशेषोपर मथुरा शहरके बीचो-बीच एक जुमा-मसजिद बनवाई (१६६१–६२ ई०) तत्पश्चात् १६६६ ई० मे उसने केशवरायके मन्दिरको दारा द्वारा उपहारमे दिया हुआ नक्काशी-दार पत्थरका जगला वहाँसे हटवा दिया। १६६६ ई० मे तिलपटके जमीदार गोकलाके नेतृत्वमे जाट किसानोने जब विद्रोह किया, तब उनपर आक्रमण करनेके लिए अब्दुन्नबी वशरा ग्रामकी ओर चला। परन्तु १० मईके लगभग इस युद्धमे वह गोलीसे मारा गया। गोकलाने सादाबादका परगना लूट लिया। धीरे-धीरे यह विद्रोह मथुराके पड़ोसी आगरा जिलेमे भी फैल गया।

इसपर विद्रोह दबानेके लिए औरगजेबने ऊँचे हाकिमोकी मातहती मे एक बडी सेना भेजी। १६६६ ई० के पूरे वर्ष भर मथुरा जिलेमे अशान्ति और उपद्रवकी धूम बनी रही। १६७० ई० के जनवरीके आरम्भमे तिलपटसे २० मील दूर स्थानपर भयकर लडाई हुई, जिसमे बहुत मारकाटके बाद हसनअलीखाने गोकलाको पराजित किया। तब शाही सेनाने तिलपटको जा घेरा और तीन दिन तक घेरा लगाए रहनेके बाद अन्तमे हमलाकर उसे जीत लिया। अपने कुटुम्ब सहित गोकला कैद कर लिया गया।

हसनअलीके इन प्रयत्नो तथा उसकी सफलताओसे मनोवाञ्छित परिणाम निकला। पूरे जिलेमे शान्ति स्थापित तो हो गई परन्तु यह सब कुछ समयके लिए ही रहा। १६८६ ई० मे पुन. राजारामके नेतृत्वमे दूसरा जाट-विद्रोह आरम्भ हुआ, जिसका वर्णन आगे यथा-स्थान दिया जावेगा।

९. सतनामी सम्प्रदाय : उनका विद्रोह, १६७२ ई०

वास्तवमे सतनामी साधू ही थे। उन्हे रायदासियोकी ही एक शाखा समझना चाहिये। सिरके सारे बाल और भौहो तकको मुडवा देने के कारण उन्हे लोग मुडिया अथवा घुटे हुए सिरवाले कहते थे। १७वी शताब्दीमे उनका प्रधान केन्द्र दिल्लीसे ७५

मील दक्षिण-पश्चिममे नारनौलमे था । ईमानदारी, भाईचारा और इन्सानियतके लिए खफीखॉने उनके चरित्रकी बडी प्रशसा की है । वह लिखता है कि इनमेसे अधिकाश या तो खेती करते थे या थोड़ी बहुत पूंजी लगाकर व्यापार करते थे । इन्होने कभी बेइमानी या अन्य किसी गैर-कानूनी तरीकेसे पैसा कमानेका प्रयत्न नही किया ।

सरकारी फौजके साथ इन लोगोकी पहली मुठभेड एक बहुत ही साधारण सांसारिक मामलेमे हो गई थी । एक दिन नारनौलके पास एक सतनामी किसानकी एक सैनिक पियादेसे कुछ गरमागरम बहस हो गई । वह सैनिक किसी खेतकी रखवाली कर रहा था । उसने एक मोटे डडेसे उस सतनामीका सिरफोड दिया । सतनामीके एक जत्थेने उस आक्रमणकारीको खूब पीटा, जिससे वह सिपाही मृतप्राय हो गया ।"

अब यह साधारण-सा झगडा बहुत ही बढ गया, और शीघ्र ही वह युद्धमे परिणत हो गया, जिसमे हिन्दुओकी मुक्तिके लिए स्वयं औरगजेबपर भी आक्रमण हुआ । भविष्यवाणी करनेवाली एक बूढी औरतने घोषित किया कि उसके झण्डेके नीचे आकर लड़नेवाले सारे सतनामियोपर उसके तन्त्र-मन्त्र के बलसे शत्रुओके हथियारोका कोई भी असर नही होगा और वे अजेय बन जावेगे । यह समाचार दावानलकी लपेटोकी तरह चारों ओर फैल गया । लगभग ५,००० सतनामी शस्त्र ले-लेकर विद्रोहके लिए उठ खडे हुए । अपनी प्रारम्भिक विजयोसे विद्रोहियोको आत्मविश्वास बढ चला, और उस बुढियाके तंत्र-मंत्रकी अद्भुत शक्तिवाली बातपर लोगोका और भी दृढ़ विश्वास हो गया । उन्होने नारनौलके फौजदारको बुरी तरह मार भगाया और उस शहरपर कब्जा कर लिया । विजयी विद्रोहियोने नारनौलको लूट लिया और वहॉकी मसजिदोको गिरा दिया । उन्होने इस जिलेमे अपना शासन भी कायम किया । किसानोसे अब वे कर वसूल करने लगे ।

अब औरगज़ेब क्योकर चुप बैठता ? १५ मार्चको उसने रदन्दाज़के मातहत एक बड़ी फौज रवाना की । सतनामियोंके जादू-

टोनेके प्रभावको जीतनेके लिए बादशाहने स्वय अपने हाथसे प्रार्थनाए और जादूके अक लिखे । बादशाह स्वय बहुत बडा सन्त समझा जाता था और 'आलमगीर जिन्दा पीर' के नामसे प्रसिद्ध था । एव शत्रुओको दिखानेके लिए ये अक और प्रार्थनाए झण्डोपर सी दी गई । शाही सेनाका यह हमला बडा ही भयकर हुआ । बहुत घमासान और कठिन युद्धके बाद बहुत ही थोडे सतनामी बचकर भाग सके । प्रान्तके उस भागसे काफिरोको इस प्रकार साफ कर दिया गया ।

१०. सिक्ख धर्मकी गति-विधि : उसके नेताके उद्देश्यों और नीति-स्वभावमें परिवर्तन

ईसाकी पन्द्रहवी शताब्दीके अन्तिम वर्षो मे पजाबमे बाबा नानक नामक एक हिन्दू सुधारक का उदय हुआ, जिसके प्रति जनताकी श्रद्धा बहुत बढी । उन्होने धर्म और जातिकी विभिन्नताओकी उपेक्षाकर प्रत्येक धर्मके प्रधान तत्त्वो और उनमे निहित सत्यकी एकतापर ही जोर दिया, तथा उसीके आधारपर मानव समाजको भ्रातृत्वके सुदृढ बन्धनमे सगठित करनेका प्रयत्न किया ।

गुरु नानकका जन्म लाहौरसे ३५ मील दक्षिण-पश्चिममे तलवण्डी नामक स्थानमे सन् १४६९ ई० मे हुआ था । यह स्थान अब ननकाना साहब नामसे सुप्रसिद्ध है और सिक्खोका एक बडा तीर्थ समझा जाता है । नानक जातिके खत्री अथवा हिन्दू बनिया थे । उनके मतका सार यही था कि एक चेतन सत्यमय ईश्वरमे पूरा विश्वास कर उसकी प्राप्तिके लिए तद् अनुरूप जीवन तथा आवश्यक चरित्र-निर्माण करना चाहिए । वे सन् १५३८ ई० तक जीवित रहे और धीरे-धीरे उनके साथ सच्चे श्रद्धालु भक्तोका एक बडा दल एकत्रित हो गया । उनके ये ही अनुयायी आगे चलकर एक सुस्पष्ट विभिन्न सम्प्रदायके रूपमे सगठित हो गए ।

ईसाकी १६वी शताब्दीमे गुरु नानक से लेकर गुरु अर्जुन तक सिक्खोके पॉच गुरु हुए । उन सबका जीवन बहुत सरल और तपस्वियो-

का-सा था, एवं उनके प्रति तत्कालीन मुगल बादशाहोंके हृदयोंमें अपार श्रद्धा थी । इस्लाम धर्म तथा मुगल साम्राज्यके साथ उनका कोई भी विरोध या झगड़ा नही था । जहाँगीरके शासन-कालमे पहली बार सिक्खोने मुगल राज्यका विरोध किया । इस झगडेका कारण किसी भी प्रकार धार्मिक नही था । परन्तु एक सासारिक मामलेपरसे ही प्रारम्भ होनेवाले इस झगडेका सिक्खोंपर दूसरा ही प्रभाव पड़ा, उसीके फलस्वरूप गुरुओका दृष्टिकोण ही बदल गया, और उनके जीवन और आचरणमे क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गए ।

पाँचवे गुरु अर्जुन के (१५८१–१६०६ ई०) समयमे सिक्ख धर्म स्वीकार करनेवालोकी सख्या बहुत बढ गई थी । इसके साथ ही गुरुओके वैभव और सम्पत्तिमे भी वृद्धि होती गई । गुरुओके लिए स्थायी आमदनीका साधन भी कायम कर दिया गया । काबुलसे लेकर ढाका तक जहाँ भी सिक्ख रहते थे, उनसे वहाँ ही गुरुओका कर तथा गुरुके प्रति भक्तोकी भेटको एकत्र करनेके लिए विशिष्ट प्रतिनिधियोके दल प्रत्येक शहरमे नियुक्त किए गए । अब गुरुको सिक्ख लोग सासारिक राजाके समान मानने लगे । गुरुओका भी दरबार लगने लगा और दरबारियो तथा मंत्रियोका समूह अब उन्हे घेरे रहता था । ये मंत्री 'मसन्द' कहलाते थे; यह मसन्द शब्द दिल्ली के पठान सुलतानोके अमीरोको दिए जानेवाले खिताब 'मसनद-इ-आला' का ही हिन्दी अपभ्रंश है । जहाँगीर के विरुद्ध अपना झण्डा खड़ा करनेवाले खुसरोकी विजयके लिए गुरु अर्जुनने आशीर्वाद दिया था । एव जब खुसरो हार गया तब जहाँगीरने साम्राज्यके शास्त्र-सम्मत शासकोके विरुद्ध इस राजद्रोहके अपराधमे गुरु अर्जुनपर दो लाख रुपया जुर्माना किया । गुरु जुर्माना देनेसे इन्कार कर गया और क़ैद तथा अन्य सारी अत्याचारी पीड़ाए बड़ी ही धीरतापूर्वक सहता रहा । लाहौरकी कड़ी धूप और गरमीसे तपतपाती रेतीपर बैठ रहनेके लिए उसे बाध्य किया गया, जिससे अन्तमे वह जून १६०६ ई० मे मर गया ।

उसके पुत्र हरगोविन्द के समयसे (१६०६ से १६४५) सिक्ख संप्रदायके इतिहासमे एक नया ही युग आरम्भ हुआ। हरगोविन्दने अपने ५२ शरीर-रक्षक सैनिकोकी सख्याको बढाते-बढाते उन्हे एक छोटी सेनाके समान बना लिया। गद्दीपर बैठनेके कुछ समय बाद ही जब अमृतसरके पास बादशाह शाहजहाँ बाजोसे शिकार खेल रहा था, तब गुरु भी शिकार खेलता-खेलता उसी स्थान आ पहुचा। एक पक्षीको लेकर उसके सिक्खो और शिकार-खानेके शाही नौकरोमे झगडा हो गया। अन्तमे सिक्खोने कई शाही नौकरोंको मार डाला और बाकी हारकर भाग खड़े हुए। इसलिए विद्रोही के विरुद्ध एक सेना भेजी गई, परन्तु सिक्खोने अमृतसरके पास सग्राना नामक स्थानमे इस सेनाको बुरी तरह हराया (१६२८ ई०); उधर सिक्खोकी कोई विशेष हानि नही हुई। लाहौरके पास ही शाही सत्ताका ऐसा खुले-आम अपमान बादशाहके लिए असहनीय हो उठा। यद्यपि आरम्भमे गुरुको कुछ सफलता अवश्य मिली, किन्तु अन्तमे अमृतसरवाला गुरुका घर और उसका सारा सामान छीन लिया गया, और गुरुको बाध्य होकर मुगल सेनाकी पहुँचसे परे कश्मीरकी पहाड़ियोमे स्थित कीरतपुरमे शरण लेनी पडी। वही सन् १६४५ ई० मे उसकी मृत्यु हो गई।

सन् १६६४ ई० मे गुरु हरकिशनकी मृत्युपर सिक्खोमे अराजकता फैल गई, और वे लोभ तथा लूटकी भावनासे प्रेरित होने लगे। कुछ समयके बाद हरगोविन्दके सबसे छोटे पुत्र तेगबहादुरको सिक्खोपर अपना आधिपत्य स्थापित करनेमे पर्याप्त सफलता मिली और अधिकाश सिक्खोने उसे अपना गुरु मान लिया।

जब वह आनन्दपुरमे ठहरा हुआ था, तब वहाँ उसने देखा कि उसके सिक्ख सम्प्रदायको व्यर्थ ही सख्तीके साथ दबाया जा रहा था एव सिक्खोके पवित्र तीर्थ-स्थानोको खुले-आम भ्रष्ट किया जा रहा था। अब वह चुप नही रह सका। उसको पकडकर दिल्ली ले गए और वहाँ इस्लाम धर्म स्वीकार करनेके लिए उसे बाध्य करने लगे,

किन्तु वह किसी भी प्रकार राजी नही हुआ। अनेकों प्रकारकी यातनाएँ भी दी गई, परन्तु वे भी व्यर्थ ही हुई, और अन्तमें बादशाहके हुक्मसे सन् १६७६ ई०में उसका सिर काट डाला गया।

अब अन्तमें इस्लाम और सिक्खोंमें खुले-आम युद्ध ठन गया। शीघ्र ही सिक्खोंमें एक ऐसा नेता उठ खड़ा हुआ, जिसने उनका सगठन करके सिक्खोको इस्लाम धर्म और मुगल साम्राज्यसे टक्कर ले सकने योग्य उनका एक बहुत ही कट्टर शत्रु बना दिया। सिक्खोका यह दसवॉ एव अन्तिम गुरु गोविन्दसिह (१६७६से १७०८ ई०) तेगबहादुरका एकमात्र पुत्र था। जन्मसे पहिले ही उसके विषयमे भविष्यवाणी की गई थी कि वह एक ऐसा मनुष्य होगा, जिसमे गीदड़को शेर और चिडियाको बाज बना देनेकी क्षमता होगी।

यहॉ एक क्षण ठहर कर हम उन कारणोंकी विवेचना करेंगे, जिनसे गुरु गोविन्दकी ऐसी अनोखी सफलता सम्भव हो सकी। गुरुकी सत्ता क्रमश बढते-बढते दैवी सत्तामे बदल गई, गुरु गोविन्दकी सफलताका यही पहला कारण था। एकमात्र सर्वश्रेष्ठ व्यक्तिमे आशका-रहित विश्वास से ही सारे सिक्ख फौजके सैनिकोके समान एक सुदृढ सम्बन्ध-सूत्रमे बॅध गए। वे अब अपने आपको ऊँचा और अन्य लोगोसे श्रेष्ठ समझने लगे। गुरु गोविन्दकी आज्ञा होते ही सारे आन्तरिक जाति-भेद मिटा दिए गए, जिससे सिक्खोमे पारस्परिक एकताकी भावना और सुदृढ हो गई। खान-पानके जो बन्धन और विचार हिन्दू समाजमे अत्यधिक प्रचलित थे, वे पहले ही तोडे जा चुके थे। सारे सिक्ख समाजकी अब एक ही जाति हो गई और वे सब अब एक ही धर्मके उपासक हो गए।

११. गुरु गोविन्द ; उसका चरित्र और आदर्श

गोविन्दने अपने अनुचरोको क्रमशः शिक्षित किया और उनके लिए एक अलग ही विशिष्ट पहनावा नियुक्त किया। नए सस्कारोसे अभिसिंचित कर उसने उन्हे नए आदर्शके लिए प्रतिज्ञावद्ध किया। तब कही खुलेआम इस्लामका विरोध करनेकी नीति प्रारम्भ की गई। मुसलमानोके अत्या-चारोके विरुद्ध विद्रोह करनेके लिए उसने हिन्दुओको भी उत्तेजित किया। किसी भी मुसलमान सन्तके मकबरेको प्रणाम करनेवाले अपने अपराधी अनुयायीके लिए उसने रु० १२५के जुरमानेकी सजा नियत की। उसके

उद्देश्य स्पष्टतया सासारिक ही थे। "हे माँ ! मै यही सोच रहा हूँ कि किस प्रकार खालसाको एक साम्राज्य दे सकूँ।" वह स्वय वडे ही राजसी ठाठ से रहता था।

गोविन्दने अपना अधिकाश जीवन उत्तरी पजाबके पहाडोमे ही बिताया। वह गढवालमे जम्मूसे श्रीनगर तक पहाडी राजाओसे निरन्तर लडता-भिड़ता रहा। उसके अनुयायियोकी मारकाट तथा स्वय उसकी महत्त्वाकाक्षासे उठनेवाली आशकाओसे वे भी घबरा उठे थे। गुरु गोविन्द को दबानेमे पहाडी राजाओसे सहयोग करनेके लिए सरहिन्दसे वडी-वडी शाही सेनाएँ भेजी गई। पर वे हमेशाके समान असफल ही रही। पजाब के दोआबोसे निरन्तर लोग आ-आकर उसके मतको स्वीकार करते थे, जिससे उसकी सेना वढती गई, यहाँ तक कि कई मुसलमान भी गुरुसे आ मिले। आनन्दपुर पाँच बार घेरा गया। अन्तिम घेरेके वाद गुरुने यह किला छोड दिया। मुसलमानोने उनका पीछा किया। वह अनेक दुर्घटनाओसे बाल-बाल बचता ही रहा और शिकारके पशुके समान अपनी सुरक्षाके लिए उसे वारम्बार अपना निवास-स्थान वदलना पडता था। उनके चार पुत्र मारे गए। तब गुरु गोविन्द अपने इने-गिने विश्वसनीय रक्षकोको साथ लेकर दक्षिण-यात्राको चल पडा। सन् १७०७ ई० मे नये बादशाह पहले बहादुरशाहने उसे राजपूताने और दक्षिणकी यात्रामे अपने साथ चलनेके लिए उतारू किया। १७०७ ई० के अगस्त माहमे कुछ पैदल और दो-तीन सौ घुड-सवारोके साथ गुरु हैदराबादसे १५० मील उत्तर-पश्चिममे गोदावरी तटपर स्थित नान्देर पहुँचा। वहाँ एक वर्षसे कुछ अधिक दिन रहनेके बाद एक दिन एक अफगानने छुरा भोक दिया, जिससे तब वही उसकी मृत्यु हो गई (१७०८ ई०)। उसके साथ ही गुरुओकी इस वश-परम्पराका अन्त हो गया।

इस प्रकार औरगजेबके शासन-कालमे मुगल सत्ताने गुरुओंकी शक्तिको तोड़नेमे पूरी सफलता प्राप्त की, जिससे अब सिक्खोका कोई नेता नही रह गया और उनकी कोई सगठित केन्द्रीय सस्था भी न रही। उसके बाद भी सिक्ख लोग जन-शान्ति भग करते रहे, परन्तु अब वे अलग-अलग जत्थोमे बँट गए थे। अब वे एक प्रधान मुखियाके आधिपत्यमे रहकर एक सगठित सेनाके रूपमे नही लड़ सके। उनका कोई निश्चित राजनैतिक उद्देश्य भी अब नही रहा। वे घूमने-फिरनेवाले डाकुओके समूहोके समान

बन गए। वे अत्यधिक साहसी, उत्साही और परिश्रमी थे, परन्तु प्रधानतया वे लुटेरे ही थे। प्रान्तमें सगठित सत्ता स्थापित करनेकी कोई भी महत्त्वाकाक्षापूर्ण प्रेरणा उनमे न रही। यदि रणजीतसिहका उदय न होता तो सिक्खोंका कोई भी विस्तृत और संगठित राज्य स्थापित नही हो सकता था। सारे पजाबमे अनेकों छोटे-छोटे राज्य थे, जिनपर सिक्ख सैनिकोके ही नेता राज्य करते थे। आक्रमण करके आसपासके देशको उजाडनेके लिए वे अपने सगठित लुटेरोको प्रतिवर्ष भेजा करते थे।

औरगजेबकी धर्मान्धतापूर्ण नीतिका सबसे बुरा परिणाम यही हुआ कि उसने राजपूत तथा सिक्खो जैसी भारतकी सबसे कट्टर एवं वीर योद्धा-जातियोको उत्कट विरोध करनेके लिए प्रेरित किया।

अध्याय ९

राजपूतानेमें युद्ध ; अकबरका विद्रोह

१. औरंगजेबका मारवाड़पर अधिकार करना, १६७९ ई०

मारवाड एक मरुभूमि है, परन्तु मुगलकालमे उसका सैनिक महत्त्व एक विशेष कारणसे था। मुगल राजधानीसे समृद्ध उद्योग-धन्धेवाले शहर अहमदावाद और खम्बातके काम-धन्धेवाले वन्दरगाहको जानेवाला सवसे सीधा व नदजीक व्यापारिक-मार्ग मारवाडकी सीमामेसे होकर गुजरता था। यदि ऐसा प्रदेश मुगल साम्राज्यमे मिलाया जा सके तो उदयपुरके अभिमानी, गौरवपूर्ण राणाको उस बाजूसे पूरी तरह घेर लिया जावेगा और राजपूतानेके ठीक बीचोबीचमे ऐसे लम्बे प्रदेशकी स्थापना हो जावेगी, जिसपर मुसलमानोका एकाधिपत्य होगा। उस समयकी उत्तरी भारतकी सारी हिन्दू रियासतोमे मारवाड ही सबसे अग्रगण्य और महत्त्वपूर्ण था। इस समय वहाँ जसवन्तसिह राज्य कर रहा था। बलपूर्वक हिन्दुओका धर्म-परिवर्तन करवानेकी औरगजेबकी नीतिके लिए यह बहुत ही आवश्यक था कि जसवन्तका यह राज्य बिलकुल ही शक्तिहीन एव साधारण आश्रित राज्यमात्र बन जावे, अथवा वह साम्राज्यका एक सामान्य सूबा ही रह जाए।

१० दिसम्बर, १६७८ ई०को जमरूदमे[1] ही जसवन्तसिहकी मृत्यु हुई। जसवन्तकी मृत्युका हाल सुनते ही औरगजेबने मारवाड़ राज्यको एकदम मुगल शासनमे ले लिया। ९ जनवरी १६७९को स्वय बादशाह अजमेरके

१ जसवन्तसिह कभी अफगानिस्तानका प्रधान शासक या काबुल शहरका सूवेदार नही बना। वह तो जमरूदका थानेदार मात्र ही था।

लिए रवाना हुआ। यदि वहाँ कोई विरोध उठ खडा हो तो उसको दबाने के लिए जोधपुरके पास पहुँच जाना ही उसका एकमात्र उद्देश्य था।

जसवन्तकी मृत्युसे राठौड़ जाति बडी ही व्याकुल एव अस्तव्यस्त हो गई, तथा वहाँ सर्वत्र गडबडी मच गई। राज्यपर कोई भी शासक नही रह गया था, एवं राज्यमें बढी-चढी आती हुई सुसचालित सशक्त मुगल सेनाका सामना करनेकी शक्ति मारवाड राज्यमे नही रह गई थी।

२६ फरवरीको औरंगजेबने सुना कि लाहौरमे जसवन्तकी दो विधवा रानियोने दो पुत्रोको जन्म दिया था। फिर भी बादशाह मारवाड़ राज्यको मुगल साम्राज्यमें सम्मिलित कर लेनेकी नीतिसे विरत होनेवाला न था। अजमेरसे लौटकर दो अप्रेलको बादशाह दिल्ली पहुँचा। पिछले सौ वर्षोसे जो बन्द था, वह जजिया कर उस दिन औरगजेबने पुनः हिन्दुओपर लगा दिया, और यो हिन्दुओके प्रति अपने विरोध एवं द्वेषको स्पष्टरूपेण घोषित किया।

जसवन्तके भाईका पौत्र, इन्द्रसिह राठौड़, इस समय नागौरका शासक था, २६ मईको उसे जोधपुरका राजा बनाकर मेवाड भेजा। परन्तु मुगल अधिकारी और सेनानायकोको जोधपुरमे ही रहनेका हुक्म मिला। अपने इस राज्यपर अधिकार करनेमे नये राजाकी सहायता करना ही सभवतः उनका प्रधान कर्तव्य था।

२. दुर्गादासने अजीतसिंहको कैसे बचाया

लाहौर पहुँचनेपर जसवन्तकी दो विधवा रानियोंने दो पुत्रोंको जन्म दिया (फरवरी १६७९)। उनमेसे एक तो कुछ ही सप्ताहोके बाद मर गया, किन्तु दूसरा, अजीतसिह, जोधपुरकी गद्दी पर बैठनेके लिए बच रहा। जूनके अन्तमें महाराजाका कुटुम्ब दिल्ली पहुँचा। अजीतके अधिकारोकी स्वीकृतिके लिए पुनः औरगजेबसे प्रार्थना की गई, परन्तु उसने यही हुक्म दिया कि बालक अजीतका लालन-पालन मुगल राजघरानेके जनानखानेमे ही किया जावे, और यह आश्वासन भी दिया गया कि वयस्क होनेपर उसे भी मुगल सरदारोकी कोटिमें गिना जावेगा तथा तब उसे राजाकी पदवी दी जाएगी। एक तत्कालीन इतिहासकार लिखता है कि अजीतके मुसलमान बन जानेपर उसे तत्काल ही जोधपुरकी गद्दी देनेका प्रलोभन भी दिया गया था।

औरगजेबका यह प्रस्ताव सुनकर सारे स्वामिभक्त राठौडोके हृदयोमे तीव्र व्याकुलता भर गई। अपने स्वर्गीय स्वामीके इस नवजात उत्तराधिकारी को बचानेके लिए प्रत्येक राजपूतने प्राण रहते कट्टरतापूर्वक लडते रहनेकी कठोर प्रतिज्ञा की। जसवन्तके प्रधान मन्त्री द्रुणेराके सरदार आसकरणका पुत्र दुर्गादास ही इन वीर राजपूतोका प्रधान नेता एव उनका एकमात्र प्रेरक था। राठौड वीरोमे सर्वश्रेष्ठ इस बाके राजपूत दुर्गादासको मुगलोका सारा द्रव्य और उनका कल्पनातीत ऐश्वर्य नही लुभा सके, और न मुगलोकी सैनिक शक्ति तथा साम्राज्यकी सत्ता ही उसके दृढ-प्रतिज्ञ और धीर हृदयको डगमगा सकी। सारे राठौडोमे इसी एक व्यक्तिमे राजपूत योद्धा-ओके अदम्य उत्साह तथा उनकी प्रचण्ड निरपेक्षणीय वीरताके साथ ही साथ मुगलोके राजमन्त्रियोकी-सी नीति-कुशलता, चतुराई एवं संगठन करने-की अद्वितीय शक्तिका भी अतुलनीय एव अनोखा सम्मिश्रण पाया जाता था।

जसवन्तकी रानी और अजीतको पकड़कर उन्हे दिल्लीमे ही नूरगढके किलेमे कैद कर देनेके लिए बादशाहने १५ जुलाईको दिल्लीके फौजदार और अपने निजी सैनिकोके नायकको एक बडी शक्तिशाली सेनाके साथ भेजा। जहाँ वे ठहरे हुए थे, उस हवेलीकी एक ओरसे जोधपुरके भाटी सरदार रघुनाथने अपने सौ राजनिष्ठ सैनिकोके साथ मुगलोके इस सैनिक दलपर जोरोके साथ आक्रमण किया। इस भयकर आक्रमणसे ही शाही फौज घबडा उठी और उनकी इस क्षणिक अस्त-व्यस्ततासे लाभ उठाकर दुर्गादास दोनो रानियो, जो इस समय मर्दाना वेशमे थी, और अजीतको लेकर उस हवेलीसे निकल गया। वहाँसे वह सीधा मारवाड़की ओर चल पडा। डेढ घण्टेतक रघुनाथने दिल्लीकी गलियोमे खूनकी नदियाँ बहा दी और अन्तमे वह भी वही काम आया। मुसलमानी सेनाने अब दुर्गादास, आदिका पीछा किया। तब तो रणछोडदास जोधाने शत्रुओका रास्ता रोका। उसके पास थोडी-सी सेना थी। ऐसा तीन बार हुआ। शाम तक मुसलमानोने पीछा करना छोड दिया। २३ जुलाईके दिन अजीतसिहको कुशलतापूर्वक मारवाड पहुँचा दिया। स्वामिभक्त राठौड अजीतसिहका साथ देनेको तैयार होकर सगठित होने लगे। उधर औरंगजेबने किसी ग्वालेके बच्चेको हरममे लाकर उसे वास्तविक अजीतसिहके नामसे प्रख्यात किया और दुर्गादास द्वारा पोषित राजकुमारको झूठा बताया जाने लगा। दो माह पहिले नियुक्त मारवाडके नए राजा इन्द्रसिहको शासन करनेके लिए अयोग्य घोषित कर इसी समय गद्दीसे उतार दिया।

२५ सितम्बरको बादशाह अजमेर पहुँचा, और वही उसने अपना अड्डा जमाया। उसके पुत्र मुहम्मद अकबरके सेनापतित्वसे लडती हुई शाही सेना आगे बढने लगी। मुगल सेनाके हरोलका नायक अजमेरका फौजदार तहाव्वरखॉ था। राजसिहके नेतृत्वमे मेडतिया राठौडोने पुष्कर झीलके पास शाही सेनाका रास्ता रोक दिया। वहॉ तीन दिन तक लगातार घमासान युद्ध हुआ, जिसमे मारवाडकी रक्षा करनेके लिए उद्यत साहसी राठौड़ वीर एक-एक कर कट मरे। उसके बाद राजपूत पहाडियों और मरु स्थलमे छिपने योग्य स्थानोंमे रहकर छापा मारने और यो शत्रुओंका विरोध करने लगे। अक्टूबर माहके अन्तसे बादशाहने मारवाडको कई जिलोमें बॉट दिया और हर एक जिलेमे एक मुगल फौजदार नियुक्त किया। यों सारे प्रदेशपर शीघ्र ही मुगल सेनाका अधिकार हो गया।

३. उदयपुरके महाराणाके साथ मुगलोंका युद्ध

मारवाडका मुगल राज्यमें यो मिलना मेवाड़के सरलतापूर्वक जीते जानेकी एक भूमिका-मात्र थी। जजिया करको फिरसे लगानेपर महाराणाके पास शाही हुक्म गया कि मेवाडके सारे राज्य भरमें उसे लागू किया जावे। अब यदि सीसोदिया राजपूत राठौडोंका साथ नही देते तो ये दोनो राजपूत जातियॉ एक-एक कर क्रमश· दबा दी जाती और तब सारा राजस्थान असहाय होकर क्रूर और अन्यायी मुगल शासकोंके अधिकारमे आ जाता। अजीतसिहकी माता मेवाडकी बहिन-बेटी नही थी, तथापि जोधपुरके राज घरानेके साथ मेवाडका जो पुरातन कौटुम्बिक सबध था, उसे किस तरह भुलाया जा सकता था? पुन· एक वीर योद्धाकी दृष्टिसे ही क्यो न हो, एक अनाथ बालकके अधिकारोकी रक्षाके लिए उससे की गई उस असहाय सकटापन्न राजमाताकी प्रार्थनाको महाराणा राजसिह किसी भी हालतमे नही ठुकरा सकता था।

रार्जसिह अब युद्धकी तैयारी करने लगा। किन्तु अपनी स्वभावगत तत्परताके साथ औरगजेबने ही युद्ध छेडा और मेवाड़पर आक्रमण कर दिया। अपनी·सेना लेकर हसनअली पुरसे आगे बढ़ा, राणाके प्रदेशोमे लूट-पाट करता हुआ वह प्रधान मुगल सेनाके लिए राह साफ करता जा रहा था। राणा इस आक्रमणके लिए पहिलेसे ही तैयार था। राणा और उसकी प्रजा तलहटीके मैदानोको छोड़कर पहाड़ोमे जा पहुँचे। जब मुगल सेना

उदयपुर पहुँची, तब उस शहरको निर्जन पाया। मुगलोने उदयपुरपर अधिकार कर लिया और वहाँके वडे मन्दिरके साथ ही साथ उदयसागर तालाबकी पालपरके तीन मन्दिरोको भी नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

राजपूत सेनाकी खोजमे हसनअली उदयपुरसे उत्तरपश्चिमी पहाडोमे जा घुसा। वहाँ उसने २२ जनवरीके दिन महाराणाको हराया। चित्तोड-पर पहिलेसे ही मुगलोका अधिकार हो चुका था। फरवरी मासके अन्तमे जब औरंगजेब वहाँ पहुँचा, तब वहाँके कोई ६३ मन्दिर तोड-फोड डाले गए। २३ मार्चको बादशाह अजमेरको लौट पडा। मेवाडपर आक्रमण करनेके लिए चित्तोड ही मुगलोका प्रधान सैनिक केन्द्र था, एव शाहजादे अकबरकी अधीनतामे एक शक्तिशाली सेना चित्तोडमे डटी रही, जिससे उस सारे जिलेपर मुगलोका आधिपत्य बना रहा। सारा राजस्थान मुगलोके विरुद्ध तीव्र रोप और कट्टर शत्रुताकी भावनासे उवल रहा था।

उदयपुरसे लेकर पश्चिममे कुम्भलगढ तक और राजसमन्द झीलसे लेकर दक्षिणमे सलूम्बर तक फैले हुए मेवाडके ये दुर्गम पहाड एक विस्तृत अजेय किलेके समान प्रमाणित होने लगे, जिसके तीन ही द्वार थे, पूरवमे देबारीकी घाटी, उत्तरमे राजसमन्द झील और पश्चिममे देसूरोकी घाटी। इन्ही तीन रास्तोसे राजपूतोकी सेनाके शक्तिशाली दल निकल-निकलकर मुगलोकी दूर-दूर फैली हुई चौकियोको नष्ट कर देते थे।

औरगजेबने शाहजादे अकबरको चित्तोड़मे रखा था, परन्तु उसके पास इतनी बड़ी सेना न थी कि जिससे वह लम्बे चौडे प्रदेशकी सफलता-पूर्वक रक्षा कर सकता। ज्योही औरगजेब अजमेरकी ओर लौटा, मेवाडमे पुन राजपूत उठ खडे हुए और उनकी ये हलचले दिनो-दिन बढती ही गई। अब तो मुगलोकी सारी चौकियाँ खतरेमे पड गई और उस सारे प्रदेशमे मुगल राजपूतोकी शक्तिसे भयभीत हो उठे।

मई मास आधा भी बीता न था कि चित्तोडके पास ही अकबरके पड़ावपर रातके समय राजपूतोने एकाएक हमला कर दिया। महाराणा भी ससैन्य पहाडोसे निकला और उसने सारे बदनौर जिलेमे चक्कर लगाया। महाराणाके इस आक्रमणकी अकबरको आशका तक न थी, एव इस हमलेसे शाही सेनाको बहुत हानि हुई। एक बडी राजपूत सेना साथ लेकर उसका पुत्र भीमसिह सारे देशको रौदने लगा और मुगल सेनापर यत्रतत्र लगातार आक्रमण भी करता रहा। अकबरको स्वीकार करना

पड़ा कि "राजपूतोंके भयके मारे हमारी सेना स्तब्ध और निश्चेष्ट हो गई है" ।

उसकी इन विफलताओसे क्रुद्ध होकर औरगजेबने अकबरको वहाँसे बदलकर मारवाड़ भेज दिया और उसके स्थानपर २६ जूनको शाहजादा आजम चित्तोड़की इस सेनाका नायक नियुक्त किया गया ।

अब यह तय हुआ कि शाही सेना तीनो ओरसे मेवाडकी इन पहाड़ियोमें प्रवेश करे । पूर्वमे देबारीकी राह उदयपुर होता हुआ शाहजादा आजम घुसे । उत्तरमे राजसमन्द झीलकी राहसे शाहजादा मुअज्जम ससैन्य चढाई करे औरपश्चिममे देसूरीकी घाटीकी राहसे शाहजादा अकबर धीरे-धीरे आगे बढे । इन तीनोमेसे पहले दोनो शाहजादे अपना उद्देश्य पूरा करनेमे असफल ही रहे ।

४. मारवाड़की ओरसे शाहज़ादे अकबरकी चढ़ाई

चित्तोड़से बदल दिए जानेपर अकबरने मारवाड़ जाकर १८ जुलाई १६८० ई० को सोजतमे पडाव किया । किन्तु मेवाडकी तरह मारवाडमे भी उसको कोई विशेष सफलता नही मिली । अकबरको आज्ञा हुई थी कि वह नाडौलपर अधिकार कर ले । तब पूर्वकी ओरसे मेवाड़पर चढ़ाई कर देसूरी घाटीपर अधिकार करता हुआ तहाव्वरख़ाँ कुम्भलगढके प्रदेशपर आक्रमण करे । कुम्भलगढके इसी प्रदेशमे मारवाड़से निकले हुए राठौड़ शरण लिए हुए थे । किन्तु मौतके साथ खिलवाड करनेवाले राजपूतोंका तहाव्वरखाँके सैनिकोके दिलोमे ऐसा डर समाया हुआ था कि आगे बढनेकी उन्हे हिम्मत ही नही हो रही थी । किन्तु सितम्बर, १६८० ई० के बाद तो हमे तहाव्वरख़ाँकी गतिविधिमे सन्देहजनक शिथिलता देख पडती है ।

औरंगजेब अब अधीर हो उठा । किसी भी कारण अधिक देरी करने देना उसके लिए असह्य हो गया, एव विवश होकर अकबरको आगे बढना ही पडा । नाडौलसे चलकर २९ नवम्बरको उसने देसूरीमे पड़ाव किया, और यहीसे सेना-सचालन करने लगा । झीलवाडा घाटीपर अधिकार करनेके लिए अकबरने तहाव्वरखाँको भेजा । २२ नवम्बरको मुगल सेना झीलवाडा तक बढ गई और यहीसे तहाव्वरखां निश्शक होकर आसपासके प्रदेशोमे लूटमार भी करने लगा ।

महाराणाका एकमात्र आश्रयस्थान, कुम्भलगढ, यहाँसे केवल ८ मील दूर दक्षिणमे रह गया था। परन्तु अगले पाँच सप्ताहोमे तहाव्वरखाँ पुन अकर्मण्य वैठा रहा, जिससे उसके प्रति सदेह उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है।

५. शाहजादे अकबरका स्वयंको सम्राट् घोषित करना; १६८१ ई०

औरगजेवके चौथे पुत्र सुलतान मुहम्मद अकवरकी आयु इस समय केवल २३ सालकी ही थी। निरन्तर हार खानेपर वह वारम्वार झिडका जाता था, जिसकी तीव्र वेदनासे वह बहुत ही व्याकुल हो उठा था। ऐसे ही समय राजपूतोने उसे प्रलोभन दिया कि वह उनसे जा मिले और उनकी सहायता द्वारा औरगजेवके अधिकारसे साम्राज्य छीनकर वह स्वय सम्राट् वन बैठे। अकवर इस प्रलोभनमे फँस गया और राजपूतोंके आमन्त्रणको अस्वीकार नही कर सका।

तहाव्वरखाँके जरिये ही राजपूतोके साथ यह सारी राज्यद्रोहात्मक बातचीत हुई थी। महाराणा राजसिह और राठौडोके नेता दुर्गादासने उसे सुझाया कि यदि वह अपने राजघरानेको नष्ट होनेसे वचाना चाहता था तो उसे चाहिए कि वह मुगल राज्यसिहासनपर अधिकार कर अपने पूर्वजोकी सहिष्णुतापूर्ण नीतिको पुन बरतने लगे।

औरगजेबके विरुद्ध अजमेरकी ओर ससैन्य बढनेकी पूरी-पूरी तैयारियाँ हो चुकी थी, परन्तु दुर्भाग्यवश इसी समय २२ अक्टूबर १६८० ई० को महाराणा राजसिहकी मृत्यु हो गई। मेवाड़ राजदरबारमे एक माह तक शोक मनाया गया, एव उसका उत्तराधिकारी जयसिह उस समयमे कुछ भी नही कर सका। उसके बाद समझौतेकी यह गुप्त वार्ता फिर चल पडी और जल्दी ही सारी बाते तय हो गई। औरगजेवके विरुद्ध लडाइयाँ लडनेके लिए महाराणाने शाहजादेके साथ अपनी आधी सेना भेजना स्वीकार किया। मुगल राजसिहासन प्राप्त करनेके लिए युद्धार्थ अजमेरकी ओर चढाईके वास्ते २ जनवरी १६८१ ई० को रवाना होनेका निश्चय किया गया।

औरगजेबके हृदयमे कही कोई सन्देह न उठ खडा हो जावे, इस आशकाको दूर करनेके लिए २ जनवरीसे दो दिन पहिले ही अकबरने अपने पिताके नाम एक झूठा बनावटी पत्र लिखा। किन्तु शीघ्र ही अकवरने पितृभक्तिका यह सारा ढकोसला दूर कर दिया और खुले-आम पिताका

विरोध करनेको उठ खडा हुआ। अकबरके साथ रहनेवाले चार मुल्ला-मौलवियोने एक फतवा दिया और उसपर अपनी मोहरे लगाई। उस फ़तवे द्वारा उन्होने घोषित किया कि औरगजेवका आचरण इस्लाम धर्मके विरुद्ध होनेके कारण औरंगजेबको राज्यसिहासनपर बने रहनेका कोई भी अधिकार नही रह गया था। तब १ जनवरी १६८१ ई० को अकबरने स्वयको सम्राट् घोषित किया। अकबरके साथके अधिकाश शाही अफसर न तो शाहजादेका विरोध ही कर सकते थे और न वे वहाँसे भाग ही सकते थे। अतएव अकबरके पक्षमे होकर उसका ही साथ देनेका ढोग करने लगे।

उधर अजमेरमें वादशाहकी परिस्थति वहुत ही सकटपूर्ण हो गई। शाही सेनाके जो दो प्रधान दल अभी तक उसके ही पक्षमे थे वे तव अजमेरसे बहुत ही दूर थे। औरगजेबके पासके साथियोमें प्रधानतया उसके व्यक्तिगत नौकर तथा कठिन युद्धके अनुपयुक्त सैनिक ही थे।

हर एकका यही खयाल था कि अपनी सेनाको लेकर अकबर बडी तेजीके साथ अजमेरकी ओर वढेगा, अतएव औरंगजेबके साथकी छोटी-सी सेनाकी हारके वाद अकबरका सिहासनारूढ होना निश्चित-सा ही जान पड रहा था। किन्तु सिर्फ १२० मीलकी दूरीको पार करनेमे अकवरने पूरे १५ दिन (२से १५ जनवरी) लगा दिए, और प्रत्येक घण्टेकी देरीके साथ औरगजेवका पक्ष सुदृढ होता गया।

इसी समय इधर-उधर फैले हुए शाही सेनाके दलोको अपने पास वुला लानेके लिए औरगजेवने चारों ओर दूत दौडा दिए थे। समय रहते वाद-शाहके साथ जा मिलनेके लिए सारे स्वामिभक्त शाही सेनानायक वड़ी तेजीसे अजमेरकी ओर वढ रहे थे। इस प्रकार कुछ ही दिनोमे औरगजेब-का यह आपत्तिपूर्ण समय निकल गया और १४ जनवरीको वादशाह ससैन्य अकबरका सामना करनेके लिए खुले मैदानमें आ डटा। अव तो अकवरके सैनिक दलमे निराशा छा गई और वहुतसे सैनिक उसके पक्षको छोडकर खिसकने लगे। केवल ३०,००० राजपूतोने ही अकवरका साथ दिया।

१५ जनवरीको वह निर्णायक घड़ी आ उपस्थित हुई। औरंगजेब आगे वढा और दोराईपर अकवरकी प्रतीक्षा करने लगा। जाडेकी उस कड़ी ठण्डमे विना कही ठहरे ही तेजीके साथ वढता हुआ शाहजादा मुअज्जम भी उसी शामको ससैन्य औरगजेवसे आ मिला, जिससे वादशाहके पक्षकी सैनिक शक्ति दूनी हो गई। उधर अकवरने भी अपने पितासे कोई तीन

मीलकी दूरीपर आकर पडाव डाला। अगले दिन युद्ध करनेका उसने निश्चय किया था।

६. तहाव्वरख़ाँकी हत्या : अकबरकी विफलता

परन्तु औरगजेबने बिना युद्ध किए अपनी धूर्ततापूर्ण नीतिसे ही उसी रात अकबरपर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली। औरगजेबने इनायतसे उसके दामाद तहाव्वरखाँके नाम एक पत्र लिखवाया, जिसमे अकबरके उस प्रधान सहायकको सलाह दी गई थी कि वह बादशाहके पास लौट आवे और अपने पिछले अपराधोके लिए माफी माँग ले। उसे वचन दिया गया था कि बादशाह उसे अवश्य ही क्षमा कर देगे, किन्तु यदि वह न आया तो उसकी बीवी और बच्चोके साथ दुर्व्यवहार करनेकी भी उसे धमकी दी गई थी।

यह पत्र पाकर तहाव्वरख़ाँ चक्करमे पड गया। आधी रातसे कुछ ही पहिले वह चुपकेसे शाही पडावमे जा पहुँचा और बादशाहसे मिलनेकी आज्ञा चाही। परन्तु उससे कहा गया कि वह सशस्त्र बादशाहके पास नही जा सकेगा। निशस्त्र होकर एक कैदीके समान ही वहाँ जानेको वह राजी न हुआ। झगडा बढ गया और बहुत शोरगुल होने पर अनेको शाही नौकर वहाँ इकट्ठे हो गए और उन्होने अपनी गदाओसे उसपर बहुत प्रहार किए, तथा अन्तमे उसका सिर काट डाला।

उधर औरगजेब भी अकबरके नाम एक झूठा पत्र लिखा। उसमे इसलिए अकबरकी प्रशसा की गई थी कि वह सारे राजपूत योद्धाओको अपने जालमे फँसाकर बादशाहके इतने पास ले आनेमे सफल हुआ था। अब ज्योही सामनेसे औरगजेब और पीछेसे अकबर उनपर आक्रमण करेगे तब उनको पूर्णतया नष्ट करनेमे उन्हे पूरी सफलता प्राप्त हो सकेगी। औरगजेबकी चालके अनुसार वह पत्र दुर्गादासके ही हाथ लगा। उसने यह पत्र पढा और इस पत्रके बारेमे खुलासा करनेके लिए वह अकबरके तम्बूमे पहुँचा। इस समय अकबर सोया हुआ था और उसे जगाना सम्भव नही था। तब तो दुर्गादासने तहाव्वरखाँको बुलानेके लिए एक आदमी भेजा, किन्तु तहाव्वरखाँ इससे कुछ ही घण्टे पहले शाही पडावकी ओर चला गया था। इन सारी बातोको देखकर वह पकडा हुआ पत्र दुर्गादास-को सत्य-सा ही प्रतीत होने लगा। सूर्योदयसे तीन घण्टे पहले राजपूत अपने घोडोपर जा डटे और अकबरके माल-असबाबमे जो कुछ उनके हाथ

पडा उसे उन्होंने लूटा और तब वे मारवाड़की ओर चल खडे हुए। उधर जो शाही सैनिक तथा अन्य स्वामिभक्त सेनानायक अकबरके डेरेमे कैद पड़े थे, वे सब अब भागकर औरंगजेबके पड़ावमे जा पहुँचे।

प्रात कालमे जब अकबर जगा, तब उसने देखा कि उसे छोडकर सब चल दिए थे, एवं वह अकेला ही रह गया था। अपनी औरतोंको घोड़ोपर चढाकर यथाशक्ति अपना खजाना ऊँटोपर लादकर वह अपनी प्यारी जान बचा राजपूतोके ही पीछे-पीछे भाग चला।

अकबरका बाकी रहा माल-असबाब और पीछे रहे उसके कुटुम्बियोको बादशाहके पड़ावमे लाया गया। अकबरके साथ शाहजादी जेबुन्निसाका जो पत्र-व्यवहार हो रहा था, वह भी पकडा गया, जिसके लिए उसे सलीमगढ के किलेमे कैद कर दिया गया।

शाहजादे मुअज्जमकी अधीनतामे एक मुसज्जित सेना अकबरका पीछा करनेके लिए मारवाडकी ओर भेजी गई। औरंगजेब द्वारा फैलाए हुए इस जालका ठीक-ठीक पता जब दुर्गादासको लगा, तब तो उसने लौटकर अकबरको अपने सरक्षणमे ले लिया। अपने इन रक्षकोके साथ-साथ अकबर भी सारे मारवाडमे घूमता फिरा। अन्तमे दुर्गादासने साहसपूर्वक वादा किया कि वह अकबरको सकुशल मराठा राजाके पास पहुँचा देगा। तब तक भारतमे मराठे ही सफलतापूर्वक मुगल सेनाओका विरोध और उनकी उपेक्षा कर सके थे। राहमे पड़नेवाली मुगल चौकियोको बड़ी ही चतुरतासे टालते हुए, इस राठौड वीरने अपना पीछा करनेवालोंको भी अपने वास्तविक उद्देश्यका ठीक-ठीक पता न लगने दिया। ९ मईको अकबरपुरके घाटेपर उसने नर्मदाको पार किया, और १५ मईको वह बुरहानपुरसे कुछ ही दूरीपर ताप्ती नदीके तटपर जा पहुँचा, किन्तु यहाँ भी मुगल सैनिक नदीके घाटेपर पहरा दे रहे थे, एवं इस राहको छोड़कर वह खानदेश और बगलानेमे होता हुआ पश्चिमको चला, और अन्तमे १ जूनको वह अकबरके साथ सकुशल शम्भूजीके पास जा पहुँचा।

७. महाराणाके साथ सन्धि

मारवाड़पर मुगल आधिपत्य स्थापित करनेके लिए फैलाया हुआ औरंगजेबका जाल जब पूरी तरह बिछ चुका था, और जब वह खीचा ही जानेवाला था, तब ही अकबरका यह विद्रोह उठ खड़ा हुआ, जिससे मारवाड़में युद्ध-सम्बन्धी औरंगजेबकी सारी योजनाओमे पूरी-पूरी गड़बड़

हो गई। इस सबके फलस्वरूप अब मारवाड राज्यपर पहिलेका-सा सैनिक दबाव नही रहा। सभवतः इसी समय सुअवसर पाकर महाराणा जयसिह के वीर भाई भीमसिह और अर्थमत्री दयालदासने गुजरात तथा मालवाके शाही इलाको पर आक्रमण कर वहाँ बहुत लूट-पाट की थी।

वास्तविक युद्धकी दृष्टिसे तो इस राजपूत-युद्धमे दोनो पक्ष बराबर ही रहे, किसी भी एककी हार या जीत न हुई। परन्तु आर्थिक दृष्टिसे यह युद्ध महाराणाकी प्रजाके लिए ही अहितकर तथा हानिकारक साबित हुआ। मैदानोमे खडे हुए उनके खेतके खेत शत्रुओने नष्ट कर दिए। मेवाड-निवासी हारको टाल सकते थे, परन्तु धान्यकी इस कमीको दूर करना उनके लिए सम्भव नही था। अतएव अब दोनो ही पक्षवाले सन्धिके लिए उत्सुक हो उठे। महाराणा जयसिह स्वय १४ जून १६८१ ई०को शाहजादे मुअज्जमसे मिला और मुगलोके साथ उसने सन्धि कर ली, जिसकी खास-खास शर्ते ये थी :–

(१) मेवाड राज्यसे वसूल की जानेवाली जजिया करकी रकमके बदले मे महाराणाने माण्डल, पुर और बदनौरके परगने मुगल साम्राज्यको दे दिए।

(२) मुगलोने मेवाड राज्यको छोड देनेका वादा किया। मेवाड राज्य जयसिहको वापिस दे दिया गया, उसे 'राणा'की उपा.ध देकर औरगजेबने पच-हजारीका मनसबदार बना दिया।

इस प्रकार अन्तमे मेवाड राज्यको अपनी शान्ति एव स्वतन्त्रता पुन' प्राप्त हुई। किन्तु मारवाडके भाग्यमे तो यह भी लिखा न था। अगले तीस वर्षो तक मारवाडमे निरन्तर युद्ध चलता ही रहा, जिससे वह सारा प्रदेश उजड गया। अशान्ति, अकाल तथा बीमारीने एक साथ ही उस प्रदेशको निर्जन भी बना दिया। उधर अकबरके शम्भूजीके साथ जा मिलनेसे मुगल साम्राज्यके लिए एक बिल्कुल ही नया तथा अनुपेक्षणीय खतरा उठ खडा हुआ। अब अपनी सारी सेनाएँ दक्षिणमे ही केन्द्रित करना औरगजेबके लिए अत्यावश्यक हो गया। औरंगजेबको भी स्वय दक्षिण जाना पडा। अतएव मारवाड़ पर मुगलोका अधिकार ढीला पड़ने लगा और इसी तरह राठौडोकी मुक्ति हुई। आनेवाले युगोमे भी दक्षिणी युद्ध-क्षेत्रकी सैनिक परिस्थितिमे होनेवाले परिवर्तनोका प्रभाव मारवाडपर मुगलोके आधिपत्यकी दृढता एव ढिलाईमे सुस्पष्टरूपेण देख पडता था।

दुर्गादासके समान सुयोग्य मार्ग-प्रदर्शककी देख-रेखमें धीरे-धीरे राठौड़ो की युद्ध प्रणाली वदलने लगी। आगे चलकर मराठोने भी जिस प्रणाली को अपनाया था, बहुत-कुछ उसीको अपनाकर अब राठौड़ वीर शाही फ़ौजोंको सब ओरसे सता-सताकर उन्हे थका देने लगे। उस उजाड मरु भूमिमे शाही सेनानायक असहाय होकर राठौडोको चौथ देनेको तैयार हो जाते थे कि कमसे कम इस तरह तो उन्हे शान्ति प्राप्त हो। यो कोई तीस वर्ष तक यह युद्ध निरन्तर चलता ही गया। अगस्त १७०९ ई० मे जब विजयी अजीतसिहने अन्तिम बार पुन जोधपुरमे प्रवेश किया, और जब दिल्लीके मुगल सम्राट्ने भी उसे जोधपुरका शासक स्वीकार कर लिया, तब ही जाकर कही इस युद्धका अन्त हुआ।

९

भाग ४

अध्याय १०

मराठोंका उत्थान

१. १७वीं शताब्दीके दक्षिणके इतिहासकी प्रधान विशेषता

ईसाकी सोलहवी शताब्दीके पहले चतुर्थांशके अन्तमें जब महान् बहमनी राजवंशका अन्त हो गया, तब बहमनी राज्यको आपसमे बॉटनेवाले आदिलशाह और निजामशाह ही उस बहमनी राजवशके सुयोग्य उत्तराधिकारी बने। कुलबर्गाके सुलतानो द्वारा प्रारम्भ की गई इस्लामी राज्य और सभ्यताकी परम्पराओका अहमदनगर और बीजापुरके केन्द्रोमे पूर्णरूपेण पालन होने लगा। सत्रहवी सदीके पहले चतुर्थांशमे निजामशाहोका नाम सदैवके लिए मिट गया। अब तक दक्षिणके इन मुसलमानी राज्योका नेतृत्व अहमदनगर राज्य करता रहा था, अब उस नेतृत्वके भारको संभालनेके लिए बीजापुर तेजीसे आगे बढा।

किन्तु सत्रहवी शताब्दीके प्रारम्भसे ही इस दक्षिणी रणक्षेत्रमे एक नई सत्ताने पदार्पण किया था। मुगल बादशाहोको अब दक्षिण-विजयके लिए अवसर मिला। यही एक तथ्य १७वी सदीके दक्षिण-भारतीय इतिहासकी प्रधान विशेषता है। १६३६ ई० मे बँटवारेकी सन्धिके अनुसार मुगल-साम्राज्यकी दक्षिणी सीमा स्पष्टरूपसे निर्धारित की जा चुकी थी। अगले २० वर्षोंमे बीजापुर अपनी उन्नतिकी चरम सीमापर पहुँच गया। तब उसका राज्य भारतीय प्रायद्वीपके दोनों समुद्री तटो तक फैल गया था। उसकी राजधानी कला, साहित्य, धर्म और विज्ञानकी उन्नतिका प्रधान केन्द्र बन गई थी। पर उस राज्यके दरिद्री और परिश्रमी योद्धा-संस्थापक सुलतानोके इन उत्तराधिकारी शासकोको युद्धभूमि और घोड़ेकी सवारीकी अपेक्षा दरबार और अन्तःपुर अधिक प्रिय थे। जब तक स्वय

शासक वीर नेता नही होता तव तक उस राज्यके विभिन्न सूवोके सैनिक-सूवेदार कभी उसकी आज्ञा नही सुनते हैं। इसलिए अन्तिम क्षमताशाली आदिलशाही सुलतानकी मृत्युके वाद (नवम्बर, १६५६) दक्षिणकी वची हुई मुसलमानो रियासतोका अनिवार्यरूपसे शान्ति व शीघ्रतापूर्वक मुगल साम्राज्यमे मिल जाना एक वहुत ही स्वाभाविक वात थी। किन्तु इसी समय दक्षिणी भारतकी राजनीतिमे एक नये तत्त्वके आनेसे वहाँकी सारी राजनैतिक परिस्थिति ही पूर्णतया वदल गई।

मराठोकी सत्ताका प्रादुर्भाव ही यह नई ओर विलकुल ही अनपेक्षित विशेषता थी। औरगजेवके राज्याभिषेकसे कोई डेढ सौ वर्ष तक दक्षिणी भारतके इतिहासमे और ईसाकी १८वी सदीके अन्तिम ५० वर्षो तक उत्तरी भारतके इतिहासमे भी मराठोका प्रभुत्व वना रहा। ये मराठे अनादि कालसे दक्षिणी भारतमे रहते आए थे, परन्तु १३वी सदीके वाद अपनी ही जन्मभूमिमे स्थित अनको रियासतोमे विखरे हुए विदेशी शासकोकी प्रजा वनकर उन्हे जीवन विताना पड़ रहा था। उन्हे न तो कोई अपने स्वाधिकार ही प्राप्त थे और न उनका अपना कोई राजनैतिक सगठन ही था। इन विखरे हुए मराठोको सुसगठित कर उन्हे एक जातिमे परिणत करना तथा उन्हीको लेकर मुगल साम्राज्यपर आघात कर उसे टुकडे-टुकडे करनेके लिए एक प्रतिभाशाली नेताकी आवश्यकता थी। औरगजेब-के समकालीन प्रतिद्वन्द्वी शिवाजीके रूपमे ही मराठोने अपने उस विलक्षण नेताको पाया।

ईसाकी १६वी सदीके अन्तमे जिस दिन सम्राट् अकबरने विन्ध्याचलसे आगेके दक्षिणी प्रदेशको जीतनेकी नीति प्रारम्भ की, तवसे लेकर कोई ९४ वर्ष बाद जब अन्तिम कुतुबशाही सुलतानसे जीती हुई उसकी राजधानी गोलकुण्डामे औरगजेबने विजयीके रूपमे प्रवेश किया, तब तकके इस कालमे बीजापुर और गोलकुण्डाके सुलतान कभी एक क्षणके लिए भी यह भूल न सके कि उनके राज्योको जीतकर उनका अस्तित्व मिटाने तथा उन्हे मुगल साम्राज्यमे मिलानेके लिए मुगल सम्राट् निरन्तर प्रयत्न कर रहे थे। ऐसे भयकर आपत्ति-कालमे अपनी रक्षाके लिए पहिले शिवाजीकी अनोखी प्रतिभा और बादमे शम्भूजीकी साहसपूर्ण वीरतामे ही उन्हे अपना एकमात्र सहारा दिखाई पडा। मराठोके विरोधमे मुगल-साम्राज्यका बीजापुर या गोलकुण्डाके साथ मित्रता कर सगठन करना मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे एक असम्भव बात थी।

संक्षेपमें दक्षिणी भारतकी विभिन्न शक्तियोका संगठन इस प्रकार था। मुगलोके आगे बढनेकी आशंकासे गोलकुण्डाका सुलतान तो एकबारगी शिवाजीसे जा मिला, किन्तु बीजापुरने अविश्वासके कारण बडी ही हिच-किचाहटके साथ यदा-कदा ही शिवाजीकी मित्रता स्वीकार की। जब बीजापुरपर मुगलोके निरन्तर आक्रमण होने लगे और आदिलशाहकी स्थिति बहुत ही निराशापूर्ण हो गई तब ही कही बीजापुरके शासकका शिवाजीके साथ मेल हो पाया। किन्तु तत्काल ही यह आशका होने लगी कि कपट-जालसे उसके किलो और प्रदेशोको हडप कर शिवाजी स्वयं समृद्ध हो रहा है, एव बीजापुरके शासको की यह मित्रता भी शीघ्र ही समाप्त हो गई। दक्षिणकी इन तीन शक्तियोमेंसे इस कालके लिए तो हम कुतुबशाहको भुला सकते है, क्योकि इस समय उसने कभी मुगलोंका विरोध नही किया। १६६६ ई०के बाद जब आदिलशाह द्वितीय शराबके नशेमें चूर रहने लगा, तब बीजापुरका निराशापूर्ण पतन आरम्भ हो गया। वजीरी प्राप्त करने और राजधानी तथा विलासी सुलतानपर [illegible] करनेके लिए विरोधी सरदार आपसमे लड़ने लगे। सन् १६[illegible] ई०में नाबालिग सुलतान सिकन्दरके गद्दीपर बैठते ही बीजापुरकी [illegible] शोचनीय हो गई। उस समयके बाद बीजापुरका इतिहास [illegible] तानके अभिभावकोका ही इतिहास रह जाता है। [illegible] गडबडी मच गई। इस अवसरसे लाभ उठाकर [illegible] शिवाजीका उत्थान सम्भव हो सका।

मे औरगजेब दक्षिणसे रवाना हुआ, और अपने जीवनके अन्तिम पच्चीस वर्ष निरन्तर युद्धमे ही वहाँ विता देनेके लिए औरगजेव मार्च १६८२मे वापस दक्षिण लौटा। इन बीचके इन चौवीस वर्षोमे दक्षिणी सूवोपर पाँच सूबेदारोने शासन किया।

इन चौवीस वर्षोमे दक्षिण भारतमे मुगल सेनाओको यदा-कदा ही सफलता मिली और तव भी वे कभी निर्णयात्मक विजय नही प्राप्त कर सकी। इस असफलताके कारण कुछ तो व्यक्तिगत थे और कुछ राजनैतिक। शाहआलम एक शर्मीला और अनुत्साही शाहजादा था। स्वभाव से ही वह पडोसियोके साथ शान्ति वनाए रखनेको उत्सुक रहता था तथा अन्त पुरके विलास और शिकारका प्रेमी था। इसके अतिरिक्त उसका प्रधान सेनानायक दिलेरखाँ विना किसी प्रकारके सकोचके खुले-आम शाहजादेकी आज्ञाओकी अवहेलना करता था जिससे गृह-युद्धसे पीडित किसी भी प्रदेशके समान ही दक्षिणमे मुगल सेनाकी निर्वलता सुस्पष्ट हो जाती थी। शाहआलम और दिलेरखाँ हमेशा परस्पर-विरोधी उद्देश्योपर चलते थे, जिससे दक्षिणमे मुगलोकी विफलता निश्चित-सी हो जाती थी।

दूसरे शाही सेनानायक और अधिकारी शिवाजीके साथ इस लगातार युद्धसे बिलकुल ऊब गए थे। जो हिन्दू अधिकारी इस समय मुगलोकी सेवा कर रहे थे उन्होने भी हिन्दू धर्मके इस दक्षिणी समर्थकके साथ गुप्त रूपसे भाईचारा स्थापित कर लिया और उनके मुसलमान सेनापति भी शान्तिमय जीवन व्यतीत करनेके लिए उसे रिश्वत देनेको प्रसन्नतापूर्वक तैयार थे। इसके अतिरिक्त वीजापुर और मराठोको हरानेके लिए दक्षिणके किसी भी मुगल सूबेदारको साम्राज्यकी ओरसे अत्यावश्यक सैन्य और धनका आधा भाग भी प्राप्त नही हुआ।

शाहजादे अकबरके विद्रोह और बादमे उसके शम्भूजीकी शरणमे जा पहुँचनेसे दिल्लीके तख्तके विरुद्ध एक और नया सकट उत्पन्न हो गया था। उसका सामना करनेके लिए औरगजेबको स्वय दक्षिण जाना पडा। इस प्रकार उस ओरकी शाही नीतिमे एकाएक ही पूरा परिवर्तन हो गया। शम्भूजीकी शक्तिको नष्टकर साथ ही अकबरको भी बिलकुल अशक्त तथा निस्सहाय बना देना अब औरगजेबका प्रधान कार्य हो गया।

३. महाराष्ट्र प्रदेश और वहाँके निवासी

मराठोकी जन्मभूमि तीन सुस्पष्ट भौगोलिक भागोमे बँटी हुई है।

पश्चिमी घाट और हिन्द महासागरके बीच एक लम्बी परन्तु सँकड़ी जमीन का हिस्सा बहुत दूर तक चला गया है। इसकी चौड़ाई कही कम और कही ज्यादा है। बम्बई और गोआके बीचके इस हिस्सेको कोकण कहते है। गोआके दक्षिणमें कन्नड़ प्रदेश शुरू हो जाता है। इस कोकण प्रदेशमें हमेशा निश्चित रूपसे बहुत गहरी बरसात होती है। प्रति वर्ष यहाँ सौसे दो सौ इच तक वर्षा होती है। यहाँकी मुख्य उपज चावल है। आम, केले और नारियलके बाग यहाँ बहुतायतासे पाए जाते है। घाट पार करनेके बाद पूर्वकी ओर लगभग २० मील चौड़ा धरतीका एक लम्बा टुकड़ा पड़ता है। इसे मावल कहते है। यहाँकी धरती बहुत ही ऊँची-नीची है। दूर तक चली जानेवाली गहरी टेढ़ी-मेढी घाटियोमे यत्र-तत्र समतल भूमि पाई जाती है। इससे भी आगे पूर्वकी ओर बढ़नेपर पश्चिमी घाटकी पहाड़ियोकी ऊँचाई कम होने लगती है और नदियोके कछार चौड़े और समतल होने लगते है। यहीसे 'देश' नामक प्रदेस प्रारम्भ होता है। दक्षिणके मध्यमें स्थित दूर-दूर तक फैला हुआ यह एक लम्बा-चौड़ा उपजाऊ मैदान है जहाँकी मिट्टी काली होती है।

जहाँ अपने सीधे-सादे स्वरूप द्वारा प्रकृति स्वय सादगीकी शिक्षा देती हो, उस देशमे किसी प्रकारकी विलासिताका पाया जाना, ब्राह्मणोको छोड़कर अन्य उच्च वर्णवालोको विद्याध्ययनके लिए आवश्यक अवकाश मिलना, तथा कलात्मक विकासकी बात तो दूर रही किन्तु वहाँ शिष्ट समाजमें चतुरतापूर्ण व्यवहारका भी पनपना सर्वथा असम्भव है। साथ ही ऐसे प्रदेशके इन अभावोंकी पूर्ति वहाँकी जलवायु तथा धरतीसे उत्पन्न होनेवाले अनेकों आवश्यक गुणोसे होती है। वहाँके निवासियोमे आत्म-विश्वास, साहस, अध्यवसाय, कठोर सादगी, सीधापन और सामाजिक समताके साथ ही मानवोचित गर्व भी पूर्णरूपेण पाया जाता है। कार्य-शीलता, आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान और समता-प्रेम, आदि गुण उनके चरित्रकी आधारभूत विशेषताओके रूपमे मिलते है।

ईसाकी १६वी शताब्दीके मराठोमें दूसरी धनवान् और अधिक सभ्य जातियोकी अपेक्षा सामाजिक भेदभाव बहुत ही कम था। समता की ऐसी ही भावनाएँ धार्मिक प्रवृत्तियो द्वारा भी प्रेरित होती थी। पन्द्रहवी और सोलहवी सदियोके लोकप्रिय सन्तोने जन्मकी श्रेष्ठताकी अपेक्षा चरित्रकी पवित्रताको अधिक महत्त्व दिया था। उनके विचारानुसार ईश्वरके सामने सारे सच्चे भक्त एक ही समान थे।

प्रारम्भिक मराठा समाजकी सादगी और एकता उनकी भाषा और साहित्यमे भी प्रतिविम्बित होती थी। उनका भाषा-साहित्य अविकसित और अल्प होते हुए भी अत्यधिक लोकप्रिय था। इस प्रकार शिवाजी द्वारा राजनैतिक एकता स्थापित होनेसे पहले ही, १७वी शताब्दीके महाराष्ट्रमे समान भाषा, समान धर्म और समान जीवनसे परिपुष्ट एक जातिका निर्माण हो चुका था।

शिवाजीकी सेनामे प्रधानतया मराठा और कुनवी जातिके ही सैनिक थे। ये जातियाँ स्वभावसे ही सीधी, निष्कपट, स्वच्छन्द, वीर और परिश्रमी होती है। ईसाकी १४वी शताब्दीमे जब मुसलमानोने दक्षिणी भारत को जीत लिया और उसीके फलस्वरूप जब महाराष्ट्रके अन्तिम हिन्दू राज्यका भी अन्त हो गया, तब इस देशके निवासियोमेसे योद्धा जातियोके छोटे दल अपने विभिन्न नायकोंके नेतृत्वमे सगठित हो गए, और जब-जब देशके नए मुसलमान शासकोको आवश्यकता पडी तब-तब उन्होने द्रव्य देकर इन्ही सेनानायकोको उनके सैनिक साथियोके साथ अपनी सहायतार्थ बुलाया। इस तरह अपने पडोसी मुसलमान राज्योकी सहायता करके कई मराठा घरानोने धन और शक्ति प्राप्त की और वीर साहसी योद्धा होनेका यश भी कमाया।

४. शाहजी भोंसले; उनका जीवन-चरित्र

इसी प्रकारका भोसले नामक एक खानदान आरम्भमे पूना जिलेके अन्तर्गत पाटस नामक तालुकामे रहता था, और वहीके दो गाँवोकी पटेली भी करता था। वे खेती करते थे। अपने सीधे सच्चे चरित्र तथा धार्मिक उदारताके कारण आसपासके प्रदेशमे उन्हे बहुत ही सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे। उन्हे अपने खेतोमे कुछ गडा हुआ धन भी प्राप्त हुआ, जिससे वे आवश्यक शस्त्र और घोड़े, आदि ख़रीद सके। १६वी सदीके अन्त तक वे निजामशाही राज्यके विदेश-निवासियोकी सेनाके नायक बन गए। मालोजीके ज्येष्ठ पुत्र शाहजी भोसलेको भी ऐसे ही नायकका पद मिला था। उनका जन्म १५९४ ई० मे हुआ था। बाल्यकालमे ही उनका विवाह अहमदनगर राज्यके एक बडे हिन्दू सरदार, सिन्दखेड़के प्रतिष्ठित सामन्त लखूजी यादवरावकी पुत्री जीजाबाईके साथ हुआ था। निज़ामशाहके वजीर मलिक अम्बरके शासन-कालमे शाहजी सम्भवत. पहिले-पहल अपने कुटुम्बकी ही छोटी-सी सेनाके नायकके रूपमे नौकर हुए थे। मई १६२६मे

मलिक अम्बरकी मृत्युके बाद बडी तेजीके साथ इस राज्यका पतन होने लगा। दरबारमें आए दिन हत्याएँ होने लगी। ऐसे संकटकालमें शाहजीने पहिले तो निजामशाही सरकारका साथ दिया और फिर वे मुगलोसे जा मिले। कुछ समय बाद मुगलोको छोडकर बीजापुरसे लड़े और बादमे वे बीजापुरकी ओर गए। अन्तमे १६३३मे सह्याद्रि श्रेणीके एक पहाड़ी किलेमे उन्होने नाम-मात्रके निजामशाहके एक शाहजादेको गद्दीपर विठाकर उसका राज्याभिषेक किया। पूना और चाकणसे लेकर बालाघाट तकके सारे प्रदेश तथा जुन्नर, अहमदनगर, सगमनेर, त्र्यम्बक और नासिक, आदि स्थानोंके आसपासका सारा निजामशाही इलाका छीन लिया। इस सुलतानके नामसे तीन वर्ष (१६३३-३६) तक उन्होने इस राज्य-भारको सम्हाला। जुन्नर शहर इस राज्यकी राजधानी बना। अन्तमे १६३६मे शाहजीके विरुद्ध एक वडी मुगल सेना भेजी गई, जिसने शाहजीको बुरी तरह हराया और उन्हे विवश होकर अपने आठ किले मुगलोको दे देना पडे। अब वे महाराष्ट्र छोड़कर बीजापुर चले गए और फिरसे उन्होंने वहाँ नौकरी कर ली।

९. शिवाजीका बाल्यकाल; उनकी शिक्षा तथा चरित्र

शाहजी और जीजाबाईके दूसरे पुत्र शिवाजीका जन्म जुन्नर शहरके पास ही शिवनेरके पहाडी किलेमें सन् १६२७ ई०मे हुआ था। १६३७के अन्तमे शाहजी पुन वीजापुर राज्यकी नौकरी करने लगे और उसके कुछ ही समय बाद अपने इस नये स्वामीके लिए नये प्रदेश जीतने और स्वयं अपने लिए नई जागीर प्राप्त करनेके उद्देश्यसे पहिले वे तुङ्गभद्रा और मैसूरके पठारकी ओर भेजे गए और वहाँसे वे मद्रासके समुद्री तटकी ओर भी गए। शाहजीकी प्रिय पत्नी तुकाबाई और उसी पत्नीका पुत्र व्यको-जी भी इस चढाईके समय शाहजीके साथ थे। जीजाबाई और शिवाजीको शाहजीने पूना भेज दिया था, जहाँ उनकी जायदादके कर्मचारी दादाजी कोण्डदेव उनकी भी देख-रेख करते थे।

अपने पतिकी इस उपेक्षाके कारण जीजाबाईकी मानसिक प्रवृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो गई और उनकी स्वाभाविक धार्मिक भावनाएँ अधिक सुदृढ वन गई। इस प्रवृत्ति तथा भावनाको शिवाजीने अपनी जननीसे ही पाया था। शिवाजीका वाल्यकाल एकाकी ही वीता, उनके साथ खेलनेको कोई वालक-साथी भी नही था, उनके कोई दूसरा भाई-बहन न था और न

पिताका सहवास ही उन्हे प्राप्त हो सका। अपने जीवनके इस एकाकीपनके कारण ही माँ-बेटे अधिक निकट आ गए। शिवाजीका मातृ-प्रेम बढता ही गया, यहाँ तक कि वे अन्तमे अपनी माताको देवीके समान पूजने लगे थे। अपने बाल्य-कालसे ही शिवाजीने अपने पैरोपर खडा होना सीखा था। दूसरे किसीकी सहायताके विना ही अपने विचारोको कार्यरूपमे परिणत करना वह जानते थे। अपने किसी उच्च अधिकारीके विशेष निर्देशके बिना अपनी प्रेरणासे ही आगे बढना उन्हे आता था। इस प्रकारकी जो शिक्षा उन्हे मिली थी वह वास्तवमे प्रधानतया व्यावहारिक थी। घुड-सवारी तथा युद्ध, आदि अनेकानेक वीरोचित कार्योमे वे पूर्ण दक्ष हो गए। उन्होने कहानियाँ और गीत सुन-सुनकर ही हिन्दू धर्मके महान् पुराणोका ज्ञान प्राप्त कर लिया और उन्हीसे शिवाजीने राजनैतिक और आचरण-सम्बन्धी सारे उपदेश भी ग्रहण किए। शिवाजीको धार्मिक उपदेश और कीर्तन सुननेका भी बडा चाव था। जहाँ कही भी वे जाते थे, वहाँ हिन्दू और मुसलमान सन्तोका सत्सग करते थे।

मावल अथवा पूना जिलेका यह पश्चिमी भाग सह्याद्रि पहाड-श्रेणीके तलेके घने जगलोके किनारे-किनारे दूर तक चला गया है। यहाँपर मावले किसान रहते है, जो बहुत ही स्वस्थ परिश्रमी और साहसी होते है। शिवाजीने अपने प्रारम्भिक साथियो, सच्चे अनुयायियो और वीर सैनिको-को इन्हींमेसे चुना था। अपनी ही उम्रवाले मावले नायकोके साथ-साथ युवा शिवाजी भी सह्याद्रिकी चोटियो और नदी किनारेके जगलोमे घूमते-फिरते थे। यो ही उन्हे परिश्रमपूर्ण एकाकी कठोर जीवनका अभ्यास हो गया था। धार्मिक आचरणके साथ ही साथ चरित्रकी दृढता भी शिवा-जीने प्रारम्भसे ही प्राप्त कर ली थी। उन्हे स्वतन्त्र जीवनसे प्रेम हो गया था एव मुसलमानोके आश्रयमे रहकर विलासी जीवन बितानेके विचार-मात्रसे ही उन्हे घृणा हो गई थी। १६४७ ई०मे दादाजी कोण्डदेवका देहान्त हो गया, जिससे बीस वर्षकी अवस्थामे ही शिवाजीको पूर्ण स्वतन्त्रता मिल गई।

६. शिवाजीकी प्रारम्भिक विजयें

सन् १६४६ ई०से बीजापुर राज्यके इतिहासमे एक महान् आपत्ति-काल प्रारम्भ होता है। बीजापुरका सुलतान मुहम्मद आदिलशाह सख्त बीमार हो गया और अपने जीवनके अगले दस वर्ष उसने वैसी ही रोगी

की दशामें बिस्तरमे पडे-पडे बिताए। इन दस वर्षोंमें वह राज-काजकी ओर कुछ भी ध्यान नही दे सका। इस अपूर्व अवसरसे शिवाजीने पूरा लाभ उठाया। उन्होने चालाकीसे तोरणा किलेको वहाँके किलेदारके हाथसे छीन लिया। इस किलेमे बीजापुर राज्यके खजानेके कोई दो लाख हूण शिवाजीके हाथ लगे। तोरणासे कोई पाँच मील दूर पूर्वमे पहाडियोकी इसी श्रेणीकी एक चोटीपर शिवाजीने राजगढ़ नामक एक नया किला बनवाया। बादमे उन्होने बीजापुरके एक प्रतिनिधिके पाससे कोण्डानाका किला भी ले लिया। दादाजीकी मृत्युके बाद शिवाजीने शाहजीकी पश्चिमी जागीरके सभी भागोको अपने अधिकारमे करना आरम्भ किया। एक ही सत्ताके अधिकारमे सारे राज्यको सुसगठित करना उनका उद्देश्य था।

२५ जुलाई १६४८ ई०को बीजापुरी सेनानायक मुस्तफाखाँने शाहजी-को कैदकर उनकी सारी जायदाद तथा उनकी सारी सेनाको जब्त कर लिया। इस समय मुस्तफाखाँ दक्षिण अर्काटके जिलेमे जिजी नामक किले-का घेरा डाले हुए था।

पाँवोमे बेडियाँ डालकर शाहजीको बीजापुर लाया गया और एक अमीरकी देख-रेखमें नज़रबन्द ही रहे। अन्तमें बीजापुरी सरदार अहमद-खाँने बीचमे पडकर समझौता करवाया और जब शाहजीने बगलोर, कोण्डाना और कन्दर्पीके तीन किले बीजापुर सुलतानको भेट करनेका वादा किया, तब १६ मई १६४९को वे कैदसे छूट पाए।

सतारा जिलेके उत्तर-पश्चिमी कोनेके बिलकुल छोरपर जावली नामक गाँव है जो उस समय एक काफी बडे राज्यका केन्द्र था। लगभग सारा जिला ही इस राज्यके अधीन था। इस राज्यका स्वामी मोरे नामक एक मराठा घराना था, ज़िनका खान्दानी ख़िताब 'चन्द्रराव' था। इस राज्यकी सेनामे मावलोके समान ही परिश्रमी पहाड़ी जातिके कोई १२,००० पैदल सिपाही थे।

अपनी भौगोलिक स्थितिके कारण जावलीका यह राज्य दक्षिण और दक्षिण-पश्चिमी दिशासे शिवाजीकी महत्त्वाकांक्षाके मार्गमें एक बड़ी बाधा बना हुआ था। इसलिए शिवाजोने अपने ताबेदार रघुनाथ बल्लाल कोरडेको चन्द्ररावकी हत्या करनेके लिए भेजा। चन्द्ररावके साथ कोई राजनैतिक सन्धि करनेके बहाने उससे मिलकर रघुनाथने चन्द्ररावकी हत्या कर दी। ज्योही चन्द्ररावके मारे जानेकी सूचना शिवाजीको मिली उन्होने

सेना सहित जावलीपर आक्रमण कर दिया (१५, जनवरी १५५६)। उनके साथ किसी भी सेनानायकके न होते हुए भी जावलीकी सेना छ घण्टे तक आत्मरक्षाके लिए लडती रही, परन्तु अन्तमे शिवाजीकी ही जीत हुई। जावलीका पूरा राज्य अब शिवाजीके अधिकारमे आ गया। जावलीसे दो मील पश्चिममे शिवाजीने प्रतापगढ नामक एक नया किला वनवाया और वहाँ अपनी इष्टदेवी भवानीकी स्थापना की। रायगढका किला तब भी मोरे कुटुम्बके अधिकारमे था, एव अप्रैल १६३६मे शिवाजीने यह किला भी जीत लिया। रायगढका यही किला आगे चलकर शिवाजीके राज्यकी राजधानी वना।

७. मुगलोंके साथ शिवाजीका प्रथम युद्ध; १६५७ ई०

४ नवम्वर १६५६को मुहम्मद आदिलशाहकी मृत्यु हुई और उसके साथ ही औरगजेब बीजापुरपर आक्रमण करनेके लिए वडे जोरोसे तैयारी करने लगा। जितने भी आदिलशाही सरदारो या अन्य अफसरोको फुसलाकर वह अपने पक्षमे मिला सका उन्हे उसने मिलाया। यह सारी हालत देखकर शिवाजीने भी अपनी नीति बदली और बीजापुर राज्यकी सहायता करना उन्हे अधिक उचित एव आवश्यक जान पडा। बीजापुरकी ओरसे औरगजेबका ध्यान बटानेके लिए वे अब मुगलोके दक्षिणी सूबेके दक्षिण-पश्चिमी कोनेपर आक्रमण करने लगे।

तीन हजार घुडसवारोको लेकर मानाजी भोसलेने भीमा नदीको पारकर मुगल राज्यके चमारगुण्डा तालुकाके गाँवोको लूटा। उसी समय काशी नामक दूसरा सेनानायक भी भीमा पार कर रायसीन तालुकाके गाँवोको लूट रहा था। अप्रैल १६५७ समाप्त होते-होते ये दोनो ही मुगल साम्राज्यके दक्षिणी सूबेके प्रधान नगर अहमदनगरकी चारदीवारी तक लूटमार कर वहाँ भी उत्पात मचाने और सर्वत्र आतक फैलाने लगे। अहमदनगर किलेके नीचे ही बसे पेठ (नगर) को लूटनेका मराठोने प्रयत्न किया था, किन्तु वहाँ नियुक्त मुगल सैनिकोके ठीक समय पर जा पहुँचनेसे वे सफल नही हो सके। उसी समय शिवाजी उत्तरमे जुन्नर तालुकाको लूटनेमे व्यस्त थे। ३० अप्रैलकी अँधेरी रातमे वे रस्सोकी सीढियो द्वारा जुन्नर शहरकी चारदीवारीको चुपकेसे फाँदकर अन्दर जा पहुँचे और वहाँके पहरेदारोको मारकर तीन लाख हूण, दो सौ घोड़े और

बहुतसे बहुमूल्य कपडे व जेवर ले गए। इन उपद्रवोका हाल सुनकर औरगजेबने सहायतार्थ और भी सेना अहमदनगर जिलेमे भेजी। तीन हजार घुड़सवार लेकर वहाँ जानेका नसीरीखाँ और इरजखाँको हुक्म दिया गया। परन्तु इससे पहिले ही अहमदनगरके किलेसे रवाना होकर मुल्फतखाँ चमारगुण्डा पहुँचा और २८ अप्रैलके दिन मानाजीको हराकर वहाँसे मार भगाया।

किन्तु जब उधर उत्तरी पूना प्रदेशमे मुगलोका दबाव बहुत अधिक बढ गया, तब शिवाजी अहमदनगर जिलेकी ओर खिसक गए और वहाँ लूटमार आरम्भ कर दी। मईके अन्त तक नसीरीखाँ भी किसी प्रकार घटना-स्थलपर पहुँच गया। राहमे कही भी ठहरे बिना ही उसने शिवाजीकी सेनापर एकाएक आक्रमण कर उसे घेर-सा लिया। कई मराठे मारे गए, अनेको घायल हुए और बाकी रहे भाग खडे हुए (४ जून)। मराठोके इन आक्रमणोके जवाबमें शिवाजीके प्रदेशपर सब तरफ़से चढाई कर वहाँके गाँवोको उजाडने, लोगोको निर्दयतापूर्वक मार डालने और उन्हे पूर्णतया लूटनेके लिए औरगजेबने अपने अधिकारियोको विशेषरूपसे आदेश दिया।

सन् १६५७ ई०के पिछले महीनेमें कई एक महत्त्वपूर्ण बाते हुई। मुगल सिहासनके लिए गृहयुद्धकी सभावनाएँ सुस्पष्ट हो गई और शाहजादा औरगजेब दिल्लीके लिए चल पडा। उधर मुगलोके साथ हुए पिछले युद्ध मे बीजापुरकी सेनाकी विफलताके कारणोंको लेकर वहाँके सरदारोमें आपसी झगडे उठ खड़े हुए थे, जिनके फलस्वरूप बीजापुरके वजीर खान मुहम्मदकी हत्या हुई। अतएव अब अपनी महत्त्वाकांक्षाओको पूरी करनेमें शिवाजीकी राहमे कोई भी बाधाएँ नही रह गई थी। पश्चिमी घाटके पहाड़ोको पार कर वे कोकड़मे जा धमके। समुद्री तटका यह उत्तरी भाग, जो आजकल थाणा जिला कहलाता है, तब कल्याण जिलेके अन्तर्गत पड़ता था। वहाँका शासन नवायत (नए आए हुओकी) जातिके मुल्ला अहमद नामक एक अरबके हाथमें था, जिसकी गिनती बीजापुरके प्रमुख सरदारोमे होती थी। कल्याण और भिवण्डीके समृद्ध शहरोके चारो ओर शहरपनाह न थी एव शिवाजीने बिना किसी कठिनाईके उनपर अधिकार कर लिया (२४ अक्तूबर १६५७)। वहाँ अत्यधिक धन और बहुतसी व्यापारिक सामग्री शिवाजीके हाथ पड़ी। ८ जनवरी १८५८को माहुलीके क़िलेको भी शिवाजीने जीत लिया। वहाँसे दक्षिणमे कोलाब जिलेपर

अधिकार करते समय शिवाजीको वहाँके स्थानीय छोटे-छोटे सरदारोंसे भी सहायता मिली। ये लोग मुसलमानोके आधिपत्यका अन्त कर देना चाहते थे, अतएव अपने जिलेमे आनेके लिए उन्होने शिवाजीको आग्रहपूर्वक लिख भेजा। शिवाजीने भी तुरन्त ही कल्याण और भिवण्डीको अपनी जल-सेना तथा जहाजोके ठहरनेका प्रमुख केन्द्र बना दिया।

८. शिवाजीका बीजापुरके अफजलखां को मारना, १६५९ई०

अपने सीमा-प्रदेशपर मुगल-आक्रमणकी निरन्तर बनी रहनेवाली आशकाके तब कुछ समयके लिए दूर हो जानेपर सन् १६५९ ई०मे बीजापुर के शासक अपने विभिन्न सरदारोंको दबानेके लिए प्रयत्नशील हुए। अफजलखाँ उपाधिसे भूषित अब्दुल्ला भटारी नामक व्यक्तिको शिवाजीके विरुद्ध भेजी जानेवाली सेनाका नेतृत्व सौपा गया। अफजलखाँ की गणना बीजापुरके प्रथम श्रेणीके सरदारोमे होती थी। उसने कर्नाटकके युद्धमे तथा मुगलोकी पिछली चढाईके समय बडी वीरता और युद्ध-कौशल दिखाए थे। किन्तु इस बार अफजलखाँके साथ केवल १०,००० घुड़सवार ही भेजे जा सके। उधर सर्वसाधारणमे प्रचलित विवरणके अनुसार शिवाजीके मावले पैदलोकी सख्या ६०,०००के लगभग बतायी जाती थी। इसलिए शिवाजीके साथ मित्रताका ढोग रचकर आदिलशाहसे उसके पूर्वापराध क्षमा करवानेका झाँसा दे शिवाजीको पकडने अथवा मार डालनेकी सलाह बीजापुरकी राजमाताने अफजलखाँको दी थी।[1] वाई पहुँचकर अफजलखाँने अपने कर्मचारी कृष्णाजी भास्करके द्वारा शिवाजीको एक बहुत ही ललचा देनेवाला सदेश भेजा। उसने लिखा कि—"बहुत वर्षो तक तुम्हारे पिताके साथ मेरी घनिष्ठ मैत्री रही है, अतएव तुम मेरे लिए

---

१ राजापुरसे रेंव्हिग्टनने कम्पनीको १० दिसम्बर १६५९के दिन लिखा था —"इस वर्ष राजमाताने १०,००० घुडसवार और पैदल लेकर अब्दुल्लाखाँ को शिवाजीके विरुद्ध भेजा। वह जानती थी कि इतनी थोडी सेनाको लेकर ही शिवाजीका सामना करना संभव नही था, अतएव शिवाजीके प्रति मित्रताका ढोग रचनेकी उसने सलाह दी थी, और वैसा ही उसने किया। और उधरसे (शिवाजीने) भी उसके प्रति कपट प्रेम दिखाया, शिवाजीको इस भेदका पता लग गया था या केवल सन्देहके कारण ही ऐसा किया, यह निश्चितरूपेण ज्ञात नही हो सका है।" (फैक्टरी रेकर्ड् ज, राजापुर)।

कदापि अपरिचित नहीं हो। तुम आकर मुझसे मिलो। मै अपना पूर्ण प्रभाव डालकर तुम्हारे अधिकारमें अब तक आए हुए सारे किलों और कोंकणके सारे प्रदेशपर तुम्हारा पूर्णाधिपत्य आदिलशाह द्वारा स्वीकृत करवा दूँगा।"

शिवाजीने अफजलके दूत कृष्णाजी भास्करका यथायोग्य सम्मान किया। रात्रिमें उससे गुप्त रूपसे मिलकर शिवाजीने शपथे दे हिन्दू और विशेषतया पुरोहित ब्राह्मण होनेके नाते खानके सच्चे उद्देश्यका पूरा-पूरा भेद खोल देनेके लिए उससे प्रार्थना की। जब अफजलखाँ सीराके किलेको घेरे हुए था, तब उसने वहाँके राजा कस्तूरी रंगाका नाहक वध किया था, जो शरण मागनेके लिए उसके पास पड़ाव पर आया था। यह एक बहुत ही सुज्ञात घटना थी। कृष्णाजीने इतना ही सकेत किया कि खानके मनमे कुछ कपटपूर्ण षड्यन्त्रकी भावना अवश्य है। शिवाजीने कृष्णाजी को वापस लौटा दिया, और उसके साथ ही अपने कर्मचारी पताजी गोपी-नाथको भी अफजलखाँके पड़ावपर भेजा। पन्ताजीने वहाँ जाकर अफजल के कर्मचारियोको बहुत-सा द्रव्य घूँसमे देकर इस बातका पता लगा ही लिया कि भेटके समय ही शिवाजीको कैद कर लेनेका अफजलने पूरा-पूरा प्रबध कर लिया था, क्योकि वह जानता था कि शिवाजी जैसे अत्यधिक चालाक व्यक्तिको आमने-सामनेके खुले युद्धमे पकड़ सकना कदापि सभव नही था।

प्रतापगढ किलेके नीचे एक छोटी-सी पहाड़ीकी चोटीपर, जहाँसे कयना नदीकी घाटी साफ देख पडती थी, वहाँ भेट होनेका निश्चय हुआ और तदर्थ वहाँ एक बहुमूल्य सुशोभित शामियाना भी लगाया गया। प्रमुख व्यक्ति, उसका ब्राह्मण दूत और उसके दो सशस्त्र शरीर-रक्षक यो कुल मिलाकर चार-चार व्यक्ति दोनो पक्षोंके उस डेरेमें उपस्थित थे। हारकर आनेवाले विद्रोहीकी तरह शिवाजी ऊपरसे बिलकुल ही शस्त्र-विहीन दिखाई पड रहे थे। उधर अफजलखाँकी कमरमें एक तलवार बँधी हुई थी। परन्तु दो अगुठियो द्वारा अगुलियोमें फँसा हुआ एक तेज बघनखा शिवाजीके बाएँ हाथमें छिपा हुआ था, और दाहिने हाथकी बाँहके नीचे एक पतला किन्तु तेज बिछुआ छिपा हुआ था।

साथी सब नीचे ही खडे रहे। शिवाजी ऊँचे मंचपर चढे और उन्होने झुककर अफजलको प्रणाम किया। खान गद्दीसे उठा और कुछ क़दम आगे

बढकर शिवाजीको गले लगानेके लिए उसने अपने दोनों हाथ फैलाए। दुबला पतला और ठिगना मराठा अपने शत्रुके कन्धो तक ही पहुँच पाता था। एकाएक अफजलने अपने बाहुपाशको जकड दिया और अपने बाएँ हाथसे शिवाजीकी गर्दनको दृढतापूर्वक पकडकर दाहिने हाथसे उसने लम्बी और सीधी धारवाली अपनी कटार खीची और शिवाजीके बगलमे मारी। परन्तु शिवाजीके अगरखेके नीचे छिपे हुए कवचके कारण अफजलका यह आघात विफल हुआ। दबती हुई गर्दनके दर्दसे पहले तो शिवाजी कराह उठे, परन्तु दूसरे ही क्षण वह सम्हलकर अचानक आई हुई इस आपत्तिसे बचनेके लिए तत्पर हुए। खानकी कमरके पीछेसे अपना बायाँ हाथ डालकर शिवाजीने एक ही वारमे लोहेके उस तेज बघनखेसे अफजलके पेटको फाड डाला, जिससे अँतडियाँ बाहर निकल पडी, और तब शिवाजीने अपने दाहिने हाथसे अफजलकी बगलमे वह बिछुआ भी भोक दिया। घायल खानके ढीले बाहु-पाशसे शिवाजीने अपने आपको छुडा लिया, और उस मचसे नीचे कूदकर शिवाजी अपने साथियोकी ओर बाहर दौडे।

खान चिल्ला उठा, "धोखा! दगाबाजी! मार डाला! बचाओ! बचाओ!!!" दोनो पक्षके सेवक दौड पडे। सिद्धहस्त तलवार चलानेवाले सैय्यद बन्दाने, जो अफजलके साथ आया था, शिवाजीका सामना किया और अपनी लम्बी व सीधी तलवारके एक ही वारसे उसने शिवाजीकी पगडी काट डाली, और पगडीके नीचेके फौलादी टोपपर भी एक गहरा निशान बन गया। तब जीवमहलाने सैयदका दाहिना हाथ काट दिया और अन्तमे उसे मार डाला। शम्भूजी कावजीने अफजलका सिर उतारकर विजयके गर्वके साथ उसे शिवाजीके सामने पेश किया।

इस विपत्तिसे छुटकारा पाकर शिवाजीने अपने दोनो साथियो सहित प्रतापगढकी चोटीका रास्ता लिया और वहाँ पहुँचकर तोप छोडी। नीचेकी घाटियोमे छिपी हुई मराठा सेना इसी सकेतकी बाट जोह रही थी। मोरो त्रिम्बक और नेताजी पालकरकी सेनाएँ तथा हजारो मावले एकाएक चारो ओरसे बीजापुरी पडावपर टूट पडे। अफजलके कर्मचारी और सैनिक सभी अपने सेनानायककी इस मृत्युका समाचार सुनकर बहुत ही भयभीत हो रहे थे। इस अनजाने प्रदेशमे, जहाँकी हर एक झाडीमे जीवित शत्रु भरे हुए प्रतीत होते थे, वे इस आकस्मिक आक्रमणसे और भी अधिक घबडा उठे। बीजापुरी सेनाका पूर्ण सहार हुआ,

बहुत भयंकर हत्याकाण्ड हुआ, और पराजित सेनाका बहुत धन शिवाजी-के हाथ लगा।

१० नवम्बर १६५९को अफजलके वध और उसकी सेनाके सहार द्वारा प्राप्त विजयसे उन्मत्त मराठे अब दक्षिणी कोंकण और कोल्हापुरके जिलोमे जा घुसे, पन्हालाके किलेपर उन्होने अधिकार कर लिया, एक और बीजापुरी सेनाको हराया और दिसम्बर १६५९से लेकर फरवरी १६६० तक बडी दूर-दूरके प्रदेशोको उन्होने जीता।

९. शिवाजीका पन्हालाके किलेमें घिर जाना

सन् १६६० ई०के आरम्भमे आदिलशाह द्वितीयने अपने हबशी गुलाम सिद्धि जौहरको, जो अब सलाबतखॉ कहलाता था, एक सेना सहित शिवा-जीको दबानेके लिए भेजा। सिद्दी जौहर द्वारा खदेडे जानेपर शिवाजीने पन्हालामे आश्रय लिया (२ मार्च १६६०), तब तो १५,००० सैनिकोको लेकर सिद्दी जौहरने पन्हालाको जा घेरा। परन्तु शिवाजीने लालच देकर जौहरको अपनी ओर मिला लिया और तब वह घेरा केवल दिखानेके लिए ही चलता रहा। किन्तु मृत अफजलके पुत्र फजलख़ॉने तब भी पूरी शक्तिके साथ मराठोपर आक्रमण किया। पासकी एक पहाडीपर अधिकार करके उसने पन्हालाकी रक्षा कर सकना सर्वथा असम्भव बना दिया। तब तो १३ जुलाईकी अँधेरी रातमे अपनी आधी सेनाको साथ लेकर शिवाजी किलेसे खिसक गए और बीजापुरी सेनाके पीछा करनेपर भी वे सफलतापूर्वक बचकर विशालगढ जा पहुँचे, जो वहॉसे कोई २७ मील पश्चिममे है। परन्तु शिवाजीकी इस सफलताका श्रेय बाजी प्रभु और उसके सैनिकोको था, जिन्होने गजपुरकी घाटीमे शिवाजीका पीछा करनेवालोका डटकर सामना किया और लड़ते हुए एक-एक कर प्राय वे सारे ही मारे गए। पन्हालामे पीछे रहे सैनिकोने आत्मसमर्पण कर २२ सितम्बरको वह किला जौहरको सौप दिया।

१०. शायेस्ताख़ाँका पूना और चाकणपर अधिकार करना

दक्षिणी मुगल सूबोका नया सूबेदार शायेस्ताखॉ सन् १६६० ई०के प्रारम्भमे शिवाजीपर चढाई करनेका आयोजन करने लगा। उसने इस बातका प्रबन्ध किया कि जब वह स्वय उत्तरकी ओरसे शिवाजीपर आक्र-

मण करे उसी समय बीजापुर भी दक्षिणकी ओर मराठोके प्रदेशपर हमला करे। एक बडी सेनाके साथ २५ फरवरीको अहमदनगरसे रवाना होकर ९ मईके दिन शायेस्ताखाँने पूना नगरमे प्रवेश किया।

१९ जूनको पूनासे चलकर शायेस्ताखाँ २१ जूनको वहाँसे १८ मील उत्तरमे चाकणके पास पहुँचा, सैनिक दृष्टिसे उस किलेका बाहरी निरीक्षण किया और तब उस किलेकी दीवालोकी ओर खाइयाँ खुदवाने लगा। १५ अगस्तको चाकणके किलेपर मुगलोका अधिकार हो गया। किन्तु यह शाही विजय बहुत ही मँहगी पडी, कोई ३६८ सैनिक मारे गए और ६०० घायल हुए। चाकणको जीतकर अगस्त १६६० ई०के अन्तमे शायेस्ताखाँ पूना लौट आया। बरसात शुरू हो जानेसे अब वह अधिक कुछ नही कर सका और सारी वर्षा ऋतु उसे पूनामे ही बितानी पडी।

अगले वर्ष १६६१के आरम्भमे शायेस्ताखाँका ध्यान उत्तर कोकणके कल्याण जिलेकी ओर गया, जहाँ पिछले अप्रेलसे ही इस्माइलके नेतृत्वमे कोई ३,००० सैनिकोकी एक छोटी-सी मुगल सेना धीरे-धीरे आगे बढ रही थी। कल्याण, आदि वहाँके मुख्य नगर और किले तब भी मराठोके ही अधिकारमे थे, तथापि इस मुगल सेनाने उस प्रदेशके कुछ भागको जीत अवश्य लिया था। कारतलबखाँके नेतृत्वमे एक बडी मुगल सेनाने पूनासे चलकर जनवरी १६६१ ई०मे कोकणमे प्रवेश किया। जब यह सेना पेनसे कोई १५ मील पूर्वमे उमरखिण्ड पहुँची, तब बिना रुके बडी ही तेजीके साथ चलकर शिवाजी भी एकाएक वहाँ जा धमके और इस मुगल सेनाके आगे बढने या पीछे लौटनेके दोनो ही रास्ते बन्द कर दिए। कारतलबखाँकी सेनाको अब रुक जाना पडा और सारी सेनाका प्याससे मर जाना भी अवश्यम्भावी देख पडने लगा। तब तो निराश और विवश होकर कारतलबने पडावका सारा मालअसबाब वही छोड दिया और अपने छुटकारेके लिए शिवाजीको और भी बहुतसा द्रव्य देकर वह ३ फरवरी १६६१को अपनी सारी सेनाके साथ वहाँसे सकुशल निकल आया। यो इस बार तो शिवाजीने कल्याणके जिलेको शत्रुओके हाथसे मुक्त किया, परन्तु मई १६६१मे मुगलोने पुन कल्याण मराठोसे छीन लिया और तब अगले नौ वर्ष तक उसपर मुगलोका ही अधिकार रहा। इन दो वर्षोकी चढाइयोका अन्तिम परिणाम यह हुआ कि उत्तरी कोकणका ऊपरी भाग मुगलोके हाथोसे नही निकल सका, उधर दक्षिणी कोकण शिवाजीके ही अधीन रहा। मार्च १६६३मे मुगलोने शिवाजीके घुडसवारोके नायक

नेताजीका दूर तक दृढताके साथ पीछा किया। नेताजी भाग निकला, किन्तु उसके ३०० घुडसवार मारे गए और वह स्वय भी घायल हुआ।

११. शायेस्ताखाँपर शिवाजीका रात्रि-आक्रमण

शायेस्ताखाँ पूनामे शिवाजीके बाल्यकालके साधारण-से निवास-स्थान लालमहलमे रहता था। उसके साथ ही उसका हरम भी था। उस महलके चारो ओर उसके अगरक्षको और नौकरोके रहनेके लिए स्थान, नौबत-खाना, दफ्तर, आदि थे, और उससे आगे दक्षिणकी ओर सिहगढ जाने-वाली सड़ककी दूसरी तरफ शायेस्ताखाँके प्रमुख अफसर महाराजा जस-वन्तसिह और उसके १०,००० सैनिकोका पड़ाव था। ऐसे स्थानमे शाय-स्ताखाँपर अचानक ही आकस्मिक घात कर सकनेके लिए अत्यधिक चपलता और चतुराईके साथ ही अद्वितीय वीरता और अनुपम साहसकी भी पूरी-पूरी आवश्यकता थी। शिवाजीने नेताजी पालकर और पेशवा मोरोपन्तके अधीन एक-एक हजार मावले पैदल सैनिको और घुड़सवारोकी दो सहायक टुकडियाँ तैयार कर, उन्हे विस्तृत मुगल पडावकी बाहरी सीमाके दोनो ओर एक-एक मीलकी दूरीपर जा डटनेका आदेश दिया। रविवार, ५ अप्रेल १६६३ ई० को रात पड जानेके बाद चुने हुए ४०० सैनिकोके साथ शिवाजीने स्वय पूना नगरमे प्रवेश किया, और वहाँके मुगल पहरेदारोके पूछताछ करनेपर स्वयको शाही मुगल सेनाके दक्षिणी सैनिक बताया और यह भी कहा कि उनको दी गई चौकियोको सभालनेके लिए वे जा रहे थे। उस मुगल पड़ावके किसी अँधेरे कोनेमे कुछ घटो तक सुस्ता लेनेके बाद कोई आधी रातके समय शिवाजीका यह दल शायेस्ताखाँके महलके पास पहुँचा। शिवाजीने अपना बाल्यकाल और यौवन इसी महलमे बिताए थे एव वे उस महलके कोने-कोनेसे पूर्णतया परिचित थे; उसी प्रकार पूना नगरकी गली-गली और वहाँके गुप्त और खुले हुए सारे रास्तोको वे अच्छी तरह जानते थे।

उस दिन मुसलमानोके उपवासवाले रमजान महीनेकी छठी तारीख थी। दिन भरके उपवासके बाद रातको भर-पेट खाकर शायस्ताखाँके सारे नौकर चाकर गहरी नीद सो रहे थे। आग जलाकर सूर्योदयसे पहले ही रमजान माहमें आवश्यक प्रात कालके खानेकी तैयारी करनेके लिए कुछ रसोइये तब उठ गए थे, उन्हे मराठोने चुपचाप मार डाला। इस बाहरी रसोईघर और भीतर अन्त.पुरके बीचकी दीवारमे किसी समय

एक दरवाजा था, जो अन्त पुरको आडको पूरा करनेके लिए तव ईट और मिट्टीसे बन्द कर दिया गया था। ईटे निकालकर मराठोने फिरसे उस द्वारको खोल दिया। अपने विश्वस्त सेनापति चिमणाजी वापूजीको लेकर उसी द्वारसे पहिले शिवाजी अन्त पुरमे घुसे, और तव पीछे-पीछे उनके २०० सैनिक भी वहाँ जा पहुँचे। जव शिवाजी खानके शयनागारमे जा पहुँचे, तब औरतोने भयभीत होकर शायेस्ताखाँको जगाया। किन्तु उसके शस्त्र सम्हाल सकनेके पहले ही शिवाजी उसपर टूट पड़े और शिवाजीकी आघातसे उसका अँगूठा भी कट गया। वहुत करके इसी समय किसी बुद्धिमान् स्त्रीने उस कमरेके सारे ही दीपक बुझा दिए। अँधेरेमे दो मराठे पानीके हौजमे जा गिरे। इसी गडवडीमे दो दासियोने शायेस्ताखाँको एक सुरक्षित स्थानमे पहुँचा दिया। कुछ समय तक मराठे उस अन्धकारमे ही बराबर मारकाट करते रहे।

शिवाजीके साथके बाकी रहे २०० सैनिकोने, जिन्हे अन्त पुरके वाहर ही छोड दिया गया था, उस महलके मुख्य पहरेदारोपर हमला कर दिया, और "क्या इस तरह पहरा दिया जाता है" कह-कहकर वहाँ सोते तथा जागते हुए सभी पहरेदारोको मार डाला। तव वे नौबतखानेमे जा पहुँचे और शायेस्ताखाँका नाम लेकर उन्हे नौवत बजानेकी आज्ञा दी। नौवत और नगाडोकी उस तुमुल ध्वनिमे अन्त पुरका करुणक्रन्दन और पहरेदारो की चीख-चिल्लाहट डूब गई और मराठोकी रणहुँकारोने वहाँकी घबडाहट एव गडबडीको और भी बढा दिया।

दूसरोकी राह न देखकर शायेस्ताखाँका पुत्र अबुलफतेह अकेला ही सबसे पहले पिताकी रक्षाके लिए दौडा, किन्तु दो तीन मराठोको मारनेके बाद ही वह वीर युवक स्वय मारा गया।

अपने शत्रुओको पूर्णतया सजग और सशस्त्र होते देखकर शिवाजीने वहाँ अधिक देरी करना उचित न समझा। वे शीघ्र ही अन्त पुरसे निकले, अपने सारे सैनिकोको एकत्रित किया और सीधे रास्तेसे वे पडावके बाहर हो गए। उनका न किसीने पीछा किया और न उनको कोई हानि ही पहुँचाई। इस आकस्मिक आक्रमणमे कुल छ मराठे मरे और ४० घायल हुए। उधर मराठोने शायेस्ताखाँके एक पुत्र, एक सेनापति, चालीस नौकर और उसकी छ पत्नियो या दासियोको मार डाला था, तथा दूसरे दो पुत्रो, आठ अन्य स्त्रियो और स्वय शायेस्ताखाँको भी उन्होने घायल

किया था। जसवन्तसिंहके जान-बूझकर असावधानी करनेके कारण ही शिवाजीको अपने इस साहसपूर्ण कार्यमें ऐसी अनपेक्षित सफलता प्राप्त हो सकी, ऐसा दक्षिणकी जनताका दृढ विश्वास हो गया था।

अपने उस चतुराईपूर्ण साहसके फलस्वरूप उस मराठा वीरकी ख्याति तथा प्रतिष्ठा अधिक बढ गई। कई तो उसे शैतानका अवतार ही मानने लगे। उससे बच सकनेके लिए कोई भी स्थान सुरक्षित नही समझा जाता था और शिवाजीके लिए कोई भी कार्य कर लेना किसी प्रकारका असम्भव नही माना जाता था। बादशाहने इस हारका समाचार सुना और अपने सूबेदारकी अयोग्यता और बेपरवाहीको इस दुर्घटनाका एकमात्र कारण बताया। दण्ड देनेपर ही तब अधिकारियोकी नियुक्ति बगालमे की जाती थी, एव शायेस्ताखाँके प्रति अपनी अप्रसन्नता प्रदर्शित करनेके लिए दक्षिण से बदल कर १ दिसम्बर १६६३ ई०को उसे बगालका सूबेदार बना दिया। दक्षिणके नये सूबेदार शाहजादा मुअज्जमके वहाँ पहुँच जानेपर जनवरी १६६४का दूसरा सप्ताह बीतते-बीतते शायेस्ताखाँ दक्षिणसे बगालके लिए रवाना हो गया।

१२. शिवाजीका सूरतको पहली बार लूटना

जिस समय औरगाबादमें सूबेदारोकी यह अदला-बदली हो रही थी, उसी समय शिवाजीने तब ही की गई इस आश्चर्यजनक आकस्मिक घातमे भी अधिक साहसका एक और काम कर डाला। ६ जनवरी १६६४से लेकर पूरे चार दिन तक शिवाजीने मुगल साम्राज्यके सबसे धनपूर्ण समृद्धिशाली बन्दरगाह सूरत नगरको जी भरकर लूटा। उस नगरकी सुरक्षाके लिए तब उसके चारो ओर कोई शहरपनाह न थी। वहाँ अपार सम्पत्ति एकत्रित थी। केवल शाही चुँगीसे ही वहाँ साम्राज्यको प्रति वर्ष कोई बारह लाख रुपयेकी आमदनी हो जाती थी।

मंगलवार, ५ जनवरी १६६४को प्रात.काल ही जब यह समाचार सूरत नगरमे फैल गया कि शिवाजी ससैन्य वहाँसे २८ मील दूर दक्षिणमें गणदेवी तक आ पहुँचे हैं और नगर लूटनेकी इरादेसे वह सूरतकी ओर बढ रहे हैं, तब वहाँ बडी घबराहट फैल गई। एकाएक सब लोगोपर आतंक छा गया और अपने स्त्री-बच्चोको लेकर वे वहाँसे भागने लगे अधिकतर तो अपनी जान बचानेके लिए नदीके दूसरी पार चले गए।

किलेदारको रिश्वत देकर धनवान् व्यक्तियोने किलेकी शरण ली। नगरका शासन वहाँके किलेदारसे भिन्न इनायतखाँ नामक एक दूसरे ही व्यक्तिके हाथमे था। नगरको ईश्वरके भरोसे ही छोडकर इनायतखाँ स्वय भी किलेमे जा छिपा।

बुधवार, ६ जनवरीकी सुबहके कोई ११ वजे शिवाजी सूरत पहुँचे और वहाँ पूर्वी ओरके बुरहानपुरी दरवाजेसे बाहर कोई दो फर्लांगकी दूरीपर स्थित एक बागमे शिवाजीने अपना डेरा खडा किया। मराठे घुडसवार तुरन्त ही उस अरक्षित और प्राय उजडे हुए नगरमे जा घुसे और घरोको लूट-लूट कर उनमे आग लगाने लगे। इस प्रकार बुधवारसे लेकर शनिवार तक लगातार लूटमार और विध्वस चलता रहा। प्रति दिन नये-नये स्थानोमे आग लगाई जाती थी और यो हजारो मकान जलकर खाक हो गए। शहरका लगभग दो तिहाई भाग नष्ट हो गया। डच फेक्टरीके पास ही उस समय ससारमे सबसे धनवान् समझे जानेवाले व्यापारी बहरजी बोहरेका विशाल महल खड़ा था। उसकी जायदाद ८० लाख रुपयोके लगभग की बताई जाती थी। शुक्रवारकी शाम तक मराठोने बहरजीके उस महलको अपनी इच्छानुसार दिनरात लूटा, उसका नोचेका फर्श तक खोद डाला, और अन्तमे उसे आग भी लगा दी। उधर अग्रेज फेक्टरीके पास ही हाजी सैयद बेग नामक एक धनी व्यापारीका गगनचुम्बी मकान तथा बहुत बडे-बडे गोदाम थे। अपनी इस सारी सम्पत्तिको अरक्षित छोडकर यह हाजी भी भागकर किलेमे जा छिपा था। बुधवारकी शाम और रात भर तथा गुरुवारकी दोपहर तक मराठे वहाँके दरवाजो और तिजोरियोको तोड-तोडकर जितना भी धन उठाकर ले जा सके ले गए। किन्तु गुरुवारको तीसरे पहर अग्रेजोने सडकोपर घूमनेवाले लूटेरोपर आक्रमण किया जिससे वे सब वहाँसे भाग खडे हुए। तब दूसरे दिन अग्रेज व्यापारियोने सैय्यद बेगके मकानपर अपने ही पहरेदार नियुक्त किए और उसके बाद वहाँ अधिक हानि नही हो पाई। सूरतकी इस लूटमारसे लगभग एक करोड रुपया मराठोके हाथ लगा।

सूरतका डरपोक शासक इनायतखाँ मगलवारकी रातको ही किलेमे आ छिपा था। अपने उस सुरक्षित आश्रयसे उसने एक निन्दनीय षड्यन्त्र रचा। गुरुवारको उसने अपने एक युवा अनुचरको शिवाजीके पास भेजा। सन्धिकी बातचीत करनेका तो एक बहाना-मात्र था, भेटके समय शिवाजीको हत्या करना ही उसका वास्तविक उद्देश्य था।

शिवाजीके सामने नंगी तलवार लिये खड़े हुए एक शरीर रक्षकने एक ही वारमें उस हत्यारेका हाथ काट डाला। पर उस आततायीने इतने वेगसे आक्रमण किया था कि वह रुक न सका और कटे हाथवाली रुधिरसे सनी बाँहसे शिवाजीपर आघात किया, जिससे दोनो ही लडखडाकर धरतीपर गिर पडे। रविवार १० जनवरीकी सुबहमें जब शिवाजीने सुना कि नगरकी सहायताके लिए एक मुगल सेना आ रही है, तब अपनी सेनाको लेकर दस बजते-बजते एकाएक शिवाजी सूरतसे चल पडे।

सूरतके सारे व्यापारियोसे एक वर्ष तक चुँगी वसूल न किए जानेकी आज्ञा देकर बादशाहने वहाँके लुटे हुए पीडित नगर-निवासियोके प्रति सहानुभूति प्रगट की। अग्रेज और डच व्यापारियोने जो वीरता दिखाई थी, उसके पुरस्कारस्वरूप उनके मालपर वसूल किए जानेवाले सामान्य आयातकरमे भविष्यके लिए एक प्रतिशतकी कमी कर दी गई।

शायेस्ताखाँके रवाना होनेके वाद और जयसिहके पहुँचनेसे पहिले जो वर्ष (१६६४ ई०) बीता, उसमे मुगलोको कोई भी उल्लेखनीय सफलता न मिली। नया सूबेदार शाहजादा मुअज्जम औरंगावादमे रहता था और शिकार और आमोदप्रमोदके सिवाय अन्य किसी वातकी उसे कुछ भी चिन्ता न थी।

१३. शिवाजीके विरुद्ध जयसिंहका भेजा जाना; पुरन्दर-विजय

शायेस्ताखाँकी हार और सूरतकी इस लूटसे औरंगजेब और उसके दरवारियोको वहुत ग्लानि हुई। अपने सारे हिन्दू और मुसलमान सेनापतियोमे सवसे अधिक सुयोग्य और दक्ष सेनानायक जयसिह कछवाहा एवं दिलेरखाँको शिवाजीका दमन करनेके लिए भेजा।

मुगल शाही सेनाके साथ रहकर मध्य एशियासे स्थित बल्खसे लेकर सुदूर दक्षिणमे वीजापुर तक तथा पश्चिममें कन्धारसे लेकर पूर्वमें मुगेर तक, साम्राज्यके हर एक भागमे जयसिहने युद्ध किया था। शाहजहाँके दीर्घकालीन शासनकालमें कदाचित् ही ऐसा कोई वर्ष वीता था जव कि इस राजपूत राजाने किसी युद्ध या चढाईमे भाग न लिया हो और अपनी मशहूर सेवाओके पुरस्कारस्वरूप उसे कोई न कोई पदोन्नति न मिली हो। रणभूमिमें प्राप्त विजयोंसे भी कही अधिक सफलताएँ उसे राजनीतिक क्षेत्रमे मिल चुकी थी। जहाँ कही भी कोई कठिन या चतुराईपूर्ण गूढ़ काम

करना होता था वहाँ बादशाह जयसिहका ही मुँह ताकता था। युक्तिपूर्ण चातुरी और व्यवहार-कुशलताके साथ ही साथ अडिग धैर्य भी उसमे कूट-कूट कर भरा था। मुगल दरबारके समारोहोचित शिष्टाचारमे वह पूरी तरह पारगत था। राजस्थानी और उर्दू बोलियोके अतिरिक्त वह तुर्की और फारसी भाषाओका भी पूर्ण ज्ञाता था। इन्ही सब विशेषताओके कारण ही दूजके चाँदसे अकित दिल्लीके शाही झण्डेके नीचे सगठित होनेवाली अफगान, तुर्क, राजपूत और हिन्दुस्तानी सैनिकोकी उस सम्मिश्रित मुगल सेनाका सेनापतित्व करनेके लिए वह सर्वथा उपयुक्त था। आवेशपूर्ण उदारता, सावधानी-विहीन साहसिकता, अव्यावहारिकतामय सिधाई और नीति-रहित शौर्य ही राजपूतोके चरित्रकी प्रमुख विशेषताएँ मानी जाती है, परन्तु इन सबके विपरीत जयसिहमे अनोखी दूरदर्शिता, राजनीतिक धूर्तता, बातचीतमे मिठास और शान्तिपूर्वक सब-कुछ सोच-समझ-कर ही अपनी नीति निश्चित करनेकी प्रवृत्ति बहुतायतसे पाई जाती थी।

जयसिहने बडी ही चतुराईके साथ बीजापुरके सुलतानकी आशाओ और आशकाओसे पूरा-पूरा लाभ उठाया। यदि आदिलशाह मुगलोकी मदद कर यह सिद्ध कर देगा कि शिवाजीके साथ उसका कोई भी सम्बन्ध नही है तो आदिलशाहके प्रति औरगजेबकी अप्रसन्नताको दूर कर बीजापुरसे वसूल होनेवाली टाँकेकी रकममे भी वह कमी करवा सकेगा, इस बातकी जयसिहने आदिलशाहको आशा दिलाई। शिवाजीके अन्य सारे शत्रुओको भी सगठित कर एक साथ ही सब ओरसे शिवाजीपर आक्रमणका आयोजन किया, जिससे कि शिवाजीका ध्यान और शक्ति इस प्रकार बँट जावे।

३१ मार्चको पुरन्दरसे ४ मील दूर एव पुरन्दर और सासवडके बीच जयसिंहने अपना स्थायी पडाव डाल दिया, और तब उसने पुरन्दरके किलेका घेरा डाला।

सासवडसे ६ मील दक्षिणमे पुरन्दरका अतिविशाल पहाड खडा है। उसकी सबसे ऊँची चोटी आसपासके समतल मैदानसे कोई २,५०० फुटसे भी अधिक ऊँची तथा कुल मिलाकर समुद्रकी सतहसे ४,५६४ फुट ऊँची है। वास्तवमे यह एक स्वाभाविक दुहरा किला है। इसके पूर्वमे लगी हुई पहाडीपर वज्रगढ़ नामक एक दूसरा ही स्वतन्त्र एव सुदृढ किला है।

पुरन्दरका मुख्य किला चारों ओरसे बहुत ही ऊँची करारी चट्टानोवाली पहाड़ीपर बना हुआ है, उससे कोई ३०० फुट या अधिक नीचे एक और परकोटा है जो 'माची' कहलाता है। पुरन्दरके ऊपरी किलेकी 'खड-कला' (अर्थात् गगन-चुम्बी) नामक उत्तर-पूर्वी बुर्जके तलेसे प्रारम्भ हो-कर 'भैरवखिण्ड' नामक एक ऊँची पहाडी पूर्वमें कोई एक मील तक सकड़ी पर्वत श्रेणीके रूपमे चलनेके बाद दूसरे सिरेपर समुद्रसे ३,६१८ फुट ऊँचे एक छोटेसे पठारका स्वरूप ग्रहण कर लेती है, यही रुद्रमाल किला बना हुआ है, जो अब वज्रगढ नामसे सुप्रसिद्ध है। पुरन्दरके नीचेवाले माची किलेके उत्तरी भागमे ही सैनिकोके रहनेके स्थान, आदि है। वज्रगढ़का किला पुरन्दरकी इस माचीके बिलकुल ही ऊपर पड़ता है। एक अच्छे सेनानायककी भाँति जयसिहने भी पहिले-पहल, वज्रगढपर ही आक्रमण करनेका निश्चय किया।

लगातार गोलाबारी करके मुगलोने वज्रगढकी सामनेकी बुर्जकी नीचेकी दीवालको तोड़-फोड डाला। १३ अप्रैलको आधी रातके समय दिलेरखाँके सैनिकोने उस बुर्जपर धावा कर मराठे शत्रुओंको किलेके पिछले भागसे खदेड़ दिया। दूसरे दिन (१४ अप्रेलको) विजयी मुगल उस पिछले भागके परकोटेकी ओर बढे, तब मुगलोकी गोलाबारीसे त्रस्त होकर क़िलेके रक्षकोने उसी दिन सध्या-समय आत्मसमर्पण कर दिया।

पुरन्दर जीतनेके लिए वज्रगढको पहिले ही अधिकारमे कर लेना पूर्णतया अत्यावश्यक था। अब दिलेरखाँ पुरन्दर किलेको जीतनेके लिए प्रयत्नशील हुआ और मराठा प्रदेशमें लूटमारके लिए सैनिकोके दल भेजने-का जयसिह आयोजन करने लगा। जयसिहकी अधीनतामे नियुक्त कुछ अधिकारी विश्वासघाती थे, जिनकी मौजूदगीसे कुछ लाभ होना तो दूर रहा हानि ही अधिक होती थी। दाऊदख़ाँ कुरेशी किलेकी खिड़कियोका पहरा देनेके लिए नियुक्त किया गया था। किन्तु कुछ दिनों बाद पता लगा कि मराठोके एक दलने उसी खिड़कीसे किलेमे प्रवेश किया था, और दाऊदखाँने उनका नाम-मात्रको भी विरोध नही किया था।

वज्रगढपर अधिकार हो जानेके बाद वज्रगढ़को पुरन्दरसे जोड़नेवाली उस पर्वत श्रेणीके सहारे-सहारे दिलेरख़ाँ पुरन्दरको ओर बढा और पुरन्दर-के निचले भाग माचीको जा घेरा। दिलेरख़ाँकी खाइयाँ अव किलेके उत्तर-पूर्वी सिरेपर खड़कला बुर्जकी ओर आगे बढ़ने लगी।

३० मईको दिन डूबनेसे कोई दो घण्टे पहिले दिलेरखाँकी आज्ञा लिये बिना ही कुछ रुहेले सैनिकोंने सफेद बुर्जपर हमला कर दिया। वडी घमासान लडाईके वाद बुरी तरह हारकर मराठे पीछे हटे और उन्होने काली बुर्जके पीछे आश्रय लिया। परन्तु दो दिन बाद उन्हे वहाँसे पीछे हटना पडा। इस प्रकार नीचे माची किलेके पाँच बुर्ज और एक कठघरेपर मुगलोका अधिकार हो गया। अव पुरन्दर किलेका पतन भी सुस्पष्ट देख पडने लगा।

घेरेके आरम्भमे ही ५,००० अफगानो और अन्य जातियोके दूसरे कई सैनिकोको लेकर जब दिलेरखाँ पहाडीपर चढनेका प्रयत्न करने लगा, तब पुरन्दरके वीर किलेदार मुरारजी बाजी प्रभुने ७०० चुने हुए सैनिकोके साथ दिलेरखाँका सामना किया था। मुरार बाजी और उनके मावलोने अनेक वहेलिये पैदलोके अतिरिक्त ५०० पठानोको भी मारा, और तव ६० निर्भीक वीरोको साथ ले मार-काट करता हुआ वह स्वय दिलेरखाँकी ओर बढता गया। मुरार बाजीके इस अपूर्व साहसको देखकर दिलेरखाँ मुग्ध हो गया और जीवन-दानके साथ ही उसे अपने अधीन एक उच्च पदपर नियुक्त करनेका वादा कर आत्मसमर्पण करनेके लिए उसे कहा। परन्तु अतिक्रुद्ध मुरारने इस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया, और दिलेरखाँपर आक्रमण करनेके लिए वह बढा, तब तो उसपर बाण चलाकर दिलेरखाँने उसे मार डाला। कुल मिलाकर कोई ३०० मावले मुरारके साथ उस दिन काम आए, और बाकी रहे वापस किलेको लौट गए।

२ जूनकी मुगल-विजयके बाद माची किलेका अधिकारसे निकल जाना अवश्यम्भावी देख पडने लगा, तब शिवाजीको विवश होकर अपना भावी कार्य-क्रम निश्चित करना पडा। मराठे अधिकारियोके सारे कुटुम्बी पुरन्दरमे ही आश्रय लिये बैठे थे। पुरन्दरपर मुगलोका अधिकार हो जानेके परिणामस्वरूप वे सब कैद हो जावेगे और तब उनको अपमानित भी किया जावेगा। अतएव जयसिहसे भेंटकर मुगलोके साथ सन्धि करनेका शिवाजीने निर्णय किया।

१४. पुरन्दरकी सन्धि, १६६५

११ जूनको प्रातःकालमे ९ बजे पुरन्दरके नीचे अपने तम्बूमें जब जयसिह दरबार लगाए बैठा था, तब शिवाजी उसके पास पहुँचे। यथोचित्त सम्मानके साथ जयसिहने उनका स्वागत किया।

स्थायी सन्धिकी शर्तोंको लेकर दोनों पक्षवालोंमें उस दिन कोई आधी रात तक बातचीत चलती रही। "बहुत-कुछ वाद-विवादके बाद अन्तमें हम इस समझौते पर पहुँचे :—(१) शिवाजीके किलोंमें ४ लाख हूणकी वार्षिक आमदनीवाले २३ किले[1] मुगल साम्राज्यमें मिला दिए जावे। (२) राजगढके किलेको भी गिनते हुए एक लाख हूण की वार्षिक आमदनी-वाले कुल बारह किले इसी शर्तपर शिवाजीके अधिकारमे रहने दिए जावे कि वह मुगल साम्राज्यके प्रति राजभक्त बना रहे और साम्राज्यकी सेवा भी बराबर करता रहे।" अन्य राजाओ और सरदारोकी तरह उसे भी सम्राट्के शाही दरबारमे निरन्तर रहनेकी आवश्यकतासे मुक्त किए जानेके लिए शिवाजीने विशेषरूपसे प्रार्थना की। मुगल सम्राट्के दक्षिण आनेपर उसके दरबारमें उपस्थित होने एव दक्षिणके मुगल सूबेदारके साथ स्थायी रूपसे रखे जानेवाले उसके ५,००० सवारोके नेतृत्वके लिए अपने प्रति-निधिके रूपमें अपने पुत्रको भेजनेका शिवाजीने प्रस्ताव किया। इन ५,००० सवारोको तनख्वाह, आदिके चुकानेके लिए जागीर दी जानेका भी निश्चय हुआ।

इन सारे निश्चयोंके अतिरिक्त शिवाजीने अपनी विशेष शर्तके साथ मुगलोंसे एक और समझौता यह भी किया :—"यदि कोकणकी तराई में ४ लाख हूणकी वार्षिक आयका प्रदेश मुगल सम्राट् मुझे दे दे, तथा शाही फ़रमान द्वारा मुझे यह पूरा आश्वासन दिया जावे कि मुगलो द्वारा अपे-क्षित बीजापुर-विजयके बाद भी यह सारा प्रदेश मेरे ही अधिकारमे रहने दिया जावेगा, तो मै १३ वार्षिक किश्तोमे ४० लाख हूण सम्राट्को भेट करूँगा।" मराठों द्वारा समर्पित अन्य पाँच किलोंपर अधिकार करनेके लिए शिवाजीके आदमियोके साथ ही मुगल अधिकारी भी वहाँ भेजे गए।

---

१. पुरन्दरकी सन्धिके अनुसार निम्नलिखित मराठे किले मुगलोको सौपे गए थे :—

दक्षिणमे—(१) रुद्रमाल अथवा वज्रगढ, (२) पुरन्दर, (३) कोण्डाना, (४) रोहिडा, (५) लीहगढ, (६) ईसागढ, (७) तुंग, (८) तिकोना, (९) कोण्डानाके पासवाला खडकला,

कोकणमे—(१०) माहुली, (११) मुरंजन, (१२) खरिदुर्ग, (१३) भण्डर-दुर्ग, (१४) तुलसीखुल, (१५) नरदुर्ग, (१६) थाईगढ अथवा अंकोला, (१७) मर्गगढ अर्थात् अतरा, (१८) कोहेज, (१९) बसन्त, (२०) नग, (२१) करनाला, (२२) सोनगढ, (२३) मानगढ़। (आ० ना०, पृ० ९०५)।

१७. आगरामें शिवाजीकी औरंगजेबसे भेंट, १६६६

बीजापुरकी चढाईका अन्त हो जानेके बाद शिवाजीको मुगल दरवार मे भेजनेका उत्तरदायित्व जयसिहने लिया था। अतएव शिवाजीको वड़े-बडे पुरस्कारोकी आशा देकर फुसलाया और आगरा जानेके लिए उसे तैयार करनेके हेतु हजारों साधनोसे काम लिया'। उत्तरी भारत जानेपर अपनी अनुपस्थितिमे अपने इस दक्षिणी राज्यके शासनका जो प्रवन्ध शिवाजीने किया उससे उनकी दूरदर्शिता और शासन-सगठनकी शक्तिका ठीक-ठीक पता लगता है। अपनी अनुपस्थितिमे अपने स्थानीय प्रतिनिधिको वहाँके शासन-सम्वन्धी पूरे-पूरे अधिकार दे दिए गए थे, जिसके फलस्वरूप उसे बारम्बार शिवाजीकी आज्ञा लेने या निर्देश प्राप्त करते रहनेकी आवश्यकता न पडे। अपनी माँ जीजावाईको राज्यका अभिभावक वनाकर वहाँकी ऊपरी देख-रेखका काम उन्हे सौपा। तब ५ मार्च १६६६को शिवाजी अपने ज्येष्ठ पुत्र शम्भाजीको साथ लेकर उत्तरी भारतकी यात्रापर चल पडे। कुछ विश्वस्त सरदार और १,००० शरीर-रक्षक सैनिक भी उनके साथ थे। इन दिनो सम्राट् औरगजेबका शाही दरवार आगरामे ही भरता था, एव ११ मई १६६६को शिवाजी आगरा नगरसे केवल एक ही मजिल की दूरी तक जा पहुँचे।

१२ मईके दिन ही शिवाजीके शाही दरवारमे उपस्थित होनेका निश्चय हुआ था। चान्द्र तिथि-गणनाके अनुसार औरगजेबकी ५०वी वर्ष-गाँठका उत्सव भी उसी दिन पडता था। अतएव उस उत्सवके उपलक्षमे आगरेका किला बहुत ही सजाया गया था। दस मराठा अधिकारियो और अपने पुत्र शम्भाजीके साथ शिवाजीको कुँअर रामसिंह दीवान-खासमें लिवा ले आया। मराठा राजाकी ओरसे बादशाहको १,००० सोनेकी मुहरे नजर की गई और न्यौछावरके लिए ५,००० रुपये भेट किए गए। लेकिन बादशाहने शिवाजीकी सलामके जवाबमे एक बात भी नही कही। तब मन्त्रीने शिवाजीको तख्तके सामने ले जाकर उन्हे पाँच-हजारी मनसब-दारोंकी कतारमे खडा कर दिया। दरबारका काम चलने लगा, मानो सब कोई शिवाजीकी बात ही भूल गए। यह हुआ शिवाजीका दूसरा अपमान।

कितना आदर और सत्कार पानेकी आशासे शिवाजी आगरा आए थे, और उन सब आशाओका यह अन्त एव परिणाम था। दरबारमे आनेसे

पहले ही उनके मनमें दु ख और सदेह होने लग गए थे। पहली बात तो यह थी कि आगरेसे बाहर आकर किसी बड़े उमरावने उनका स्वागत नही किया। सिर्फ़ कुँअर रामसिह (ढाई-हजारी मनसबदार) और मुखलिसखाँ (डेढ-हजारी मनसबदार) मध्यम श्रेणीके ये दो उमराव कुछ ही दूर बढ कर शिवाजीको अपने साथ लिवा लाए थे। दरबारमे भी उन्हे पाँच-हजारी मनसबदारोमे खडा किया गया।

उसके बाद सालगिरहके उत्सवके पान सब उमरावोको दिए गए, शिवाजीको भी पान मिला। तब इस जलसेकी खिलअते और सिरोपाव सिर्फ शाहजादो, वजीर जाफरखाँ और महाराजा जसवन्तसिहको (जोधपुर) दिए गए; शिवाजीको खिलअत नही मिली। उधर घण्टे भरसे दरबारमे खडे रहनेके कारण शिवाजी थक गए और अब इस तीसरे अपमानको वे बरदाश्त नही कर मके। वे शोकाकुल होकर गुस्सेसे लाल हो गए, उनकी ऑखे डबडबा आई। यह औरंगजेबकी नजरसे छिपा न रहा, उसने रामसिहसे कहा—"शिवाको पूछो कि उसकी तबियत कैसी है?" कुँअर शिवाजीके पास आया, तब शिवाजी कहने लगा "तुमने देखा है, तुम्हारे बापने देखा है, तुम्हारे बादशाहने भी देखा है, कहो क्या मै ऐसा आदमी हूँ कि जान-बूझकर मुझे यो खडा रखा जावे? मै तुम्हारा मनसब छोडता हूँ। यदि खडा ही रखना था तो ठीक स्थानपर खडा करते।" तव वहीसे एकाएक मुडकर बादशाहकी तरफ पीठ किए शिवाजी चल पडे। रामसिह ने शिवाजीका हाथ पकडा पर वे हाथ भी छुड़ाकर चले और जाकर एक ओर बैठ गए। रामसिहने वहाँ जाकर उन्हे फिर समझाया, परन्तु शिवाजी ने एक न सुनी, वह कहने लगा,—"मेरी मौत आई है, या तो तुम मुझे मारोगे या मै आत्मघात कर लूँगा। मेरा सिर काटकर ले जाना चाहो तो तुम ले जाओ, मै तो बादशाहकी सेवामे अब नही आता"। जब शिवाजी ने एक न मानी तो रामसिंहने आकर बादशाहकी सेवामे सव हाल अर्ज किया। तब बादशाहने मुल्तफितखाँ, आकिलख़ाँ और मुख़लिसखाँको हुक्म दिया कि "तुम जाकर शिवाको दिलासा दो और सतुष्ट कर उसे ले आओ"। शिवाजीने जवाब दिया—"बादशाहने मुझे जान-बूझकर जसवन्तसिहसे नीचे खड़ा किया है, इसलिए मै सिरोपाव नही पहनता"। तब उन उमरावोने जाकर वादशाहसे यह बात अर्ज की। वादशाहने हुक्म दिया—"कुँअर! अभी तो तुम उसको अपने साथ ले जाओ और डेरेपर ले जाकर शान्त करो"। रामसिह शिवाजीको लेकर डेरे आया और वहुत

कुछ समझाया, परन्तु उन्होने फिर भी एक न मानी। एक आध घडी अपने पास रखकर रामसिहने उन्हे उनके डेरेपर भेज दिया।

उधर बादशाहकी सेवामे कितने ही उमराव ऐसे थे जो शिवाजीको चाहते न थे। उन्होने वादशाहसे अर्ज की–"शिवाजीने वेअदवी की और हजूर उसे दर-गुजर करते है।" सैयद मुर्तजाखाँने कहा–"वह तो हैवान है, सिरोपाव आज नही पहना तो कल पहनेगा। केवल मिर्जा राजाका ही खयाल है, इसकी तो कोई चिन्ता नही।"

सालगिरहके दरबारके बाद दो-एक दिन तक सवको उम्मीद थी कि शिवाजी शान्त होकर फिर दरवारमे आवेगा, अपनी वेअदवीके लिए क्षमा माँगेगा और खिलअत पहनकर देशको लौट जानेके लिए रुखसतके लिए अर्ज करेगा लेकिन शिवाजीने दरवारमे जानेसे विलकुल इन्कार कर दिया, सिर्फ अपने पुत्र शम्भाजीको रामसिहके साथ भेजा।

दूसरी तरफ बेगम साहिवा, जयसिहके प्रतिद्वन्दी जसवन्तसिह और दो-एक उमरावोने बादशाहकी सेवामे अर्ज की कि "शिवाजी एक छोटा भूमिया, गँवार आदमी है। उसने खुले दरवारमे हुजूरके सामने इतनी गुस्ताखी की। आप क्यो सब बरदाश्त करते है? अगर उसको सजा नही दी जावेगी तो और भूमिया ऐसा ही बेअदवी करेगे।" यह सब सुनते-सुनते अन्तमे बादशाहको भी यही ठीक जान पडा कि या तो शिवाजीको मरवा डाले या कैद कर दे। शिवाजीको मारनेका हुक्म देनेसे पहले बादशाहने जयसिहको लिखवाकर यह पुछवाया कि आगरा भेजते समय क्या-क्या शपथ-सौगन्दे खाकर उसने शिवाजीको तसल्ली दी थी।

मिर्जा राजा जयसिह उस समय दक्षिणमे था, और उसका उत्तर आने मे काफी समय लगेगा, यह खयाल कर औरगजेबने हुक्म दिया कि तब तकके लिए शिवाजीको आगरेके किलेके किलेदार राद-अन्दाजखाँको सौप दिया जावे। यह रामसिहको मजूर नही था। उसने जाकर मत्री आमिनखाँसे कहा,–"मेरे पिताके कौलपर शिवाजी आगरा आए है। मै उनकी जानका जिम्मेदार हूँ। बादशाहको अर्ज कीजियेगा कि पहले हमको मार डाले, मेरे मरनेके बाद जो आप चाहे शिवाजीके साथ करे।" यह सब सुनकर औरगजेबने शिवाजीको रामसिहके ही सिपुर्द कर दिया, और रामसिहने मुचलका लिखकर बादशाहकी सेवामे पेश कर दिया कि यदि शिवाजी भाग जाय या आत्मघात कर डाले तो उसके लिए रामसिह जवाबदार होगा। परन्तु इतनेसे भी बादशाहको सन्तोष न हुआ।

आगरा शहरके कोतवाल सिद्दी फौलादखॉने शाही हुक्मसे शिवाजीके डेरेके चारो तरफ तोपे रखवाकर सरकारी फौजें बैठा दी। डेरेके अन्दर भी आम्बेरी सेनाके तीन-चार अफसरो और कछवाही फौजोका पहरा लगता था। मराठा राजा सचमुच कैद हो गया, अब उसका घरसे निकलना भी बन्द हो गया।

पहले तो शिवाजीको उम्मीद थी कि वजीर जाफरखॉ और दूसरे बडे दरबारियोको रुपया देकर वह अपना क़ुसूर माफ करवा लेगे, और इसी कारण बादशाहसे सिफारिश करनेके लिए शिवाजीने उनकी मिन्नतें भी की। परन्तु अब तक शिवाजीका सूरत बन्दर लूटना और अपने मामा शायस्ताखॉका शिवाजीके हाथो घायल होना औरगजेबने भूला न था; उसने किसी की भी कोई बात न सुनी।

शिवाजीने यह भी अर्ज करवाई कि "अगर बादशाह मुझको छोड़ देगे तो मै देश पहुँचकर अपने अधिकारके सारे किले बादशाही अफसरोको सौप दूँगा। मेरा दक्षिण जाना जरूरी है, क्योकि मेरे किलेदार सिर्फ मेरे खतको पढकर ही मेरा हुक्म न मानेगे।" लेकिन औरगजेब ऐसी बातोसे भुलावेमे आनेवाला न था। बादशाही दरबारमे एक बार यह भी निश्चय हुआ कि शिवाजीको रामसिहकी अधीनतामे नियुक्तकर काबुल भेज दे, परन्तु बादमे यह निश्चय भी रद्द ही रहा।

अन्तमे हताश होकर शिवाजीने औरगज़ेबकी सेवामे एक अर्जी पेश की कि "यदि आज्ञा मिले तो फकीर होकर मै किसी तीर्थमे अपना बाकी जीवन बिता दूँ"। औरगजेबने कुटिल हँसी हँसकर जवाब दिया—"बहुत अच्छा! फकीर होकर प्रयागके किलेमे रहो, तुम्हे वहाँ भेज देगे, वह बहुत बडा पुण्य तीर्थ है। वहॉ मेरा सूबेदार बहादुरखॉ तुमको बहुत हिफाजतसे रखेगा।"

शाही दरबारमे शिवाजीके पहुँचनेका यह परिणाम जयसिहके लिए सर्वथा अनपेक्षित ही था। आगरामे होनेवाली इन घटनाओका विवरण सुनकर जयसिह बडी ही दुविधामे पड गया। शाही दरबारमे अपने प्रतिनिधि, अपने ज्येष्ठ पुत्र कुँअर रामसिहको बारम्बार लिखकर उसे वह ताकीद करने लगा कि उन दोनो राजपूत पिता और पुत्र द्वारा शपथोके साथ शिवाजीको दिए गए आश्वासन कही झूठे न हो जावे, तथा इस बातका भी पूरा-पूरा प्रयत्न किया जावे कि शिवाजीका जीवन किसी प्रकार संकटमे न पड़ जावे।

१६. शिवाजीका आगरासे निकल भागना

अपने छुटकारेके लिए शिवाजीने अव अपनी ही सूझ-बूझका सहारा लिया। जो अन्य मराठा सरदार और सैनिक उसके साथ दक्षिणसे आए थे, उन्हे वापस भेज देनेके लिए उसे आज्ञा मिल गई। अपने इन अनुयायियोकी सुरक्षाकी चिन्ता से मुक्त होकर शिवाजी अपने उद्धारके लिए तरकीव ढूँढने लगे। वीमार होनेका ढोग कर वे प्रतिदिन सध्या-समय अपने निवास-स्थानसे ब्राह्मणो, सन्यासियो, भिक्षुको और राजदरवारियोके लिए वड़े-वडे टोकरोमे रखकर मिठाई भेजने लगे। दो कहारोके कधोपर रखे हुए एक मोटे वॉसके डडेसे लटकाकर हर एक टोकरेको ले जाते थे। प्रारम्भसे तो वहॉके पहरेदार प्रत्येक टोकरेकी पूरी-पूरी देख-भाल करते थे। परन्तु कुछ दिन वाद विना किसी जॉच-पडतालके ही ये टोकरे वहॉसे निकलने लगे। अव तक शिवाजी इसी अवसरकी ताकमे था। १९ अगस्त १६६६के दिन तीसरे पहर शिवाजीने अपने पहरेदारोको कहला भेजा कि सख्त बीमारीके कारण वे विस्तरमे पड़े हुए थे, अतएव वे उनको न छेडे। तव शिवाजीका अनौरस भाई, हीराजी फरजन्द, जो देखनेमे वहुत-कुछ शिवाजी जेसा ही था, सारे शरीरपर चादर ओढकर शिवाजीकी खाटपर लेट गया। उस चादरसे वाहर केवल उसका दाहिना हाथ निकला हुआ था, जिसपर हीराजीने शिवाजीका सोनेका कगन पहन लिया था। उधर शिवाजी और उनका पुत्र दो टोकरोमे दवकर वैठ गए। सध्याके वाद इन टोकरोको बिना किसी रोक-टोकके उन पहरेदारोके सामनेसे ही निकालकर वहॉसे बाहर ले गए। उनके आगे और पीछेके टोकरोमे सचमुच ही मिठाई भरी हुई थी, जिससे पहरेदारोको यत्किचित् भी कोई आशका नही हुई।

शहरसे बाहर एक निर्जन स्थानमे जव वे टोकरे पहुँच गए, तब उनको ढोनेवालोको वहॉसे बिदा कर दिया। फिर शिवाजी और उनके पुत्र उन टोकरोमेसे बाहर निकले और दोनोने आगरासे ६ मीलकी दूरीपर स्थित एक गॉवका रास्ता लिया, जहॉपर उनका विश्वासी न्यायाधीश नीराजी रावजी घोड़ो सहित उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। एक जगलमे पहुँचकर उन्होने जल्दी-जल्दी सलाह की और तब वह दल दो टुकड़ियोमे बँट गया। शिवाजी, उनके पुत्र शम्भाजी तथा उनके तीन अधिकारियो, नीराजी रावजी, दत्ता-त्रिम्बक एवं रघुमित्र नामक नीचवंशीय मराठेने

हिन्दू संन्यासियोका-सा वेश कर अपने सारे बदनपर राख मल ली, और वे सब तत्परताके साथ मथुराकी ओर चल पडे। बाकी रहे मराठोने अपन घरकी राह ली।

उधर आगरामे उस सारी रात भर और दूसरे दिन प्रात कालमें भी कुछ समय तक हीराजी शिवाजीके बिस्तरपर लेटा रहा। सवेरे पहरेदारों ने खिड़कीसे झाँका और यह देखकर उन्हे सन्तोष हुआ कि शिवाजीका सोनेका कगन पहने कैदी सो रहा था और नौकर बैठा उसके पाँव दबा रहा था। इसके कुछ देर बाद हीराजी और वह नौकर वहाँसे बाहर निकले और फाटकपर पहरेवालोको ताकीद करते गए—"शोर कम करो। शिवाजी-के सिरमे दर्द है। हम दवा लेने जाते है।" कुछ समयके वाद पहरेवालोको सन्देह होने लगा। तब तक चार घडी दिन बीत चुका था, फिर भी सदैव-की भाँति शिवाजीसे भेट करनेके लिए उस दिन कोई भी नही आया। भीतरसे कोई आवाज नही आ रही थी, किसीके चलने-फिरनेकी आहट भी नही मिलती थी। वे सब कमरेमे घुसे और देखा कि चिड़िया उड़ गई थी और पिजडा सूना पडा था। उन्होने दौड़कर कोतवाल फौलादखाँको भौचक कर देनेवाला यह आश्चर्यजनक समाचार सुनाया। फौलादखाँने वादशाहको इसकी सूचना दी और अपनी निरपराधता प्रमाणित करनेके लिए जादू-टोने द्वारा ही शिवाजीका यो भाग सकना सम्भव बताया। परन्तु शिवाजीको भागे तब तक २४ घण्टेसे भी अधिक समय वीत चुका था, जिससे उनका पीछा करनेवालोसे बच निकलनेके लिए उन्हे पूरा अवसर मिल गया। वादशाहको सन्देह हुआ कि शिवाजीके भागनेके इस षड्यन्त्रमे रामसिहका भी हाथ होगा, अतएव उस राजपूत कुँवरका शाही दरबारमें आना बन्द कर दिया और उसका मनसब तथा -मानसिक वेतन घटाकर उसे दण्ड दिया।

राहमे अनेको कष्ट झेलते हुए वडी ही तेजीसे चलकर १२ सितम्वर १६६६ को शिवाजो सकुशल राजगढ़ पहुँचे। यो आगरासे लौटनेपर शिवाजीने देखा कि दक्षिणी भारतकी सारी राजनैतिक परिस्थिति ही पूर्णतया वदल गई थी। मराठोके विरुद्ध पहिले प्राप्त की गई अपनी उन सफलताओको अव पुन दुहराना मुगल सूवेदार जयसिहके लिए कदापि सम्भव नही रह गया था। कुछ माह बाद जयसिहको वदलकर शाहजादा मुअज्जम दक्षिणका सूवेदार नियुक्त किया गया, एव मई १६६७मे दक्षिणकी सूवे-दारीका यह शासन-भार मुअज्जमको सौपकर जयसिह उत्तरी भारतको

लौट पडा। किन्तु वयोवृद्ध, जीवन भरके अनवरत परिश्रमसे जर्जरित, निराशामे डूबे हुए, घरेलू चिन्ताओसे व्यथित और वीजापुरकी पिछली लडाईमे विफल होनेके कारण अपने सम्राट् द्वारा तिरस्कृत मिर्जा राजा जयसिह २८ अगस्त १६६७को वुरहानपुरमे ही मर गया।

आलसी एव शक्तिहीन मुअज्जम तथा शिवाजीसे मित्रता रखनेवाले जसवन्तके हाथोमे दक्षिणका शासन-प्रबन्ध चले जानेके फलस्वरूप मई १६६७के बाद शिवाजीको मुगलोकी ओरसे कोई भी डर नही रह गया। उधर घमण्डी रुहेला सेनानायक दिलेरखाँ, मुअज्जमके दाहिने हाथ तथा विश्वस्त सलाहकार महाराजा जसवन्तसिहका खुले-आर्म अपमान करने लगा। तब तो कुछ समय तक मुगलोके इस दक्षिणी पडावमे आपसी गृह-युद्ध छिड गया, जिससे शिवाजीके विरुद्ध कोई भी कार्यवाही नही की जा सकी।

अपनी ओरसे मुगलोके साथ युद्ध छेडनेको शिवाजी स्वय उत्सुक न थे। आगरासे घर लौटनेके बाद उन्होने तीन वर्ष शान्तिपूर्वक बिताए और विरोधके लिए मुगलोको पुन. उत्तेजित कर सकनेवाली हर वातको वे टालते रहे। अपने शासन-प्रबन्धको सुसगठित करनेके लिए किलोकी मरम्मत कर उनमे आवश्वक युद्ध-सामग्री एकत्रित करने तथा पश्चिमी तटपर बीजापुर राज्य और जजीराके सिद्दियोको पराजित कर अपनी शक्ति बढानेके लिए शिवाजीने कुछ समय तक मुगलोके साथ शान्ति बनाए रखना ही ठीक समझा। शिवाजीने जसवन्तसिहसे प्रार्थना की कि वह बीचमे पडकर उनके तथा मुगल साम्राज्यमे सन्धि करवा दे। उसने जसवन्तसिहको लिखा—"मेरे सरक्षक मिर्जा राजा मर चुके है। आपकी सिफारिशपर यदि मुझे क्षमा प्रदान कर दी जावेगी तो शम्भूको शाहजादेकी सेवामें भेज दूँगा। वह शाही मनसबदार बनकर मेरे सैनिकोके साथ आपकी आज्ञानुसार शाही सेवा करता रहेगा।"

शाहजादे मुअज्जम और जसवन्तसिहने शिवाजीके इस प्रस्तावको सहर्ष स्वीकार कर शिवाजीके लिए औरगजेबसे सिफारिश की, जिसपर औरगजेबने भी अपनी अनुमति दे दी। सन् १६६८ ई०के प्रारम्भमे औरगजेबने शिवाजीको राजा कहना स्वीकार कर लिया, किन्तु मराठो द्वारा समर्पित किलोमेसे चाकणके सिवाय दूसरा कोई किला उसे वापस नही लौटाया। इस प्रकार की गई यह सन्धि अगले दो वर्षो तक बराबर कायम रही।

अध्याय ११

शिवाजी

(१६७०-१६८०)

१. शिवाजीका मुगलोंसे विरोध और उनका अपने किलोंको वापिस जीत लेना

मुगलोके साथ हुई इस नई सन्धिकी शर्तोंके अनुसार शिवाजीने अगस्त १६६८मे प्रतापराव और नीराजी रावजीकी अधीनतामें एक मराठा सेना औरगावाद भेजी। शम्भूजीको पुन पचहजारी मनसब दे दिया गया। मनसबकी जागीरे उसे बरारमे दी गई। १६६७से लेकर १६६९ तकके इन तीन वर्षोमें शिवाजी मुगलोके आश्रित राजा बनकर बिलकुल ही शान्त रहे। बीजापुरके साथ भी उनके सम्बन्ध बडे शान्तिपूर्ण रहे। वास्तवमे इन तीन वर्षो तक शिवाजी बहुत ही व्यस्त थे। इस कालमें उन्होने बड़ी ही बुद्धिमानीके साथ सारी व्यवस्था बनाकर अपने राज्यके शासन-सगठनकी नीव बहुत गहरी और सुदृढ बना दी।

किन्तु दोनो ही पक्षवालोके लिए यह सन्धि एक अल्पकालीन अस्थायी युद्ध-विराम मात्र थी। औरंगजेबको सदैव अपने पुत्रोंके प्रति सन्देह बना रहता था। शिवाजी और मुअज्जमकी इस मित्रताको भी उसने अपने राज्य-सिहासनके लिए एक भावी खतरेका प्रारम्भ ही समझा। अतएव उसने शिवाजीको पकडने या कमसे कम उसके लड़के और सेनापतिको कैद कर उन्हे धरोहरके रूपमे अपने अधिकारमें रखनेका बहुत गुप्त रूपसे दूसरी बार षड्यन्त्र किया। सन् १६६६ ई०मे शाही दरबारमे जानेके लिए

शिवाजीको उधार दिए गए एक लाख रुपए वसूल करनेके लिए बरारमें दी गई शिवाजीकी नई जागीरका कुछ भाग कुर्क कर औरगजेबने पूरी कजूसी दिखाई। अपनी जागीरकी इस जब्तीका समाचार मिलनेपर सन् १६६९ ई०के अन्तमे शिवाजी पुन बागी बनकर मुगलोसे लडनेको तत्पर हुए।

शिवाजीने पूरी शक्तिके साथ मुगल साम्राज्यपर अपने आक्रमण आरम्भ किए और उन्हे तत्काल सफलता भी मिली। दूर-दूर तक धावा करनेवाले उनके दल मुगल प्रदेशको लूटने लगे। पुरन्दरकी सन्धिके अनुसार औरगजेबको समर्पित अपने अनेको किलोको उन्होने एक-एक कर वापिस ले लिया। ४ फरवरी १६७०को राजपूत किलेदार उदयभानको हराकर कोण्डाना किला छीन लेना उनकी सबसे अधिक महत्त्वकी सफलता थी। उस किलेसे पूर्णतया परिचित कुछ कोली मार्ग-दर्शकोकी सहायतासे एक अधेरी रातमे तानाजी मालसुरे ३०० चुने हुए अपने मावले पैदलोके साथ कल्याण-दरवाजेके पासकी कम ढालवाली पहाडीकी ओरसे रस्सियोके सहारे किलेकी दीवाल फॉद गया। किलेकी सेना जी-जानसे लडी, परन्तु "हर हर महादेव"की रण-हुकार करते हुए मावलोने शत्रु-सेनामे सर्वत्र प्रलय मचा दी। दोनो विरोधी सेनाओके नेताओने एक-दूसरेको ललकारा और दोनो ही अकेले द्वन्द्व-युद्ध करते हुए कट मरे। १,२०० राजपूत उस दिन काम आए। पहाडीपरसे नीचे उतरकर भाग निकलनेका विफल प्रयत्न करते हुए बहुतसे राजपूत मर गए। सिहके समान वीर तानाजीकी स्मृतिमे शिवाजीने उस किलेका नाम 'सिंहगढ' रक्खा।

अप्रेल १६७०के अन्त तक शिवाजीने अहमदनगर, जुन्नर और परेण्डाके आसपासके ५१ गॉवोको भी लूट लिया था।

२. मुअज़्ज़म और दिलेरमें विरोध

१६७०ई०के प्रारम्भिक छ महीनो तक दक्षिणके मुगल सूबेदार शाहआलम और उसके प्रमुख सेनापति दिलेरखॉमे पारस्परिक विरोध चलता रहा। दिलेरखॉको इस बातका पूरा-पूरा डर था कि यदि वह मुअज्जमकी सेवामे उपस्थित हुआ तो वह कैद कर लिया जावेगा या छलसे उसकी हत्या कर दी जावेगी। दिलेरकी इस अवज्ञाकारितासे क्रुद्ध होकर मुअज्जम तथा उसके प्रमुख सलाहकार जसवन्तसिहने दिलेरखॉके विद्रोही हो जाने

की शिकायत औरंगजेबसे की। उधर दिलेरखाँने पहिले ही औरंगजेबको मुअज्जमके विरुद्ध लिख भेजा था और यह भी सूचना दी थी कि मुअज्जम शिवाजीसे मिला हुआ था। मुअज्जमके अपनी मनमानी ही करने और शासन-कार्य सम्बन्धी शाही आज्ञाओका पालन न करनेके कारण इन दिनों औरगजेव अत्यधिक चिन्तित हो गया था। दक्षिणकी सर्वसाधारण जनताको इस बातका पूर्ण विश्वास हो गया था कि मराठोंकी सहायतासे मुअज्जम अपने पिताके राज्य-सिहासनपर अधिकार करनेका षड्यन्त्र कर रहा था, और इसी कारण वह अकर्मण्य बैठा मराठोके विरुद्ध कोई भी कार्यवाही नही कर रहा था, जिससे शिवाजीका साहस बढ गया और प्रारम्भसे ही मुगल प्रदेशोपर मराठोके आक्रमण सफल होते जा रहे थे।

दक्षिणमें अपनी परिस्थिति सर्वथा असहनीय देखकर शाहआलमकी अनुमति प्राप्त किए बिना ही दिलेरखाँ शाही दरबारको लौट जानेके लिए बहुत ही व्यग्र हो गया। गुजरातका सूबेदार बहादुरखाँ दिलेरका समर्थक बन गया और अब दिलेरकी स्वामिभक्ति तथा उसकी पिछली सेवाओकी भरसक प्रशसासे भरा हुआ एक पत्र औरगज़ेबको लिखा और साथ ही यह भी सिफारिश की कि उसकी ही अधीनतामे दिलेरको काठियावाड़का फ़ौजदार नियुक्त किया जावे। बादशाहने बहादुरखाँका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इधर अपने पिताका आदेश पाकर मुअज्जमने भी तुरन्त ही उसका पालन किया और सितम्बर १६७०के अन्त तक वह वापस औरगाबादको लौट आया।

इन आपसी झगड़ोके कारण मुगलोकी सैनिक शक्ति बहुत ही कुंठित हो गई थी। इस सुवर्ण अवसरसे शिवाजीने पूरा-पूरा लाभ उठाया। मार्च १६७०मे सूरतके अग्रेज व्यापारियोने लिखा—"पहिले शिवाजी चोरकी तरह चुप-चाप जल्दी-जल्दी चलते थे परन्तु अव उनकी 'हालत वदल गई है। तीस हजार सैनिकोकी एक वडी फ़ौजको साथ लिये वे देशपर देश जीतते हुए आगे वढते जाते हैं; और शाहजादेके इतने नजदीक होते हुए भी वे उसकी कोई परवाह नही करते है।" ३ अक्तूवर १६७०को शिवाजीने दूसरी बार सूरत लूटा।

३. सूरतका दूसरी बार लूटा जाना

२ अक्तूबरको वारम्वार सूरत समाचार पहुँचने लगे कि १५,०० घुड़सवारो और पैदलोको लेकर शिवाजी सूरतसे २० मीलकी दूरीपर आ

पहुँचे है। शहरके सारे भारतीय व्यापारी और सरकारी कर्मचारी एक रात और एक दिन पहले ही वहाँसे भाग चुके थे। ३ अक्तूवरको शिवाजीने नगरपर आक्रमण किया। औरंगजेवकी आज्ञासे इस समय तक नगरके चारो ओर नई शहरपनाह वन गई थी। कुछ समय तक सामना करनेके वाद शहरके रक्षक भी किलेकी ओर भाग गए। तव अग्रेज डच और फरांसीसी व्यापारियो की कोठियाँ, तुर्की और ईरानी व्यापारियोकी वडी नई सराय, और अग्रेजो तथा फरासीसियोके मकानोके वीचमे स्थित तातार सराय, जिसमे मक्काकी तीर्थ-यात्रासे कुछ ही दिन पहिले लौटा हुआ काशगरका सिहासनच्युत वादशाह अब्दुल्लाखाँ रहता था, आदि कुछ स्थानोको छोडकर मराठोने सारे शहरपर अधिकार कर लिया। आक्रमण-कारियोको वहुमूल्य उपहार देकर फरासीसियोने तो उन्हे अपने पक्षमे कर लिया। अग्रेज व्यापारियोको कोठी खुले मकानमे थी, फिर भी स्टेशनगम मास्टर और ५० नौ-सैनिकोने डटकर उसकी रक्षा की।

तातारोने दिन भर वहादुरीसे मराठोका सामना किया, परन्तु जव सफलतापूर्वक अधिक विरोध कर सकना असम्भव देख पड़ा तो अपने वादशाहको साथ लेकर रात्रिके समय वे किलेमें जा पहुँचे। उनके उस मकान और उनकी उस सारी वहुमूल्य सामग्रीको लुटेरोसे वचानेवाला वहाँ कोई भी नही रह गया। उधर नई सरायमे तुर्कोने सफलतापूर्वक अपनी रक्षा की, और आक्रमणकारियोको वहुत-कुछ हानि भी पहुँचाई। मराठोने सुविधापूर्वक शहरके बड़े-वडे मकान लूटे और लगभग आधे शहरको जलाकर राख कर दिया। ५ अक्तूवरको ही वे सूरतसे वापिस लौटे।

सरकारी जाँच द्वारा निश्चित रूपसे ज्ञात हुआ कि शिवाजी कुल मिलाकर कोई ६६ लाख रुपयेका माल सूरतसे लूट ले गए थे। परन्तु मराठो द्वारा लूटे गए मालके मूल्यके इस आँकसे ही सूरतकी वास्तविक हानिका पूरा पता नही लग सकता था। भारतके इस सवसे धनवान् बन्दरगाहका सारा व्यापार ही इस लूटके फलस्वरूप वहुत-कुछ चौपट हो गया। शिवाजीके वापस लौट जानेके कई वर्ष बाद तक मराठा सेनाके उस ओर कुछ ही पडावोकी दूरी तक आ जानेकी सूचना पाकर या उनके आक्रमणकी सम्भावनाके झूठे समाचारोके फैलने मात्रसे ही यदा-कदा सूरत नगर भयसे आतकित हो उठता था। ऐसे अवसरपर हर बार व्यापारी जल्दी-जल्दी अपना सामान जहाजोपर रख आते थे, नागरिक

गाँवोंमें भाग जाते थे और युरोपीय व्यापारी शीघ्रताके साथ सुवाली पहुँचकर वहाँ आश्रय लेते थे। यो मराठोके आक्रमण तथा लूटके आतक और त्रासके कारण सूरतसे सारा विदेशी व्यापार पूर्णतया लोप हो गया।

४. डिण्डोरीमें दाऊदखाँको हराकर (१७ अक्तूबर, १६७०) शिवाजीका बरारपर आक्रमण करना

सूरतको यों दूसरी बार लूटकर शिवाजी अव बगलाना पहुँचे और मुल्हेरके किलेकी तलहटी में बसे हुए गांवोंको लूटा। मराठा आक्रमणकारियोंका सामना करनेके लिए दाऊदखाँको वुरहानपुर भेजा गया था, एवं वह बगलानासे नासिक जानेवाले मार्गके पहाड़ी भागमे स्थित चाँदोर नामक नगरमें जा पहुँचा। १६ अक्तूबरके बादकी आधी रातके समय उसके गुप्तचरोने दाऊदखाँको खबर दी कि शिवाजी पहले ही उस घाटीमेसे गुजरकर अपनी आधी सेनाके साथ शीघ्रतापूर्वक नासिककी ओर जा रहा था और वाकी रही आधी सेना घाटीकी राह रोककर पीछे रह जानेवालोको इकट्ठा कर रही थी। तव तो उस रातके समय ही दाऊदखाँने एकदम ससैन्य प्रस्थान किया। इखलासखाँ मियाना मुगल सेनाके हरोलका नेतृत्व कर रहा था। सूर्योदयके समय शत्रु-सेना उसे देख पड़ी। अपनी सारी सेनाके आ पहुँचनेके लिए भी न ठहरकर उसने शत्रुओंपर दुस्साहसपूर्ण आक्रमण कर दिया। इखलासखाँ वहुत शीघ्र घायल होकर घोड़ेसे गिर पडा। कुछ समय बाद वहुतसे सैनिकोंके साथ दाऊदखाँ भी वहाँ आ पहुँचा, जिससे मुगलोके पक्षको बल प्राप्त हुआ। कई घण्टो तक वहाँ डटकर घमासान युद्ध होता रहा। 'दक्षिणी वारगियोके समान मुगल सेनाके चारों ओर मडरा-मडराकर' मराठे दूरसे ही लडते रहे। मुगल सेनाके वुन्देले पैदल सैनिकोने अपनी वन्दूके और तोपे चला-चलाकर मराठोको अपने पास नही आने दिया। दोपहरमे युद्ध कुछ थम-सा गया। सध्याके समय मराठोने पुन. हमला किया परन्तु मुगलोकी गोलावारीसे विवश होकर उन्हें पीछे हटना पड़ा। हेमन्त ऋतुकी वह ठण्डी रात मुगलोने खुलेमे ही विताई। अपने पड़ावके चारो ओर खाइयाँ खोदकर मुगल मृत सैनिकोंको गाडने और घायलोकी सेवा-शुश्रूषामे लगे रहे। मराठोने मुगलोका पुन सामना नही किया और वे कोकणको वापस लौट गए। एक सप्ताह वाद पेशवाने नासिक ज़िलेमे स्थित त्रिम्वक क़िलेको जीत लिया।

डिडौरीके इस युद्धका परिणाम यह हुआ कि उसके वाद एक माह तक मुगलोसे कुछ भी करते-धरते न वन पडा। नवम्बर माहमे दाऊदखॉ अहमद-नगर चला गया। दिसम्वर माहके प्रारम्भमे स्वय शिवाजीके नेतृत्वमे एक मराठा सेनाने राहमे अहिवन्त तथा बगलानाके तीन और क़िलोको जीतनेके बाद खानदेशपर आक्रमण कर दिया। तेजीसे आगे वढकर शिवाजीने बुरहानपुरसे केवल दो मीलकी ही दूरीपर स्थित वहादुरपुरा गॉवको लूटा। और जव वहॉ उनके पहुँच जानेका खयाल तक किसीको नही हो सकता था, तब वरारमे पहुँचकर शिवाजीने कारजाके धन-धान्यपूर्ण सुसमृद्ध नगरको बुरी तरह लूटा। महीन कपडा, सोना-चाँदी, आदि कुल मिलाकर कोई एक करोड रुपयेका माल वहाँ लूटमे मराठोके हाथ लगा, जिसे चार हजार बैलो और गधोपर लादकर वे ले गए।

जिस समय शिवाजी बरारमे इस प्रकार कारजाको लूट रहे थे, उसी समय मोरो त्रिम्वक पिगलेकी अधीनतामे मराठोका एक दल पश्चिमी खान-देश और बगलानाको लूट रहा था। शिवाजीके वरारसे लौटनेपर मराठोका यह दूसरा दल भी साल्हेरके पास उनके साथ आ मिला। तब मराठोको इस सम्मिलित सेनाने साल्हेरके किलेका घेरा डाला। दाऊदखॉ ससैन्य मुल्हेर तक जा पहुँचा था, परन्तु वहॉसे आगे वह नही वढ सका, क्योकि उस दिन तब तक रात पड गई थी और दाऊदखॉकी सेना भी बहुत पिछड़ गई थी। उधर समयपर दाऊदखॉके आवश्यक सहायता न दे सकनेके फल-स्वरूप ५ जनवरी १६७१ ई० के दिन साल्हेर किलेपर शिवाजीका अधिकार हो गया।

५. मुग़ल सेनापतियोंकी चढ़ाइयाँ; १६७१-७२

मराठोके हाथो इन पराजयो और विफलताओका विवरण सुनकर औरगजेबने पूर्णतया जान लिया कि दक्षिणकी परिस्थिति सचमुच ही बहुत गम्भीर हो गई थी। उसने महाबतखॉको दक्षिणकी सारी मुगल सेनाओका सर्वोच्च सेनापति नियुक्त किया और जनवरी १६७१मे बहुत अधिक सैनिक, धन और धान्य तथा युद्ध-सामग्री बगलाना भेजे।

जनवरी १६७१के अन्तमे महाबतखॉ चॉदोरके पास दाऊदखॉके साथ सम्मिलित हो गया। दोनोने मिलकर शिवाजी द्वारा जीते हुए किले अहि-वन्तका घेरा डाला। एक माहके बाद वहॉकी सेनाने आत्मसमर्पण कर

दिया। अहिवन्तकी रक्षाके लिए एक सेना छोडकर महावतखाँने तीन माह नासिकमे विताए। फिर वर्षा ऋतुके (जूनसे सितम्वर) माह काटनेके लिए वह अहमदनगरसे २० मील पश्चिममे पारनेर नामक स्थानपर चला गया।

इस चढाईमे महावतखाँको विशेष सफलता नही मिली और वह वहुत समय तक चुपचाप ही वैठा रहा, जिस कारण औरगजेव महावतखाँसे वहुत ही असन्तुष्ट हो गया और उसको यह भी सन्देह होने लगा कि कही महावतखाँने शिवाजीके साथ कोई गुप्त समझौता तो नही कर लिया था। अतएव आगामी जाडेके दिनोमे औरगजेवने वहादुरखाँ और दिलेरखाँको भी दक्षिण भेजा। वे गुजरातसे वगलाना आए और उन्होने साल्हेरके क़िलेका घेरा डाला, जो तव भी मराठोके ही अधिकारमे था। इखलासखाँ मियाना, राव अमरसिह चन्द्रावत ओर अन्य सेनानायकोको यह घेरा चलाए रखनेके लिए वहाँ छोड़कर वे अहमदनगरकी ओर वढे। दूर-दूर तक धावा करनेवाले सैनिकोके एक दलको लेकर दिलेरखाँने दिसम्वर १६७१के अन्तमे पूनापर पुन अधिकार कर लिया और नौ वरससे अधिक आयुवाले वहाँके सारे निवासियोको तलवारकी धार उतार दिया। परन्तु उधर प्रतापरावके नेतृत्वमे मराठोकी एक वड़ी सेनाने साल्हेरका घेरा डाले वहाँ पडी हुई मुगल सेनापर आक्रमण किया। मुगल सेनाने डट कर युद्ध किया। किन्तु अन्तमे मराठोने घेरेके उस सारे पड़ावपर पूर्णतः अधिकार कर लिया। इसके कुछ समय वाद मोरो पन्तने मुल्हेर भी जीत लिया। जनवरी माहके अन्त तथा फरवरी १६७२का पहला हफ्ता वीतते-वीतते यह सव हो गया। इन सफलताओके फलस्वरूप शिवाजीकी प्रतिष्ठा वहुत वढ गई और उनकी शक्तिमें लोगोका अगाध विश्वास हो गया।

६. मराठोंका कोली प्रदेशपर अधिकार कर सूरत नगरसे चौथ मांगना: १६७२

डिडौरीके इस युद्धका परिणाम यह हुआ कि उसके बाद एक माह तक मुगलोसे कुछ भी करते-धरते न बन पडा। नवम्बर माहमे दाऊदखाँ अहमदनगर चला गया। दिसम्बर माहके प्रारम्भमे स्वय शिवाजीके नेतृत्वमे एक मराठा सेनाने राहमे अहिवन्त तथा बगलानाके तीन और किलोको जीतनेके बाद खानदेशपर आक्रमण कर दिया। तेजीसे आगे बढकर शिवाजीने बुरहानपुरसे केवल दो मीलकी ही दूरीपर स्थित बहादुरपुरा गाँवको लूटा। और जब वहाँ उनके पहुँच जानेका ख़याल तक किसीको नही हो सकता था, तब बरारमे पहुँचकर शिवाजीने कारजाके धन-धान्यपूर्ण सुसमृद्ध नगरको बुरी तरह लूटा। महीन कपडा, सोना-चाँदी, आदि कुल मिलाकर कोई एक करोड रुपयेका माल वहाँ लूटमे मराठोके हाथ लगा, जिसे चार हजार बैलो और गधोपर लादकर वे ले गए।

जिस समय शिवाजी बरारमे इस प्रकार कारजाको लूट रहे थे, उसी समय मोरो त्रिम्बक पिगलेकी अधीनतामे मराठोका एक दल पश्चिमी खानदेश और बगलानाको लूट रहा था। शिवाजीके बरारसे लौटनेपर मराठोका यह दूसरा दल भी साल्हेरके पास उनके साथ आ मिला। तब मराठोको इस सम्मिलित सेनाने साल्हेरके किलेका घेरा डाला। दाऊदख़ाँ ससैन्य मुल्हेर तक जा पहुँचा था, परन्तु वहाँसे आगे वह नही बढ सका, क्योकि उस दिन तब तक रात पड गई थी और दाऊदख़ाँकी सेना भी बहुत पिछड गई थी। उधर समयपर दाऊदख़ाँके आवश्यक सहायता न दे सकनेके फलस्वरूप ५ जनवरी १६७१ ई० के दिन साल्हेर किलेपर शिवाजीका अधिकार हो गया।

८. मुग़ल सेनापतियोंकी चढ़ाइयाँ; १६७१-७२

मराठोके हाथो इन पराजयो और विफलताओका विवरण सुनकर औरगजेबने पूर्णतया जान लिया कि दक्षिणकी परिस्थिति सचमुच ही बहुत गम्भीर हो गई थी। उसने महाबतख़ाँको दक्षिणकी सारी मुगल सेनाओका सर्वोच्च सेनापति नियुक्त किया और जनवरी १६७१मे बहुत अधिक सैनिक, धन और धान्य तथा युद्ध-सामग्री बगलाना भेजे।

जनवरी १६७१के अन्तमे महाबतख़ाँ चाँदोरके पास दाऊदखाँके साथ सम्मिलित हो गया। दोनोने मिलकर शिवाजी द्वारा जीते हुए किले अहिवन्तका घेरा डाला। एक माहके बाद वहाँकी सेनाने आत्मसमर्पण कर

दिया। अहिवन्तकी रक्षाके लिए एक सेना छोड़कर महाबतखाँने तीन माह नासिकमे बिताए। फिर वर्षा ऋतुके (जूनसे सितम्बर) माह काटनेके लिए वह अहमदनगरसे २० मील पश्चिममे पारनेर नामक स्थानपर चला गया।

इस चढाईमे महाबतखाँको विशेष सफलता नही मिली और वह बहुत समय तक चुपचाप ही बैठा रहा, जिस कारण औरगजेब महाबतखाँसे बहुत ही असन्तुष्ट हो गया और उसको यह भी सन्देह होने लगा कि कही महाबतखाँने शिवाजीके साथ कोई गुप्त समझौता तो नही कर लिया था। अतएव आगामी जाड़ेके दिनोमे औरंगजेबने बहादुरखाँ और दिलेरखाँको भी दक्षिण भेजा। वे गुजरातसे बगलाना आए और उन्होने साल्हेरके किलेका घेरा डाला, जो तब भी मराठोके ही अधिकारमे था। इखलासखाँ मियाना, राव अमरसिह चन्द्रावत और अन्य सेनानायकोको यह घेरा चलाए रखनेके लिए वहाँ छोडकर वे अहमदनगरकी ओर बढे। दूर-दूर तक धावा करनेवाले सैनिकोके एक दलको लेकर दिलेरखाँने दिसम्बर १६७१के अन्तमे पूनापर पुन. अधिकार कर लिया और नौ बरससे अधिक आयुवाले वहाँके सारे निवासियोको तलवारकी धार उतार दिया। परन्तु उधर प्रतापरावके नेतृत्वमें मराठोकी एक बड़ी सेनाने साल्हेरका घेरा डाले वहाँ पड़ी हुई मुगल सेनापर आक्रमण किया। मुगल सेनाने डट कर युद्ध किया। किन्तु अन्तमें मराठोने घेरेके उस सारे पड़ावपर पूर्णतः अधिकार कर लिया। इसके कुछ समय बाद मोरो पन्तने मुल्हेर भी जीत लिया। जनवरी माहके अन्त तथा फरवरी १६७२का पहला हफ्ता बीतते-बीतते यह सब हो गया। इन सफलताओके फलस्वरूप शिवाजीकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई और उनकी शक्तिमे लोगोका अगाध विश्वास हो गया।

६. मराठोंका कोली प्रदेशपर अधिकार कर सूरत नगरसे चौथ मांगना; १६७२

५ जून १६७२को मोरो त्रिम्बक पिगलेके नेतृत्वमे मराठोकी एक सेनाने कोली राजा विक्रमशाहकी राजधानी जव्हारपर अधिकार कर लिया, वहाँ १७ लाख रुपयोका माल मराठोके हाथ लगा। तब वहाँसे उत्तरकी ओर आगे बढ़कर जुलाईके पहिले सप्ताहमें रामनगरके सिसोदिया राज्यको भी उन्होने अपने अधिकारमे कर लिया।

रामनगर और जव्हारपर उनका अधिकार हो जानेसे अव कल्याणसे सूरत जानेको मराठोके लिए उत्तरी कोकणमे होता हुआ यह सीधा, सुरक्षित और सुगम्य रास्ता खुल गया था, जिससे सूरतके वन्दरगाहको दक्षिणकी ओरसे होनेवाले ऐसे आक्रमणोंसे किसी भी प्रकार वचा सकना सर्वथा असम्भव हो गया। अव सूरत नगरमे मराठोंके सम्भावित आक्रमणका आतक फैल जाना प्रतिदिनकी एक साधारण वात हो गई।

रामनगरके पासके पड़ावसे मोरो त्रिम्वक पिंगलेने एकके वाद दूसरा यो कुल तीन पत्र सूरतके अधिकारी तथा वहॉके प्रमुख व्यापारियोंको भेजे और उनसे सूरतकी चौथके चार लाख रुपयोकी माँग की तथा रुपये न देनेकी हालतमे सूरतपर चढाई करनेकी भी धमकी दी।

कोली प्रदेगके अपने इस पड़ावसे चलकर एक वडी सेनाके साथ मोरो त्रिम्वकने पश्चिमी घाटको सरलतासे पार किया और जुलाई १६७२का महीना आधा वीतते-वीतते वह नासिक जिलेमें जा पहुँचा और उस ज़िलेके उत्तरी एव दक्षिणी परगनोके मुगल थानेदार जादवराव एवं सिद्दी हलालको हराकर उस जिलेको लूटा। उनकी इस सफलताके लिए जब वहादुरखॉने इन दोनो थानेदारोको खूब फटकारा तव क्रुद्ध होकर वे दोनों मराठोसे जा मिले।

७. १६७३में मराठोंकी हलचलें

अगले नवम्बरमे शिवाजीने अपने घुड़सवारोको बरार और तेलगानेपर आकस्मिक धावा करनेके लिए भेजा। उनका पीछा कर उनको रोकनेके प्रयत्नमें मुगल सेनापति विफल हुआ, तथापि इस वार मुगलोने प्रगंसनीय कार्यकारिता दिखाई, जिससे सन् १६७० ई०के प्रथम आक्रमणसे विपरीत खानदेग और वरारका यह मराठा आक्रमण पूरी तरह विफल हुआ।

सन् १६७३मे चमारगुण्डासे आठ मील दक्षिणमें भीमा नदीके उत्तरी तटपर स्थित पेड़गाँवमें वहादुरखॉने अपना पडाव डाला। अगले कई वर्षो तक वहादुरखॉकी सेनाके वही वने रहनेसे धीरे-धीरे उस छावनीके आसपास एक किला वन गया और एक गहर भी वस गया। वादशाहकी आज्ञा लेकर बहादुरखॉने उसका नाम बहादुरगढ रख दिया।

पेड़गॉव एक बहुत ही सामरिक महत्त्ववाले स्थानपर बसा हुआ है। पूनाके पूर्वमे वड़ी दूर तक गए हुए लम्बे पहाड़के बाद फैले हुए समतल

मैदानमें ही यह कस्बा बसा हुआ है । उत्तरी पूना जिलेमे मूला और भीमा नदीकी घाटियोकी रक्षा करनेके हेतु इस पर्वत श्रेणीके उत्तरमे, तथा उस जिलेके दक्षिणी भागोमे नीरा और बारामती नदियोकी घाटियोकी देख-भाल करनेके लिए उन पहाडियोके दक्षिणमे इच्छानुसार ससैन्य घूमनेके लिए यह स्थान बहुत ही सुविधापूर्ण था ।

इसी वर्ष शिवाजीने प्रयत्न किया था कि घूस देकर जुन्नरके किले शिवनेरको अपने अधिकारमे कर ले । परन्तु वहाँका मुगल किलेदार अब्दुल अजीजखाँ, जो जन्मसे ब्राह्मण था और बादमे धर्म परिवर्तन कर मुसलमान हो गया था, औरगजेबका बहुत ही स्वामिभक्त तथा सम्मा-ननीय अधिकारी था, उसने शिवाजीके इस प्रयत्नको विफल कर दिया ।

२४ नवम्बर १६७२को अली आदिलशाहकी मृत्यु हो गई और तब उसका चार बरसकी आयुवाला बेटा गद्दीपर बैठा, जिससे कुछ ही महीनो-मे बीजापुरका शासन पूर्णतया अस्तव्यस्त और शक्तिहीन हो गया । शिवाजीके लिए यह सुवर्ण अवसर था । रिश्वत देकर उन्होने ६ मार्च १६७३को दूसरी बार पन्हालापर अधिकार कर लिया और ऐसे ही साधनो द्वारा २७ जुलाईके दिन उन्होने सताराके पहाडी किलेको भी ले लिया । मई माहमें प्रतापराव गूजरकी अधीनतामे उनके सैनिक बीजापुरी कनाडा-के भीतरी भागों तकमें जा घुसे तथा वहाँ हुबली और अन्य समृद्धिपूर्ण नगरोंको लूटा, किन्तु बीजापुरी सेनापति बहलोलखाँने उनका दृढतासे सामना किया जिससे वे आगे न बढ सके ।

दशहरेके दिन १० अक्तूबर १६७३को २५,००० वीर सैनिकोके साथ शिवाजी स्वय बीजापुरी प्रदेशमे जा पहुँचे । उन्होने अनेक शहरोको लूटा । तब अधिक लूटके लिए वे कनाड़ा पहुँचे और दिसम्बरके पहले पखवाडे तक वे वहाँ व्यस्त रहे ।

बीजापुरियोने पन्हाला प्रदेशपर आक्रमण किया, तब शिवाजीका और भी ध्यान बटानेके लिए जनवरी १६७४के अन्तमे एक मुगल सेनाने कोंकणमे उतरनेका प्रयत्न किया परन्तु उधरके रास्तो तथा पहाड़ी घाटि-योकी तोड-फोड कर और उस राहके विभिन्न दुर्गम स्थानोपर सैनिकोका कडा पहरा बिठाकर शिवाजीने मुगलोके लिए वह रास्ता ही बन्द कर दिया था, जिससे उन्हे विफल मनोरथ ही लौटना पड़ा ।

इसके कुछ ही दिनो बाद दक्षिणमे मुगलोंकी शक्ति बहुत ही घट

गई। खैबरमें अफगानोका विद्रोह इतना प्रबल हो उठा था कि ७ अप्रैल १६७३के दिन औरगजेब स्वय हसन अबदालके लिए दिल्लीसे चल पडा। दक्षिणमे शिवाजीके साथ मुगलोका युद्ध बन्द-सा पड गया। तब शिवाजीने बडी ही धूमधाम और समारोह तथा पूरी वैदिक विधिके साथ ६ जून १६७४को रायगढमे अपना राज्याभिषेक किया।

८. बहादुरखाँके पड़ावका लूटा जाना तथा बहादुरखाँके साथ शिवाजीकी बनावटी संधि-चर्चा; १६७४-७५ ई०

राज्याभिषेकमे किए गए अमित व्ययके कारण शिवाजीका खजाना खाली हो गया था। उधर अपने सैनिकोको वेतन देनेके लिए शिवाजीको धनकी आवश्यकता हुई। आधी जुलाई १६७४के लगभग कोई २,००० मराठे घुडसवारोने पेड़गाँवके मुगल पडावपर आक्रमणका ढोग रचा और उनके चक्करमे पडकर उनका पीछा करता हुआ बहादुरखाँ पेडगाँवसे कोई ५० मीलकी दूरी तक निकल गया। उसी समय ७,००० सवारोके एक और दलको लेकर शिवाजी दूसरी राहसे पेड़गाँव पहुँचकर उस अरक्षित पडावपर टूट पडे और वहाँसे २०० अच्छे घोडे तथा एक करोड रुपयेका माल लूट ले गए। अक्तूबरके पिछले दिनोमे पश्चिमी घाट पार कर शिवाजी एक बडी सेनाके साथ दक्षिणी पठारपर जा पहुँचे, बहादुरखाँके पडावके निकटसे गुजरकर उन्होने औरगाबादके पासके कई नगरो को लूटा और तब बगलाना तथा खानदेशमे जा धमके।

सन् १६७५ ई०के प्रारम्भमे शिवाजीने बहादुरखाँके साथ सन्धि करने मा ढोग रचा और मार्चसे लेकर कोई तीन माह तक मुगलोको सन्धिकी झूठी आशाओके चक्करमे ही फँसाए रखा। किन्तु जुलाई माहमे गोआकी सीमापर फोण्डा किलेको हस्तगत करनेके बाद शिवाजीने अपने इस ढोगका अन्त कर मुगल दूतोको ताने सुनाकर बडी बेइज्जतीके साथ वहाँसे भगा दिया।

जनवरी १६७६मे शिवाजी सख्त बीमार पड गए और अगले तीन माह तक वे सतारामे ही रोग-शैय्यामे पडे रहे। उधर सन् १६७५के अन्तिम महीनोमे बहलोलखाँ स्वय बीजापुर राज्यका अभिभावक बन बैठा था, जिसके फलस्वरूप वहाँके दक्षिणी और अफगान दलोमे पारस्परिक युद्ध शुरू हो गया था। शिवाजीके लिए यह एक अच्छा अवसर था, एव उस

लम्बी बीमारीसे स्वस्थ होते ही शिवाजी बिना किसी प्रकारकी रोक-टोक या कुछ भी खतरेके बीजापुर राज्यमें दूर-दूर तक धावे मारकर सर्वत्र लूट-मार करने लगे।

९. कर्नाटकपर चढ़ाईकी तैयारीके लिए शिवाजीको राजनैतिक चालें

जनवरी १६७६मे शिवाजीने अपने जीवनकी सबसे बड़ी चढाई, कर्नाटकपर आक्रमण, करनेके लिए प्रस्थान किया। पास-पड़ोसके सभी राज्योकी राजनैतिक परिस्थिति तब शिवाजीकी इस योजनाके लिए बहुत ही अनुकूल थी। मुगल साम्राज्यको सब सुसज्जित वीर सेनाएँ तब भी अफगानी सीमा-पर विद्रोही पहाडी कबायलियोको दबानेमे लगी हुई थी। उधर दक्षिणके मुगल सूबेदारने खुले तौरपर बीजापुरके दक्षिणी दलका पक्ष लिया और ३१ मईको उसने बीजापुरपर चढाई कर युद्ध छेड़ दिया, जो एक वर्षसे भी अधिक समय तक चलता रहा। इधर कुछ समयसे बहादुरखाँने शिवाजीके साथ मैत्रीपूर्ण समझौता करनेकी बातचीत छेडी थी, एवं अपनी चतुराईपूर्ण कूटनीति द्वारा शिवाजीने अब बहादुरखाँपर पूर्ण विजय प्राप्त की। बीजापुर-पर चढाई करते समय मई १६७६मे बहादुरखाँ उत्सुक था कि अपने दाहिने बाजूपर स्थित शिवाजीके साथ मैत्री स्थापित कर ले। उधर शिवाजी भी चाहते थे कि मुगलोके साथ समझौता होकर वे तटस्थ बन जावे, जिससे कर्नाटककी चढाईके समय पीछेसे मुगलोके आक्रमणकी आशंका भी मराठोको न रह जावे। अतएव शिवाजीने अनेको बहुमूल्य भेटे लेकर अपने प्रधान न्यायाधीश नीराजी रावजीको बहादुरखाँके पास भेजा, और कर्नाटकपर चढाईके समय महाराष्ट्रसे कोई एक वर्ष भरकी अपनी अनुपस्थितिके समय उसके तटस्थ बने रहनेका वचन बहादुरखाँसे ले लिया।

गोलकुण्डासे घनिष्ठ मित्रता स्थापित कर उस राज्यका पूर्ण सहयोग प्राप्त कर लिया गया। उस समय अबुलहसन कुतुबशाहका वजीर मादन्ना पण्डित ही गोलकुण्डाका सर्वेसर्वा था, और शिवाजीने उसके साथ एक सहायक सन्धि कर ली थी। गोलकुण्डा राज्यकी रक्षा करनेके बदलेमे एक लाख हूण प्रति वर्ष करके रूपमे शिवाजीको देनेका वायदा किया गया था। प्रह्लाद नीराजी नामक विचक्षण कूटनीतिज्ञको अपना राजदूत बनाकर शिवाजीने उसे हैदराबादमे नियुक्त किया। जीते हुए प्रदेशोका एक भाग गोलकुण्डा राज्यको भी देनेके वादेपर शिवाजीने इस चढ़ाईके लिए आव-

श्यक द्रव्य तथा सहायतार्थ गोलकुण्डा राज्यकी सेनाके सेना भेजे जानेकी भी माँग की।

१०. गोलकुण्डाके साथ शिवाजीकी संधि तथा कर्नाटक-विजय

जनवरी १६७७के शुरूमे शिवाजीने रायगढसे प्रस्थान किया। ५०,००० सशस्त्र सैनिको सहित नियमित गतिसे पूर्वकी ओर बढते हुए शिवाजी फरवरीके आरम्भमे हैदराबाद पहुँचे। कुतुवशाही राज्यमे प्रवेश करते ही उन्होने अपने सैनिकोको सख्त हिदायत कर दी कि वहाँके किसी भी निवासीको न तो लूटा जावे और न उन्हे किसी भी प्रकारका कष्ट दिया जावे। इस आदेशको न माननेवालोको कडी सजाएँ देनेका भी प्रवन्ध किया गया।

अपने सुलतानके इस महत्त्वपूर्ण मित्र और रक्षकका हार्दिक स्वागत करनेके लिए हैदराबाद नगरके निवासियोने अपने नगरको वडे ही उत्साह और उल्लासके साथ सजाया था। सुव्यवस्थित क्रमानुसार शहरके मार्गो-मेसे गुजरकर मराठा सेना दाद महलके सामने पहुँची और वहाँ रुक गई। अपने पाँच अधिकारियो सहित शिवाजी ऊपर गए और वहाँ तीन घण्टे तक सुलतानसे मैत्रीपूर्ण वाते होती रही। शिवाजीके व्यक्तिगत आकर्षणसे सुलतान वहुत अधिक प्रभावित हुआ, तथा उनके चरित्र, अनुशासन एव सगठनसे प्रसन्न होकर अबुलहसनने अपने वजीरको आदेश दिया कि शिवाजीकी सारी माँगे पूरी कर दी जावे। कुछ वाद-विवादके बाद दोनोमे आगामी चढाई सम्बन्धी एक गुप्त समझौता हो गया। सुलतानकी ओरसे शिवाजीको ३,००० हूण प्रतिदिन या साढे चार लाख रुपया प्रति माह सहायतार्थ दिए जाने एव कर्नाटक-विजयमे सहयोग देनेके लिए गोलकुण्डा राज्यकी ओरसे ५,००० सैनिकोके साथ वहाँके 'सर-इ-लश्कर' मिर्जा मुहम्मदको शिवाजीके साथ भेजनेका निश्चय हुआ। इस सहायताके बदलेमे शिवाजीने वचन दिया कि कर्नाटकके जीते हुए वे सारे प्रदेश, जो पहले कभी उनके पिता शाहजीके अधिकारमे नही रहे थे, गोलकुण्डा राज्यको दे दिये जावेगे। विधिवत् शपथ-सौगन्दे लेकर मुगलोके आक्रमणके विरुद्ध आत्मरक्षणकी सन्धिको पुन सुदृढ किया गया। मुगलोके आक्रमणसे उसकी रक्षा करते रहनेके बदलेमे शिवाजीको प्रति वर्ष एक लाख हूणका कर देने और अपने दरबारमे मराठोके राजदूतको रहने देनेका कुतुबशाहने वादा किया।

कर्नाटकके समतल मैदानमें बीजापुरकी ओरसे दो स्थानीय सूबेदार नियुक्त थे। एक तो था बीजापुरके पिछले मन्त्री खान मुहम्मदका पुत्र नसीर मुहम्मदखाँ, जो जिजीमे रहता था। दूसरा था बहलोलखाँका शेरखाँ नामक एक आश्रित आफगान, जिसका प्रधान केन्द्र जिजीसे दक्षिणमे किन्तु त्रिचनापल्ली जिलेके उत्तरी भागमे स्थित वलीकण्डपुरम् नामक स्थान था। उससे और आगे दक्षिणमे था तजोरका राज्य, जिसे सन् १६७५ ई०मे शिवाजीके सौतेले भाई व्यकोजीने जीतकर स्थापित किया था। तजोरके इस हिन्दू राज्यके बाद मदुराका एक और हिन्दू राज्य पडता था। ये सारे विभिन्न राज्य आपसमे लड़कर एक दूसरेको हड़पनेके लिए तुले हुए थे।

एक माह तक हैदराबादमे ठहरनेके बाद शिवाजी वहाँसे दक्षिणकी ओर करनूल, श्रीशैलम, अन्नापुर, तिरुपति, कालाहस्ती होते हुए ७ मईको मद्राससे ७ मील पश्चिममे स्थित पेड्डापोलम् पहुँचे। नसीर मुहम्मदके साथ समझौता कर शिवाजीने जिजीके किलेपर अधिकार कर लिया और तब वेलूरके किलेको जा घेरा। चौदह मास तक वीरतापूर्वक उसका बचाव करनेके बाद विवश हो पर्याप्त पुरस्कार पानेपर ही वेलूरके क़िलेदार अब्दुल्लाखाँने २१ अगस्त १६७८को आत्मसमर्पण किया।

एक बाढकी तरह फैलकर आक्रमणकारी मराठा सेनाने कर्नाटकके सारे मैदानपर अधिकार कर लिया था। इने-गिने किलोके अतिरिक्त कही भी किसीने उनका सामना नही किया। मराठोके उस ओर बढनेकी सूचना मिलते ही वहाँके धनी नागरिक या तो जगलोमे जा छिपते थे या समुद्र तटपर बने हुए युरोपीयोके किलोमे आश्रय लेते थे। २६ जून १६७७को कडलोरसे कोई २३ मील पश्चिममे तिरुवाड़ीमे शेरखाँ लोदीकी पराजय हुई और विवश होकर उसे अपने अधिकारका सारा प्रदेश शिवाजीको दे देना पड़ा। तब वहाँसे चलकर शिवाजी कोलेरूण नदीके उत्तरी तीरपर स्थित तिरुमलवाड़ी नामक नगरमे पहुँचे और भेट करनेके लिए व्यंकोजी-को वहाँ आमन्त्रित किया। शिवाजीने प्रयत्न किया कि उनकी मृत्युके समय जो भी प्रदेश शाहजीके अधिकारमे था उसका तीन चौथाई भाग वे व्यकोजीसे छीन ले। परन्तु चतुराईसे व्यकोजी २३ जुलाईको वहाँसे भाग-कर तंजौर लौट गए। तब शिवाजी महाराष्ट्रको लौट पड़े और राहमे पड़ने-वाले अनेको तीर्थोके दर्शन किए। सुव्यवस्थित ढगसे लूट द्वारा एव बल-पूर्वक धन छीनकर शिवाजीने कर्नाटकको बिलकुल ही नगा-भूखा कर दिया।

१६७७-७८ ई० के इन दो वर्षोमे शिवाजीने कर्नाटकमे ६० योजन लम्बा और ४० योजन चौडा प्रदेश जीता, जिसके अन्तर्गत कोई सौ किले पडते थे और जिसकी वार्षिक आय ३० लाख हूण थी।

नवम्बर १६७७के आरम्भमे ही शिवाजी मद्रासके मैदानको छोडकर मैसूरके पठारपर चढे और वहाँ उन्होने उसके पूर्वी और मध्यके भागोको जीत लिया। मैसूर राज्यके बीचोबीच स्थित सेरा नामक स्थानसे वे महाराष्ट्रकी ओर लौटे तथा कोपल, गदग, बकापुर, बेलगाँव जिलेमे स्थित बेलवाडी और तुरगल होते हुए अप्रेल १६७८के पहले सप्ताहमे वे अपने सुदृढ किले पन्हालामे आ पहुँचे।

११. मुगल साम्राज्य, बीजापुर राज्य और शिवाजी; १६७८-७९

अब शिवाजी और कुतुबशाहमे मनमुटाव हो गया। बडे ही धीरजके साथ पूरे सोच-समझके बाद मादन्ना पण्डितने जो राजनैतिक व्यवस्था की थी, उसके सारे ही सूत्र एकदम टूट गए। यह देखकर कि कर्नाटककी इस चढाईमे गोलकुण्डा राज्यकी सहायतासे भी शिवाजीने केवल अपना ही स्वार्थ सिद्ध किया, शिवाजीके प्रति कुतुबशाहका रोष निरन्तर बढता ही जा रहा था। अतएव अबुलहसनने बीचमे पड़कर बीजापुर राज्यके नये अभिभावक सिद्दी मसूद और उसके प्रतिद्वन्द्वियोमे विशेषतया शर्जाखाँके साथ मेल करवा दिया। वेतन न मिलनेपर विद्रोह करनेवाले उसके सैनिकोशान्त करनेके लिए अपने पाससे आवश्यक द्रव्य देकर अबुलहसनने सिद्दी मसूदकी सहायता की। इस सबके बदलेमे अबुलहसनने सिद्दी मसूदसे वादा करवाया कि वह शिवाजीके विरुद्ध चढाई कर उसे कोकणसे बाहर बढ़ने न देगा। परन्तु उसी समय बीजापुरपर आक्रमण कर दिलेरखाँने अबुलहसनके इस सारे आयोजनको ही मटियामेट कर डाला।

उनका ज्येष्ठ पुत्र शम्भूजी, शिवाजीकी इस वृद्धावस्थामे अपने पिताके लिए एक अभिशाप बना। यह इक्कीस-वर्षीय नवयुवा दुस्साहसी, स्वेच्छाचारी, अस्थिर-चित्त, अविवेकी और अत्यधिक व्यभिचारी था। एक विवाहित ब्राह्मण स्त्रीके साथ बलात्कार करनेपर उसे पन्हालाके किलेमे कैद कर दिया गया था। किन्तु अपनी पत्नी येशुबाई और अपने कुछ साथियोके साथ पन्हालासे भागकर शम्भूजी दिलेरखाँके साथ जा मिला (१३ दिसम्बर १६७८)। अपने इस महत्त्वपूर्ण मित्रके साथ दिलेरखाँ बहादुरगढसे ५०

मील दक्षिणमे अकलूज नामक स्थानपर कुछ समय तक ठहरकर बीजापुर-पर चढाईकी तैयारी करता रहा।

इस आपत्तिके समय अपने समझौतेके अनुसार सिद्दी मसूदने शिवाजीसे सहायता माँगी। वीजापुरकी सहायताके लिए शिवाजीने भी ६–७ हजार घुडसवार भेज दिए। किन्तु मसूद अपने इस मराठा मित्रका पूरा विश्वास कर ही नही सकता था। कुछ समय बाद शिवाजीने उधर अपना असली स्वरूप दिखाया और वे पुन आदिलशाह राज्यके प्रदेशमे लूटमार कर उसे बरबाद करने लगे। तब तो मसूदने दिलेरखाँके साथ सन्धि कर ली। एक मुग़ल सेनाको वीजापुरमें आमन्त्रित किया गया और वहाँ उस सेनाका शाही स्वागत भी हुआ।

अब दिलेरख़ाँ जथसे २० मील उत्तर-पश्चिम और पण्ढरपुरसे ४५ मील दक्षिण-पश्चिममें स्थित भूपालगढके किलेकी ओर बढा। मुगलोसे युद्ध करते समय आसपासके प्रदेशमे रहनेवाली अपनी प्रजाके कुटुम्बोके आश्रय-के लिए एव अपनी सम्पत्ति तथा भण्डारको सुरक्षित रूपेण रखनेके लिए ही शिवाजीने यह क़िला बनवाया था। २ अप्रेल १६७९को प्रात कालमे कोई ९ वजे इस क़िलेपर आक्रमण प्रारम्भ हुआ। दुपहर तक मुगल वड़े ही साहस और वीरताके साथ लड़ते रहे, तब कही उस किलेपर वे अधि-कार कर पाए। इस युद्धमे दोनो ही पक्षके बहुत अधिक सैनिक काम आए। इस किलेमें सग्रहीत वहुत-सा धान्य और प्रचुर सम्पत्ति मुगल विजेताओके हाथ लगी। मुगलोने बहुतसे लोगोको क़ैद भी कर लिया। युद्धमे वच जानेवाले सात सौ दुर्ग-रक्षक सैनिकोका एक-एक हाथ काटकर उन्हे छोड दिया। वाकी रहे सब क़ैदी दास बनाकर वेच दिए गए होगे।

१२. शिवाजीकी अन्तिम चढ़ाई

१८ अगस्त १६७९को दिलेरखाँने वीजापुरसे कोई ४० मील उत्तरमें धूलखेड़के पास भीमा नदीको पार किया और मसूदपर पुन चढ़ाई की। वीजापुर राज्यके इस अभिभावकने विवश होकर शिवाजीसे सहायताकी भीख माँगी, और शिवाजीने वड़ी तत्परताके साथ सहायता देना स्वीकार कर लिया। उधर दिलेरख़ाँके पाससे भागकर शम्भूजी ४ दिसम्वर १६७९-को वापस पन्हाला लौट आया।

४ नवम्वर १६७९को शिवाजीने वीजापुरसे ५५ मील पश्चिममे स्थित

सेलगुर नामक स्थानसे प्रस्थान किया। इस समय उनके साथ १८,००० मराठे घुडसवार थे, जो दो विभागोमे बँटकर शिवाजी एव आनन्दरावकी अधीनतामे समानान्तर दूरीपर उत्तरी दिशामे वढे और मुगलोके अधीन दक्षिणी प्रदेशके जिलोमे जा घुसे। राहमे पडनेवाले प्रत्येक स्थानको लूटा और जला दिया, और यो बहुतसा द्रव्य तथा अमित माल उन्हे लूटमे मिला। यही महीना आधा बीतते-बीतते औरगाबादसे ४० मील पूर्वमे जालना नामक एक बहुत आबादीवाले व्यापारी शहरपर अधिकारकर उसे लूटा। पहुँचे हुए फकीर सैयद जान मुहम्मदकी कुटिया यहीके उपनगरमे थी। अपना-अपना रुपया पैसा और बहुमूल्य रत्नोको साथ लेकर जालनाके अधिकाश धनी निवासियोने इसी कुटियामे शरण ली थी। मराठे आक्रमणकारियोको शहरकी लूटमे बहुत ही कम माल मिला, तब अपने मालमतेके साथ धनिकोके उस कुटीमे जा छिपनेकी बात सुनकर वे आक्रमणकारी वहाँ जा पहुँचे और वहाँ घुसे हुओको लूटा तथा कईको घायल भी कर दिया। उस फकीरने उन आक्रमणकारियोसे प्रार्थना की कि वे ऐसा न करे, उन्होने उसकी एक न सुनी, उलटे उसे गालियाँ दी तथा वहुत कुछ धमकाया भी। तब उस तपस्वी सन्तने शिवाजीको शाप दिया। सर्वसाधारण जनताका दृढ विश्वास था कि उस फकीरकी वाणी निरर्थक नही हो सकी, एव इस शापके कोई पाँच महीने बाद ही जब शिवाजीका देहान्त हो गया, तब उन्होने शिवाजीकी मृत्युको इस शापकी परिणति माना।

पूरे चार दिनतक जालनाको अच्छी तरह लूटने और उसे नष्ट-प्राय करनेके बाद जब मराठे लूटमे मिले अनगिनित सोना-चाँदी, हीरे, कपडे, घोडे, हाथी और ऊँटो सहित लौट रहे थे तब रणमस्तखाँ नामक एक साहसी मुगल अधिकारीने मराठी सेनाके पिछले भागपर आक्रमण कर दिया। ५,००० मराठोको अपने साथ लेकर शिधोजी निम्बालकरने रणमस्तख़ाँको तीन दिन तक रोका, किन्तु अन्तमे अपने अनेक साथियो सहित वह मारा गया। उसी समय केसरीसिह और सरदारखाँके नेतृत्वमे औरगाबादसे एक बडी सहायक मुगल सेना रणमस्तख़ाँकी सहायतार्थ चली आ रही थी। जब उस युद्ध-क्षेत्रसे केवल छ मीलकी दूरीपर पहुँचकर इस नई सेनाने पडाव डाला, तब हिन्दू भाई होनेके नाते केसरीसिहने शिवाजीको गुप्त सन्देश भेजा कि चारो ओरसे घेरकर मुगल सेना उनको पकड पावे उससे पहिले ही शिवाजी वहाँसे निकल भागे। अपने विश्वस्त गुप्तबहिरजी द्वारा दिखाए दुरूह अज्ञात रास्तोपर तीन दिन और रात तक

व्यग्रतापूर्वक लगातार चलकर ही मराठा सेना वहांसे किसी प्रकार वच निकली। किन्तु लूटका वहुतसा माल उन्हे वही छोड़ देना पड़ा। उनके ४,००० घुड़सवार मारे गए और सेनापति हम्वीरराव घायल हुआ। इस दुर्भाग्यपूर्ण चढाईसे लौटकर कोई २२ नवम्वरके लगभग शिवाजी पट्टागढ़ पहुँचे, जहाँ उनकी थकी हुई त्रस्त सेनाने कुछ दिन विश्राम किया, और तव दिसम्वरके प्रारम्भमें वे रायगढको लौट गए। नवम्वरके अन्तिम सप्ताहमे एक मराठा सेनाने खानदेशपर आक्रमणकर धारनगाँव, चोपरा और उनके आसपासके कई एक वड़े-बडे नगरोको लूटा तथा जला दिया।

अपने ज्येष्ठ पुत्रके दुश्चरित्रको देख-देखकर शिवाजी अपने राज्यके भविष्यके लिए वहुत ही चिन्तित हो उठे थे। शम्भूजी एक वहुत ही क्रूर, अस्थिर-चित्तवाला, व्यभिचारी युवक था। उसमे सद्गुणो, देशभक्ति और धर्म-प्रेमका पूर्ण अभाव ही था। शिवाजीके अन्तिम दिन निराशापूर्ण चिन्तामे ही वीते। २३ मार्च १६८०के दिन शिवाजीको ज्वर हो आया और उन्हे रुधिरके दस्त होने लगे। वारह दिन तक यह वीमारी चलती रही और अन्तमे मराठा जातिको जाग्रतकर नवजीवन प्रदान करनेवाला वह नरपुंगव रविवार, ४ अप्रेल, १६८०के दिन दोपहरमे इस लोकसे चल वसा। उस दिन चैत्रकी पूर्णिमा थी; और अभी शिवाजीने अपने जीवनका ५३वां वर्ष भी पूरा नही किया था।

१३. शिवाजीका राज्य, उनकी सेना और आय

उत्तरमे सूरतके अन्तर्गत रामनगरसे (वर्तमान धरमपुर राज्यसे) लेकर दक्षिणमे वम्वई प्रान्तके कनाड़ा जिलेमे कारवार या गंगावती नदी तकके इस भू-भागमे पुर्तगालियों द्वारा अधिकृत परगनोको छोड़ते हुए वाकी सारा प्रदेश उनकी मृत्युके समय शिवाजीके ही राज्यमे था। उनके राज्यकी पूर्वी सीमा उत्तरमे वगलानाको सम्मिलित करती हुई दक्षिणमे नासिक और पूनाके परगनोंके वीच टेढी-मेढ़ी होती दक्षिणकी ओर वढ़ती थी और सतारेका सारा परगना तथा कोल्हापुर परगनेका वहुतसा हिस्सा भी शिवाजीके राज्यमे ही पड़ता था। उन्हींसे लगा वेलगांवसे लेकर मद्रास प्रान्तके वेलारी परगनेसे लगनेवाले तुङ्गभद्राके तटतक फैला हुआ कर्नाटक अथवा कन्नड देशका पश्चिमी भाग था, जिसे कुछ ही समय पहिले जीतकर शिवाजीने स्थायी रूपसे अपने राज्यमें मिला लिया था।

कोपलके पास तुङ्गभद्राके तटसे लेकर वेलोर और जिंजी तकके प्रदेशको, जिसके अन्तर्गत वर्तमान मैसूर राज्यका उत्तरी, मध्यका एव पूर्वी भाग, तथा मद्रास प्रान्तके बेलारी, चित्तूर और अर्काटके परगने पड़ते थे, शिवाजीने कुछ ही वर्ष पहिले जीता था, तथा अब तक वहॉ शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित नही हो सकी थी, जिससे सन् १६८० ई०मे वहॉ मराठा सेना नियुक्त थी।

अपने राज्यके इन सुव्यवस्थित प्रदेशोके अतिरिक्त निरन्तर घटने-बढनेवाली एक बहुत चौडी पट्टी ऐसे प्रदेशकी भी थी, जहॉ यद्यपि शिवाजीकी आज्ञाएँ मान्य होती थी, फिर भी उसपर उनका एकाधिपत्य नही था। जब-जब भी नियमित रूपसे प्रतिवर्ष मराठा सेनाएँ वहॉ पहुँच जाती थी, तब-तब वहॉसे निश्चित कर, जिसे मराठी भाषामे 'खण्डणी' कहते थे, वसूल हो जाता था। उस प्रदेशके निश्चित लगानका चौथाई भाग ही मराठे यो वहॉसे वसूल करते थे, एव मराठोको दिया जानेवाला यह कर साधारण बोलचालमे "चौथ" भी कहलाने लगा। चौथ दे देनेसे उस प्रदेशमे मराठे सैनिको या मराठे कर्मचारियोकी अवाछनीय उपस्थितिसे छुटकारा पानेके अतिरिक्त उस प्रदेशवासियोको और कोई लाभ नही होता था, उस प्रदेशमे उठनेवाले आन्तरिक उपद्रवोको दबाने, बाह्य आक्रमणोसे उसे बचाने या ऐसा और कोई भी उत्तरदायित्व शिवाजीपर नही आता था। शिवाजीके दरबारी सभासदकी गणनाके अनुसार उनकी आय कुल मिलाकर एक करोड हूणके लगभग होती थी, और यदि पूरी-पूरी चौथ वसूल हो जाती तो उससे अस्सी लाख हूण और प्राप्त हो जाते थे।

अपने उपयोगकी सारी आवश्यक सामग्री जुटानेके लिए शिवाजी नियमित रूपसे प्रति वर्ष अपनी सेना विदेशी राज्योमे भेजते थे। वर्षा ऋतुमे (जूनसे सितम्बर तक) सारी मराठा सेना अपने राज्यके ही सैनिक पडावोमे विश्राम करती थी। (अक्तूबर माहमे) ठीक दशहरेके दिन पडावोसे निकलकर इस सेनाको अपने राजा द्वारा बताए गए राज्यपर कूच कर देना पडता था। अगले आठ महीनो तक दूसरे राज्योके प्रदेशोमे ही रहकर अपना भरण-पोषण करना तथा वहॉसे कर वसूल करना उसका प्रधान कार्य होता था। मराठा सेनाके साथ कोई भी स्त्री, नौकरानी या वेश्या नही जा सकती थी। यदि कोई सैनिक इस नियमका

उल्लंघन करता था तो सिर काटकर उसको मृत्यु दण्ड दिया जाता था। केवल मनुष्य ही क़ैद किए जा सकते थे, स्त्रियो या बालकोंको कैद नही किया जाता था। ब्राह्मणोंके साथ न तो कोई अत्याचार ही किया जा सकता था और न वन्द मुक्ति द्रव्य वसूल करनेके लिए उन्हें शरीर-बन्धक ही किया जा सकता था। अपने घरको लौट आनेपर प्रत्येक सैनिकको अपनी लूटका माल राज्यको दे देना पड़ता था।

१४. शिवाजीका केन्द्रीय शासन

"अष्ट प्रधान" नामक आठ मन्त्रियोकी एक परिषद्की सलाह और सहायतासे ही शिवाजी शासन करते थे। ये आठ प्रधान थे —(१) मुख्य प्रधान अथवा पेशवा, जो प्रधान मन्त्री होता था; (२) मजमुआ-दार अर्थात् अमात्य, जो जमा-खर्चका लेखा रखता था; (३) वाकया-नवीस अथवा मन्त्री, जो राजाकी दिन भरकी गति-विधि तथा राजदर-बारकी घटनाओंका दैनिक ब्यौरा रखता था; (४) सुरनिस अथवा सचिव, जो पत्र-व्यवहारका कार्य सम्भालता था; (५) दबीर अथवा सुमन्त, जो विदेश मन्त्री होनेके साथ ही जासूसी विभागका भी प्रधान होता था, (६) सर-ए-नौबत अर्थात् सेनापति, जो राज्यकी समस्त सेनाओंका सञ्चालक था, (७) पण्डितराव, जो अकेला ही मुसल्मानी राज्यके सद्र और मुहतसिब दोनों ही अधिकारियोंका काम सम्भालता था, वह धार्मिक मामलों और जात-पाँतके झगड़ोंको निबटाने, अधार्मिक और भ्रष्टाचारियोंको दण्ड देने तथा राजकीय दान-विभागसे विद्वान् ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनेका काम करता था; (८) न्यायाधीश, जो राज्यके सारे न्यायाधीशोंका प्रधान होता था। किन्तु यह "अष्ट प्रधान" परिषद् वास्तवमें राजाकी आज्ञानुसार कार्य करनेवाले सचिवोंका ही दल था, आधुनिक 'केबिनेट' अर्थात् मन्त्री-मण्डलोंके साथ उसकी कोई भी समानता नहीं थी।

सारे साधन एक जागीरदारके इस बेटेको दबानेमे निष्फल हुए। यह देख कर कि उसके सारे ही बडे-बडे सुप्रसिद्ध सेनापति दक्षिणमे विफल हुए थे, औरगजेब स्वय भी निराश हो गया था और शिवाजीका दमन कर सकनेका कोई भी उपाय उसे सूझ नही रहा था।

उस युगमे जब कि हिन्दुओपर किए जानेवाले अत्याचारोका पुन आरम्भ हो रहा था, हिन्दू जनताको शिवाजी उनके धर्मकी लाज रखनेवाला तथा उनकी भावी नई आशाओका एकमात्र सितारा-सा देख पडा।

बहुत ही सुदृढ और ऊँची नैतिकता ही शिवाजीके व्यक्तिगत जीवन की प्रधान विशेषता थी। वे एक मातृभक्त पुत्र, स्नेहपूर्ण पिता और कर्तव्यपरायण पति थे। बाल्यकालसे ही वे अत्यधिक धार्मिक थे। स्वभाव एव अभ्यास दोनोसे ही वे जीवन-पर्यन्त सयमी, दुर्गुण-रहित और साधु-सन्तोके भक्त रहे। साधु-सन्तोके मामलेमे हिन्दू और मुसलमान दोनो ही धर्मावलम्बियोके प्रति वे उदारतापूर्ण सहनशीलता दिखाते थे, जिससे उनकी धार्मिक उदारता सुस्पष्ट रूपेण प्रमाणित हो जाती है। स्त्रियोके प्रति सम्मान और अपने सैनिक पडावोके लिए सदाचार-सम्बन्धी कठोर नियम बनाना, उस युगकी एक आश्चर्यजनक विशेषता थी। ख़फीख़ाँ जैसे उनके कट्टर-विरोधी आलोचको तकको विवश होकर उनके इस कार्यकी प्रशसा करनी पडी।

एक जन्मजात नेताका-सा व्यक्तिगत आकर्षण शिवाजीमें था और जिस किसीका भी उनके साथ परिचय हुआ, वह शिवाजीके प्रति मन्त्र-मुग्ध-सा हो जाता था। देशके सारे ही सुयोग्य व्यक्ति आप-ही-आप उनके पास खिचे चले आते थे। शिवाजीके कर्मचारी तन, मन, धनसे अपने स्वामीकी सेवा करते थे, तथा शिवाजीकी चकाचौधित करनेवाली विजयो और उनके मुखपर सदैव खेलनेवाली मनमोहक मुस्कराहटसे मुग्ध होनेवाले उनके सैनिकोकी आँखोके वे तारा बन गए थे। मानव-चरित्रको परखनेकी उनकी अचूक राजोचित क्षमता ही उनकी अनोखी सफलताका प्रधान कारण थी। सेनापतियो, अधिकारियो, राजनीतिज्ञो, मन्त्रियो तथा कर्मचारियोके चुनावमे उन्होने कभी भूल नही की। उनके सैनिक-सगठनकी कार्यकुशलता अनुकरणीय थी, प्रत्येक वस्तुके लिए पहिलेसे ही प्रबन्ध कर दिया जाता था और वह एक उपयुक्त निरीक्षककी देखरेखमे निश्चित स्थानपर सदैव तैयार रहती थी। उनका गुप्तचर विभाग बहुत ही कार्य

कुशल था, और जिधर भी चढाई करनेकी वे सोचते थे, उस प्रदेशकी छोटी-से-छोटी बातोंका पूरा-पूरा पता उन्हे पहिलेसे ही मिल जाता था। बहुत दूरीपर होते हुए भी उनकी सेनाके विभिन्न दल उनकी इच्छाके अनुसार सम्मिलित या अलग हो जाते थे, और इसमें कभी कोई चूक नही हुई। पीछा करनेवाले या विरोधी शत्रुओंका उपयुक्त रीतिसे सामना किया जाता था, और वह सब होते हुए भी लूटका सारा माल-असवाब बिना किसी हानिके बहुत जल्दी सकुशल घर पहुँचा दिया जाता था। अपने सैनिकोंकी जातीय प्रवृत्तियों तथा विशेषताओ, तद्देशीय भौगोलिक परिस्थिति, वहाँ तब काममें आनेवाले अस्त्र-शस्त्रों तथा शत्रु पक्षकी आन्तरिक दशाको समझ-बूझकर उनके उपयुक्त युद्ध-शैलीको वे सहज बुद्धिसे अपना लेते थे, जिससे उनकी जन्मजात सैनिक प्रतिभा सुस्पष्ट हो जाती है। तीव्र गतिसे चलनेवाले पैदलोकी सहायता पाकर दूर-दूर तक धावा मारनेवाले चपल मराठा घुड़सवार औरगजेबके शासन-कालमें सर्वथा दुर्दमनीय हो गए थे।

राजनैतिक मौलिकता या दूरदर्शिताकी अपेक्षा शिवाजीका महत्त्व उनके चरित्र और उनकी व्यवहार-कुशलतामे था। दूसरोके चरित्रको समझनेकी अचूक सूक्ष्म दृष्टि, अनोखी प्रबन्ध-क्षमता, लाभदायक और व्यावहारिक बातोको स्वाभाविक सहज बुद्धिसे जान लेनेकी उनकी शक्ति, आदि ही उनके जीवनकी सफलताके मुख्य कारण थे। बिखरे हुए मराठों-को एकत्रित करके उन्हे एक संगठित जातिमे परिणत कर देना उनके जीवनकी एक चिरस्थायी सफलता थी। स्वतन्त्रताकी जो प्रेरणा उन्होने अपने देशवासियोमे फूँक दी थी, वह उनकी एक बहुमूल्य देन है। और यह सब करनेमें उन्हे मुगल साम्राज्य, बीजापुर, पुर्तगालियोमे भारतीय राज्य और जंजीराके हवशियो जैसे चार शक्तिशाली राज्योंके सक्रिय विरोधका सामना करना पड़ा था।

आधुनिक कालके किसी भी अन्य हिन्दूने संगठन कर सकनेकी ऐसी प्रतिभा नही दिखाई है। अपने उदाहरण द्वारा शिवाजीने यह सिद्ध कर दिया है कि हिन्दू जाति भी राष्ट्रिय नवनिर्माण कर सकती है, राज्यकी स्थापना करना जानती है, तथा शत्रुओंको पराजित करना भी उसके लिए असम्भव नही, अपनी आत्मरक्षाका भी पूर्ण आयोजन कर सकती है; साहित्य, कला, व्यापार और उद्योग-धन्धोकी रक्षा ही नही कर सकती

है किन्तु उनको प्रोत्साहन देकर उनकी उन्नति करना भी उसे आता है; जल-सेनाका सगठन करनेके साथ ही महासिन्धुओको पार कर सकनेवाले अपने ही जहाजी बेडे बनवाना और विदेशियोके साथ होनेवाले जल-युद्धोमे उनके साथ भी बराबरीकी टक्कर लेना उसके लिए कदापि कठिन नही। शिवाजीने आधुनिक हिन्दुओको अपनी उन्नतिसे उच्चतम शिखरपर चढनेका महत्त्वपूर्ण पाठ पढाया।

अध्याय १२

बीजापुरका पतन और उसका अन्त

१. जयसिंहका बीजापुरपर आक्रमण; १६६५–१६६६

बीजापुरके सुलतानसे औरंगजेबके क्रुद्ध हो जानेका एक विशेष कारण था। मुगलोके उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्धसे लाभ उठाकर आदिल-शाह अगस्त १६५७मे की हुई सन्धिकी शर्तोका उल्लंघन करने लगा था। शिवाजीके विरुद्ध चढाई करते समय जयसिहको यह पता लगा कि बीजा-पुरके अधिकारी गुप्त रूपसे मराठा नायकके साथ मित्रता कर उसे धरती, धन तथा अन्य सारी वस्तुएँ देकर उसकी सहायता करने लगे थे। पुन शिवाजीके साथ चलनेवाले युद्धके सन् १६६५ ई०में समाप्त हो जानेके बाद जयसिहकी अधीनतामें सगठित यह बहुत बड़ी सेना दक्षिणमे निरुद्योग हो गई थी। दक्षिणकी इस सुसज्जित सेनाको किसी-न-किसी लाभदायक उद्योगोमे लगाए रखना अत्यावश्यक जान पड़ा, इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए बीजापुरपर आक्रमण करना ही सबसे उपयुक्त साधन देख पड़ा।

पुरन्दरकी सन्धि द्वारा मराठा नेता शिवाजीने वादा किया था कि बीजापुर नियोजित आक्रमणके समय शाही मनसवदार होनेके नाते उसके पुत्र शम्भूजीको सेनाके दो हज़ार घुड़सवार मुगलोके सहायतार्थ पहुँचेगे, और स्वयं भी अपने सात हजार चुने हुए कुशल पैदल सैनिकोको लेकर मुगलोके साथ सम्मिलित हो जावेगा।

बीजापुरके आश्रित अन्य राज्योके साथ जयसिहने इसी प्रकारका षड्यन्त्र किया और उन्हे पत्र लिखकर दिल्लीके मुग़ल साम्राज्यकी अधीनतामे उन्हे मनसब देनेका प्रलोभन दिया था।

अन्तमे सारी तैयारियाँ पूरी हो जानेपर १९ नवम्बर १६६५को जयसिंह पुरन्दरके किलेके नीचेवाले अपने पडावसे रवाना हुआ। उसके साथ ४०,००० शाही सैनिक थे। इनके अतिरिक्त नेताजी पालकरके नेतृत्वमे २,००० मराठे घुडसवार और ७,००० पैदल सिपाही भी उसके साथ थे। इस चढाईके पहिले माहमे जयसिंहकी सेना बिना किसी रोक-टोकके बराबर सफलतापूर्वक आगे बढती ही गई। बीजापुरकी राहमे पडनेवाले बीजापुरी किले पलटन, थथवाडा, खटाव और अन्तमे बीजापुरसे केवल ५२ मील उत्तरमे स्थित मगलविड़े भी क्रमशः एक-एककर या तो खाली कर दिए गए या मुगल सेनाके वहाँ पहुँचते ही उन्होने आत्मसमर्पण कर दिया। बीजापुरियोके साथ मुगल सेनाकी पहली लडाई २५ दिसम्बर १६६५को हुई। शिवाजी और दिलेरख़ाँके नायकत्वमे शाही सेनाके एक दलने शाही पडावसे दस मील आगे बढकर बीजापुरके यशस्वी सेनापति शर्जाख़ाँ और ख़वासख़ाँके अधीन १२,००० बीजापुरी सेना तथा उनके मराठे साथी, कल्याणीके जादवराव तथा शिवाजीके सौतेले भाई व्यंकोजीके साथ उस दिन युद्ध किया। बीजापुरी सेना दिल्लीके तगडे घुड़सवारोके सीधे आक्रमणसे बचनेका ही प्रयत्न करती रही, और कज्जाकोकी युद्ध-शैलीका अनुसरणकर उन्हे हानि पहुँचाने तथा विभिन्न चार दल बनाकर वे दौडते-भागते उखडी हुई लडाई लडते रहे। बहुत देरकी कशमकशके बाद अपने अथक परिश्रम और दृढ साहससे दिलेरख़ाँने शत्रुको विचलित कर दिया, तथा उसके निरन्तर आक्रमणोका सामना न कर सकनेके कारण सध्या पड़ते-पडते बीजापुरी युद्धक्षेत्रसे हट गए। किन्तु ज्योही विजयी मुगल सेना अपने पडावकी ओर लौटने लगी, बीजापुरी सेनाके दल पुन एकाएक वहाँ आ पहुँचे और उन्होने मुगल सेनाके दोनो बाजुओ और पृष्ठ भागपर आक्रमणकर बहुत मारकाट की। उधर बिना रुके चलकर २४ दिसम्बरके दिन प्रात कालमे शर्जाख़ाँ ६,००० घुडसवारोके साथ मगलविडेके किलेके पास जा पहुँचा था। जयसिहकी आज्ञाका उल्लघनकर शर्जाख़ाँके साथ लडनेके लिए मगलविडेका मुग़ल किलेदार सरफराजख़ाँ किलेसे बाहर निकला और लडता हुआ काम आया, तब तो बाकी रही मुगल सेनाने भागकर किलेमे आश्रय लिया।

दो दिन रुकनेके बाद जयसिह पुन आगे बढ़ने लगा तथा २८ दिसम्बरको दूसरा युद्ध हुआ। सदैवकी तरह इस बार भी दक्षिणी घुड़सवारोने मुगलोको घेर लेनेका प्रयत्न किया और अलग-अलग दलोमे बँटकर वे

शाही सेनाके पास मडरा-मंडराकर अपने पासकी मुगल सेनामें जब यत्किञ्चित् भी कमजोरी या गड़बडी देख पडती तब वहाँ आक्रमण कर देते थे। अन्तमे मुगलोने शत्रुपर सीधा आक्रमण किया, तब दक्षिणी युद्धक्षेत्रसे भाग निकले, पूरे छ मील तक मुगलोने उनका पीछा किया किन्तु भागते हुए दक्षिणी वहाँ भी मुगलोका विरोध करते ही जाते थे। दूसरे दिन २९ दिसम्बरको जयसिह बीजापुरके कोई १२ मील पास तक जा पहुँचा। इस बार इससे आगे बढना जयसिहके भाग्यमे बदा न था। क्योकि इन दिनोमे अली आदिलशाह द्वितीयने सारी आवश्यक युद्ध-तैयारी कर ली थी और अब आक्रमण कर उसकी राजधानी बीजापुर तथा उसके उपनगरोंपर अधिकार कर लेना सर्वथा असम्भव हो गया था।

विभिन्न दलोकी आपसी फूटके कारण पूर्णतया अशक्त एव सर्वथा अरक्षित बीजापुरपर एकाएक आक्रमण कर वहाँ अधिकार कर सकनेके इस अभूतपूर्व अवसरसे पूर्ण लाभ उठानेको उत्सुक जयसिह तेजीसे बढता हुआ मगलविडे तक जा पहुँचा। परन्तु तब भी बड़ी-बड़ी तोपो और घेरा डालनेके लिए अत्यावश्यक अन्य युद्ध-सामग्रीको उसने परेण्डाके क़िलेसे नही मगवाया था, जिससे अब उसकी परिस्थिति बहुत ही सकटापन्न हो गई थी। आदिलशाहकी सहायताके लिए गोलकुण्डासे एक बड़ी सेना आ रही थी, और इधर आक्रमणकारी मुगल सेनाके भूखों मरनेकी नौवत आ गई थी।

२. जयसिंहका बाध्य होकर बीजापुरसे वापस लौटना; १६६६

अतएव ५ जनवरी १६६६को मुगल सेनापतिने पीछे लौटना आरम्भ किया। बीजापुरी तब भी उसके पीछे लगे रहे। २७ जनवरीको वह परेण्डासे १६ मील दक्षिणमें सीना नदीपर स्थित सुलतानपुर नामक स्थानपर पहुँचा।

जनवरीके इस माहमे मुगलोको चार वडी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओका सामना करना पडा। सबसे पहले १२ जनवरीके लगभग जब फतेहजगका भाई सिकन्दर नामक एक साहसी अफगान नायक जयसिहकी सेनाके लिये खाद्य तथा युद्ध-सामग्री ले जा रहा था, तब शर्जाखांके नेतृत्वमे एक वडी वीजापुरी सेनाने परेण्डाके किलेसे कोई आठ मील दक्षिणमे एकाएक उसपर आक्रमणकर वह सारी वहुमूल्य सामग्री लूट ली।

उधर शिवाजीके प्रस्तावको स्वीकार कर उन्हे एक बडी सेनाके साथ पश्चिममे पन्हालाके किलेपर आक्रमण करनेके लिए भेजा गया था। परन्तु १६ जनवरीके दिन पन्हालापर किए गए धावेमे शिवाजीके कोई एक हजार सैनिक काम आए और फिर भी उनका यह प्रयत्न पूर्णतया विफल ही रहा। २० जनवरीके दिन एक और दुस्समाचार वहाँ पहुँचा। बहुत करके अपनी बहुमूल्य सेवाओ तथा वीरतापूर्ण विजयोका समुचित पुरस्कार और सम्मान न मिलनेके कारण ही शिवाजीका प्रधान अधिकारी नेताजी अपने स्वामीसे बहुत ही असन्तुष्ट हो गया था। अब बीजापुरियोसे चार लाख हूण रिश्वत लेकर वह उनसे जा मिला और मुगल प्रदेशपर आक्रमण करनेवाले दलोका नेतृत्व करने लगा। कई एक प्रलोभनपूर्ण पत्र लिखकर तथा नेताजीकी सारी बडी-बडी माँगें स्वीकार कर २० मार्च १६६६को जयसिहने उसे पुन अपने पक्षमे मिला लिया। आदिलशाहके सहायतार्थ गोलकुण्डाके सुलतानने १२,००० घुडसवार तथा ४०,००० सैनिक भेजे थे, जो मुगलोके लिए चौथी दुर्भाग्यपूर्ण घटना थी।

बीजापुर नगरके उपान्तसे लौटते समय घास-दाना एकत्रित करनेवाले मुगल सैनिकोकी दैनिक मुठभेडोके अतिरिक्त ११ तथा २२ जनवरीके दिन जयसिहको बीजापुरियोके साथ डटकर दो लडाइयाँ भी लडनी पड़ी। अतएव २० फरवरीको सुलतानपुरवाले अपने पडावसे चलकर जयसिह सीधा पूर्वमे अशान्तिपूर्ण प्रदेशकी ओर बढा।

इस चढाईका अब तीसरा दौर प्रारम्भ हुआ, जो अगले जून माहमे परेण्डासे १८ मील उत्तर-पूर्वमे भूम नामक स्थानपर जयसिहके लौट आनेके बाद ही समाप्त हुआ। जयसिहने मगलविडे और पलटनके किले भी खाली कर दिए। इस चढाईके प्रारम्भमे मुगलो द्वारा जीते हुए बीजापुरी किलोमेंसे अब एक भी मुगलोके अधिकारमे नही रह गया था।

३१ मार्चको जयसिह उत्तरकी ओर लौटनेके लिए वापस चल पडा, और २६ नवम्बरको ही वह सीधा औरगाबाद पहुँचा। युद्ध करते-करते दोनो ही पक्ष थक गए थे। अब शान्ति स्थापनाके लिए उत्सुक थे, एव सन्धिके लिए बातचीत प्रारम्भ हुई। जब मुगल सेना अपनी राज्य-सीमाके अन्दर जा पहुँची तब बीजापुरी भी अपने राज्यको लौट गए।

३. जयसिहकी विफलता और मृत्यु

सैनिक दृष्टिसे बीजापुरपर जयसिहकी यह चढ़ाई सर्वथा विफल ही

रही। मुगल सेनाकी इस हार तथा बीजापुरके इस आक्रमणमे होनेवाली धन-हानिके कारण औरगजेब जयसिहसे बहुत अप्रसन्न हो गया। अक्टूबर १६६६मे इस अभागे सेनापतिको औरगाबाद लौटनेका हुक्म मिला, तथा अगले २३ मार्च १६६७को वह दिल्ली वापिस बुला लिया गया। शाहजादे मुअज्जमको दक्षिणका सूबेदार बनाया गया और उसकी सहायताके लिए जसवन्तसिह नियुक्त हुआ। अनेको लड़ाइयोमे भाग लेनेवाले इस वीर राजपूतने औरंगाबादमे अपने उत्तराधिकारीको शासन अधिकार सौप दिया (मई, १६६७), और तब अपमानसे क्षुब्ध और निराशासे भरे हुए जयसिहने उत्तरी भारतकी राह ली। बीजापुरके युद्धमे जयसिहने एक करोडके लगभग अपना निजी द्रव्य व्यय किया, जिसमेसे एक पैसा भी उसके स्वामीने उसे वापिस नही चुकाया था। निरादर और नैराश्यने उसका दिल तोड दिया था। वृद्धावस्था तथा रोगसे जीर्ण जयसिह २८ अगस्त १६६७को बुरहानपुरमे मर गया।

इस चढाईके समय जयसिहको कभी अपना पूर्ण युद्धकौशल काममे लेनेका पूरा-पूरा अवसर नही मिला था। इतने बडे धनी राज्यको जीतनेके लिए उसकी सेना बहुत ही थोड़ी और सर्वथा अनुपयुक्त थी। उसके पास सग्रहीत युद्ध तथा खाद्य-सामग्री केवल एक-दो माहके लिए ही पर्याप्त थी। घेरा चलानेके लिए अत्यावश्यक एक भी तोप उसके पास न थी।

४. बीजापुर राज्यपर शासन करनेवाले सामन्त-सरदार

घरेलू सैनिक विद्रोह बीजापुर राज्यके प्रधान अभिशाप थे। राजकीय सत्ताके निर्बल हो जानेपर सारा राज्य अनेको सैनिक-जागीरोमे बँट गया था। राज्यका शासन सैनिक आधिपत्य मात्र था। राज्यके सारे ही महत्त्वपूर्ण विश्वसनीय पदो तथा अधिकारपूर्ण कार्योको कुछ इने-गिने धन-लोलुप सेनापतियोने ही आपसमे बाँट लिया था और राज्यकी सारी सत्ता इन्ही कुछ व्यक्तियोके हाथमे केन्द्रित थी। राज्यपर आधिपत्य करनेवाले वे सैनिक सामन्त चार विभिन्न जातियोके थे। सर्वप्रथम तो अफगान थे, जिनकी जागीरे पश्चिममे कोपलसे लेकर वंकापुर तक फैली हुई थी। दूसरे हबशी थे, जो पूर्वमे कर्नूल परगने और रायचूर दोआबके एक भाग-वाले प्रदेशपर शासन करते थे। तीसरे महदवी सम्प्रदायके सैयद नेता थे, और चौथे कोकणके नवायत वर्गके अरब मुल्लाओका भी वहाँ विशेष

महत्त्व था। उस राज्यके हिन्दू पदाधिकारी तथा वहाँके आश्रित हिन्दू राजा दोनोकी गणना पददलित जातियोमे होती थी। राज्यपर आधिपत्य करनेवाले सारे ही राजकीय अधिकारी विदेशी थे, जो वापस अपने देश जानेका विचार तक छोड कर यहाँ ही बस गए और अब वश-परम्परागत सामन्त सरदार बन बैठे थे। प्रत्येक दलवाले अपनी ही जातिमे शादी-विवाह करते थे, जिससे वे कभी यहाँकी स्थानीय आवादीमे सम्मिलित नही हो सके। विदेशी शासक-अधिकारियोका यह दल कभी राज्य-शासन-का एक अविभाज्य भाग नही बन सका। उनका एकमात्र उद्देश्य निजी स्वार्थ-लाभ ही था, और जहाँ तक उनका वेतन और पेशन उन्हे बराबर मिलते रहते थे, इस बातकी चिन्ता उन्हे कभी नही सताती थी कि नाम-मात्रके लिए भी वे जिस प्रदेश और राज्यके अग थे, उसपर कौन व्यक्ति शासन कर रहा था। यह देश उनका अपना न था, एव उनमे देश भक्ति-की भावनाका पूर्ण अभाव ही था। वे सचमुचमे राजनैतिक खानाबदोश और हृदयसे अनाथ ही थे, वे बेघरबारके ऐसे व्यक्ति थे जो भारतमे रहकर भी यहाँके न थे। ऐसे अधिकारियोकी राजभक्तिके आधारपर स्थित राज्य बालूकी नीवपर बने हुए घरके समान था। विदेशियोकी विजयसे केवल जनताके शासकोमे बदला-बदली होती थी, जनताके जीवनपर उसका कुछ भी प्रभाव नही पडता था।

५. आदिलशाही सुलतानोंका पतन तथा राज्याभिभावक पदके लिए कशमकश

मुहम्मद आदिलशाहके शासन-कालमे बीजापुर राज्यका विस्तार अपनी चरम सीमापर पहुँच गया था। अरब सागरसे लेकर बगालकी खाडी तक सारे भारतीय प्रायद्वीपमे वह फैला हुआ था। अपने अधीन जमीदारो और राजाओसे वसूल होनेवाले टाँकेके सवा पाँच करोड रुपयोके अतिरिक्त बीजापुर राज्यकी अपनी वार्षिक आय भी ७ करोड ८४ लाख रुपये थी। बीजापुरकी सेनामे ८०,००० घुडसवार और २,५०,००० पैदल सैनिकोके साथ ही ५३० युद्ध-कुशल हाथी भी थे।

२४ नवम्बर १६७२को अली आदिलशाह द्वितीयकी मृत्युके साथ ही बीजापुर राज्यका सारा गौरव भी विलीन हो गया। अब उसके चार-वर्षीय पुत्र सिकन्दरको सिंहासनपर बैठाया गया और बीजापुरमे स्वार्थी

राज्याभिभावकोंका शासन प्रारम्भ हुआ, जिससे अन्तमे उस सल्तनतका सर्वनाश हुआ।

सन् १६७२से लेकर सन् १६८६मे इस राजघरानेका अन्त होने तकका बीजापुरका इतिहास वास्तवमे वहाँके वजीरोकी कार्यवाहियोका ही विवरण है। विभिन्न विरोधी सरदारोमे निरन्तर होनेवाले आन्तरिक गृह-युद्ध, प्रादेशिक अधिकारियो द्वारा अपनी स्वाधीनताकी घोषणाएँ, राजधानी तकमे राज्यके केन्द्रीय शासनका लुप्तप्राय हो जाना, यदा-कदा होनेवाले मुगलोके अनिर्णायिक आक्रमण तथा मराठोके साथ गुप्त रूपेण सन्धि होते हुए भी ऊपरी दिखावेमे उनके साथ शत्रुता बनाए रखना ही इन चौदह वर्षोकी प्रधान विशेषताएँ थी।

२४ नवम्बर १६७२को अली शादिलशाह द्वितीय मर गया। तब दक्षिणी मुसलमानोके दलके हबशी नेता खवासख़ाँने तुरन्त ही राजसत्ता अपने हाथोमे लेकर आदिलशाह वशके अन्तिम सुलतान बालक सिकन्दरको राज्य-सिहासनपर बैठाया। दूसरे सरदारोके साथ किए गए वादोको भगकर निश्चित क़िले उन्हे सौपनेसे नये प्रधान मन्त्रीने इकार कर दिया। तब तो सुयोग्य अनुभवी भूतपूर्व वजीर अब्दुल मुहम्मद खिन्न होकर राजदरबारसे चल दिया। "सुलतानकी बाल्यावस्था तथा राज्याभिभावककी अयोग्यताके कारण राज्य-तन्त्रका पतन होने लगा और राज्यमे सर्वत्र उपद्रव उठ खड़े हुए।"

बीजापुरी सेनामे आधेसे अधिक सैनिक अफगान थे। उनका नेता अब्दुल करीम था, जो अब बहलोलखाँ द्वितीय कहलाता था, उसकी जागीर बकापुरमे थी। ये अफगान अपने चढे हुए वेतनके लिए सख्तीके साथ माँग करते थे, और खुलकर राज्य सत्ताका विरोध भी करते थे, एव इन अफगानोको दबाने या उनका समूल उच्छेदन करनेके लिए खवासखाँको बाध्य होकर गुप्त रूपसे मुगल सूबेदारकी सहायता माँगनी पडी। अतएव भीमाके तट तक आगे बढकर १९ अक्तूबर १६७५को मुगल सूबेदार बहादुरख़ाँने खवासखाँसे भेंट की और बीजापुरके अफगान दलको दबाने और शिवाजीके साथ युद्ध करने सम्बन्धी आवश्यक शर्ते तय की।

६. राज्याभिभावक बहलोलखाँ; १६७५-१६७७

बीजापुरी सेनाका प्रधान सेनापति बहलोलखाँ "प्रायः सवासखाँकी

आज्ञका उल्लंघन कर उसका विरोध भी करता था।" एव अव मुगलोकी सहायताका निश्चय हो जानेपर खवासखाँको उखाड फेकनेका षड्यन्त्र रचा। किन्तु इस कपटपूर्ण आयोजनका आभास पाते ही वहलोल स्वयं खवासखाँके विरुद्ध प्रयत्नशील हुआ। अपने यहाँ भोजनके लिए आमन्त्रित कर ११ नवम्वरके दिन वहलोलने खवासखाँको वहुत शराव पिलाई और उसे कैद कर वकापुर भेज दिया। तब वह स्वय वीजापुरके किलेमे पहुँचा और विना युद्ध किए ही वजीर वन वैठा। सारे राज्यमे भयकर उपद्रव उठ खडे हुए और दक्षिणी दलवाले वहलोलके विरोधमे तत्पर हुए।

वहलोलखाँका शासन केवल एक ही व्यक्तिकी शक्ति और योग्यतापर निर्भर था। वह व्यक्ति था, उसका प्रधान सलाहकार खिज्रखाँ पानी। १२ जनवरी १६७६को एक दक्षिणीने इस व्यक्तिको मार डाला। तव वहलोलने भी तुरन्त ही १८ जनवरीको असहाय कैदी खवासखाँको मरवा डाला और फिर मीनाज तथा अन्य दक्षिणी दलके नेताओको दण्ड देनेके लिए वीजापुरसे चल पड़ा। २१ मार्चको मोकाके पास सर्जाखाँके आदमियो और वहलोलकी सेनामे एक घमासान लड़ाई हुई, जिसमे अफगान जीत गए। बहादुरखाँ दक्षिणियोका साथ दे रहा था, और वीजापुरके अफगान शासकोका विरोध करता था, एव शर्जाखाँने शोलापुर जाकर वहादुरखाँकी शरण ली। शोलापुरसे दक्षिणकी ओर चलकर ३१ मार्चको बहादुरखाँने हलसगीके पास भीमा नदी पार की। उसके घुड़सवारोने वीजापुर शहरके आसपासके उपनगरो तकको लूटना शुरू कर दिया। आलियावाद और वीजापुरसे ३ मील उत्तर-पूर्वमे इदी नामक बीचवाले मैदानमे १३ जूनको वहलोल युद्ध करनेके लिए आगे बढ़ा। दक्षिणियोके हमलेका सारा आघात मुगलोकी सेनाके दाहिने पक्षपर लड़नेवाले मालवाके सूबेदार इस्लामखाँ और उसके तुर्कोपर पड़ा। शत्रुओके दो आक्रमणोंको तो उन्होने सफलतापूर्वक पीछे हटा दिया, किन्तु वारूदके विस्फोटसे भड़ककर जब इस्लामखाँका हाथी उसे लेकर शत्रु सेनामे जा पहुँचा तब वह तथा उसका बेटा काम आए। भीमाके दूसरे पारपर स्थित मुगलोंके पड़ावको अफगानोने लूटा और उसके रक्षकोको तलवारकी धार उतारा। उधर भीमा नदीमें वाढ़ आ जानेसे वहादुरखाँ वहाँ आवश्यक सहायता भी न भेज सका।

रिश्वत देकर बहादुरखाँने बड़ी ही आसानीसे १४ मई १६७७को नलदुर्ग तथा ७ जुलाईको कुलबर्गापर अधिकार कर लिया। किन्तु अपने सहायक सेनापति दिलेरखाँके साथ नीति-विषयक मतभेद हो जानेके कारण

अब वहाँ बहादुरखाँकी स्थिति बहुत ही संकटापन्न हो गई थी। १६७६ जूनमे दिलेरखाँ वहाँ पहुँचा। अफगान होनेके कारण वह बहलोलखाँका अन्तरग मित्र और बीजापुरके अफगान दलका प्रमुख सरक्षक बन गया। दिलेरखाँ और वहलोलखाँने बादशाहको पत्र लिखे, जिनमे उन्होंने दक्षिणके तीनो राज्योंके साथ गुप्त रूपसे समझौता कर शाही उद्योगोमें सचमुच बाधक होनेका आरोप बहादुरखाँपर लगाया।

७. दिलेरखाँ और बहलोलकी गोलकुण्डापर चढ़ाई; १६७७

औरगजेबने बहादुरखाँको वापिस बुला लिया। तब वह दिसम्बर १६७७के आरम्भमे दक्षिणी भारत छोड़कर लौट गया। अक्टूबर १६७८ तक दिलेरखाँ ही दक्षिणका स्थानापन्न सूबेदार बना रहा। दक्षिणी भारत-मे मुगलोंकी प्रगतिपर सामूहिक दृष्टि डालकर औरंगजेबके शासनके आर-म्भिक २० वर्षोंके विवरणका सक्षेपमे यो उल्लेख किया जा सकता है। बीजापुर राज्यके उत्तर-पूर्व भागके कल्याणी और बीदर जिलोको उसने १६५७ ई०में जीता, नवम्बर १६६०मे घूस देकर उस राज्यके सबसे उत्तरवाले प्रदेशके परेण्डा किले तथा जिलेको अधिकारमे किया, जुलाई १६६८की सन्धि द्वारा शोलापुर प्राप्त किया, और अब नलदुर्ग तथा कुल-बर्गाको भी मुगल साम्राज्यमे मिला लिया गया। इस प्रकार पूर्वमे भीमा और मजीरा नदियोसे घिरे हुए प्रदेशसे लेकर पूर्वमे कुलबर्गा और बीदरको जोड़ने वाली काल्पनिक देशान्तर रेखा (७७° पूर्व) तकका सारा विस्तृत भूमि-खण्ड मुगलोंके हाथमे आ गया था। मुगल साम्राज्यकी दक्षिणी सीमा हलसंगीके सामने भीमाके उत्तरी किनारे तक पहुँच गई थी। यहाँसे बीजापुर नगरपर सुविधापूर्वक आक्रमण हो सकता था। मुगल साम्राज्य-की दक्षिण-पूर्वी सीमा गोलकुण्डा राज्यके पश्चिमी छोरके किले मालखेड़ तक जा पहुँचती थी।

बीजापुरके इस प्रदेशमें अपनी विजय परिपूर्ण करनेके वाद मुगल गोलकुण्डासे निबटनेके लिए तत्पर हुए। अगस्त माहमे मुग़लोने कुतुब-शाहको धमकी दी कि यदि शिवाजी और शेख़ मिन्हाजको तत्काल ही पकडकर उनके हवाले नही करेगा तो वे गोलकुण्डापर आक्रमण कर देगे। मुगलोका साथ देनेका वादा कर शेख़ मिन्हाजने मुगल सूबेदारसे बहुत-सा धन ऐंठ लिया था, फिर भी वह अन्तमे गोलकुण्डाके पक्षमे हो गया था।

सितम्बरमे दिलेरखाँ ओर बहलोलने गोलकुण्डापर चढाई की। अन्तिम मुगल थाने कुलवर्गासे चलकर वहाँसे २४ मील पूर्वमे गोलकुण्डाके प्रथम सीमान्त दुर्ग मालखेड़की ओर वे वढे। उसे उन्होने एक ही दिनमे जीत लिया। किन्तु कुतुबशाही राजधानीसे ८० मील दूर मालखेडके पास ही शत्रुओकी एक बड़ी भारी सेनाने मुगलोके आक्रमणकी इस वाढको रोक दिया। दो माह तक लगातार युद्धके वाद भी उसका कोई निर्णायक परिणाम नही निकला। कुतुबशाही सेना वीजापुरियो और मुगलोके प्रदेशोमे दूर तक जा घुसी और आक्रमणकारियोको खाद्य-सामग्री पहुँचानेवाले सारे दलोका रास्ता ही रोक दिया गया। उधर बहलोलखाँ एक एक घातक वीमारीसे ग्रस्त हो चल बसा और भूखो मरनेसे अपने आपको बचानेके लिए उसके अनुयायी यहाँ-वहाँ बिखर गए। तव दिलेरखाँ कुलवर्गाकी ओर लौट पड़ा। वहाँ राहमे उसे वहुत बड़ी हानि उठानी पडी। उसे चारो ओरसे घेरकर शत्रु नित्य प्रति उसपर आक्रमण करने लगे।

कुलबर्गामे मसूद दिलेरखाँसे मिला और मुगलोके साथ उसने सन्धि कर ली। यह तय हुआ कि मसूद बीजापुरका वजीर वनकर औरगजेवकी आज्ञाओका पालन तथा शिवाजीके विरुद्ध सदैव मुगलोकी सहायता करता रहेगा। पुन आदिलशाहकी वहन शहरबानू बेगमका (जो पादशाह वीवीके नामसे विख्यात थी) विवाह औरगजेबके किसी शाहजादेसे किए जानेका भी निश्चय हुआ। इसके वाद दिलेरखाँ उत्तरकी ओर लौट गया।

८. मसूदका राज्याभिभावक बनना, अफगानोंका विद्रोह तथा बीजापुरके प्रान्तोंमें विप्लव

बहलोलखाँ २३ दिसम्बर १६७७को मर गया। गोलकुण्डाकी सेनाके साथ अगली फरवरीमे मसूद बीजापुर पहुँचा और वहाँका राज्याभिभावक बन बैठा। किन्तु खजाना बिल्कुल खाली था, एव वह अफगान सैनिकोको चढा हुआ वेतन नही चुका सका, जिससे क्रुद्ध होकर वे अफगान उपद्रव करने लगे। उन्होने वहलोलखाँके अनाथ वच्चो, विधवाओ और अन्य सम्वन्धियोके घरोपर अधिकार कर लिया तथा अपना वाकी रहा रुपया चुका देनेके लिए उन्हे बाध्य करनेको उनका खुले-आम अपमान किया। धनवान माने जानेवाले सभी नागरिकोको पकडकर अफगानोने उन्हे तरह-तरहकी यन्त्रणाएँ दी। राज्यके विभिन्न प्रान्तोमे भी नये राज्या-

भिभावककी आज्ञाओंका पालन ठीक तरहसे नही होता था। अतएव जब मुगल भी उससे रुष्ट हो गए तव उसका दुर्भाग्य चरम सीमाको पहुँच गया। वर्षा समाप्त होनेपर अक्तूबर १६७८में पेड़गाँवसे रवाना होकर दिलेरखाँ अकलूजमे जा डटा।

उसी समय सन्धिकी शर्तोंके अनुसार शिवाजीने बीजापुरकी रक्षा तथा मसूदकी सहायतार्थ अपने ६,००० लोह-कवचधारियोंकी सेना भेजी। किन्तु शिवाजी और मसूदमे किसी भी प्रकार हार्दिक मित्रता होना एक असम्भव वात थी। कपटसे बीजापुरपर अधिकार करनेका शिवाजीने प्रयत्न किया। प्रतिदिन दोनोंमें वैमनस्य वढ़ता ही गया। अन्तमें खुले रूपमें उनमे झगडा हो गया। शिवाजी फिरसे वीजापुर राज्यको लूटने लगे। मराठोंकी सेना शहरकी ओर बढी और उन्होने दौलतपुरके उपनगर खवासपुर खुसरुपुर और जुहरापुरके आसपासके प्रदेशोको लूटा। अपने खुले शत्रुओं-की अपेक्षा मसूदको अपने इन कपटी मित्रोसे अधिक भय मालूम हुआ, एवं उसने दिलेरखाँका आश्रय चाहा और वीजापुरमे मुगल सेनाका सहर्ष स्वागत किया।

उधर दिलेरखाँने शिवाजीके सुदृढ़ किले भूपालगढ़को २ अप्रैल १६७९के दिन जीतकर उसे पूरी तरह नष्ट-भ्रष्ट कर डाला तथा उस किले-की सहायताके लिए आनेवाली १६,००० मराठा सेनाको भयकर मारकाट-के वाद हराकर वहाँसे भगा दिया। दिलेरखाँकी इन सफलताओके फलस्वरूप वीजापुरपर आक्रमण करनेवाले शत्रुओका ध्यान उधरसे हट गया। परन्तु अन्तमे मसूदकी दुरंगी चालसे दिलेरखाँका धैर्य छूट गया। धूलखेड़के पास भीमा नदीको पार कर दिलेरखाँ वीजापुरसे केवल ३५ मील उत्तरमें स्थित हलसगी तक जा पहुँचा। आदिलशाही सत्ता पूर्ण-रूपेण विलीन हो चुकी थी, और मसूद तथा शर्जाखाँके आपसी झगड़ेके फलस्वरूप सारे प्रदेश और राजधानीमे भयंकर अराजकता फैली हुई थी। अव वीजापुरके परस्पर-विरोधी विभिन्न दलोमे समझौता करानेके लिए मुगल सूवेदार ही एकमात्र मध्यस्थ वन गया।

औरंगजेवका आदेश था कि सुलतानकी वहन शहरवानू उर्फ पादशाह-वीवीको शाही हरममें भेज दिया जावे। इस शाहजादीके प्रति वीजापुरके राजघराने तथा वहाँकी जनताको भी समान रूपसे अत्यधिक स्नेह था। अतएव अपना शेप जीवन एक धर्मान्ध सुन्नीके महलोमे वितानेके लिए जव १ जुलाई १६७९को वह शाहजादी अपनी जन्मभूमिकी राजधानीसे

रवाना हुई, तब बीजापुरके राजदरबारी तथा वहाँकी जनताने रोते-कलपते ही उसे विदा दी।

९. दिलेरखाँकी बीजापुरपर चढ़ाई और शिवाजीका आदिलशाहकी सहायता करना; १६७९

उस शाहजादीके इस बलिदानसे भी उस अस्तप्राय राजघरानेको कोई लाभ न हुआ। मुगलोकी तृष्णा किसी भी प्रकार शान्त होनेवाली न थी। अब दिलेरखाँने यह माँग पेश की कि मसूद राज्याभिभावकका अपना पद छोडकर अपनी जागीरको लौट जाए और बीजापुरका शासन मुगलो द्वारा नियुक्त अधिकारी द्वारा होता रहे। मसूदने इस प्रस्तावको अस्वीकार कर अपनी बुद्धिमानीका परिचय दिया। अपने आदेशोकी यो खुले तौरपर पूर्ण अवहेलना होते देखकर दिलेरखाँने बीजापुरके साथ युद्ध घोषित कर दिया। मसूदने शिवाजीके पास अब एक दूत भेजा और इस कठिनाईके समयमे आदिलशाहकी रक्षाके लिए सहायता भेजनेकी प्रार्थना की। शिवाजीने तत्काल ही मसूदकी प्रार्थनाको स्वीकार कर लिया, तथा १०,००० मराठे घुडसवार मसूदको सहायतार्थ भेजे और २,००० बैलोंपर लादकर खाद्य-सामग्री भी बीजापुर पहुँचाई।

सितम्बर १६७९मे मुगलोने बीजापुरसे ५२ मील उत्तरमे स्थित मगलविड़े किला जीत लिया, तथा भीमा नदी और उस किलेके बीचके सारे प्रदेशपर भी अधिकार कर लिया। तब उन्होने सलोतगी, काशीगाँव और अलमलापर आक्रमण किए और अकलूजका भी घेरा डाला। किन्तु वहाँ कही भी उन्हे कोई सफलता न मिली। ७ अक्तूबरको दिलेरखाँ राजधानीसे ६ मील उत्तर-पूर्वमे बरतगी नामक स्थानपर पहुँचा। किन्तु शाहजादे शाहआलमका विरोध उसके लिए नई बाधाएँ उत्पन्न कर रहा था। बीजापुर-विजयमे देरी होनेके कारण औरगजेब उसकी भर्त्सना करने लगा था, और उसके निजी सलाहकार और साथी भी आपसमे झगड रहे थे, एव दिलेरखाँको सर्वत्र विफलताका ही पूर्ण अधकार दिखाई पडने लगा। १०,००० वीर सैनिकोके साथ शिवाजी स्वय पन्हाला और बीजापुरके बीचमे सेल्गुर नामक स्थान तक आ पहुँचे थे। उधर आनन्दराव भी उतनी ही और सेना लेकर ३१ अक्तूबर १६७९को शिवाजीसे आ मिला था, जिससे शिवाजीकी सेना दुगुनी हो गई। ४ नवम्बरको शिवाजीने

अपनी सेनाको दो भागोंमें बाँट दिया। अपने साथ ८,५०० वीर सैनिकोंको लेकर वह स्वयं मूसला और अलमला होता हुआ उत्तर-पूर्वकी ओर चला। आनन्दरावके अधीन १०,००० सैनिकोंकी दूसरी टुकड़ी सगुलाकी राह उत्तर-पश्चिम दिशामें चलकर मुगल प्रदेशमे जा घुसी।

अब मराठा सेना कुल मिलाकर कोई ३०,००० घुड़सवारोंसे भी अधिककी हो गई थी। चारो ओर लुटेरोंका जाल सा छा गया था। भीमा नदीसे लेकर उत्तरमें नर्मदा नदी तकके सारे मुगल प्रदेशपर शिवाजीने हरएक दिशासे आक्रमण कर दिया और वहाँ सर्वत्र लूटने, जलाने तथा मारकाट करने लगा।

१०. वीजापुरके आसपासके प्रदेशोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दिलेरका राजधानीपर आक्रमण करना

बादशाहके उलहनोसे उत्तेजित होकर दिलेरखाँ पुनः युद्धके लिए तत्पर हुआ। घेरा डालकर या एकाएक प्रवल आक्रमण द्वारा वीजापुर नगरको जीतनेकी दिलेरखाँको कोई भी आशा नही रह गई थी। पुन: घेरा डालनेके लिए खाइयाँ खोदनेपर पीछेसे शिवाजीके आक्रमणका डर भी वना हुआ था। एवं मीरज-पन्हाला प्रदेशपर चढाई करनेके उद्देश्यसे वह १४ नवम्बरको वीजापुर नगरके पाससे लौटकर पश्चिमकी ओर चल पड़ा। अब सबसे पहिले पागलोकी-सी भयकर क्रूरताके साथ वह वीजापुर राज्यके प्रदेशमें सर्वनाश करने लगा। वहाँके हिन्दू और मुसलमान सभी कैद किए जाकर गुलाम वना वेचे जाने लगे। अपने वच्चों सहित कुओंमें कूद-कूद कर स्त्रियोने आत्महत्या की। तव दिलेरने दोण और कृष्णा नदीकी उपजाऊ हरी-भरी घाटियोपर धावा किया, और वीजापुरके धान्य-भण्डार कहे जानेवाले इस प्रदेशके जो भी उपवन, खेत और गाँव राहमें पड़े उन्हे वरवाद कर दिया।

वीजापुरके किलेके सामने दिलेरखाँका अव आगे डटे रहना अत्यधिक कठिन हो गया। उसकी सेनाने भी उसकी आज्ञा मानना अस्वीकार कर दिया था। इसलिए वीजापुरके किलेके सामने निरर्थक ही पूरे ५६ दिन वितानेके वाद २९ जनवरी १६८०के दिन वेगम हौजके पाससे अपना पड़ाव उठाकर दिलेरखाँ वापिस लौट चला। तव कुछ दिन तक पागल कुत्तेकी तरह यत्र-तत्र घूमता हुआ राक्षसी क्रूरतापूर्ण हत्याएँ और लूट-

मार करने लगा। तदनन्तर दिलेरने बेरड प्रदेशपर आक्रमण किया। सागर ही उस प्रदेशकी राजधानी था, और तब वहाँ पाम नायक शासन करता था। २० फरवरीको दिलेर गोगी पहुँचा, किन्तु जब दिलेरखाँने गोगीसे ८ मील दक्षिणमे सागरपर धावा करनेका प्रयत्न किया, तब उसने बुरी तरह मुँहकी खाई।

चपल बेरडोके पीछेसे आक्रमण कर देनेपर शाही घुडसवार त्रस्त हो वहाँसे भाग खडे हुए और बडी ही दीनताके साथ दया-याचना करने लगे। उस दिन मुगल पक्षके कोई १,७०० सैनिक काम आए। मुगल सैनिकोका सारा साहस विनष्ट हो गया और शत्रुके पुन सामना करनेपर प्रत्येक सैनिकको ५,००० रुपये पारितोषिक देनेका प्रलोभन भी उन्हे युद्धके लिए तत्पर नही कर सका।

११. दिलेरखाँको पदच्युतकर वापस बुला लेना, १६८०

अब औरगजेब बहुत ही क्रुद्ध हो उठा, एव उसने दिलेरखाँ और शाहआलम दोनोको ही दक्षिणसे वापिस बुला लिया। बहादुरखाँको, जो अब खान-इ-जहाँ कहलाता था, उसने दूसरी बार दक्षिणका सूबेदार नियुक्त किया। मई १६८०मे खान-इ-जहाँके औरगाबाद पहुँचनेपर शाह-आलमने दक्षिणी सूबेकी सूबेदारी उसे सौप दी।

१२. बीजापुरके प्रति औरंगजेबकी नीति, १६८० से १६८४ ई० तक

दिलेरखाँकी विफलता और फरवरी १६८०मे उसके वापस लौट जानेके चार वर्ष बाद तक मुगल बीजापुरके विरुद्ध कोई भी निर्णायक कार्यवाही नही कर सके, क्योकि वे तब शम्भूजीके साहस और वीरतापूर्ण अनपेक्षित कार्योके कारण बहुत ही चिन्तित और व्यग्र थे। १३ जुलाई १६८१को औरगजेबने बीजापुरके मुख्य सेनापति शर्जाखाँको एक मैत्रीपूर्ण पत्र लिखा। शम्भूजी द्वारा अधिकृत बीजापुर प्रदेशको वापिस लेनेके लिए शम्भूजीके विरुद्ध मुगलोकी सहायता करनेके हेतु उसने शर्जाखाँसे विशेष आग्रह किया। शाहजादे आजमसे विवाहित बीजापुरी शाहजादी शहर-बानूने भी १८ जुलाईके दिन शर्ज़ाखाँके नाम इसी आशयका एक व्यक्तिगत

पत्र लिखा। परन्तु सहयोगके लिए की गई औरंगजेबकी इस प्रार्थनाका किसी भी आदिलशाही अधिकारीने कोई उत्तर नही दिया। बीजापुरियो-की ओरसे मराठोको मिलनेवाली मददके सुस्पष्ट प्रमाण औरंगजेबको बारम्बार मिलते गए इसलिए औरगजेबने बीजापुरियोके विरुद्ध भी युद्ध छेडकर अपने राज्यकी रक्षाके लिए ही अपने सारे साधनोंको एकत्रित करनेके लिए उन्हे बाध्य करनेका निश्चय किया, जिससे कि शम्भूजीपर अधिक दवाव पड सके। बीजापुर राज्यमें जा घुसनेके लिए अप्रेल १६८२ में शाहजादे आजमकी अधीनतामें एक बड़ी सेना वहाँ भेजी गई। आजम-ने सीमान्त प्रदेशको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और बीजापुरसे १४० मील उत्तर-में स्थित धरूरके किलेपर अधिकार कर लिया।

अब बीजापुरकी दशा अत्यन्त निराशापूर्ण हो गई थी। आदिलशाहके पतित राज-दरबारमे पूरे पाँच साल तक वजीरी करके अव सिद्दी मसूद वहाँसे बिलकुल ऊब उठा था। अतएव २१ नवम्बर १६८१को वह राज-दरबार छोडकर चल दिया, और अपने किले अडोनीमें पहुँचकर उसने अपने वजीर पदसे त्याग-पत्र दे दिया। तब १९ मार्च १६८४को आका खुसरू बीजापुरका वजीर बनाया गया, किन्तु ६ माहके भीतर ही ११ अक्तूबरके दिन वह मर गया। इस समय राज्यकी रक्षाके लिए बहुत जोरोसे आयोजन किए गए। ३ मार्च १६८४को यह कार्य सिकन्दरने अपने अत्यन्त साहसी सेनापति सैयद मखदूम उर्फ शर्जाखाँको सौपा। उसके आश्रित शासक वाकीनखेडाके पाम नायकको लिखा गया था कि अपने बेरड सैनिकोमे जो भी अच्छे निशानेवाज हों उन्हे साथ लेकर वह स्वय बीजापुर आवे।

३० मार्चके दिन आदिलशाहके पास औरगजेबका एक पत्र पहुँचा, जिसमे उसने आदिलशाहको अपनी अधीनता स्वीकार करने, मुगलोकी शाही सेनाको तत्काल रसद पहुँचाने, विना रोक-टोकके अपने राज्यमेसे होकर मुगल सेनाको निकलने देने, मराठोके साथ चलनेवाले युद्धमे मुगलोंकी सहायतार्थ ५-६,००० घुड़सवारोको भेजने, तथा शम्भूजीको सहायता या आश्रय न देनेकी माँग की थी। सिकन्दरने इस पत्रका वहुत ही करारा उत्तर दिया। तव तक मुगलों द्वारा जीते गए बीजापुर राज्यके सारे प्रदेश तथा बीजापुरसे वसूल किए हुए टाँकेकी सारी रकम लौटानेके लिए उसने औरगजेबको लिखा। उसने यह भी माँग की कि बीजापुर राज्यमें स्थापित सारी मुग़ल चौकियाँ उठा ली जावे, तथा अपने ही

राज्यमें होकर मुगल शम्भूजीपर चढाई करे। शिवाजी या शम्भूजी द्वारा छीनी गई बीजापुर राज्यकी सारी धरती जब तक मराठोसे जीतकर आदिलशाहको वापिस लौटा न दी जावे तब तक मुगल शम्भूजीके साथ सन्धि न करे इसकी भी उसने विशेप ताकीद की। अब दोनों ही पक्ष-वाले युद्धकी तैयारियाँ कर रहे थे। १ अप्रेल १६८५को मुगलोने पहली खाइयाँ खोदी और यो बीजापुरका घेरा प्रारम्भ हुआ।

१३. बीजापुरके घेरेका प्रारम्भ

बीजापुर शहरकी दीवारे लगभग अढाई वर्गमील जमीन घेरे हुए है। शहरपनाहका यह घेरा अण्डाकार है। ४० से ५० फुट चौड़ी खाई पार करनेके बाद हमे मजबूत विशाल-काय दीवारे मिलती है, जिनकी ऊँचाई ३० फुटसे बढकर कही-कही तो ५० फुट की है। उनकी औसत चौडाई लगभग २० फुटकी है। इस शहरपनाहको सुदृढ बनाने और उसकी सुरक्षाका ठीक प्रबन्ध करनेके लिए दरवाजोके पासकी दस बुर्जोके अतिरिक्त अन्य दूसरी ९६ बुर्जे है। ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चिमकी शर्जी बुर्जकी ओर कुछ भी ध्यान न देकर औरगजेबने दक्षिणवाली लण्डा-कसब बुर्जपर ही अपनी सब तोपोकी जोरोसे गोलाबारी की थी, जिससे उस बुर्जके पास शहरपनाह टूट गई। इस लण्डा-कसब बुर्ज और फिरगी बुर्जके बीचमे मगली दरवाजा है। बीजापुर नगरपर अधिकार हो जानेके बाद विजयी औरगजेबने इसी दरवाजेमे होकर उस नगरमे प्रवेश किया था, एव तदनन्तर उसका नाम बदलकर फतेह दरवाजा रख दिया गया।

शहरके बीचमे किला आर्क नामक एक और भीतरी दुर्ग है, जिसके भी चारो ओर किलेबन्दी की हुई है तथा जिसका घेरा कोई एक मील लम्बा है। आदिलशाहोंके सारे राजमहल तथा सरकारी दफ्तर इसी भीतरी गढके अन्दर बने हुए थे।

१ अप्रेल १६८५को मुगलोने बीजापुरका घेरा डाला। एक बडे तालाब-को अपने पीछे रखकर शहरके उत्तर-पश्चिममे शाहपुरकी तरफ शहर-पनाहसे कोई आधे मीलकी दूरीपर रुहेल्लाखाँ और कासिमखाँने अपनी-अपनी खाँइयाँ खोदी। उधर पश्चिममे जुहरापुर या रसूलपुर उपनगरके पास खान-इ-जहाँने अपनी सेनाके आगे बढनेका प्रयत्न किया। १४ जूनको शाहजादा आजम एक बड़ी सेनाके साथ वहाँ पहुँचा, और नगरसे दक्षिणमे

बेगम हौजमें पडाव डालकर उस घेरेके संचालनका नेतृत्व उसने अपने हाथमे ले लिया।

घेरा डालकर क़िला लेनेमें मुगलोकी अयोग्यता, ढिलाई तथा अव्य-वस्था लोक-प्रसिद्ध थी। साथ ही बीजापुर नगरके आस-पासकी धरती बहुत ही पथरीली और कठोर है। एक-दो फुट खोदनेपर ही ठोस चट्टाने निकल आती है, अतएव मुगल बडी मिहनत तथा कठिनाईसे बहुत ही धीरे-धीरे आगे बढ पाते थे।

इस संकटके समय उसके साथी और सहायक आदिलशाहके पास एकत्रित होने लगे। १० जूनको सिद्दी मसूदकी सेना आई। तब १४ अगस्तको गोलकुण्डाका सैनिक-दल आया, और अन्तमे १० दिसम्बरको हम्बीररावके नेतृत्वमे शम्भूकी सेनाकी दूसरी टुकड़ी भी आ पहुँची।

२९ जून १६८५को शाहजादा आजम बीजापुर क़िलेके बिलकुल ही पास पहुँच गया। किन्तु इस एक माहसे भी कम समयमे उसको शत्रुके साथ तीन भयकर युद्ध करना पडे थे। पहली जुलाईको अब्दुर् रऊफ और शर्जाख़ॉने उसकी खाइयोंपर धावा किया। बहुतसे मुगल सेनानायक घायल हुए और कई मारे गए। घेरा डाले हुई पड़ी मुगल सेनाके पडाव-में खाद्य-सामग्री तथा अन्य सामान लानेवाले दलोंपर दूसरे दिन दक्षि-णियोने हमलाकर बहुत करके उन्हें भी मुगल पडाव तक पहुँचनेसे रोक दिया।

१४. फ़िरोजजंगका खतरेमें पड़े हुए शाहजादे आजमको बचाना

अव मुगल पडावमें अकाल-सा पड़ गया। वीजापुरके आसपासके प्रदेशपर इतने अधिक आक्रमण हो चुके थे, और वह इतनी वार वरवाद किया जा चुका था कि वहॉ कही भी कोई खाद्य-सामग्री मिल सकना असम्भव था। उत्तरकी ओरसे वहॉ जानेवाले सारे रास्ते मराठोके उप-द्रवोके कारण वन्द थे, और अव वरसातके प्रारम्भ हो जानेसे सव नदियों मे वाढ़ आ गई थी। "पडावमे अब धान्य पन्द्रह रुपये सेर विकता था और फिर भी वहुत ही थोड़ी मात्रा प्राप्य होती थी।"

ससैन्य वीजापुरसे लौटनेके अतिरिक्त आजमके वचावका दूसरा कोई उपाय औरगजेवको नही सूझा, एव औरगजेवने आजमको वैसा आदेश दिया अपने सारे सेनापतियोको एकत्रित कर शाहजादेने उनकी सलाह पूछी,

तब उन सबने भी वापिस लौट जानेकी ही राय दी। किन्तु अब आजमको आवेश आ गया। उसका प्रतिद्वन्द्वी भाई शाहजादा शाहआलम कुछ ही समय पहिले पराजित हो कोकणकी चढाईसे निराश विफलमनोरथ लौटा था। आजम नही चाहता था कि शाहआलमकी-सी उसकी भी दुर्दशा हो।

तब तो औरगजेब आजमको सहायता पहुँचानेके लिए तत्काल प्रयत्नशील हुआ। ५,००० बैलोपर लादकर खाद्य-सामग्री भेजी गई। सैकडों खाली घोडोपर बहुत-सा द्रव्य तथा गोला-बारूद भी शाहजादेके लिए रवाना किया गया। इन सबको शाहजादेके पडाव तक सकुशल पहुँचा देनेके लिए गाजीउद्दीन बहादुर फिरोजजगके नेतृत्वमे एक सशक्त सेना ४ अक्तूबर १६८५को शाही पडावसे रवाना हुई। इन्दीके पास शर्जाखाँको हराकर राह भर लडता-भिडता फिरोजजग भूखो मरती मुगल सेना तक जा पहुँचा। फिरोजजगके वहाँ पहुँचते ही "मुगल पडावमे अब दुर्भिक्षके स्थानपर हर वस्तु बहुतायतसे मिलने लगी और भूखो मरते सैनिकोको जीवन-दान मिला"। उधर प्रत्येकके सिरपर धान्यका एक थैला उठवाए ६,००० पैदल बेरड सैनिकोको लेकर रात्रिके समय पाम नायकने प्रयत्न किया कि वह सारा धान्य किसी भी तरह बीजापुर किलेमे पहुँचा दे, किन्तु फिरोजजगने इस दलको पराजित कर मार भगाया। यह उसकी दूसरी उल्लेखनीय सफलता थी।

उधर कुतुबशाहके गोलकुण्डा किलेमे जा छुपनेपर अक्तूबर १६८५के आरम्भमे शाहजादे शाहआलमने बिना किसी विरोधके गोलकुण्डा राज्यकी राजधानी हैदराबादमे प्रवेश किया। कई कुतुबशाही अधिकारी शाहआलमके साथ जा मिले। किन्तु बीजापुर और मराठोके साथ मैत्रीपूर्ण नीति बनाए रखनेका पक्षपाती, कुतुबशाही प्रधान मन्त्री मादन्ना पण्डितके मार्च १६८६मे मारे जानेके बाद ही कही कुतुबशाही राज्यपर मुगलोका यह अधिकार स्थायी हो सका।

१७. बीजापुरका घेरा चलाते समय मुगलोंके कष्ट और कठिनाइयाँ

बीजापुरका घेरा डाले जून १६८६मे पन्द्रह माह पूरे होनेको आए; फिर भी उसका कोई निर्णायक परिणाम नही निकल रहा था।

मतभेद और पारस्परिक ईर्ष्याके कारण मुगल सेनापतियोमे फूटने उग्र रूप धारण कर लिया था। औरंगज़ेबने महसूस किया कि जब तक

वह स्वयं जाकर इस घेरेके सचालनको अपने हाथमे न लेगा तब तक उस किलेको जीतना सम्भव नही। अतएव १४ जून १६८६के दिन वह शोलापुरसे रवाना हुआ और २ जुलाईको वीजापुरके किलेके पश्चिममे रसूलपुरके पास जा पहुँचा। घेरेको दृढताके साथ चलाकर शत्रुको दवानेके लिए तत्काल ही आदेश दिए गए।

इस वर्ष वर्षाके अभावके कारण दक्षिणमे जो दुर्भिक्ष पडा, उससे घेरा डालनेवालोके कष्ट वहुत बढ गए थे। परन्तु वीजापुर नगरमें घिरे हुओके कष्ट तो उनसे भी कही दस गुना अधिक थे। "किलेमे अनगिनत मनुष्य और घोड़े मरे।" घोड़ोकी कमीके कारण ही शत्रुके चारो ओर मडराने और भटक जानेवालो तथा यातायातके साधनोको छिन्न-भिन्न कर देनेकी अपनी परम्परागत प्रिय युद्ध-शैलीका प्रयोग दक्षिणी इस बार नही कर सके। घेरा जव वहुत ही कडाईके साथ चल रहा था, तब मुसलमान मुल्लाओंका एक दल बीजापुर नगरसे निकला और मुगल पडाव मे पहुँचकर औरगजेबकी सेवामें उपस्थित हुआ। उन्होने निवेदन किया, आप कट्टर मुसलमान है; धार्मिक क़ानूनका आपने पूर्ण अध्ययन किया है; कुरानकी सम्मति तथा मौलवी-मुल्लाओके आदेशोके विरुद्ध आप कभी कुछ नही करते। कृपा कर हमे यह वतावे कि हमारे समान मुसलमान भाइयोके विरुद्ध आपने यह जो अधार्मिक युद्ध छेड़ा है, उसे किस प्रकार आप न्यायोचित प्रमाणित कर सकते है।" औरगजेबके पास उत्तर तैयार था, उसने तत्काल ही कहा—"तुमने जो कुछ भी कहा वह अक्षरश सत्य है। तुम्हारे राज्यका मुझे लोभ नही है। परन्तु उस नारकीय काफिरका वह काफिर बेटा—औरंगजेवका सकेत शम्भूजीकी ओर था—तुम्हारे साथ है, और तुम उसे आश्रय भी देते हो। यहाँसे लेकर दिल्लीके दरवाजो तक वह मुसलमानोको कष्ट दे रहा है, और रात दिन उसकी शिकायते मेरे पास पहुँचती है। उसे मेरे हवाले कर दो, मै दूसरे ही क्षणमे अपना घेरा उठा लूंगा।" निरुत्तर हो वेचारे मुल्लाओको चुप रह जाना पड़ा।

औरंगजेवका निजी डेरा अव तक खाइयोसे कोई दो मील पीछे था। ४ सितम्वरको उसे वहाँसे हटाकर खाइयोके ठीक पीछे ला खड़ा लिया। अस्त्र-शस्त्रसे पूरी तरह सुसज्जित हो घोड़ेपर वैठकर एक ढकी हुई सुरक्षित गलीकी राह औरगज़ेव अपने डेरे तक पहुँचा और वहाँ घेरा चलानेवाले सेनापतियोकी सलामी ली। तव घोड़ेपर चढ़ा हुआ वह खाईके

पास पहुँचा और किलेकी बुर्जपर गोलाबारी करनेको चढाई हुई तोपोंकी देखभाल की, तथा वहाँ उसने स्वय यह समझनेका प्रयत्न किया कि किस कारणसे किलेको जीतनेमे अब तक इतनी देरी हो रही थी ।

१६. बीजापुरके अन्तिम सुलतानका पतन और अन्त

उस दिनसे एक सप्ताह बाद ही बीजापुरका पतन हुआ, किन्तु आक्रमण करके बीजापुर नही जीता गया था । किलेमे घिरे हुए सैनिक पूर्णतया हताश हो चुके थे । आदिलशाही राज्यको बचा सकनेकी कोई आशा अब नही रह गई थी । सुलतान स्वार्थी सरदारोके हाथमे कठपुतली बना हुआ था । बाहरसे किसी भी प्रकारकी सहायता पानेकी सारी आशाएँ तब तक टूट चुकी थी । भविष्य अब सर्वथा अन्धकारपूर्ण देख पडता था । नगरके रक्षक दलमे अब केवल २,००० सैनिक ही बच रहे थे । ९ सितम्बरकी रातको दो प्रमुख बीजापुरी नेताओ नवाब अब्दुर् रऊफ और शर्जाखाँके कामदार फिरोजजगकी सेवामे पहुँचे और बीजापुर नगरके आत्म-समर्पण सम्बन्धी समझौतेकी बातचीत प्रारम्भ की । औरगजेबके सम्मुख उपस्थित होनेपर उसने अब्दुर् रऊफ और शर्जाखाँके प्रति विशेष कृपा दिखाई ।

रविवार, १२ सितम्बर १६८०के दिन बीजापुर राजघरानेका पूर्ण पतन हो गया । उस दिन दोपहरमे कोई एक बजे जब आदिलशाही सुलतानोका अन्तिम वशज सिकन्दर अपने वश-परम्परागत राज्यसिहासनको छोडकर राव दलपत बुंदेलेकी देख-रेखमे बीजापुरके राजमहलोसे निकला, तब उसके मार्गके दोनो ओर उसके प्रजा-जन पक्ति बाँधे खडे रो-रोकर विलाप कर रहे थे । वहाँसे चलकर सिकन्दर रसूलपुरमे औरगजेबके पडावमे गया ।

गद्दीसे उतारे हुए इस सुलतानको मुगल मनसब देकर उसे 'ख़ान' की उपाधि दी गई और उसकी एक लाख रुपया पेशन भी नियत की गई । बीजापुरके सब ही अधिकारियोको मुगल साम्राज्यकी नौकरीमे रख लिया गया ।

१९ सितम्बरको उस मुगल विजेताने एक पालकीनुमा सिहासनपर बैठकर सफशिकनख़ाँकी खाइयोके पास होते हुए मगली दरवाजे नामक दक्षिणी दरवाजेसे बीजापुरमे प्रवेश किया । किलेपर आक्रमणके लिए भी

पहिले इसी मार्गका निश्चय हुआ था। तब सारी राह अपने दाएँ-बाएँ सोने-चाँदीकी मोहरे लुटाता हुआ 'औरगजेब नगरके विभिन्न मार्गोंसे गुजरा तथा किलेकी दीवारों, बुर्जो और राजमहलोंका भीतरसे निरीक्षण किया। तव वह जुम्मा मसजिदमे पहुँचा और अपने ऊपर की गई ईश्वरीय कृपाओंके लिए उसने ईश्वरसे दुहरी प्रार्थना की। सिकन्दरके राजमहलमें उसने कुछ घण्टो तक विश्राम किया तथा अपनी विजयके उपलक्षमे सिकन्दरके राजदरबारियोंकी अभिनन्दक भेंटे स्वीकार की। जीवित व्यक्तियोके चित्र बनाकर मनुष्यको ईश्वरके साथ प्रतिस्पर्धा नही करनी चाहिए, कुरानके इस आदेशके विरुद्ध जो कोई भी चित्र वहाँ दीवारोंपर बने हुए थे उन सबको खुरेद देनेका हुक्म दिया गया, और औरगजेबकी इस विजयकी बात सुप्रसिद्ध तोप 'मलिक-इ-मैदान' पर खुदवाई गई।

स्वतन्त्र राज्य तथा राजघरानेके पतनके बाद बीजापुर नगर पूर्णतया चौपट हो गया। वह उजड गया और सर्वत्र भयकर नीरवता तथा उदासीनता छा गई।

कैदीकी ही दशामें सतारा क़िलेके वाहर ३ अप्रैल १७००को सिकन्दर-की मृत्यु हो गई। तब उसकी उम्रके ३२ वर्ष भी पूरे नही [हो पाए थे। उसकी अन्तिम इच्छाके अनुसार उसके शवको बीजापुर ले जाकर उसके आध्यात्मिक गुरु शेख़ फहीमुल्लाकी समाधिके तले विना छतवाले एक प्राकारमें गाड दिया गया।

•

अध्याय १३

कुतुबशाहीका पतन और अन्त

१. अबुलहसन कुतुबशाहका राज्यारोहण; १६७२

गोलकुण्डाका छठवाँ सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाह जब अपने पिताके बाद सन् १६२६ ई०मे गोलकुण्डाके सिंहासनपर बैठा, तब उसकी उम्र १२ वर्षकी थी। उसने ४६ वर्ष राज्य किया, परन्तु अपने सारे शासन-कालमे वह दूसरोके हाथकी कठपुतली ही बना रहा। ४० वर्षसे भी अधिक काल तक तो उसकी माँ हयातबख्श बेगम ही वास्तवमे शासन करती रही। वह एक दृढ चरित्रवाली स्त्री थी। सन् १६६७मे उसकी मृत्यु हो जानेपर अब्दुल्लाके ज्येष्ठ दामाद सैयद अहमदने राज्यभारको सम्हाला। अब्दुल्ला जीवन पर्यन्त आलसी और प्राय अशक्त बुद्धिहीन ही रहा। राज्यकी परम्पराके अनुसार न्याय करने या जनताको दर्शन देनेके लिए वह कभी खुले दरबारमे नही बैठता था। गोलकुण्डाके किलेकी चहार-दीवारीके बाहर जानेका भी उसने कभी साहस नही किया। इस प्रकारकी परिस्थिति-के स्वाभाविक अनिवार्य परिणामस्वरूप गोलकुण्डा राज्यमे कुप्रबन्ध और अस्त-व्यस्तता सदैव बनी रही।

अब्दुल्लाके कोई पुत्र न था। उसके केवल तीन लड़कियाँ थी। दूसरी लड़कीका विवाह औरगजेबके पुत्र मुहम्मद सुलतानके साथ हुआ था। पहली सैयद अहमदको ब्याही थी, जो स्वयको मक्काके एक बहुत ही उच्च घरानेका वशज बताता था। अपनी योग्यतासे वह प्रधान मन्त्री-के पदपर पहुँचकर राज्यका यथार्थ शासक भी बन गया था। सैयद सुलतानके साथ तीसरी शाहजादीके विवाहका प्रस्ताव था। किन्तु जिस दिन विवाह होनेवाला था उसी दिन सैयद अहमदने अब्दुल्लासे कहा—

"यदि आपने अपनी लडकीका विवाह सैय्यद सुलतानके साथ किया तो मै तत्काल ही राज्य छोडकर चला जाऊँगा" । तव तो वड़ी ही तत्परताके साथ शाहजादीके लिए दूसरा वर खोजा गया । राजमहलके अधिकारियोने अव अवुलहसनको चुना । इस युवकका पिता कुतुवशाही घरानेका ही वशज था । पीर सैय्यद राजू कत्तलका शिष्य वनकर इस अवुलहसनने अपने जीवनके १६ वर्ष एक फकीरके समान आलस्यपूर्ण तथा चिन्तारहित ही विताए थे । अव उसीको राजमहलोमे ले जाकर तुरन्त ही शाहजादीके साथ उसका विवाह कर दिया गया ।

२१ अप्रैल १६७२को अव्दुल्लाका देहान्त हो गया । अव एकाएक राज्यके उत्तराधिकारके लिए झगड़ा उठ खडा हुआ । कुछ अव्यवस्था तथा आपसी युद्धके वाद महलदार मूसाखाँ तथा अन्त.पुरके अन्य अधिकारियोकी सहायतासे उच्च-कुलीन ईरानी नायक सैय्यद मुहम्मदने सैय्यद अहमदको घेरकर वलपूर्वक कैद कर दिया । तब अवुलहसनको राजगद्दीपर वैठाकर उसका राज्याभिपेक किया और मुजफ्फर उसका प्रधान मत्री वना । अव मुजफ्फरका सव कुछ काम करनेवाले ब्राह्मण नौकर मादन्ना पण्डितको लोभ देकर अवुलहसनने अपनी ओर कर लिया, तथा उसके द्वारा मुजफ्फरके निजी शरीर-रक्षकोके कई नायकोको भी प्रलोभन देकर वहका दिया, और तव एक दिन विना किसी उपद्रवके मुजफ्फरको वजीरके पदसे हटा दिया । अव अवुलहसनने मादन्नाको सूर्यप्रकाशरावकी उपाधि देकर गोलकुण्डाका वजीर बनाया । वजीरोकी यह बदला-बदली सन् १६७३मे हुई, उसके वाद उस राज्यके पतनसे कुछ ही पहिले सन् १६८६मे उसकी हत्या होने तक मादन्ना ही वजीर बना रहा । मादन्नाका भाई आकन्ना गोलकुण्डाका प्रधान सेनापति वना; उसके वीर और विद्वान् भतीजे योगन्नाको, जो रुस्तमराव कहलाता था, गोलकुण्डाकी सेनामे उच्च पद दिया गया । अपने आश्रित मुहम्मद इब्राहीमको मादन्नाने गोलकुण्डाका सर्वोच्च अमीर वनाया ।

मादन्नाके इस वारह-वर्षीय मन्त्रित्वकालमे भी राज्यके आन्तरिक शासनमे अव्दुल्लाके शासन-कालकी-सी अव्यवस्था तथा वैसे ही अत्याचार निरन्तर चलते रहे, स्वभावतया परिस्थिति दिनोदिन विगड़ती ही रही । अतएव अपने राज्यकी सुरक्षाके लिए मादन्नाको एकमात्र उपाय सदा विजयी होनेवाले मराठा राजाके साथ घनिष्ठ मैत्री स्थापित करना

ही देख पडा, और इसी कारण गोलकुण्डाकी रक्षाके निमित्त उन्हे प्रतिवर्ष एक लाख हूण देते रहनेका भी उसने वायदा किया था।

२. गोलकुण्डा सुलतानके प्रति मुग़ल नीति

औरगजेव जानता था कि जव तक बीजापुर राज्य विद्यमान था, गोलकुण्डा सुरक्षित ही रहेगा, अतएव गोलकुण्डापर पहिले अधिकार करनेका उसने प्रयत्न नही किया।

अपने वजीर मादन्नाको ही सारा राजकीय शासन-कार्य सौपकर सुलतान अवुलहसन अपने राजमहलोमे वन्द अपनी अनगिनित रखेलियो तथा नर्तकियोके साथ पडा जीवन बिताता था। सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाहके शासन-कालमे हैदराबाद भारतीय भोग-विलासियोके लिए तीर्थ वन गया था। वहाँ कोई २० हजार वैश्याएँ थी, जो प्रत्येक शुक्रवारको सार्वजनिक चौकमे सुलतानके सामने नृत्य करती थी, और जिनके घरोके पासके अनगिनित शराबखानोमे प्रतिदिन कुल मिलाकर ताडीकी कोई १,२०० बडी-बडी पखाले खाली हो जाती थी। किन्तु साथ ही अब्दुल्लाने विलासिताको बढानेवाली कई एक ललित कलाओको भी प्रोत्साहन दिया था। आर्थिक सहायता देकर उसने अपनी राजधानीमे कई एक ऐसे चतुर कारीगरोको बसाया था, जिनकी बनाई हुई अत्यधिक सुन्दर वस्तुएँ सारे भारतवर्षमे सुप्रसिद्ध थी। सुलतान अब्दुल्ला स्वय भी बहुत ही उच्चकोटिका संगीतज्ञ था। उसे 'तानशाह' अर्थात् सरस सुलतान कहते थे, जो सर्वथा सार्थक ही था।

सुलतानको पौने तीन करोड रुपयोकी स्थायी आय थी। औरगजेबके गद्दीपर बैठनेके कोई ३० वर्ष बाद तक गोलकुण्डा राज्य मुगल आक्रमणोसे बचा रहा। शिवाजी और उनके सहायक आदिलशाहके साथ उलझे रहनेके कारण गोलकुण्डाकी ओर मुगल ध्यान न दे सके।

सन् १६६५-६६ ई०मे जयसिहके सेनापतित्वमे, सन् १६७९ मे दिलेरखॉ द्वारा किए गए तथा सन् १६८५मे शाहजादे मुहम्मद आजमके नेतृत्वमे जब-जब मुगल सेनाने बीजापुरपर आक्रमण किया, तब-तब विपत्तिमे पड़े अपने इस भाईकी सहायतार्थ अपनी सेनाएँ भेजकर गोलकुण्डाके सुलतानने खुले तौरपर बीजापुरको मदद दी थी। किन्तु औरगजेबकी दृष्टिमे काफिरोके साथ भाई-चारा स्थापित करना ही कुतुबशाहका सबसे भयकर

अपराध था। सन् १६६६में शिवाजीके आगरासे भाग निकलनेके बाद उन्हे युद्ध-सामग्री, आदि लेकर कुतुबशाहने शिवाजीकी पर्याप्त सहायता की थी, जिसके फलस्वरूप उन्होने अपने सारे किले मुगलोके पाससे वापिस छीन लिए। पुनः १६७७में जब शिवाजी हैदराबाद गए थे, तब कुतुबशाहने बड़े ही आनन्द और उत्साहके साथ उनका स्वागत किया था, शिवाजीके घोडेके गलेमे रत्नोका हार डालकर तथा अपने राज्यकी सुरक्षा के निमित्त प्रति वर्ष एक लाख हूण कर देनेका वायदा कर शिवाजीके एक विनीत आश्रितकी तरह कुतुबशाहने उनके प्रति व्यवहार किया था। यही नही, उसने मादन्ना और आकन्ना जैसे ब्राह्मणोको अपना प्रधान मन्त्री बनाया तथा यों अपने राज्य-शासनमे हिन्दुओके प्रभावको प्राधान्य प्राप्त करने दिया था।[1]

३. मुग़लोंके साथ युद्ध तथा उनका हैदराबादको विजय करना; १६८५.

इसपर औरगजेबने तत्काल ही शाहजादे शाहआलमको हैदराबादपर आक्रमण करनेके लिए एक बड़ी सेनाके साथ रवाना किया। किन्तु जब शाही सेनाका अग्रभाग मालखेड़से ८ मील पूर्वमे सेरूमके पास पहुँचा, तब उसने देखा कि गोलकुण्डाकी सेना उसका मार्ग रोके हुए थी। मुगल अब आगे नही बढ सके। शाही सेनाने पीछे लौटकर मालखेडमे पडाव

---

१. गोलकुण्डा राजदरवारमे अपने राजदूतको औरंगजेबने लिखा था—"इस अभागे नराधमने (अर्थात् अबुलहसन कुतुबशाह) अपने राज्यकी सर्वोच्च सत्ता एक काफिरको दे रखी है, और सैय्यदो, शेखो तथा विद्वानोको भी उसके अधीन कर दिया है। (शराबखाने, वेश्यालय और जुआघर जैसे) सब तरहके पापो और दुराचारोको उसने (अपने राज्यमे) सार्वजनिक रूपसे प्रचारित होने दिया है। अपनी राज्य-सत्ताके मदमे चूर वह स्वयं भी दिन-रात भयकर पापोमे लीन रहता है, जिससे इस्लाम और काफिरी, न्याय और अत्याचार तथा पाप और पुण्यके भेदोको वह नही पहिचान सकता है। ईश्वरकी आज्ञाओ तथा निषेधोका पालन करनेसे इन्कार करके, काफिर राज्योको सहायता देकर " ' और अभी-अभी उस काफिर शम्भूजीको एक लाख हूण देकर उसने ईश्वर तथा मानवके सामने समान रूपसे स्वयको निन्दनीय अपराधो सिद्ध कर दिया है।"

(खफीख़ाँ भाग २, पृ० ३२८)।

किया। शत्रुके साथ प्रति दिन छोटी-मोटी लडाइयाँ होने लगी। मालखेड
अपने पडावके चारो ओर खान-इ-जहाँने दीवाले खडी कर दी, और व
एक प्रकारके घेरेका सामना करने लगा।

कुछ समयके वाद और भी अधिक सेना लेकर शाहजादा वहाँ
पहुँचा। मालखेडमे अपना सामान, आदि छोड़कर मुगलोने पुन खा
इ-जहाँकी अधीनतामे, अपनी सेनाके अग्रभागको वलपूर्वक हैदरावादक
रास्ता खुलवानेके लिए भेजा। दक्षिणी सैनिकोकी सख्या इनसे तिगु
थी, और उनके साथ वार-वार युद्ध होते रहते थे। विना युद्ध किए मा
खेडके पास ही पडे रहकर मुगल सेनापतियोने पूरे दो माह व्यर्थ
विताए। तव औरगजेवकी कडी फटकार पानेके साथ ही शाहजादे
पडावपर शत्रुके वहुत ही साहसपूर्ण आक्रमणने भी उन्हे पुन युद्ध करने
लिए उत्तेजित किया। एक वडी घमासान लडाईके वाद दक्षिणियो
पीछे अपने पडावकी ओर हटना पडा। दूसरे दिन प्रात काल पता च
कि वे हैदराबादकी ओर भाग गए थे। गोलकुण्डाके प्रधान सेनानाय
तथा उसके सहायक शेख मिनहाजमे पारस्परिक मतभेद हो जाने त
मुगलोके प्रलोभन देनेपर मुहम्मद इब्राहीमके उनके साथ आ मिलने
फलस्वरूप ही दक्षिणियोके विरोधका यो एकाएक अन्त हो गया था। अ
शाहजादा तेजीसे निर्विरोध वढता हुआ हैदरावादकी ओर चला।

प्रधान सेनापतिके यो भाग जानेसे हैदरावादके सारे ही आयोजन ढी
पड गए। अब वह किसपर विश्वास करे, कुतुवशाहके लिए यह एक अ
बूझ पहेली हो गई, अतएव हैदराबादसे भागकर उसने गोलकुण्डा
किलेमे आश्रय लिया। गोलकुण्डा भागनेमे कुतुवशाहको ऐसी हडव
पड गई थी कि उसकी सारी सम्पत्ति हैदरावादमे ही छूट गई। जब हैदर
बादके नगर-निवासियोको पता लगा कि उनके शासक अधिकारियो
नगर छोड दिया है, तथा शत्रु उनके सिर पर आ पहुँचा है, तब किले
जा छुपनेके लिए पागलोकी-सी भाग दौड प्रारम्भ हुई। कुछ समय बा
वहाँ सर्वत्र लूट-मार भी होने लगी, जिससे भी वहाँ गडवडी बहुत ब
गई। अनेको हिन्दू-मुसलमान स्त्री-बच्चोको लोग भगा ले गए और कुछ
साथ बलात्कार भी किया गया।

हैदराबादके नागरिकोकी रक्षाके लिए शाहआलमने दूसरे दिन ए
सैनिक-दल भेजा, किन्तु ये मुगल सैनिक भी हैदराबादकी इस लूट

दूसरेसे सम्बद्ध तथा एक ही परकोटेमें साथ घिरे हुए सर्वथा विभिन्न चार किले है।

मूसी नदीके उत्तरी तथा दक्षिणी, दोनों किनारोंपर चलकर मुगल सैनिक किलेके दक्षिणमें पहुँचे और वहाँ किलेकी दक्षिणपूर्वीय तथा दक्षिणी दीवालोपर उन्होने आक्रमण किया। किलेके उत्तर-पूर्वी दरवाजेपर मुगलों-की गोलाबारी शत्रुको धोखा देनेके उद्देश्यमे एक दिखावा-मात्र था।

गोलकुण्डाके पास पहुँचते ही औरगजेबने अपने सेनापतियोको आदेश दिया कि किलेकी दीवालोके नीचे सूखी खाईमे एकत्रित शत्रु-सेनापर आक्रमण कर उसे भगा दिया जावे। किलेका घेरा डालनेका विधिवत् कार्य ७ फ़रवरी १६८७को ही प्रारम्भ हुआ।

६. शाहआलमका कैद किया जाना

किन्तु मुगल पडावमें व्यक्तिगत कटु ईर्ष्याके फैलनेके कारण इस घेरेके प्रारम्भसे ही शाही सेनाकी सारी गतिविधि स्थगितसी हो गई थी। शाहजादा शाहआलम स्वभावसे ही सुकोमल एवं विलास-प्रिय था, अपनी शारीरिक स्थितिके कारण कडी मिहनत करना या वीरतापूर्ण दुष्कर कार्य ..रना उसको बहुत ही अप्रिय था। अबुलहसन जैसे एक स्वाधीन सुल-
। बन्धुको सम्पूर्णतया विध्वस होते देखना भी उसे कदापि रुचिकर
था। किन्तु इस उदारतापूर्ण सद्भावनाके साथ उसकी लोभमय
वृत्ति भी सम्मिलित थी। यदि उसके द्वारा ही सन्धिका प्रस्ताव
लिए वह अबुलहसनको राजी कर सका तो शाही सूचनाओमे उसे
।। विजेता घोषित किया जावेगा। बहुमूल्य उपहार लेकर
वकीलोने गुप्तरूपसे शाहआलमके साथ भेंट की, और शाह-
न की कि औरगजेबसे निवेदनकर अपने निजी प्रभाव द्वारा
के राज्य तथा राजघरानेको किसी भी प्रकार बचा ले।
..र बहुत ही आश्वासनपूर्ण था।

बड़ी तत्परताके साथ सारी कार्यवाही की। शाह-
चारो ओर तत्काल ही शाही सेनाका पहरा बैठा दिया
२१ फरवरीको प्रात कालमे शाहआलमको अपने चारो
..के डेरेमे मन्त्रणाके लिए बुलाया गया। कुछ क्षण
चीत होनेके बाद उन्हे वजीरने कहा कि सम्राट्के

अपने कट्टर शत्रुके हाथोमे स्वयको सौपते समय अवुलहसनने जो संयम और गौरव दिखाया, उसे देखकर उसको क़ैद करनेवाले भी आश्चर्यचकित रह गए। उनकी आदरपूर्ण आश्चर्यभरी ध्वनिको सुनकर उसने उन्हे कहा कि यद्यपि उसका जन्म राजघरानेमे हुआ था, उसका यौवन दारिद्र्यपूर्ण कठिनाइयोमे ही बीता था, एव वह जानता था कि सुख और दुख दोनोको ही ईश्वर की देन समझकर समान निस्संगताके साथ कैसे स्वीकार करना चाहिए। "ईश्वरने ही मुझे पहिले भिखारी बनाया था, बादमे उसने सुलतान बना दिया, और अब मुझे पुन भिखारी बनाया है। अपने दासोकी भलाईका ध्यान उसे सदैव बना रहता है, और भोजनका निश्चित अंश वह प्रत्येक मनुष्यके पास बराबर पहुँचा देता है।"[1]

---

१ ख़फीख़ाँ, २, पृ० ३६३–३६४। किन्तु चर्चिल कृत "व्यायेजेस"मे (भाग ४, पृ० २४९) डा० करेरी तथा मनुची (भाग २, पृ० ३०६–३०७) लिखते है कि जब उसे औरगजेबके सम्मुख ले गए तब वहाँ उसको अपमानित कर पीटा गया था। ईश्वरदासने एक विलक्षण कहानी लिखी है कि जब अबुलहसनको कैद किया गया तब वह नर्तकियो और गायकोके साथ बैठा आनन्दोत्सवमे लीन था। शत्रुओके आ घुसनेपर जब डरके मारे नर्तकियाँ नाचते-नाचते रुक गई तब चिल्लाकर उसने कहा "पहिलेके ही समान नाचती रहो। जो भी क्षण मैं सानन्द बिता सकता हूँ वही मेरे लिए बहुत बडा लाभ है।" फिरोजजगने उसे उसके सिहासनसे ऊठाया और घोडेपर बैठाकर अपने पीछे-पीछे औरगजेबके पास ले गया। तब कोर्निश या सलाम न कर बिना झुके ही अबुलहसन औरगजेबके सम्मुख जा खडा हुआ। सम्राट्ने उससे पूछा—"तुम कैसे हो ?" उसने उत्तर दिया—"मुझे न तो कोई हर्ष है .. और न विषाद ही। किन्तु उस रहस्यपूर्ण अज्ञेय पर्देके पीछेसे निकलकर जो कुछ भी मेरे सामने प्रत्यक्ष हुआ है, उसे देखकर मे आनन्दित हूँ।" (पत्र स० ९३ अ–ब)

फोर्ट सेण्ट जार्जकी अंग्रेजी डायरीमे १२ नवम्बर, १६८७के दिन जो सूचना लिखी गई, वह मनुचीके विवरणसे अधिक विश्वसनीय है। उसमे लिखा गया था—"फरासीसी, डच तथा अन्य राष्ट्रोसे ये समाचार मिले कि (सशोधित पंचागके अनुसार) गए महीनेकी दूसरी तारीखको आधी रातके समय विश्वासघातके द्वारा मुगलोने गोलकुण्डाका किला ले लिया। . जब गोलकुण्डाके सुलतानने मुगल (सम्राट्)के सम्मुख साष्टाग प्रणाम किया, तब मुगलने उसके दुराचारपूर्ण शासनकी विस्तृत आलोचना की और उसे बताया कि ब्राह्मणोको

गोलकुण्डाको जीतनेपर वहाँके किलेसे सोने-चाँदीके बर्तनों, रत्नो तथा जडाऊ सामानके अतिरिक्त सात करोड़ रुपये नकद भी मिले। जीते हुए राज्यकी आमदनी २ करोड ८७ लाख रुपयेकी थी।

प्रोत्साहन देकर तथा दूसरी ओर उनके धर्म और देशके प्रति अनादर प्रगट कर मुसलमानोको हतोत्साह कर अपने उत्तरदायित्वके प्रति उसने जो विश्वासघात किया था, उसीके फलस्वरूप इस न्यायोचित सकटको उसने स्वय ही अपने सिरपर ले लिया था। तब उसने आदेश दिया कि उसे (अबुलहसनको) बेडियाँ पहनाई जावें; ऐसा कहा जाता है कि ये बेडियाँ दूसरे ही दिन निकाल ली गई थी।"

अध्याय १४

शम्भूजीका राज्य-काल; १६८०–१६८९

१. उत्तराधिकारके लिए कशमकश; शम्भूजीका स्वयं राजा बन बैठना

शिवाजीकी मृत्यु होनेपर उनका नव-निर्मित मराठा राज्य आन्तरिक फूटके कारण बहुत ही छिन्न-भिन्न तथा बिलकुल ही अस्त-व्यस्त हो गया, और उसका भविष्य भी अत्यधिक अनिश्चित देख पडने लगा। शिवाजीमे ज्येष्ठ पुत्र शम्भूजीके व्यभिचारी उच्छृङ्खल जीवनके कारण उसका भावी राज्य-काल दु खपूर्ण ही देख पडा। उधर अपने धर्म तथा राज्यके घातक शत्रुके साथ उसके जा मिलनेके कारण सारे विचारवान् लोगोकी दृष्टिमे वह बहुत ही गिर गया था। शम्भूजीके सुधारके लिए विफल प्रयत्न करनेके बाद अपने जीवनके अन्तिम दिनोमे उसके सुविज्ञ पिताने अवश्य ही उसे पन्हालाके किलेमे नजरबन्द रक्खा था। अतएव शिवाजीकी दाह-क्रियाके बाद अन्नाजी दत्तोके सुझावपर रायगढमे उपस्थित मन्त्रियोने उनके दस वर्षीय छोटे लडके राजारामको मराठोका राजा घोषित कर दिया।

राजारामको राजा घोषित करते ही मराठोमे फूट पड गई। शम्भूजीके पक्षका समर्थन करनेवालोका तत्काल ही एक दल बन गया। शिवाजीके शासन-कालमे लूटके लिए लालायित रहनेवाली सेनाको इस नए राजाकी नियुक्तिके शुभ अवसरपर भी बहुत करके कुछ नही मिला था, एव अपनी विवशतापूर्ण परिस्थितिके कारण बेपरवाह होकर अपने पक्षको सबल बनानेके लिए जब शम्भूजी चाहे जो वादे करने लगा तब प्रलोभनमे

पड़कर सेना भी उसका साथ देनेको उत्सुक हो गई। उधर रायगढमे जो राज्याभिभावक-मण्डल नियुक्त किया गया उसमे सब ही ब्राह्मण थे, और मराठा सेनानायक राजमहलोके इन ब्राह्मण राजगुरुओके आदेश माननेको कदापि तैयार नही थे।

परिणाम यह हुआ कि शिवाजीकी मृत्युके एक सप्ताह बादसे ही प्रति दिन अधिकाधिक सैनिकोके दल शम्भूजीके पक्षमे होने लगे। तब तो रायगढमे स्थापित मराठा राज्य-शासन की अवहेलना कर शम्भूजीने पन्हालामे सारे राज्याधिकार खुल्लम-खुल्ला अपने हाथमे ले लिए।

अपने शासन-कालके प्रारम्भिक कार्योमे शम्भूजीने जो चातुर्य्य तथा समयोचित तत्परता दिखाई वह उसके-से चरित्रवाले व्यक्तिसे सर्वथा अनपेक्षित ही थी। पन्हालापर अपना पूर्णाधिपत्य स्थापित कर उसने दक्षिणी मराठा देश तथा दक्षिणी कोकणके अपने प्रदेशोपर अधिकार सुदृढ किया, और उसके बाद ही उत्तरमे स्थित राजधानीवाले अपने प्रतिद्वन्द्वीकी सेनाके साथ युद्ध छेड़नेका उसने साहस किया।

उधर २१ अप्रेलके दिन रायगढमे अन्नाजी दत्तोने राजारामको राज-सिहासनपर बैठा दिया, और उसके कुछ ही समय बाद पन्हालाके किलेपर अधिकार कर शम्भूजीको कैद करनेके उद्देश्यसे वह पेशवाको साथ लेकर पन्हालाके लिए रवाना हुआ। किन्तु शम्भूजीकी सफल कार्यवाहीका विवरण सुनकर वे हताश हो गए और शम्भूजीपर आक्रमण करनेसे हिच-किचाने लगे। किन्तु सेनाने दुरगी नीतिसे चलनेवाले इन स्वार्थी मन्त्रि-योको अधिक समय तक इस दुविधामे न रहने दिया। मई माहके अन्तमें सेनापति हम्बीरराव मोहितेने अन्नाजी और मोरोपन्तको कैद कर लिया और कैदीके ही रूपमें उन्हे शम्भूजीके पास पन्हाला ले गए। वहाँ एकत्रित सारे ही सेनापतियोने शम्भूजीको अपना राजा स्वीकार कर लिया।

हथकड़ी और बेड़ियोसे जकडकर अन्नाजीको कैदखानेमे डाल दिया। अवसर रहते ही पश्चात्ताप और क्षमा प्रार्थना कर पेशवाने शम्भूजीकी कृपा भी प्राप्त कर ली, किन्तु वह उसका विश्वासपात्र नही बन सका। तब यह नया राजा रायगढके लिए चल पडा, और वहाँ पहुंचते-पहुँचते उसकी सेना बढ़कर कोई २०,०००के लभभगकी हो गई। १८ जूनको राजधानीने भी उसके लिए अपने द्वार खोल दिए। राजारामने कोई भी विरोध नही किया, क्योंकि वैसा करना उसके लिए सम्भव भी नही था।

सिहासनच्युत किए जानेपर भी राजारामके साथ दयालुतापूर्ण व्यवहार किया गया, क्योकि वह तो अन्य षड्यन्त्रकारियोके हाथमे एक साधनमात्र था।

शम्भूजी २० जुलाईको प्रथम बार राजसिहासनपर बैठा, किन्तु उसका विधिवत् राज्याभिषेक तथा तत्सम्बन्धी सारे सस्कार बडे ही ठाट-बाटके साथ १६ जनवरी, १६८१को हुए। १८ मई, १६८२को शम्भूजीके एक पुत्र तथा उत्तराधिकारी उत्पन्न हुआ, पूरे तीस वर्ष बाद मराठा राजा बनकर उस पदका पुनरुत्थान करना इसीके भाग्यमे बदा था। वह था शिवाजी द्वितीय, जो राजा शाहूके नामसे लोक-प्रसिद्ध हुआ।

२. शम्भूजीका मुग़लोंसे फिर युद्ध आरम्भ करना

राज्यारोहणके बाद पर्याप्त काल तक नये राजाको बाहरी आक्रमणोका सामना करनेकी चिन्ता नही करनी पडी। उस समय राजपूतोके साथ युद्धके लिए मुगल साम्राज्यके सारे सैनिक साधन औरगजेबके ही सम्मुख राजस्थानमे एकत्र थे। अक्तूबर, १६८०के अन्तमे सदैवकी भाँति दशहरेके बाद मराठा सेनाएँ राज्यसे बाहर जानेके लिए चल पडी। पैदल और घुडसवारोके एक दलको सूरतकी ओर जाना था, तथा दूसरेको बुरहानपुरकी तरफ। तीसरा दल औरगाबादके पास दक्षिणके नये सूबेदार बहादुरखाँके (जो अब खान-इ-जहाँ बना दिया गया था) पडाव तक जा पहुँचा और उसे तब तक वही उलझाए रखा। किन्तु मराठोके इन आक्रमणोकी सूचना मिलते ही यह मुगल सेनानायक तत्परताके साथ २५ नवम्बरके लगभग खानदेशमे जा पहुँचा। तब तो मराठे उस प्रान्तको छोड़कर, कुछ ही समयके लिए क्यो न हो, वहाँसे चल दिए।

अतिशयोक्ति होते-होते शाहजादे अकबरके विद्रोहके समाचार औरगजेबके पतनकी गप्पमे परिणत होकर सर्वत्र फैलने लगे थे, एव उनसे भी प्रोत्साहित होकर जनवरी, १६८१के अन्तमे आक्रमणकारी पुन. वहाँ जा पहुँचे। हम्बीररावके नेतृत्वमे एक दलने धारनगाँव तथा उत्तरी खानदेशके अन्य नगरोको लूटा, और वहाँसे पूर्वकी ओर बढकर उनके उधर आनेका पता किसीको लगे उससे पहिले ही ३० जनवरीके दिन उन्होने बुरहानपुरके बहादुरपुरा नामक उपनगरपर हमला कर दिया और वहाँकी अनेको दूकानो और घरोसे लूटका अत्यधिक माल एकत्र कर वे ले गए। शहर-

पनाहके बाहर बसे हुए ऐसे ही सत्रह अन्य पुरोंको भी उन्होंने उसी तरह लूटा। आक्रमण इतना आकस्मिक हुआ था कि बचाव या विरोधके लिए कोई भी आयोजन नही हो सके।

बिना किसी भी बाधा या विरोधके मराठोने तीन दिन तक इन उपनगरोको भी जी भरकर लूटा, और उन्होंने प्रत्येक घरका फ़र्श तक खुदवा डाला, जिससे पिछली कई पीढियोका सचित माल भी उनके हाथ लगा। वहाँ पहुँचनेमे खानजहाँने बहुत ही सुस्ती की; और तब भी आक्रमणकारियोके लौटनेकी ठीक-ठीक राहका निश्चय करनेमे वह चूक गया, जिससे सारे कैदियो और लूटके मालको लेकर वे बिना रोक-टोकके निकल गए।

सदैवकी तरह अक्तूबर, १६८१में भी दशहराके बाद विभिन्न दिशाओ-मे विचरनेके लिए मराठे घुड़सवार चल पड़े। दिलेरख़ाँ द्वारा कैद की गई शम्भूजीकी पत्नी और बहन इस समय अहमदनगरके किलेमे बन्द थी, अतएव उन्हें छुडानेके लिए उत्सुक मराठोने अक्तूबरके अन्तमे उस क़िले-पर आक्रमण कर उसे लेनेका भी सचमुच प्रयत्न किया था। वेश बदलकर जिन मराठा सैनिकोंने किलेमे प्रवेश किया था, उनका पता लग जानेपर किलेदारने उन्हे मरवा डाला और दूसरोको एक युद्धके बाद मार भगाया।

३. शाहज़ादे अकबरका शम्भूजीकी शरणमें जाना

सत्यवादी राठौड़ वीर दुर्गादासके निर्देशनमे औरंगजेबके विद्रोही पुत्र शाहजादे मुहम्मद अकबरने ९ मई, १६८१को अकबरपुरके पास नर्मदा नदीको पार किया और तब उसने महाराष्ट्रकी राह ली। मुगल साम्रा-ज्यकी सीमाएँ पार करनेके बाद शम्भूजीके अनेको उच्चाधिकारियोंने उसका स्वागत किया और १ जूनके दिन उसे ससम्मान पाली ले गए।

शाहजादेके साथ ४०० घुड़सवार, पैदल सैनिकोका एक छोटा-सा दल जिसमे कुछ मुसलमानोके अतिरिक्त अधिकाँश राजपूत ही थे, और बारबरदारीके लिए कोई ५० ऊँट थे।

४. शम्भूजीके विरुद्ध षड्यन्त्र; कविकलशका शम्भूजीका स्नेह-भाजन बनना

१८ जून, १६८०को रायगढपर अधिकार कर लेनेके बाद शम्भूजीने अपने प्रमुख शत्रुओंको उनके नेता अन्नाजी दत्तो और पेशवा मोरेश्वर

त्रिम्बकके पुत्र नीलकण्ठ मोरेश्वर पिगले समेत कैद कर लिया। अक्तूबरके प्रारम्भमे मोरेश्वर मर गया, तब शम्भूजीने उसके पुत्र नीलकण्ठको छोड दिया और अपने प्रधान मन्त्रीका रिक्त पद उसे दिया। प्रमुख विद्रोही अन्नाजी दत्तोको छोडकर शम्भूजीने उसे मजमुआदारके पदपर नियुक्त किया।

किन्तु अगस्त, १६८१में सोयराबाई, हीराजी फरजन्द और कई दूसरे प्रमुख व्यक्तियोके साथ मिलकर अन्नाजी दत्तोने शम्भूजीकी हत्या कर शाहजादे अकबरके सरक्षणमे राजारामको गद्दीपर बैठानेके लिए एक षड्यन्त्र रचा। उनका इरादा था कि भोजनमे विप मिलाकर शम्भूजीको मार डाले।

परन्तु इस षड्यन्त्रका भण्डा-फोड़ हो गया और शम्भूजीने तत्काल ही विद्रोहियोको पकडवाकर कैदखानेमे डाल दिया और उन्हे भयकर यातनाएँ दी गई। अन्नाजी दत्तो, उसका भाई सोमजी, हीराजी फरजन्द, बालाजी आवजी प्रभु, महादेव अनन्त और तीन अन्य व्यक्तियोको बेडियाँ पड़े हुए ही हाथियोके पैरोसे कुचलवाकर मरवा डाला। दूसरे बीस अपराधियोको बादमे मृत्यु-दण्ड दिया गया। राजारामकी माँ, सोयराबाईपर यह अभियोग लगाया गया कि अपने पतिको विष देकर उसने (डेढ वर्ष पहिले) उनकी हत्या की थी, और अब शम्भूजीने सोयराबाईको विष देकर या भूखो मारनेका कष्टपूर्ण मृत्यु-दण्ड दिया। ये सारी घटनाएँ अक्तूबर, १६८१मे घटी। तब शम्भूजी सोयराबाईके पिताके शिरके घरानेका उत्पीडन करने लगा, उस घरानेके कई व्यक्तिको उसने मरवा डाला और बाकी रहे भागकर मुगलोसे जा मिले।

भोसले घरानेका इलाहाबादमे रहनेवाला वश-परम्परागत पण्डा, जो कनौजिया ब्राह्मण था, शम्भूजीके भव्य राज्याभिषेकसे कुछ ही पहिले रायगढ आ पहुँचा। बहुत ही जल्दी उसने शम्भूजीपर अपना प्रभाव जमा लिया, और उसका परम विश्वासपात्र बनकर कविकलशकी (कवियोमे श्रेष्ठ) उपाधिसे भूषित हो सारे राज्य-शासनका भी एकमात्र कर्ता-धर्ता वही बन गया। उधर शम्भूजी दिनो-दिन अधिकाधिक निरुद्यमी होने लगा और आँखे बन्दकर अपने मन्त्री कविकलशकी सलाह माननेके अतिरिक्त राज्य-कार्यकी ओर यत्किञ्चित् भी ध्यान नही देता था। यदाकदा उमड पडनेवाले अस्थायी सामरिक जोशके अतिरिक्त शम्भूजीका सारा समय सुरा और सुन्दरियोकी उपासनामे ही बीतता था।

एक अज्ञात गाँवमें शरण लिए शाहजादा अकबर वहाँ भी अपने सीमित साधनों द्वारा जहाँ तक भी सम्भव था एक समाट्का-सा दिखावा बनाए रखता था। नौकरी-पेशा घुडसवार निरन्तर उसकी सेनामे भरती होते जा रहे थे और अगस्त, १६८१मे उसके पास लगभग २,००० घुड़-सवार एकत्र हो गए थे। अपनी सारी सेना तथा अपने सारे सरदार और सेवकोको साथ लेकर १३ नवम्बर, १६८१के दिन शम्भूजीने पादि-शाहपुरमे (पालीमे) शाहजादे अकबरसे भेट की। तब अकबरके साथ दुर्गादास भी था। किन्तु मुगल साम्राज्यपर आक्रमण कर वहाँ सफलता प्राप्त करनेका अकबरका एकमात्र अवसर अब तक निकल चुका था। १३ नवम्बर १६८१को औरगजेब स्वय बुरहानपुर आ पहुँचा था। यो आधा नवम्बर महीना बीतते-बीतते साम्राज्यके सारे सैनिक-साधन दक्षिणमे ही औरगजेब स्वयं, उसके तीनों शाहजादो तथा सर्वश्रेष्ठ सेनापतियोके नेतृ-त्वमे एकत्र हो गए थे। प्रारम्भमे तो औरगजेबने भी शम्भूजी तथा अकबरके प्रति सजग ताकते रहनेकी नीतिको ही अपना कर सतोष कर लिया था।

५. औरंगजेबका युद्ध-कौशल सम्बन्धी स्व-सेना-विन्यास; १६८२

अपनी ही देख-रेखमे जजीरापर प्रचण्ड आक्रमण करनेमे शम्भूजी जनवरी (१६८२) महीने भर व्यस्त रहा। औरगजेबको यह सुअवसर मिल गया। जुन्नरसे चलकर सैयद हसनअली उत्तर कोंकणमे उतर गया और ३० जनवरी, १६८२के लगभग उसने कल्याणपर अधिकार कर लिया; किन्तु मई माहमें उस प्रान्तको छोड़कर वह वापस लौट गया।

२२ मार्च, १६८२को औरंगजेब औरंगाबाद पहुँचा, तब उसने आजम-शाह और दिलेरखाँको अहमदनगर भेजा, तथा दलपतरावके साथ शहाबुद्दीनखाँने नासिकसे ७ मील उत्तरमे स्थित रामसेज किलेका घेरा डाला। किन्तु एक चतुर किलेदारके नेतृत्वमें वहाँके वीर मराठा सैनिकोने डटकर क़िलेका बचाव किया, जिससे मुगलोकी वहाँ एक न चली। खान-जहाँको भी कोई सफलता न मिली, तब अक्तूबर, १६८२मे यह घेरा उठा लिया गया।

अब औरगजेबने सब ओरसे शम्भूजीपर चढ़ाई करनेका निश्चय किया। १४ जूनको उसने शाहजादे आजमको बीजापुरकी ओर भेजा कि

शाही सेनाके डरसे वह राज्य मराठे दलोको कोई भी सहायता या आश्रय न दे। सितम्बर माहमे उसे एक स्वाधीन सेनापति बनाकर रणमस्तखाँ-की उन्नति की गई और उसे कोंकणपर चढाई करनेका आदेश दिया गया। कोकणमे घुसकर उसने नवम्बर, १६८२ ई०के पिछले दिनोमे कल्याणपर अधिकार कर लिया। रूपाजी भोसले और पेशवाने रणमस्तखाँका सामना किया, कई युद्ध भी हुए जिनमे अनेको मारे गए, परन्तु उन्हे कोई सफलता न मिली।

उधर औरगाबादसे २५ मील दक्षिणमे गोदावरीके तीरपर रामद्रू नामक स्थानमे खान इ-जहाँ शाहजादेकी सेनामे आ मिला और तब पूर्वमे नान्देर तथा वहाँसे बीदर तक बढा चला गया। तदनन्तर उसने चान्दा और गोलकुण्डाकी सीमाओ तक आक्रमणकारियोका पीछा किया।

जून, १६८२मे आदिलशाही राज्यके प्रदेशपर आक्रमणकर शाहजादे आजमने धरूरपर अधिकार कर लिया। तब अपनी पत्नी जहाँजेब बानूको, जो साधारणतया जानी बेगम कहलाती थी, राव अनिरुद्धसिह हाडा और उसके राजपूतोके सरक्षणमे अपने ही पडावमें पीछे छोडकर शाहजादेने शम्भूजीके राज्यमे प्रवेश किया। इसपर बहुत बडी सख्यावाले एक मराठा दलने इस बेगमके पडावको आ घेरा। तब दाराशिकोहकी यह वीर पुत्री हाथीपर कसे पडदेवाले अपने हौदेपर बैठकर शत्रुओका सामना करनेके लिए आगे बढी।

अनिरुद्धसिहको बुलाकर उसने कहा—"राजपूतोके लिए चगताइयो-की मान-प्रतिष्ठा अपनी ही है[1]। मै तुम्हे अपना बेटा बनाती हूँ। अपनी इस थोडी-सी ही सेनासे यदि ईश्वरने हमे विजय प्रदान कर दी तो बहुत ही अच्छा। नही तो, तुम भरोसा रखना कि (शत्रुके हाथो कैद न होनेके उद्देश्यसे ही) मै अपना काम तमाम कर डालूँगी।" तब एक घमासान युद्ध हुआ। घायल हो जानेपर भी अन्तमे अनिरुद्धसिह ही विजयी हुआ। नीराके तीरपर कुछ समय बितानेके बाद जून, १६८३मे आजम वापस शाही दरबारमे बुला लिया गया।

६. मुग़ल प्रयत्नोंकी असफलता : सम्राट्की व्यग्रता तथा आशंकाएँ

२३ मार्च, १६८३को रुहेल्लाखाँने कल्याण खाली कर दिया। वहाँसे

१. फारसी मे—"शर्म-इ-चगताइया वा राजपूतिया एकस्त"।

वापस लौटते समय रूपाजी भोंसलेके नेतृत्वमें एक मराठा सेनाने उसकी राह रोकी और कल्याणसे सात मील उत्तर-पूर्वमें तितवालके पास पीछेसे मुगलोपर आक्रमण किया।

इस प्रकार दक्षिण पहुँचनेके बाद नवम्बर, १६८१से अप्रेल, १६८३ तकके एक वर्षसे भी अधिक समयमें उसके अत्यधिक साधन होते हुए भी औरगजेबको कोई सफलता नही मिली। सच बात तो यह थी कि इस समय उसका जीवन घरेलू तथा मानसिक उलझनोवाले एक कठिन संकट-कालमेसे बीत रहा था। अपने कुटुम्बियोंमे उसका रहा-सहा विश्वास भी पूर्णतया डॉवाडोल हो चुका था। किसपर वह विश्वास करे और कहाँ रहना उसके लिए निरापद होगा, यह कुछ भी उसे सूझता नही था। अतएव कुछ काल तक उसकी नीतिमें बहुत ही अधिक उलट-पुलट होती रही, सशक होनेके कारण वह पूरी-पूरी सावधानी बरतता था, जिससे ऊपरी तौरपर देखनेमे उसकी नीति अस्थिर और परस्पर-विरोधी ही जान पड़ती थी।

७. मराठोंकी जल-सेना और सिद्दियोंके साथ उसके युद्ध; १६८०–१६८२

अँग्रेजोके साथ भी मराठोंका स्थायी मेल नही रह सकता था, क्योकि सिद्दियोका जहाजी बेडा तथा यदा-कदा वहाँ आनेवाले मुगलोके सूरत-वाले बेड़ेके जहाज भी प्रति वर्ष मईसे लेकर अक्तूबर तकके तूफानी बरसातवाले महीने बम्बई बन्दरगाहके सुरक्षापूर्ण सरक्षणमे ही बिताते थे। सिद्दियोको अपने बन्दरगाहसे निकाल देनेके लिए शम्भूजी अग्रेजोको धमकाता था, और उनके शम्भूजीके आदेशोंका पालन करनेकी हालतमे उनके साथ मैत्री करनेका भी प्रस्ताव वह यदा-कदा करता था। किन्तु अनेको उपायो द्वारा अग्रेजोंने दोनोके ही साथ मेल बनाए रखा।

बरसातके दिनोमें जमकर युद्ध करनेका मराठोके जहाजोंको कभी साहस नही हुआ। दोनों दलोके विरोधी जलवासोमे यदा-कदा झड़पे हो जाती थी, किन्तु उनमे सिद्दियोका ही पलड़ा भारी रहता था और समुद्रके उन भागोमे मराठोके व्यापारी जहाजोका आना-जाना भी प्रायः बन्द रहता था।

७ दिसम्बर, १६८१के दिन पनवेलसे दस मील दक्षिणमें पतालगंगा-पर स्थित आप्ताके नगरको सिद्दियोंने जला दिया। इसपर उत्तेजित हो १८ दिसम्बरको शम्भूजी दण्डा आए और पूरे तीस दिन तक निरन्तर जंजीरापर गोलाबारी की। किन्तु उत्तरी कोंकणपर चढ़ाई कर जब मुग़लो-ने ३० जनवरीके लगभग कल्याणपर अधिकार कर लिया, तब शम्भूजीको विवश होकर वापस रायगढको लौटना पड़ा।

जुलाई, १६८२में मराठोंने जंजीराके टापूपर अपने पाँव जमानेके लिए प्रयत्न किए किन्तु वे विफल ही रहे। ४ अक्तूबरके दिन कोलावासे ८ मील दक्षिणमें कलगाँवके सामने मराठोंके सेवक सिद्दी मिश्रीने सिद्दी कासिमके जहाज़ी बेड़ेको युद्धके लिए ललकारा। किन्तु युद्धमें सिद्दी मिश्री-की हार हुई, बुरी तरहसे घायल हो वह क़ैद हो गया और उसके सात जहाज़ोंके साथ उसे भी बम्बई ले गए।

८. पुर्तगालियोंके साथ शम्भूजीका युद्ध; १६८३

अब शम्भूजीका क्रोध पुर्तगालियोपर उतरा। कारवारके दक्षिणमे स्थित अजदीवके टापूपर अधिकार कर तथा अप्रेल, १६८२मे वहाँ क़िले-बन्दी कर उन्होने शम्भूजीको उत्तेजित किया था। उधर कल्याणके पर-गनेको उजाड़ रहे मुगल सेनापति रणमस्तख़ाँ तथा उसकी सेनाके लिए रसद लेकर आनेवाले मुगल जहाजोको दिसम्बर, १६८२में पुर्तगालियोंके वाइसरायने अपने थानाके किलेके नीचे होकर कल्याण तककी खाडीमे जाने दिया था। पुनः मराठोंके उत्तरी कोकणके ज़िलोपर आक्रमण करनेके लिए भी उसने पुर्तगालियोके दमनवाले उत्तरी जिलेमेसे होकर मुगल सेनाको बेरोक-टोक गुजरने दिया था। ऐसे कार्यों द्वारा अपनी तटस्थताको भग करनेपर ही अब शम्भूजीने पुर्तगालियोंसे बदला लेनेका दृढ़ निश्चय किया। ५ अप्रेल, १६८३को उसने उनपर अपना आक्रमण प्रारम्भ कर दिया। उसने चढ़ाई कर तारापुर तथा दमनसे लेकर बसीन तकके अन्य सारे ही नगरोको जला दिया। ३१ जुलाईको पेशवाने चौलका घेरा डाला, किन्तु कई महीनोंके घेरेके बाद भी मराठे चौलको नही जीत सके।

मराठोका ध्यान बँटानेके उद्देश्यसे गोआके वाइसरायने फोण्डाके किलेका घेरा डालनेका आयोजन किया और २२ अक्तूबरको वहाँ पहुँच गया। उस किलेकी भीतरी दीवालोमें पड़ी हुई दरारोमे घुसनेका कुछ

भी प्रयत्न कर सकनेके पहिले ही ३० अक्तूबरको उस किलेकी सहायताके लिए शम्भूजीके सेनापतित्वमें एक बडी मराठा सेना वहाँ आ पहुँची। तब तो पुर्तगाली सेना घेरा उठाकर लौट पड़ी और १ नवम्बरके दिन वह दुरवत्ता पहुँची। दुरवत्तासे आगे लौटते समय पुर्तगालियोको अनेकों विकट आपत्तियोका सामना करना पड़ा। बड़े ही दृढ निश्चयके साथ मराठा घुडसवारोने पुर्तगाली पैदल सैनिकोपर आक्रमण किया, तब तो घबड़ाकर पुर्तगाली सेना बिखर गई और वहाँसे भाग खड़ी हुई।

९. शम्भूजीका गोआपर आक्रमण करना

फोण्डासे चल कर शम्भूजी गोआ नगरकी ओर बढे। १४ नवम्बरकी रातके समय गोआसे दो मील उत्तर-पूर्वमें पहाड़की चोटीपर बने हुए किलेकी दीवाले फाँदकर अन्दर जा पहुँचे। शीघ्र ही उनकी सहायतार्थ और भी चार हजार सैनिक वहाँ आ धमके।

दूसरे दिन प्रातःकालमे ७ बजे गोआका वाइसराय सेण्टो इस्टेवाओके टापूपर जा उतरा और मराठे पैदल सैनिकोपर बड़े जोरोसे आक्रमण किया, किन्तु उसे हारकर ही वापस लौटना पडा। उसी दिन तीसरे पहर नावमे बैठकर वह उस टापूसे चल दिया। किन्तु दूसरे दिन १६ नवम्बर-को मराठे भी बड़ी ही शीघ्रतासे उस टापूको छोडकर वहाँसे चल दिए।

पहली दिसम्बरको एक हजार मराठा घुड़सवार तथा तीन हजार पैदल सालसिट और बार्डेसके परगनोमे पहुँचे और कोई एक माह तक वहाँ यत्र-तत्र घूमकर लूट-मार की। युद्धके उत्तरी क्षेत्र, दमनके जिलेमे भी पुर्तगालियोकी बुरी तरह पराजय हुई और २२ दिसम्बरके दिन बम्बई-से दस मील दक्षिण-पूर्वमे स्थित कारिजाके टापूपर शम्भूजीने अधिकार कर लिया। किन्तु इसके कुछ ही समय बाद ५ जनवरी, १६८४को शम्भू-जीके राज्यके महत्त्वपूर्ण नगर बिचोलिमपर शाहआलमने अधिकार कर लिया, और उसके तीन दिन बाद मुगलोंका एक जबरदस्त जहाजी बेड़ा गोआके बन्दरगाहमे पहुँचा। उधर २३ दिसम्बरको ही शम्भूजी रायगढ़-को भाग गए थे। पुर्तगालियोसे सन्धिकी वातचीत करनेके लिए शम्भूजीने अकबरके साथ कविकलशको भी वहाँ पीछे छोड़ दिया था। मुगलोंके गोआ आ पहुँचनेपर उनसे बचनेके लिए कविकलश और अकबरने पहिले गोआसे २७ मील पूर्वमे भीमगढ़के जगल तथा बादमे फोण्डामे आश्रय

लिया। अन्तमे पुर्तगाली राजदूत मेन्युअल एस० द अलबुकर्कके साथ जीते हुए प्रदेशो तथा लूटके मालको परस्पर लौटाने तथा भविष्यमे एक दूसरेके तटस्थताकी नीति बरतनेकी शर्तोपर मराठोने २० जनवरी, १६८४के लगभग सन्धि कर ली। किन्तु यह सन्धि तो एक सारहीन क्षणिक समझौता ही था। पुर्तगालियोंके साथ थोडा बहुत विरोध तो शम्भूजीके शासन-कालके अन्त तक बराबर चलता ही रहा।

१०. मराठोंके राजदरबारमें शाहज़ादे अकबरके आयोजन और उसकी निराशाएँ

सूरतके अँग्रेज व्यापारियोने दिसम्बर, १६८३मे ठीक ही विवेचन किया था कि लूट-मारके लिए ही यत्र-तत्र छोटे आक्रमण करके या सिद्दियो और पुर्तगालियोके साथ लाभविहीन युद्धोमे उलझकर शम्भूजी अपनी सारी शक्ति यो ही क्षीण कर रहे थे, और साथ ही अनेको मामलोमे उलझे रहनेके कारण कोई भी काम सफलतापूर्वक पूरा करना उसके लिए अत्यधिक कठिन हो रहा था।

शाहजादे अकबरको एकमात्र चिन्ता इसी बातकी थी कि किस प्रकार वह दिल्लीके राजसिंहासनको प्राप्त कर ले। अपने आयोजनके एक साधनके रूपमे ही वह शम्भूजीका महत्त्व ऑकता था। महाराष्ट्रमे बीतनेवाला उसका प्रत्येक दिन उसकी आशाओको उतना ही आगे टालता था, तथा उसके जीवनका वह एक और दिन इन अनभ्यस्त असुविधापूर्ण परिस्थितियोमे ही बीतता था। महाराष्ट्र छोड़ देनेपर ही वह पुन सभ्य ससारको लौट सकता था।

हृदयको सतप्त करनेवाली प्रतीक्षा, आशाओके निरन्तर टलते रहने तथा वचन पूरा करनेमे टालमटोलका पूरे अठारह महीनो तक कटु अनुभव करनेके बाद ही अकबरको शम्भूजीके चरित्र तथा उसकी नीतिका ठीक-ठीक पता लगा, और उससे किसी भी प्रकारकी सहायता पानेकी उसे कोई आशा न रही। अतएव उसने महाराष्ट्रसे चल देनेका ही निश्चय किया। अपने राठौड सैनिकोको लेकर वह दिसम्बर, १६८२मे अपने आश्रय-स्थान पालीसे चल पडा और सावन्तवाडीमे बॉदा नामक स्थानमे जा ठहरा। यद्यपि यह बॉदा मराठा राज्यके अन्तर्गत ही था किन्तु गोआ वहॉसे २५ मील उत्तरमे रह जाता था।

सितम्बर माहमें अकबर बाँदासे चलकर शम्भूजीके ही राज्यके अन्तर्गत बिचोलिम नामक नगरमे पहुँचा, जहाँसे गोआ केवल १० मीलकी ही दूरीपर था। शम्भूजीसे पूर्णतया उकताकर भ्रममे रहनेवाले उस बेचारे शाहजादेने अन्तमे ८ नवम्बरके लगभग ईरान जानेकी इच्छासे विंगुर्लामे एक जहाज मोल लिया। किन्तु कविकलश बड़ी ही शीघ्रताके साथ राजापुरसे वहाँ पहुँचा और दुर्गादास राठौड़को लेकर उसने जहाजपर अकबरसे भेट की और भारतमे ही शम्भूजीकी ओरसे उसे सैनिक सहायता दिलवानेका वादाकर वापस थलपर आनेके लिए अकबरको फुसला लिया। उसके बाद पुर्तगालियोके साथ मराठोंका युद्ध छिड़ गया जिसमें अकबर मध्यस्थ बना था।

फरवरी, १६८४के बाद अकबर पूरे एक वर्ष तक रत्नागिरी जिलेमे साखरपे तथा मलकापुरमें ठहरा रहा और भावी कार्यवाहीकी योजना बनानेके लिए उससे मिलनेके हेतु बारम्बार कविकलशको बुलाता रहा।

११. शम्भूजीके विरुद्ध विद्रोह तथा जुलाई, १६८३के बादकी मुगलोंकी चढ़ाइयाँ

जुलाई, १६८३के बाद दक्षिणके इन युद्धोंमे मुगलोकी सफलताओकी सम्भावनाएँ निरन्तर बढने लगी। शम्भूजीके साथ अकबरका बेबनाव हो गया था, तथा अब अकबर भारतसे चल देनेकी सोच रहा था। मराठे पुर्तगालियोके साथ एक दीर्घकालीन युद्धमे उलझ रहे थे। इन सारी परिस्थितियोसे मुगलोने लाभ उठाया। औरगजेबकी अनिश्चितता तथा सावधानीपूर्ण निष्क्रियताका भी अन्त हो गया, तथा अनेको दिशाओंमें एक साथ ही जोरोसे मुगलोंके आक्रमण प्रारम्भ हुए।

शम्भूजीके व्यभिचारों, अस्थिर चित्तवृत्ति तथा क्रूरतापूर्ण अत्याचारोके कारण उसके अधिकारियों तथा सामन्तोमे सर्वत्र असन्तोष फैल गया था। औरगजेबकी रिश्वतोने असन्तोषकी इस आगमें घीका काम किया और लोग मराठोकी नौकरी छोड-छोडकर मुगलोके साथ जा मिलने लगे। २६ जुलाई १९८३को शिवाजीका मुंशी काजी हैदर औरगजेबके पास जा पहुँचा और उसे खानकी उपाधि तथा दो हजारी मनसब मिला, सन् १७०६मे वही सारे साम्राज्यका काजी नियुक्त हुआ था।

कुडालके शासक तथा शम्भूजीके एक सामन्त खेम सामन्तने शम्भू-

जीके विरुद्ध विद्रोह किया और पुर्तगालियोंकी सहायता पाकर फरवरी, १६८५मे गोआसे उत्तरमे सावन्तवाडी तथा मराठा राज्यके अन्य अनेकों नगरोमे लूट-मार की और उन्हे जला भी डाला। कुछ ही दिनोमें समुद्र तटके इस सारे प्रदेशमे शम्भूजीके विरुद्ध विद्रोह हो गया।

वर्षा ऋतुका अन्त हो जानेपर सितम्बर आधा वीतते-वीतते मुगलोंके आक्रमण प्रारम्भ हो गए। रामघाटकी घाटीमे होकर सावन्तवाडी तथा दक्षिणी कोकणमे जा घुसनेके लिए १५ सितम्वरके कुछ दिन वाद शाह-आलम एक बहुत बडी सेनाके साथ औरगावादसे रवाना हुआ। उधर अक्तूवरमे शहाबुद्दीनको पूना भेजा, जहाँसे २७ दिसम्बरको घाटके पार कोलाबा जिलेमे निजामपुरपर उसने धावा वोल दिया।

१२. दक्षिणी कोंकणपर शाहआलमका आक्रमण

सितम्बर, १६८३मे औरंगाबादसे सीधा दक्षिण चलकर बीजापुर राज्यमे होता हुआ शाहआलम बेलगाँवके जिलेमे पहुँचा और वहाँ शाह-पुरके किले, बेलगाँवसे १८ मील दक्षिणपूर्वमें सापगाँव, अन्य कई बडे नगरो तथा उस प्रदेशके कुछ और किलोपर अधिकार कर लिया, जहाँ उसे लूटमे बहुतसा माल हाथ लगा। तब वह सीधा पश्चिमकी ओर पलट गया, और बेलगाँवसे २६ मील पश्चिममे तथा गोआसे सीधा ३० मील उत्तर-पूर्वमे रामघाटकी घाटीको पार कर वह सावन्तवाड़ीके मैदानो-मे उतर पडा। ५ जनवरी, १६८४को शाहआलम बिचोलिम पहुँचा।

गोआके पास जा पहुँचनेपर शम्भूजीकी लूटसे उन्हे बचानेके शुल्कके रूपमे शाहआलमने पुर्तगालियोसे बहुतसा द्रव्य माँगा। गोआपर छल द्वारा अधिकार कर लेनेका भी उसने आयोजन किया।

गोआके पाससे शाहआलम उत्तरमे मालवण गया और वहाँ मराठा राजाके सुप्रसिद्ध श्वेत मन्दिर तथा अन्य देवघरोको बारूदसे उडवा दिया। इस चढाईके समय उसने कुडाल, और सावन्तवाडीमे बाँदाको जलाया तथा विगुर्लाको लूटा। तब पुन. दक्षिणकी ओर पलटकर वह गोआसे उत्तरमे चापोरा नदीके तटपर पहुँचा। उसका इरादा था कि या तो रसदका सामान लानेवाले मुगल जहाजोंके साथ लगाव स्थापित करे, या पुर्तगालियोकी राजधानीपर आक्रमण करनेका दूसरी बार प्रयत्न करे।

अकालके कारण फरवरी माहमें मुगल सेना आगे नही बढ़ सकी। पुर्तगाली सशक हो उठे थे, एव उन्होने रसद लेकर आए हुए मुगल बेडेको गोआके पास होकर खाड़ीमे ऊपर शाहजादेके पड़ाव तक नही जाने दिया। पड़ावके आसपास कही भी धान्य प्राप्य नही था, उधर गोआमे भी अकाल पड़ा हुआ था। अतएव हारकर शाहजादा २० फरवरीके दिन वापस घाटको लौट गया।

किन्तु उसकी कठिनाइयाँ तो बढती ही जा रही थी। रामघाटकी सकड़ी घाटीमे इतने जोरोसे महामारी फैली कि एक सप्ताहमे ही शाहआलमकी सेनाके कोई एक तिहाई सैनिक मर गए, जो कोई भी बीमार हुआ वह किसी भी प्रकार नही बच सका। हाथी, घोड़े तथा ऊँट तो और भी अधिक सख्यामे मरे और उनकी लाशोसे वहाँका सारा वायुमण्डल ही अत्यधिक दूषित हो गया। यातायातके साधन न रह जानेके कारण अब दूसरी बार अकालका सामना करना पडा। गरमी और प्यासके मारे ही अनेको आदमी वहाँ मर गए।

तब उस घाटीको पार कर शाहआलम कनाड़ाके मैदानोंमें उतरा। कुछ गाँवोको जलाने तथा कुछ नगरोको लूटनेके अतिरिक्त कोई महत्त्वपूर्ण कार्य किए बिना ही उसकी सेनाके बचे-खुचे सैनिक दयनीय दशामे १८ मई, १६८४को अहमदनगर पहुँचे।

१३. सन् १६८३ ई०के बादकी शम्भूजीकी कार्यवाही

सन् १६८३ ई०से १६८५ ई० तककी छोटी-छोटी चढाइयोंका यहाँ विवरण करना आवश्यक नही। सन् १६८४मे पहिले छ महीनोंमे मुगलोंने शम्भूजीपर चढाई की थी वह बहुत ही सफल रही। अनेको मराठा सेनाओंकी बारम्बार हार हुई और शम्भूजीके राज्यका बहुत-सा भाग जीतकर मुगल साम्राज्यमे मिला लिया गया। किन्तु बहादुरगढके किलेमे सुरक्षित शम्भूजीकी दो पत्नियो, एक पुत्री तथा तीन दासियोको जुलाई माहमें पकडकर मुगलोने अपनी सबसे अधिक उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। दिलेरखाँ द्वारा कैद की गई शम्भूजीकी एक पत्नी और एक बहिन पहिले ही अहमदनगरके किलेमे बन्द पडी थी।

इस समय शम्भूजी कहाँ था? सन् १६८३के अन्तमे गोआपर किए गए आक्रमणकी विफलताके बाद शम्भूजीने स्वयको विलासवासनाके

सागरमे पूर्णतया डुबो दिया। युद्ध-क्षेत्रमें सेना-संचालन करने तथा अपने पूज्य पिता द्वारा उपस्थित वीरता और अथक परिश्रमके अनुकरणीय आदर्शका अनुसरण न कर, अब शम्भूजीका सारा समय सुरा, सुन्दरी, सगीत तथा मनोरजनमे ही बीतता था।

जनवरी, १६८५ आधा वीतते-वीतते सहावुद्दीनने भोरघाटकी राह कोकणपर आक्रमण किया और रायगढके तले पचाड गाँवको जलाया, और 'अनेको काफिर राजाओको मारा, उनकी धन-सम्पत्तिको लूटा, अनेकोको कैद किया और यो उसने एक वडी विजय प्राप्त की।' उसकी इस महत्त्वपूर्ण सफलताके पुरस्कारस्वरूप उसे खान वहादुर फिरोजजगकी उपाधि प्रदान की गई।

अनेको मराठा सेनानायकोको फिरोजजंगने फुसलाया, जिससे वे शम्भूजीका साथ छोडकर शाही पक्षमे हो गए। दिसम्बरके प्रारम्भमे अब्दुल कादिरने कोण्डानाके किलेपर अधिकार कर लिया।

१४. मुगलोंका बीजापुर राज्यके परगने जीतना

१२ सितम्बर, १६८६को बीजापुर किलेके आत्म-समर्पणके बाद अपने इस नये जीते हुए प्रदेशके विभिन्न भागोके किलोपर अपना अधिकार करने, वहॉका माली बन्दोबस्त करने तथा वहाँ शान्ति बनाए रखनेके लिए औरगजेबने अपने सेनापतियोको वहॉके विभिन्न भागोमे भेजा। किन्तु अगले वर्ष फरवरीसे लेकर सितम्बर तक सारी मुगल सेना गोलकुण्डाके घेरेके लिए ही वहॉ एकत्रित रही और २१ सितम्बर १६८७के दिन गोल-कुण्डाके किलेके पतनके बाद ही शाही सेनानायकोको अवकाश मिला कि पुराने आदिलशाही राज्यके परगनोमे जाकर वहाँ वे आवश्यक कार्यवाही प्रारम्भ कर सके।

कृष्णा और भीमा नदीके बीचमें स्थित प्रदेशपर राज्य करनेवाले बेरड़ोकी राजधानी सागरमे थी। मुगलोने सबसे पहले इन्ही बेरडोपर चढाई की। एक ही वर्षमे बीजापुर और गोलकुण्डाके दोनो किलोके आत्म-समर्पण कर देनेके कारण मुगल सेनाका आतक तब बहुत फैल गया था, एव बेरडोके शासक पाम नायकने २७ नवम्बर, १६८७को अपना किला सौपकर मुगलोकी अधीनता स्वीकार कर ली, और २७ दिसम्बर, १६८७को वह स्वय औरंगज़ेबकी सेवामे उपस्थित हुआ। किन्तु उसके

पाँच ही दिन बाद पाम नायक एकाएक मर गया; तब उसका राज्य मुगल साम्राज्यमे मिला लिया गया।

इन नये जीते हुए दक्षिणी राज्योके पूर्व और दक्षिणके प्रदेशोंकी ओर मुगल सेनानायकोने अब ध्यान दिया। सिद्दी मसूद स्वतन्त्र बनकर तुगभद्रासे दक्षिणमें स्थित अडोनीके किलेमे बैठा कर्नूलके जिलेपर शासन कर रहा था, एव फ़िरोज़जगने उसपर चढाई की, तब बाध्य होकर सिद्दी मसूदने ६ अगस्त, १६८८के दिन आत्म-समर्पण किया। अडोनीके इस किलेपर मुगलोने अधिकार कर लिया और उस किलेका नाम पलट-कर इन्तियाजगढ रख दिया। सिद्दी मसूदको सात हजारीका मुगल मन-सब दिया गया।

उधर घेरा डालनेके बाद मार्च, १६८८के लगभग शाहजादे आजमने बेलगाँवका सुदृढ किला जीत लिया। अन्य दिशाओमे भी शाही सेनाने अनेको किलोपर अधिकार कर लिया।

२५ जनवरी, १६८८को हैदराबादसे रवाना होकर १५ मार्चको और-गजेब बीजापुर पहुँचा। किन्तु नवम्बर, १६८८के प्रारम्भमे बीजापुर नगर तथा शाही पडावमे एक भयंकर महामारी फैल गई। "पहिले तो काँख और जघाके ऊपरी सिरेपर गाँठे उठती थी, तब ज्वर बहुत बढ जाता और अन्तमे एकाएक बेहोशी छा जाती। इलाज या दवाईका कुछ भी असर नही होता था। कुछ बीमार तो दो दिनसे अधिक भी नही निकाल पाते थे। इस बीमारीसे मरनेवालोंमे विशेषरूपेण उल्लेखनीय थे—औरगजेबकी बूढ़ी बेगम औरंगाबादी महल, महाराजा जसवन्तसिहका बेटा कहा जानेवाला तेरह-वर्षीय मुहम्मदी राज, सदर फाजिलखाँ, तथा कई अन्य अमीर। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्मोके मध्यम वर्गवालों या दरिद्रियोमेसे जो मरे उनकी गणना नही की जा सकती, किन्तु अनुमान यह था कि उनकी सख्या एक लाखसे किसी भी प्रकार कम न होगी। फिरोजजगकी आँखे भी इसी बीमारीमें चली गईं।

किन्तु अपने पूर्व निश्चयके अनुसार औरंगजेब १४ दिसम्बर, १६८८-को बीजापुरसे ससैन्य चल पड़ा, और उसके एक सप्ताह बाद महामारीका जोर कुछ घटा। बीजापुरसे ८५ मील उत्तरकी ओर चलकर औरंगजेब अकलूज पहुँचा और उसने वही पड़ाव डाल दिया।

१५. भारतमें अकबरके अन्तिम प्रयत्न

बीजापुरके घेरेमे सम्मिलित होनेके लिए औरगजेबके शोलापुरसे चले जानेके बाद जब मुगलोके दक्षिणी जिलोमे मुगल सेना नाम-मात्रको ही रह गई थी, तब जून, १६८६मे अकबरने मुगल प्रदेशपर एक धावा किया, किन्तु उसका यह प्रयत्न विफल हुआ।

अन्तमे अकबरने राजापुरमे एक जहाज किराए किया, जिसका सचालन वेण्डल नामक एक अग्रेज करता था। तब शुजाके पुराने अनुचर जियाउद्दीन मुहम्मद तथा अपने ४५ सेवकोको साथ लेकर फरवरी, १६८७मे अकबर उस जहाजसे ईरानके लिए रवाना हुआ, किन्तु हवा अनुकूल न होनेके कारण वह मसकतके बन्दरगाहमे जा पहुँचा। कई माह तक वहाँ रुके रहनेके बाद २४ जनवरी, १६८८को वह इस्फहानके ईरानी शाही राजदरबारमे पहुँचा। उसको सकुशल भारतसे बिदा करनेके बाद दुर्गादास मारवाड़मे अपने घरको लौट गया।

१६. मराठा राज्यकी आंतरिक परिस्थिति तथा शम्भूजीकी कार्यवाहियाँ; १६८५–१६८७

जब औरगजेब अपने साम्राज्यकी पूरी शक्तिके साथ बीजापुर और गोलकुण्डाको दबा रहा था, तब शम्भूजीने दक्षिणके सभी राज्योको समान रूपसे आतकित करनेवाले इस बढते हुए खतरेका सामना करनेका कोई भी उपयुक्त उपाय नही किया। निश्चित वार्षिक कार्यक्रमके तौरपर शम्भूजीके सैनिक मुगल प्रदेशमें लूट-मार करते थे, किन्तु ऐसे आक्रमणोका सैनिक परिस्थितिपर कोई भी प्रभाव नही पडता था। ऐसी छोटी-मोटी बातोकी तो औरगजेब पूर्ण उपेक्षा ही करता था। कही उनका पतन न हो जावे, इस उद्देश्यसे बीजापुर और गोलकुण्डाके घेरोसे औरगजेबका ध्यान तथा शक्ति बटानेके हेतु पूरे विचारके साथ बनाया हुआ कोई सुनिश्चित बडा आयोजन कार्यरूपमे परिणत करनेकी बुद्धिमानी मराठा राजामे न थी। उसके सामन्तोके विद्रोहो और राजदरबारियोके षड्यन्त्रोके कारण उसका शासन-प्रबन्ध बहुत ही निर्बल होकर शोचनीय दशामे पहुँच चुका था। जिन-जिन मन्त्रियो तथा सेनापतियोने उसके पितासे शासनको गौरवपूर्ण बनानेमे कुछ भी सहयोग दिया था, शम्भूजीके

राज्यारोहणके बाद कुछ ही वर्षोंमें वे सब एक-एककर इस लोकसे बिदा हो गए। मराठा राज्यके सुदूरस्थ प्रदेशोमे सुयोग्य स्थानीय अधिकारियोंके अभावके कारण वहाँके शासन-प्रबन्धको बहुत हानि पहुँचती थी। मराठा सेनानायको तथा महत्त्वपूर्ण पदोपर आरूढ मन्त्रियोको मृत्यु-दण्ड देने या कम-से-कम उन्हे कैद करवा देनेके अनिवार्य फलस्वरूप जो नित्य नये षड्यन्त्र होते थे उनसे परिस्थिति अधिकाधिक बिगड़ती जा रही थी। मद्रास-देशीय कर्नाटक प्रदेश, जो एक स्वाधीन राज्यके समान ही था, शम्भूजीके अधिकारसे प्रायः निकल चुका था। शम्भूजीका बहनोई हरजी महाड़िक वहाँ शासन करता था, अब हरजीने स्वय महाराजाकी उपाधि धारण की और वह अर्द्ध-स्वतन्त्र बन बैठा।

शम्भूजीके आलस्यपूर्ण शासन, उसके अधिकारियोके भ्रष्टाचार तथा विद्रोहियो द्वारा किए गए उपद्रवोके फलस्वरूप मराठा राज्यका जो आर्थिक पतन हुआ था, अंग्रेजोकी फ़ेक्टरियोके काग़ज-पत्रो तथा वहाँके अन्य विवरणोमे उसका बहुत ही सम्पूर्ण सुस्पष्ट विवरण मिलता है।

१७. कैद होकर शम्भूजीका मृत्यु-दण्ड पाना

अक्तूबर, १६८४मे शम्भूजीके विरुद्ध एक नया षड्यन्त्र हुआ, जिसके फलस्वरूप कई प्रधान व्यक्तियोको क़ैद कर लिया गया; शम्भूजीकी मृत्यु तक वे सब कैद ही रहे। तदनन्तर अगले चार वर्ष तक शम्भूजीके राज-दरबारमें शान्ति बनी रही। किन्तु अक्तूबर १६८८मे शिरके घरानेने पुन शम्भूजीके विरुद्ध सिर उठाया। रायगढ़से चलकर शम्भूजीने सग-मेश्वरमें विद्रोहियोंको हराकर भगा दिया और तब वह स्वयं खेलना पहुँचा। इस सन्देहमें कि इस पिछले विद्रोहमें उनका भी हाथ था, शम्भू-जीने प्रह्लाद नीराजी और कई अन्य मन्त्रियों तथा कुछ प्रमुख व्यक्तियोको क़ैद किया, एवं खेलनाके किलेमें आवश्यक रसद और युद्ध-सामग्रीको एकत्रित करवाकर वह स्वय कविकलशके साथ अपनी राजधानीको लौट पड़ा। राहमें संगमेश्वर पहुँचनेपर उसके साथ बहुत ही थोड़े शरीर-रक्षक होते हुए भी वह पूर्ण लापरवाहीके साथ वहाँ ही सुरा-पान और विलासमें रत हो गया। यह विश्वास कर कि मुगल सैनिक कदापि वहाँ नहीं पहुँच सकते थे, अत्यावश्यक देख-भाल और पहरेका भी वहाँ कोई प्रबन्ध नही किया गया।

उधर पन्हालाके किलेका घेरा डालनेके लिए १६८८मे औरगजेबने मुकर्रबखाँ नामक एक सुयोग्य तथा उत्साही सेनापतिको ससैन्य रवाना किया था। जब उसके गुप्तचरोने उसे सगमेश्वरमे अरक्षित ही शम्भूजीके व्यभिचारमे रत होनेकी सूचना दी, तब कोल्हापुरके अपने पडावसे चलकर राहमे बिना रुके ही तत्परताके साथ वह उधर बढा। केवल ३०० सैनिकोको ही अपने साथ लिये ९० मीलकी दूरीको केवल दो या तीन दिनमे पार कर वह 'बिजली और हवाकी-सी तेजीसे' सगमेश्वर जा पहुँचा।

जब आक्रमणकारी नगरमे जा घुसे तब कविकलशने उनका सामना किया और युद्धमे घायल हुआ। अपने नेताके न रहनेसे तब मराठा सेना बिखरकर भाग खड़ी हुई। शम्भूजी और उसके मन्त्रीने उस मन्त्रीके मकानके एक तलघरमे आश्रय लिया। किन्तु मुगल सैनिकोने उनके लम्बे-लम्बे बालोके द्वारा खीचकर उन्हे वहाँसे निकाला और पकडकर बाहर हाथीपर सवार अपने सेनापतिके पास उन्हे ले गए। १ फरवरी, १६८९ को यो शम्भूजी पकडा गया। शम्भूजीके मुख्य अनुचरोमे से कोई २५ आदमी अपनी पत्नियो तथा पुत्रियोके साथ उस दिन वहाँ पकडे गए।

शम्भूजीके पकडे जानेका समाचार शीघ्र ही शाही पडावमे अकलूज पहुँच गया, और तब साम्राज्यके सब ही विभिन्न भागोमे आनन्द और उल्लासकी लहर-सी फैल गई।

१५ फरवरीको शाही पडाव बहादुरगढ पहुँचा और तब ये कैदी भी वहाँ लाए गए। औरगजेबकी आज्ञासे दक्षिणके इस प्रजापीडकको जन-साधारणके उपहासका लक्ष्य बनाया गया। धीमी चालसे चलाकर कैदियोको सारे पडावमें घुमाया गया, और तब उन्हे औरगजेबके सम्मुख ले गए, जो इस अवसरके उपलक्ष्यमे पूरा दरबार लगाए बैठा था। कैदी शम्भूजीको देखते ही औरगजेब अपने राजसिहासनसे उतर पड़ा और नीचे कालीन पर घुटने टेककर बैठ गया तथा धरतीपर सिर झुकाकर इस आशातीत विजयके उस दाताके प्रति उसने अपनी दुहरी कृतज्ञता प्रकट की।[1] सम्राट्के सलाहकारोका सुझाव था कि शम्भूजीको जीवन-

---

१ एक परम्परागत लोक-कथाका उल्लेख करते हुए सफीखाँने लिखा है कि जब औरगज़ेब इस प्रकार प्रार्थना कर रहा था, तब तत्काल ही हिन्दीके कुछ छन्द बनाकर कविकलशने शम्भूजीको सुनाए, जिनमे उसने कहा था—"ओ राजा! औरगज़ेब भी तुम्हारे सामने राजसिंहासनपर बैठनेका साहस नही कर

दान देकर सारे मराठा किले शान्तिपूर्वक मुगलोंको सौप देनेकी आज्ञा अपने अधिकारियोंको देनेके लिए उसे बाध्य किया जावे। किन्तु सार्वजनिक रूपसे अपमानित किए जानेके कारण उसकी आत्मामें भर जानेवाली तीव्र कटुतासे क्षुब्ध तथा अब बिलकुल ही निराश होकर शम्भूजीने जीवनदानके इस प्रस्तावको ठुकरा दिया।

मराठा राजाके अपराध सर्वथा अक्षम्य थे। उसी रात शम्भूजीकी आँखे फोड़ दी गई और दूसरे दिन कविकलशकी जीभ काट डाली गई। इस्लाम धर्मवेत्ता मुल्लाओ और काजियोंने फैसला दिया कि शम्भूजीको मृत्यु-दण्ड दिया जाना चाहिए, जिसे औरगजेबने स्वीकार किया। एक पखवाड़े भर निरन्तर अत्याचार और अपमान भुगतनेके बाद ११ मार्चको कोरेगाँवमें भयकर पीड़ाकारक क्रूरताके साथ इन कैदियोको मृत्यु-दण्ड दिया गया।

१८. सन् १६८९ ई०का युद्ध; रायगढ़पर मुगलोंका अधिकार होनेपर शम्भूजीके सारे कुटुम्बका कैद होना

शम्भूजीके पतनके बाद उसके छोटे भाई राजारामको क़ैदखानेमेंसे निकालकर रायगढमे उपस्थित मराठा मन्त्रियोने उसे ८ फरवरीको राजसिहासनपर बैठाया, क्योकि शम्भूजीका पुत्र शाहू इस समय निरा बालक था, और जब कि औरगजेब जैसे शत्रुके साथ राज्यके जीवन-मरणकी भयंकर लडाई चल रही थी, तब एक बालकको राजा बनाना उचित प्रतीत नही हुआ। कुछ ही दिनो बाद इतिकादखाँके नेतृत्वमे एक शाही सेनाने आकर मराठा राजधानीका घेरा डाला; किन्तु राजाराम तो योगीका भेष बनाकर ५ अप्रैलके दिन वहाँसे निकल भागा। पता लगनेपर मुगलोंने उसका पीछा किया, किन्तु उसके साथियोने मुगलोंकी राह रोकी और युद्ध कर उन्हे उलझाए रखा, तब कही बड़ी कठिनाईके साथ राजा-

---

सकता है, किन्तु तुम्हारे सम्मुख घुटने झुकाकर तुम्हारा अभिनन्दन करता है"। (खफीखाँ, भाग २, पृ० ३८८)।

ईश्वरदासका कथन है कि औरंगजेबके सामने झुककर उसे प्रणाम करनेके लिए प्रेरित किए जानेपर भी शम्भूजीने वैसा नही किया। (ईश्वरदास, प० १५५ ब)।

राम उनसे बच सका। कुछ समय तक वह वर्तमान मैसूर राज्यके गिमोगा जिलेके बेदनूरकी रानीके राज्यमे आश्रय लिए छिपा रहा। अन्तमे जब उस रानीने उसे जाने दिया तब वहाँसे चलकर वह १ नवम्बरके दिन जिंजी पहुँचा।

मुगल साम्राज्यके प्रधान मन्त्री असदखाँके पुत्र इतिकादखाँने बहुत दिनो तक चलनेवाली कशमकशके बाद १ अक्तूबर, १६८९के दिन रायगढके किलेपर अधिकार कर लिया। तब वहाँ शिवाजीकी जीवित विधवाओ, शम्भूजी तथा राजारामकी पत्नियो, पुत्रियो और पुत्रोको, जिनमे शम्भूजीका सप्त-वर्षीय पुत्र शाहू भी था, इतिकादखाँने पकड लिया। उनके लिए आवश्यक पडदेका प्रबन्ध कर मराठा राजघरानेकी इन स्त्रियोको पूरे आदरके साथ अलग तम्बुओमे रखा गया। शाहूको राजाकी उपाधि देकर ७ हजारीका मनसब दिया गया, किन्तु फिर भी शाही डेरोके पास ही वह कैद रखा जाता था।

यो सन् १६८९के अन्त तक औरगजेब उत्तरी भारतके साथ ही दक्षिणका भी प्रतिद्वन्द्वी-विहीन एकछत्र सम्राट् बन गया। आदिलशाह, कुतुबशाह और राजा शम्भूजी, तीनो हीका पतन हो चुका था, तथा उनके राज्य मुगल साम्राज्यमे सम्मिलित हो गए थे।

"ऐसा प्रतीत होने लगा था कि औरगजेबने अब सब कुछ प्राप्त कर लिया था, परन्तु वास्तवमे वह सब कुछ खो बैठा था। उसके अध पतनका प्रारम्भ यहीसे हुआ। मुगल साम्राज्य इतना विस्तृत हो गया था कि किसी एक व्यक्तिका या केवल एक ही केन्द्रसे उसपर शासन करना सर्वथा असम्भव बात थी। ' सब ही दिशाओमे उसके शत्रुओंने सिर उठाया, वह उन्हे हरा सकता था, परन्तु सर्वदाके लिए उन्हे कुचल देना उसके लिए सम्भव न था। उत्तरी तथा मध्य भारतके बहुतसे भागोमे अराजकता फैली हुई थी। शासन-प्रबन्ध शिथिल और भ्रष्टाचारपूर्ण होता जा रहा था। दक्षिणके इस अनन्त युद्धके कारण खजाना खाली हो गया था। नैपोलियन प्रथम प्राय कहा करता था कि 'स्पेनके नासूरने मुझे बरबाद किया।' दक्षिणके इस विषैले फोडेने सचमुच ही औरगजेबको चौपट किया।" (यदुनाथ सरकार कृत 'स्टडीज इन मुगल इण्डिया', पृ० ५०)।

भाग ५

अध्याय १५

सन् १७०० ई० तक मराठोंके साथ संघर्ष

१. मराठोंका पुनरुत्थान : १६९०–१६९४

सन् १६८८ और १६८९ ई०के इन दो वर्षोमें औरंगजेबको लगातार विजय ही मिलती रही। मराठोंकी राजधानी रायगढ़ तथा मराठोंके कई अन्य किलोंको जीतनेके अतिरिक्त उसकी सेनाओंने बीजापुर और गोलकुण्डाके अधिकृत राज्योमें बेरड़ोंकी राजधानी सागर, पूर्वमे रायचूर और अडोनी, मैसूरमे सेरा और बगलौर, मद्रासी कर्नाटकमें वाण्डीवाश और कॉजीवरम् तथा दक्षिण-पश्चिम सीमापर बंकापुर और बेलगॉव जैसे विभिन्न प्रान्तो और किलोंपर भी अधिकार कर लिया था। उत्तरी भारतमे भी मुगल सेनाओको अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई थी; राजारामके नेतृत्वमें विद्रोह करनेवाले जाटोंको पूर्णतया दबाकर ४ जुलाई १६८८के दिन उनके नेताको भी मार डाला गया था।

परन्तु सन् १६८९के समाप्त होते-होते नये मराठा राजा राजारामके सकुशल जिंजी किलेमें जा पहुँचनेके समाचार सर्वत्र ज्ञात हो गए, और अब यह किला, भारतके पूर्वी तटपर मराठोके उद्योगोका प्रमुख केन्द्र बन गया, तथा मराठोके जो मत्री महाराष्ट्रमें ही पीछे रह गए थे, वे अव वहॉ पश्चिममे भी मुगलोके विरुद्ध विरोधका सगठन करने लगे। मराठोके एक सर्वोपरि शासक तथा कोई केन्द्रीय शासनके न रह जानेसे अव औरंगजेबकी कठिनाइयॉ भी कई गुना बढ़ गईं। प्रत्येक मराठा सरदार या सेनानायक अपने सैनिकोके साथ अपनी इच्छानुसार विविन्न दिशामे आक्रमण कर वहॉ लड़ता-भिड़ता था। अब महाराष्ट्रमें जन-साधारणका युद्ध हो गया और अनेको प्रयत्न करनेपर भी औरगजेब उसका अन्त नही

कर सका, क्योकि उसपर आक्रमण कर नष्ट करनेके लिए अब वहाँ मराठा राज्यकी केन्द्रिय सत्ता या उसकी राजकीय सेना नही रह गई थी।

आदिलशाह और कुतुबशाहके वैधानिक उत्तराधिकारीके रूपमे उसके हाथो पडनेवाले पूर्व तथा दक्षिणमे सुदूर तक फैले हुए उन उपजाऊ प्रदेशोपर अपना एकाधिपत्य स्थापित करनेमे ही औरगजेबने सन् १६९० और १६९१के पूरे दो वर्ष बिताए। मराठ राज्यका एक तरहसे विध्वस हो चुका था, यह सोचकर उसने अब मराठोकी शक्तिको स्पष्टतया नगण्य ही समझा। मराठा जनताकी शक्तिका ठीक-ठीक नाप-तोल तब भी उसे करना था।

सन् १६९१ ई०की पतझड तक जिजीका घेरा लगानेवाली मुगल सेना-की स्थिति इतनी सकटपूर्ण हो गई थी कि औरगजेबको उसकी सहायतार्थ एक बहुत बडी सेना वहाँ भेजनी पडी। सन् १६९२मे पश्चिमी युद्ध-क्षेत्रमे मुगलोको कोई भी सफलता नही मिली, परन्तु इधर पूर्वी तटपर तो मुगल सेनाको बुरी तरह मुँहकी खानी पड़ी, दो उच्च मुगल सेनानी शत्रुके हाथो कैद हो गए, मुगल सेनाको जिजीका घेरा उठा लेना पडा तथा शाहजादे कामबख्शको उसके ही साथी सेनानायकोने कैद कर लिया (दिसम्बर, १६९२–जनवरी, १६९३)। अतएव सन् १६९३ ई०के प्रारम्भ-मे सबसे पहला काम यही हो गया कि पूर्वी कर्नाटकमे बहुत अधिक सेना तथा पूरी-पूरी युद्ध-सामग्री भिजवाकर वहाँकी सैनिक स्थितिको सम्हाल लिया जावे। उधर पश्चिमी युद्ध-क्षेत्रमें शाहजादे मुईज्जुद्दीनने अक्तूबर, १६९२मे पन्हालेके किलेका घेरा डाला और अगले सारे वर्ष भर यथाशक्ति प्रयत्न करनेके बाद भी उसे कोई सफलता नही मिली तथा अन्तमे मार्च, १६९४मे मराठोने उसे वहाँसे खदेड दिया। इसके साथ ही सन्ता घोरपडे, धन्ना जादव, नीमा सिंधिया, हनुमन्तराव आदि मराठा पक्षके अनेको सेनानायक निरन्तर आक्रमण कर रहे थे।

इसी समय बीदरसे लेकर बीजापुर तथा रायचूरसे मालखेड़ तक फैले हुए इस विस्तृत एव सामरिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण प्रदेशमे रहनेवाले बेरड जातिके सबल आदिवासियोका विद्रोह उन्हीके साहसी शासक पीडिया नायकके नेतृत्वमे इतना उग्र हो गया था कि जून, १६९१से लेकर दिसम्बर, १६९२ तक एक उच्च कोटिके सेनापतिको एक बड़ी सेनाके साथ सागरमे रखना अत्यावश्यक प्रतीत हुआ।

अन्तमे अप्रैल, १६९५मे जाकर ही कही औरंगजेबने अनुभव किया

कि आदिलशाही तथा कुतुबशाही राजधानियोंको जीतकर तथा वहाँके राजघरानोंको मिटानेपर भी उसे वास्तवमें कोई लाभ नहीं पहुँचा। उसने देखा कि शिवाजीके कालकी तुलनामें अब मराठा समस्याका स्वरूप पूर्ण-तया बदल गया था; शम्भूजीके समयकी परिस्थितियोंके साथ भी उनका कोई साम्य नही पाया जाता था। अब मराठे एक लूट-मार करनेवाली जाति या स्थानीय विद्रोही-मात्र नही रह गए थे, किन्तु अब वे मुगल साम्राज्यके एकमात्र शत्रु तथा दक्षिणी भारतकी राजनीतिमे एक महत्त्व-पूर्ण शक्ति बन गए थे। सारे भारतीय प्रायद्वीपमे बम्बईसे मद्रास तक फैला हुआ यह सर्वव्यापी शत्रु वायुके समान ही किसी भी प्रकार पकड़मे न आनेवाला था, उसका न तो कोई एक प्रमुख नायक था और न कोई शक्तिशाली केन्द्र ही कि जिनपर अधिकार हो जानेके फलस्वरूप शत्रुकी शक्तिका आप-ही-आप अन्त हो जावे। उनकी शक्ति बढते-बढते अब परि-स्थिति बहुत ही भयकारक हो गई थी, क्योंकि केवल दक्षिणके ही नही, परन्तु मालवा, मध्यप्रदेश और बुन्देलखण्ड तकके मुगल साम्राज्यके सारे शत्रु तथा सार्वजनिक शान्ति और सुसंगठित शासन-व्यवस्थाके सब ही विरोधी उनके मित्र बनकर अब उनका साथ देनेके लिए तत्पर होने लगे थे।

अतएव अब औरंगजेबके लिए वापस दिल्ली लौटना कदापि सम्भव नही था। दक्षिणमें उसका कार्य अभी अधूरा ही था, वास्तवमें तो अब उसका प्रारम्भ ही हो रहा था।

२. इस्लामपुरीमें औरंगज़ेबका निवास; १६९५-१६९९

अतएव मई, १६९५में औरंगजेबने अपने ज्येष्ठ जीवित पुत्र शाह-आलमको अपने साम्राज्यके उत्तर-पश्चिमी भाग, पजाब, सिन्ध तथा बादमें अफगानिस्तान सूबा भी सौप दिए कि वह उनपर शासन कर भारतके पश्चिमी सीमान्त द्वारकी सुरक्षा करे, और वह स्वयं अगले साढे चार वर्षोंके लिए इस्लामपुरीमे जा टिका और बादमे भी अपनी सारी चढाइयोके लिए इसे ही अपना सैनिक अड्डा (बुनगाह) बनाया। ओरगज-जेबके इस्लामपुरी-निवासकालमे (१६९५–१६९७) मराठोका खतरा अधिकाधिक पास आता गया और मुगलोंको विवश होकर रक्षात्मक युद्ध-नीति ही अपनानी पड़ी। औरगजेबके स्थानीय अधिकारियोको अन्तमें हार मानकर विवश हो सम्राट् या अन्य ऊपरी अधिकारियोकी स्वीकृति

प्राप्त किए बिना ही प्रति वर्ष वहाँकी मालगुजारीका चौथाई भाग चौथके रूपमें देनेका वादाकर मराठोंके साथ समझौता करना पड़ा। किन्तु मुगल अधिकारियोंके पतनकी इतनेसे ही इतिश्री नही हुई। अपनी उजाड बरवाद जागीरोसे कोई लगान वसूल नही हो सकनेके कारण आर्थिक कठिनाइयाँ अनुभव करनेवाले कई शाही अधिकारी तो मराठोसे मिलकर सम्राट्की ही प्रजा तथा वेचारे व्यापारियोको ही लूटकर धनी वननेका भरसक प्रयत्न करने लगे। मुगल शासन-व्यवस्था सचमुच ही विलीन हो चुकी थी। एक बडी सेना के साथ स्वय सम्राट्की वहाँ उपस्थितिसे ही वहाँके सारे प्रदेशपर कुछ भी मुगल सत्ता वनी हुई थी, किन्तु अव तो यह सब भ्रममे डालनेवाली एक निस्सार कल्पना-मात्र रह गई थी।

इस्लामपुरी-निवासकालकी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ थी—नवम्बर १६९५मे कासिमखाँ तथा जनवरी, १६९६मे हिम्मतखाँ जैसे दो प्रमुख सेनापतियोका सन्ताके हाथो अन्त, आपसी झगडेमे जून, १६९७मे सन्ताका मारा जाना, ७ जनवरी, १६९८को जिजीके किलेपर मुगलोका आधिपत्य होना तथा उसीके फलस्वरूप तदनन्तर राजारामका महाराष्ट्रको वापस लौट आना।

३. औरंगजेबकी अन्तिम चढ़ाइयाँ; १६९९-१७०५

इस अन्तिम घटनाके फलस्वरूप औरगजेबको अपनी सारी नीति ही बदल देनी पड़ी। पूर्वी तटवाले प्रदेशपर अब उसका पूर्ण एकाधिपत्य हो गया था एव उसने अपनी सारी सैनिक शक्तियाँ पश्चिमी युद्ध-क्षेत्रमे ही केन्द्रित की। औरगजेबके जीवन-कालका अन्तिम पहलू अब प्रारम्भ हुआ, वह स्वय जाकर बारी-बारीसे एक-एक मराठा किलेका घेरा डालने लगा। उसके जीवनके इन आखिरी वर्षोमे (१६९९-१७०७ ई०) बारम्बार एक ही दु खद कहानीकी पुनरावृत्ति होती रही, अत्यधिक समय, सैनिको तथा धनकी बरबादीके बाद औरगजेबने जिस पहाडी किलेको जीता था, कुछ ही महीनो बाद मराठोने वहाँके शक्तिहीन रक्षकोको पराजित कर उसी दुर्गको वापस छीन लिया, और तब एक या दो वर्ष बाद पुन मुगल उसी किलेका घेरा डालनेको वहाँ जा पहुँचे। चढी हुई नदियो, दलदलपूर्ण रास्तो तथा ऊबड-खाबड पहाडी पगडडियोपर चलनेमे मुगल सैनिकोको निरन्तर अवर्णनीय कठिनाइयोका सामना करना पडा, मजदूर भाग खड़े होते, बारबरदारीके पशु भूख और थकावटके मारे मर जाते,

और शाही सैनिक पड़ावमें सदैव ही धान्यकी बहुत बड़ी कमी बनी रहती। कभी समाप्त न होनेवाले इन उद्योगोने शाही अधिकारियोको पूर्णतया थका दिया। किन्तु जब कभी कोई औरंगजेबके सम्मुख उत्तरी भारतको लौटनेका सुझाव रखता तब वह क्रोधके मारे उबल पड़ता और उस अभागे प्रस्तावक अधिकारीको कायर तथा सुखजीवी होनेका उलाहना देता। स्पेनके युद्धमें जिस प्रकार नैपोलियनके सेनानायकोकी आपसी ईर्ष्याके कारण फरासीसियोंके पक्षको अमित हानि पहुँची थी, उसी तरह मुगल सेनापतियोकी पारस्परिक डाहने औरगजेबके सारे प्रयत्नोको बरबाद कर दिया था। अतएव यह अत्यावश्यक हो गया कि प्रत्येक चढाईका संचालन वह स्वय करे, नही तो कोई भी काम होना शक्य नही था। सतारा, पार्ली, खेलना, कोण्डाना, राजगढ, तोरणा और वागिनखेड़ाके इन आठ किलोका घेरा डालनेमे औरगजेबको पूरे साढे पाँच वर्ष (१६९९-१७०५) लगे।

८ फरवरीसे २७ अप्रैल, १७०५ तक चलनेवाला वागिनखेड़ाका घेरा ही इस अट्ठासी वर्षके बूढ़े सेना संचालकका अन्तिम घेरा था। इस किलेको जीतनेके बाद जब उसने देवपुरमे पड़ाव किया (मई–अक्तूबर, १७०५), तब वहाँ औरगजेब बहुत ही सख्त बीमार पड़ गया। सारे पडावमे घबराहट और निराशा फैल गई। निकटतम आती हुई अपनी मृत्युके इस संकेतको देख औरंगजेबने अपने हितैषियोकी प्रार्थनाको स्वीकार किया और २० जनवरी, १७०६को वह अहमदनगरके लिए लौट पड़ा, जहाँ एक वर्ष बाद उसकी मृत्यु हुई।

४. अपने अन्तिम वर्षोंके उसके संताप और व्यथाएँ

औरंगजेबके जीवनके कुछ अन्तिम वर्ष अकथनीय दुःखसे पूर्ण रहे। जन-साधारणके हृदयमें यह भावना अधिकाधिक स्पष्ट होने लगी थी कि अर्ध शताब्दीका यह लम्बा शासनकाल पूर्णतया विफल ही रहा। अनवरत चलनेवाले दक्षिणके इन युद्धोने शाही कोषको खाली कर दिया था, साम्राज्य दिवालिया हो गया था, प्रायः तीन-तीन वर्षका वेतन चढ जाता था, जिससे भूखो मरनेवाले सैनिक निरन्तर विद्रोह करते रहते थे, बगालके ईमानदार सुयोग्य दीवान मुर्शिदकुलीखाँ द्वारा नियमित रूपसे भेजी हुई वहाँकी आयसे ही शासन-कालके इन पिछले वर्षोमे शाही कुटुम्ब तथा

सेनाका बहुत-कुछ काम चलता था और उसके वहाँसे आनेकी वडी ही उत्सुकतापूर्वक वाट देखी जाती थी। दक्षिणमे अन्त तक मराठोका ही प्राधान्य बना रहा, और उधर उत्तरी तथा मध्य भारतके कई स्थानोमे पूर्ण अराजकताका दौरदौरा हो गया था। सुदूर दक्षिणमे पहुँचकर वूढा सम्राट् हिन्दुस्तानके अधिकारियोपर अपना नियन्त्रण नही रख सका और वहाँके शासनमे ढिलाई तथा भ्रष्टाचार दिनोदिन वढने लगे। स्थानीय शाही अधिकारियोकी उपेक्षा कर उस प्रदेशके राजा और जमीदार अपनी ही मनमानी करते थे, जिससे देशमे गडवड़ी फैलने लगी, और औरगजेब-की आँखे बन्द होनेसे पहिले ही दिल्लीके साम्राज्यमें भयंकर अराजकताका प्रारम्भ हो गया।

अपनी-अपनी इच्छानुसार मुगल प्रदेशोपर निरन्तर आक्रमण कर अपनी इस छापा-मार युद्ध-शैली द्वारा मराठे सेनानायक शाही सेनाको दक्षिणमे अत्यधिक हानि पहुँचाते थे, वायुकी तरह सर्वव्यापी होते हुए उसीके समान उन्हे भी कही पकड पाना सर्वथा असम्भव था। "लुटेरोको दण्ड देनेके लिए" शाही सैनिक केन्द्रसे बारम्बार भेजे जानेवाले चलते-फिरते सैनिक दल उधर कूच कर शत्रुओको बिना दबाए ही वापस लौट आते थे। पतवारसे अलग हुए पानीकी ही तरह मराठे भी मुगल सेनाके वापस लौटते ही पुन' एक हो जाते थे और पहिले ही समान फिर धावे करने लग जाते थे। और जब कभी शाही पडाव आगे बढता था या कही ठहर जाता था, तब उससे कोई तीन-चार मीलकी ही दूरीपर पीछे-पीछे सदैव एक बडी भयकारक उन्मत्त मराठा सेना लगी रहती थी।

लगभग बीस वर्ष तक चलनेवाले इस भयकर युद्धमे प्रति वर्ष मुगलोके पक्षके एक लाख सैनिक और अन्य अनुयायी तथा उससे तीन गुने घोडे, हाथी, ऊँट, बैल, आदि व्यर्थ ही मर मिटते थे। शाही पडावमे महामारी सदैव बनी रहती थी, जिससे प्रति दिन मरनेवालोकी सख्या बहुत अधिक होती थी। दक्षिणका आर्थिक शोषण चरम सीमाको पहुँच चुका था। "खेतोमें न तो वृक्ष थे और न किसी प्रकारकी फसले ही, उनके स्थानपर वहाँ पशुओ और मनुष्योकी हड्डियाँ ही सर्वत्र बिखरी देख पडती पडती थी। सारा प्रदेश इतना अधिक बरबाद और वीरान हो चुका था कि तीन-चार दिन तक निरन्तर यात्रा करनेपर भी वहाँ आग या दीपक देखनेको नही मिलते थे।" (मनुची)।

९. राजारामके राज्यारोहणके समयके प्रमुख मंत्री और सेनापति

ऐसे भयकर राष्ट्रीय संकटके समय जब कि शम्भूजीके लडके कैद हो गए थे और उसके उत्तराधिकारीको मुगलोंने वहाँसे भागनेको बाध्य किया, तब उनकी बुद्धि-सामर्थ्यने ही मराठा जनताको बचाया तथा उसकी स्वतन्त्रताको सुरक्षित रखा, अतएव उस समयके उस राजा-विहीन राज्यके उन नेताओको पूरी तरह जान लेना अत्यावश्यक हो जाता है। सन् १६९८ ई०के अन्तमे मराठा राज्यमे चार प्रमुख व्यक्ति थे, पेशवा नीलकण्ठ मोरेश्वर पिंगले, आमात्य रामचन्द्र नीलकण्ठ बावड़ेकर, सचिव शंकरजी मल्हार, और स्वर्गीय प्रधान न्यायाधीश नीराजी रावजीका पुत्र प्रह्लाद। यही प्रह्लाद गोलकुण्डामे मराठा राजदूत रह चुका था। इनके अतिरिक्त तीन और व्यक्ति ऐसे थे, जो पहिले निम्न श्रेणीके उपाश्रित पदो-पर काम कर रहे थे, परन्तु मराठा इतिहासके इस विषम सकट-कालमें अपनी प्रतिभा और साहसके ही बलपर वे मराठा राज्यके सर्वोच्च पदा-धिकारी तथा मराठा जनताके लोकमान्य नेता बननेमें सफल हुए। वे थे, सेनापति पदके लिए प्रतिद्वन्द्वी धन्ना जादव और सन्ताजी घोरपडे, तथा परशुराम त्रिम्बक जो अन्तमे प्रतिनिधि पदपर पहुँचकर सन् १७०१मे राज्यका अभिभावक बना।

आमात्य रामचन्द्रने राजारामको सलाह दी थी कि जब उसके अन्य अधिकारी मुगलोंको दक्षिणी प्रायद्वीपके पश्चिमी भागमें उलझाए रखेगे तब मराठोंके एक दलको लेकर पूर्वी कर्नाटकमे अपनी कार्यवाही प्रारम्भ कर देना चतुराईपूर्ण सैनिक चाल होगी, क्योकि उससे मुगल सेनाको अपना ध्यान दो तरफ बॉटनेको बाध्य होना पड़ेगा।

भावी कार्यक्रमकी योजना इस प्रकार तय की गई। पूर्वी प्रदेशमे शत्रुका सामना करनेके लिए राजारामको सकुशल जिजी पहुँचा देना था। पुन. उसे 'हुकूमत-पनाह' अर्थात् सर्वेसर्वाकी नई उपाधि देकर अपने स्व-राष्ट्रीय प्रदेशका सारा शासन आमात्य रामचन्द्र नीलकण्ठ बावडेकरको सौपा गया, तथा सचिव शंकरजी मल्हार और कुछ अन्य अधिकारी उसकी सहायतार्थ नियुक्त किए गए। पहिले विशालगढको तथा बादमें पार्लीको उनका प्रधान केन्द्र-स्थान नियुक्त किया गया। स्वराष्ट्रीय प्रदेशके सारे अधिकारियो तथा सेनानायकोके लिए यह आवश्यक था कि सब बातोमे रामचन्द्रसे आदेश ले और उनका अक्षरश: पालन करे मानो वही मराठा

राजा था । शासन करने तथा संगठन स्थापित करनेकी रामचन्द्रमें जन्म-जात प्रतिभा थी । सारे सुयोग्य सहकारियोंको उसने अपने पास एकत्रित कर लिया, और उसके निर्देशनमे परस्पर-विरोधी, झगडालू, छापा-मार मराठे सेनानायक भी मिलजुलकर यह कार्य करने लगे ।

१ नवम्बर, १६८९को जिजी पहुँचनेपर राजारामने हरजी महाडिककी विधवा एव पुत्रके न चाहनेपर भी उनके पाससे सारी शासन-सत्ता अपने हाथोमे ले ली, और घोर दारिद्र्यके होते हुए भी अपने पूरे राजदरबारका सगठन कर एक स्वाधीन राजाके समान वह वहाँ शासन करने लगा। पेशवा नीलकण्ठ मोरेश्वर पिंगले अपने स्वामीके साथ जिजी पहुँचा था, किन्तु वहाँ सर्वोच्च सत्ता उसके हाथमे न रही। वहाँ प्रह्लाद नीराजी राजारामका प्रमुख सलाहकार बना तथा उसे राज्याधिनायक 'प्रतिनिधि'-की उपाधि देकर राज्य-शासनके भी सर्वोच्च अधिकार सौप दिए गए। यो उसका यह पद 'अष्ट प्रधान' मन्त्री-मण्डलसे विभिन्न तथा उनसे श्रेष्ठ था ।

६. सन् १६८९ ई०में औरंगजेबकी नीति तथा उसकी सफलताएँ

राजाराम महाराष्ट्रसे भागा उससे पहिले ही औरगजेबने वहुतसे मराठा किले जीत लिए थे, और दूसरोको भी बलपूर्वक या रिश्वत देकर बडी ही शीघ्रताके साथ जीतता जा रहा था। उत्तरी सीमान्तपर २१ फरवरी, १६८७को सोल्हरका किला और ८ जनवरी, १६८९को त्रिम्बक मुगलोने जीत लिए; मध्यमे नवम्बर, १६८४मे सिहगढ तथा १६८९मे राजगढपर उनका अधिकार हो गया, और वह वर्ष समाप्त होनेसे पहिले ही रायगढ तथा पन्हाला भी जीत लिए जानेवाले थे, और उत्तरी कोकणमे औरंगजेबके सुयोग्य सेनानायक मातबरखाने बहुतसे स्थानोपर आधिपत्य जमा लिया था। यद्यपि मध्य तथा दक्षिणी कोकणके भीतरी प्रदेशोपर तब भी मराठोका अधिकार था, किन्तु चौल बन्दरगाह मराठोके अधिकारसे छिन जाने, अपने द्वीप-केन्द्र उन्देरीके मराठो द्वारा खाली किए जाने तथा अपने नाविक बेड़ेके केन्द्रको घेरिया या विजयदुर्गसे नीचे दक्षिणमे ले जानेके बाद कोकणके इस समुद्री तटपर मुगलोका ही शासन हो गया था। सन् १६८९मे मराठोके और भी कई क़िले बड़ी ही सरलतासे औरगजेबके हाथ आ गए।

७. मराठोंका पुनरुत्थान; मई, १६९०में रुस्तमखाँका कैद होना; पन्हालाका घेरा

अपने स्वर्गीय राजाके दारुण अन्तके फलस्वरूप मराठोंको जो धक्का लगा था, सन् १६९० तक उसका वह दुष्प्रभाव धीरे-धीरे दूर होने लगा, और मराठोंमें पुनरुत्थानके चिन्ह देख पडने लगे। २५ मई, १६९०को उन्होने अपनी पहली महत्त्वपूर्ण विजय प्राप्त की। सताराके किलेको किस प्रकार जीतकर शाही अधिकारमें लिया जावे, यह निश्चित करनेके लिए अपने कुटुम्ब तथा सेनाके साथ इस समय मुगल सेनापति रुस्तमखाँ उसके आसपास चक्कर लगा रहा था। तब रामचन्द्र, शंकराजी, सन्ता और धन्ना, मराठा नेता मिलकर एक साथ उसपर टूट पड़े। कई घाव लगनेके बाद रुस्तम अपने हाथी परसे नीचे गिर पड़ा, तब मराठे उसे उठाकर ले गए और क़ैद कर लिया। कोई डेढ हजार मुगल उस दिन खेत रहे। सतारा किलेका मराठा सेनानायक भी अब बाहर निकला और रुस्तमखाँके कुटुम्बको पकड़कर क़िलेमें ले गया। इसके अतिरिक्त चार हजार घोड़े, आठ हाथी, और रुस्तमखाँका सारा पड़ाव तथा उसका सारा माल-असबाब मराठोंके हाथ लगा। सोलह दिनके बाद स्वय ही एक लाख रुपए देनेका वादाकर रुस्तमखाँ वहाँसे छूट सका। तब उसी वर्षमे (१६९०) रामचन्द्र और शंकराजीने प्रतापगढ़, राजगढ और तोरणाके बड़े-बडे किलोंको वापस जीत लिया। इधर रायगढका किला मुगलोके अधिकारमे चले जानेके बाद पन्हाला किलेके दुर्गरक्षक इतने हताश हो गए थे कि रिश्वत लेकर दिसम्बर, १६८९के लगभग उन्होने वह किला मुगलोको सौप दिया। किन्तु उस किलेके मुगल दुर्गरक्षकोंने उस क़िलेकी सुरक्षामे इतनी बेपरवाही की कि परशुरामके नेतृत्वमें एक मराठा सेनाने अगस्त, १६९२के लगभग अचानक आक्रमण कर उस किलेको वापस जीत लिया। अक्तूबर, १६९२मे शाहजादे मुईजुद्दीनने पुनः पन्हालाका घेरा डाला, किन्तु सन् १६९४ ई० तक वहाँ डटे रहनेपर भी उसे कोई सफलता नही मिली।

मई, १६९०में रुस्तमखाँकी पराजयपूर्ण दुर्घटनाके बाद औरगजेबको यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि उत्तरी सतारा जिलेपर बलपूर्वक अधिकार कर लिया जावे। अतएव सतारासे २५ मील उत्तर-पूर्वमे स्थित खटाऊ नामक स्थानका थानेदार नियुक्त कर लुत्फुल्लाखाँको शाही दरबारसे

ससैन्य भेजा गया। शत्रुने लुत्फुल्लाखाँपर भी आक्रमण किया था, किन्तु उसने उन्हे बुरी तरह हराकर मार भगाया।

सन् १६९०के अन्त तक कोई भी महत्त्वपूर्ण घटना नही घटी, और मुगलोके कुछ मराठा सहकारी, नीमा सिंधिया, माणकोजी पाँढरे और नागोजी माने अपने-अपने सैनिकोको लेकर जिजीमे राजारामके साथ जा मिले।

सन् १६९२मे मराठोके उद्योग पुन प्रारम्भ हो गए, और कई क्षेत्रोमे उन्हे विशेष महत्त्वपूर्ण सफलताएँ भी मिली, जिनमे मुगलोके अधिकारसे मराठोका पन्हालाका किला वापस छीन लेना उल्लेखनीय है। सताराके उत्तर-पूर्वमे महादेवकी पहाडीपर सन्ताजी घोरपडेका अड्डा था और अपने इसी आश्रय-स्थानसे निकलकर वह पूर्वमे बीजापुरके विस्तृत मैदानोमे दूर-दूर तक बडी ही तेजीके साथ आक्रमण करता था। बडी-बड़ी सेनाएँ लेकर सन्ता और धन्ना दोनो ही दिसम्बर माहमे जिजीकी सहायतार्थ मद्रास गए, जिससे इस समय महाराष्ट्रमे कोई श्रेष्ठ सेनानायक एवं सेना नही रह गई थी, और कुछ समय तक पश्चिमी युद्ध-क्षेत्रमे मुगल शान्तिसे रहे।

८ संताजी घोरपड़े और धन्ना जादवके साथ कशमकश; १६९३–१६९४

सन् १६९३ ई०के पिछले महीनोमे मराठोने पश्चिमी युद्ध-क्षेत्रमे भी अपने उद्योग पुन प्रारम्भ किए। सन्ताजी घोरपडे जिजीसे वापस लौट आया था, और अक्तूबर, १६९३मे वह स्वराष्ट्रीय प्रदेशमे फिर आक्रमण करने लगा। हिम्मतखाँने उसका पीछा किया और विक्रमहल्ली गाँवके पास १४ नवम्बरके लगभग सन्ताजी तथा उसके बेरड साथियोको उसने पूर्णतया पराजित किया। तब विभिन्न मुगल सेनापति आपसमे लड बैठे, हमीदुद्दीन और ख्वाजाखाँने शत्रुका पीछा करना छोड दिया तथा वे दोनो कुलबर्गाकी ओर लौट गए, अब शत्रुका पीछा करनेको अकेला हिम्मतखाँ ही रह गया था। तब किसी भी प्रकारके ख़तरेकी आशका न रह जानेके कारण सन्ताने अपनी सेनाको दो दलोमे बाँट दिया, अपने ४,००० सैनिकोको साथ लेकर उसने अमृतरावको बरारपर धावा करनेके लिए भेजा, और बाकी रहे ६,००० घुड़सवारोको लेकर सन्ता स्वय मालखेड़की

ओर चला तथा चौथ एकत्रित करने लगा। कई माह तक बारम्बार व्यर्थ ही एक ओरसे दूसरी ओरको कूच करने तथा अव्यवस्थित युद्धोके बाद भी मुगलोके हाथ कुछ भी नही लगा।

सन् १६९४ और १६९५के वर्षोमें यद्यपि दक्षिणके सारे ही पश्चिमी मराठोके दल लगातार घूमते रहे और बेरड़ोका उपद्रव बराबर बना रहा, फिर भी दोनो ही पक्षवाले कोई निश्चित उल्लेखनीय कार्यवाही नही कर पाए। किन्तु सन् १६९५ समाप्त होते-होते सन्ताने दो उच्चकोटिके मुगल सेनापतियो, हिम्मतखॉ और कासिमखॉको हराकर उन्हे मार डाला।

मराठोका प्रश्न अव एक सीधी-सादी सैनिक समस्या मात्र नही रह गया था, किन्तु एक ओर मुगल साम्राज्य तथा दूसरी ओर दक्षिणकी स्थानीय जनतामे चलनेवाली कशमकशमे दोनो दलोकी क्षमता तथा उनके साधनोकी कड़ी परीक्षाका वह एक साधन बन गया था।

९. पूर्वी कर्नाटक, उसके विभाग उसका इतिहास

पूर्वी या मद्रासकी ओरका कर्नाटक, बम्वई प्रान्तके कन्नड भाषा-भाषी प्रदेश अथवा पश्चिमी कर्नाटकसे, जिसे इस ग्रन्थमे कनाड़ा नामसे निर्देश किया है, सर्वथा भिन्न है। पूर्वी कर्नाटकका यह प्रदेश उत्तरमे १५° अक्षाशसे लेकर दक्षिणमे कावेरी नदी तक फैला हुआ है। ईसाकी १७वी शताब्दीके पिछले अंगमे यह प्रदेश पलार नदी या वेलूरसे सदरस तक निकाली जानेवाली एक काल्पनिक रेखा द्वारा दो विभिन्न भागोमे विभक्त था। ये दोनों भाग क्रमश: हैदराबादी कर्नाटक और वीजापुरी कर्नाटक कहलाते थे, और प्रत्येक भागके पुन दो विभाग थे, एक तो था ऊपरी पठार जो फारसीमें बालाघाट कहलाता था और दूसरा था नीचेका मैदान जिसे पाईघाट कहते थे। हैदराबादी कर्नाटकके पठारके अन्तर्गत पडते थे, सिधौत, गण्डीकोटा, गुत्ती, गरमकोण्डा और कडप्पाके परगने। वीजापुरी पाईघाट उत्तरमे सदरससे (१२°३०' अक्षांश उत्तर) लेकर दक्षिणमे तंजोर तक फैला हुआ था। सन् १६७७-७८मे जव शिवाजीने आक्रमण कर इस प्रदेशको जीत लिया, तव उन्होने जिजीको राजधानी वनाकर दक्षिणी अर्काटक जिलेमे मराठा शासन स्थापित किया था। रघुनाथ नारायण हनुवन्तेको अपना प्रतिनिधि वनाकर शिवाजीने अपने इस नये जीते हुए प्रदेशका शासन उसे सौंप दिया। राज्यारोहणके कुछ ही समय वाद

जनवरी, १६८१के प्रारम्भमें शम्भूजीने रघुनाथको पदच्युत कर कैद कर दिया और अपने वहनोई हरजी महाडिकको वहाँका शासक वनाकर जिजी भेजा। हरजीने स्वयको महाराजा घोपित किया और उस प्रदेशकी अतिरिक्त आय उसने कभी अपने स्वामीके पास रायगढ नही भेजी।

अक्तूबर, १६८६में शम्भूजीने केशो त्रिम्वक पिंगलेको १२,००० घुड-सवारोके साथ जिजी भेजा। यद्यपि वाहरी तौरसे शम्भूजीका उद्देश्य यही था कि पूर्वी कर्नाटककी मराठा सेनाको यो अधिक सशक्त वना दिया जावे, किन्तु पिगलेको गुप्त आदेश यह दिया गया था कि वह विद्रोही राजा हरजीको पकडकर पदच्युत कर दे तथा शम्भूजीके नामसे जिजीकी सारी शासन-सत्ता स्वय सम्हाल ले। ११ फरवरी, १६८७को केशो त्रिम्वक जिजीके पास पहुँचा, परन्तु उसकी सारी आशाओंपर पानी फिर गया। जिंजीके किलेको हरजीने अमोघ रूपसे अपने अधिकारमे कर लिया था तथा वहाँकी सारी स्थानीय सेना पूर्णतया उसकी ऐसी आज्ञाकारी वन गई थी कि उसको किसी भी प्रकार फुसलाना सम्भव नही था।

१०. पूर्वी कर्नाटकमें मुग़लोंका प्रवेश; १६८७

गोलकुण्डा जीत लेनेके बाद कुछ समय तक कुतुवशाही अधिकारियोको ही उनके पुराने पदोपर रहने देकर औरगज़ेबने बुद्धिमत्ताका परिचय दिया। अक्तूबर, १६८७मे इन्ही अधिकारियोने औरगजेबकी अधीनता स्वीकार कर उसे अपना सम्राट् घोषित किया।[1] किन्तु कुछ ही समय बाद उसका विचार बदल गया, महाबतख़ाँके स्थानपर रुहेल्लाख़ाँको सूबेदारी दी गई, जनवरी, १६८८मे अली अस्करके स्थानपर कासिमख़ाँको नियुक्त कर उसे आदेश दिया गया कि कर्नाटकपर चढाई कर वहाँ मराठा सेनाके विरुद्ध बड़े जोरोसे युद्ध करे।

पलार नदीके उत्तरवाले जिस प्रदेशपर पहिले गोलकुण्डा राज्यका अधिकार था, और यद्यपि उसने अब मुगल अधीनता स्वीकार कर ली

---

१ "पुन्नामल्लीके अधिकारीने कहा कि चक्रके समान जैसे दुनियाँ पूरी घूम गई, वैसे ही अपने पिछले स्वामीपर शक्तिशाली आलमगीर द्वारा प्राप्त की गई विजयके उपलक्ष्यमे उसने भी ढोल बजाए और तोपें चलाई।" (ओर्म कृत फ्रेगमेण्ट्स, पृ० १५७)।

थी, तथापि जहाँ अब तक आवश्यक मुगलोंकी रक्षक सेना नही पहुँची थी, उस प्रदेशमे लूट-मार करने तथा जीतकर उसे अपने अधिकारमे करनेके लिये हरजीने अपनी ही इच्छासे अपनी सेनाका एक दल वहाँ भेजा। उस प्रदेशके कई क़िलो तथा कोई एक सौ गाँवोपर बडी ही सरलतासे हरजीका अधिकार हो गया। आक्रमण कर २४ दिसम्बर, १६८७को उसने अर्काट भी ले लिया। उस सारे प्रदेशमें फैलकर मराठे वहाँ सर्वत्र लूट-मार करने और धर्म-भेदका कुछ भी विचार किए बिना ही स्त्री-पुरुष सबपर वे अत्याचार भी करने लगे। मराठोके उपद्रवोसे अपने शरीरों और द्रव्यकी रक्षा करनेके उद्देश्यसे काँजीवरम्के कई बड़े-बड़े ब्राह्मणोने अपने बाल-बच्चोको साथ लेकर २७ दिसम्बर, १६८७से १० जनवरी, १६८८ तक मद्रासमे आश्रय लिया। ११ जनवरी, १६८८को मराठे काँजीवरम्मे जा घुसे, उस नगरको उन्होने लूटा, वहाँ कोई ५०० मनुष्योको मार डाला, तथा घरोको नष्ट कर दिया, जिससे भयभीत होकर वहाँके निवासी भाग खड़े हुए। अपने सैनिक दलको लेकर केशो त्रिम्बक भी इसी लाभदायक उद्योगमे लग गया, चिटपट और कावेरीपाकपर अधिकार करनेके बाद जनवरी, १६८८मे उसने काँजीवरम्मे अपना पड़ाव डाला।

किन्तु काँजीवरम्मे मराठोका आधिपत्य अल्पकालीन ही रहा। विगत गोलकुण्डा राज्यके चार उच्च पदस्थ सेनापतियो, इस्माइलखाँ मका, याचप्पा नायक, रुस्तमखाँ और मुहम्मद सादिकको औरगजेबने आदेश दिया कि वे ससैन्य कर्नाटकके मैदानमे पहुँचे और वहाँ मुगलोके समर्थको-की सहायता करे। ये सारे सेनानायक २५ फरवरी, १६८८को काँजीवरम् पहुँचे। तब तक मराठोने उस नगरको खाली कर दिया था। मुगल सेनाके हरोलने उनका पीछा किया, उनके साथ युद्ध कर वाण्डीवाशको जीत लिया तथा वहाँ अपना पड़ाव डाला, उधर वहाँसे एक ही मजिलकी दूरीपर दक्षिणमे चिटपटमे मराठोंका पड़ाव था। दोनों पक्षकी प्रधान सेनाएँ केवल एक-दूसरेकी रखवाली करती हुई, उन्ही स्थानोमे एक वर्प तक यो ही पड़ी रही। सन् १६८६ ई०के भयकर अकालके परिणामोसे अव तक वहाँकी अभागी जनताको पूरी तरह छुटकारा नही मिला था, और अव उसपर उसे एकके स्थानपर दो विभिन्न डाकू-दलोका भार उठाना पडा। उस जिलेका सारा व्यापार वरवाद हो गया, उद्योग-धंधोका अन्त हो गया, धान्य और तेलहन वहाँ दुष्प्राप्य हो गए, तथा समुद्र तटपर स्थित क़िलेवन्दीवाली युरोपीय वस्तियोमे आश्रय लेनेको इच्छुक लोगोकी भीड़

लग गई, क्योकि उन्हे अपने बचावके लिए दूसरा कोई स्थान नही देख पडा।

१९ सितम्बर, १६८९को हरजी महाडिककी मृत्यु हो गई। तदनन्तर हरजीके अल्पवयस्क पुत्रोके नामसे उनकी माता, शिवाजीकी पुत्री अम्बिकाबाई, उस किले तथा प्रान्तपर शासन करती रही।

११. जिंजीमें राजाराम

१ नवम्बर, १६८९को राजारामके जिजी पहुँचते ही वहाँ एक शान्तिपूर्ण क्रान्ति हो गई। बलात् ग्रहण की गई जिस सत्ता एव स्थानीय स्वाधीनताका उन्होने पिछले आठ वर्षो तक उपभोग किया था, उसे यो छोड देनेको हरजीकी विधवा तथा उसके ब्राह्मण सलाहकार तैयार न थे। (एफ्० मार्टिन की डायरी देखो)। किन्तु राजारामके अधिकारको अस्वीकार करना कदापि सम्भव नही था। अतएव जिजीकी शासनसत्ता उसके हाथमे आ गई। हरजीके पुत्रको कैद कर दिया गया, और उसके पतिके लम्बे शासन-कालके समयके उस प्रदेशकी आय-व्ययका लेखा दिखलानेके लिए कह कर उस स्वर्गीय शासककी विधवाको रुपया देनेके लिए बाध्य किया गया। राजारामको तीन लाख हूण तथा सन्ताजीको एक लाख हूण देकर उस विधवाको उनके साथ समझौता करना पडा। राजारामके प्रमुख सलाहकार प्रह्लाद नीराजीको 'प्रतिनिधि' अथवा राज्याधिनायकके एक सर्वथा नये पदपर नियुक्त किया गया। नीलो मोरेश्वर पिगले तब भी पेशवा कहलाकर नाम-मात्रका प्रधान मन्त्री बना रहा। प्रतिनिधि प्रह्लाद नीराजीने "राजारामको व्यभिचारपूर्ण जीवनमे रत कर दिया", तथा "गाँजा और अफीमके नशेका आदि हो जानेपर वह नवयुवा राजा अब निरन्तर उन्हीके नशेमे चूर रहने लगा"। तब "प्रह्लाद नीराजीने सारी वास्तविक शासन-सत्ता अपने हाथोमे लेकर जिन-जिन ब्राह्मणोने हरजीके शासन-कालमे बहुत कुछ द्रव्य एकत्रित कर लिया था, उसका सारा धन और मालअसबाब जब्त कर वह उनसे छीन लिया"।

परन्तु पिछले अधिकारियोसे यो धन वसूल करनेसे ही मराठा राज्य-शासनकी कभी पूरी न हो सकनेवाली आर्थिक कमियोकी समस्या हल होनेवाली न थी। अतएव अब जिजीके मन्त्रियोने पूर्वी तट तककी युरो-

पीय वस्तियोसे रुपया वसूल करनेकी सोची, वहाँके प्रत्येक धनी व्यापारी-को ५,००० हूण या केवल १,५०० हूण ही उधार देनेके लिए कहा गया।

अगस्त, १६९०मे मुगलोंका सर्वोच्च सेनापति जुल्फ़िकारखाँ काँजी-वरम् आया और सितम्बर माह प्रारम्भ होते-होते वह जिजीके पास तक जा पहुँचा। अब सारी सैनिक परिस्थिति उलट गई; धावा करनेवाले मराठा सैनिक दलोंको मुगलोने पीछा मार भगाया, और अब मुगल "राजारामके राज्यपर भी चढाई करनेकी धमकी देने लगे।" तब तो वहाँ घबड़ाहट फैल गई और राजाराम जिजी छोडकर कर्नाटकमे और भी दक्षिणकी ओर अपने मित्र तजोरके राजाके पास ही किसी सुरक्षित आश्रय-स्थानमे जा छिपा।

१२. जिंजीके घेरेका प्रारम्भ

जिजीके पहाडी क़िलेमे केवल एक ही किला नही है। किन्तु वास्तवमे रायगिरि, कृष्णागिरि और चान्द्रायण-दुर्गकी किलेबन्दीवाली तीन पहा-ड़ियाँ उस क़िलेमे पड़ती है, जिन्हे सुदृढ परकोटोकी पक्तियाँ एक-दूसरेसे सम्बद्ध करती है और यो तीन मीलके घेरेका एक असम तिकोण-सा बन जाता है। "ये पहाड़ियाँ करारी तथा पथरीली है और उनपर इतनी बड़ी-बडी चट्टाने पड़ी हुई है कि उन पहाडियोपर चढना भी असम्भव-सा ही है। इन तीनो ही पहाडियोंपर पत्थरकी दीवारके ऊपर प्रत्येक ओर किलेबन्दीकी हुई है।" इस क़िलेके तीन फाटक है।

सितम्बर, १६९०के प्रारम्भमें ही जुल्फिकारखाँ जिजी पहुँच गया था, किन्तु वहाँ वह उस किलेके सामने पडाव डाले केवल बैठा ही रहा। उसके साथकी सेनासे ही ऐसे किलोके इस विस्तृत समूहका पूरा-पूरा घेरा डालना जुल्फिकारखाँके लिए सर्वथा असम्भव था, पुन. उस क़िलेपर गोलाबारी करनेके लिए उसके पास न तो बड़ी-बड़ी तोपे ही थी और न पर्याप्त गोला-बारूद ही। किलेको पूरी तरह घेर सकना सम्भव नही होनेके कारण उस क़िलेमे खाद्य-सामग्री न पहुँचने देनेका उचित प्रबन्ध कर सकना कदापि सम्भव नही था। "मराठोको प्रारम्भिक घड़बड़ाहट मिट जानेपर वे जुल्फ़ि-कारखाँको निरन्तर सताने लगे।" फरवरी, १६९१में राजाराम भी वापस जिंजी लौट आया।

अप्रैलके बाद मुगलोकी सैनिक प्रवलता वडी ही तेजीसे क्षीण होने लगी और उधर निरन्तर आसपास घूमनेवाले मराठा दलोके उद्योगसे जुल्फिकारखाँके पड़ावमे धान्य पहुँचना ही वन्द हो गया। अतएव शीघ्र ही सैनिक सहायता भेजनेके लिए उसने औरगजेवसे प्रार्थना की। इस सेनापतिके पिता वजीर असदखाँ और वागिनखेडासे शाहजादे कामवख्श-को एक बडी सेनाके साथ भेजा गया, तथा १६ दिसम्बर, १६९१को वे जिजी पहुँचे।

यो सन् १६९१ई० सारा वीत गया और फिर भी मुगलोको कोई सफलता नही मिली। अगले वर्ष भर भी मुगल कोई सफलता प्राप्त नही कर सके। सन् १६९२ ई०की वर्षा ऋतुमे मुगल पड़ावकी जो दशा थी, उसका वर्णन करते हुए एक प्रत्यक्षदर्शीने लिखा था—"घनघोर वर्षा हुई। अनाज वहुत ही महगा था। सैनिकोको कई-कई दिन और राते खाइयोमे ही बितानी पड़ती थी, जिनसे उन्हे बड़ी कठिनाइयोका सामना करना पड़ता था। पड़ावका सारा ही भाग एक झीलके समान दिखाई पडता था।"

१३. सन्ता घोरपड़े और धन्ना जादवका अलिमर्दान और इस्माइलखाँको पकड़ना; १६९२

शीत-कालमे तो मुगलोका वहाँ अधिक ठहरना बिलकुल ही असम्भव हो गया था। धन्ना जादव और सन्ता घोरपडेके नेतृत्वमे एक बहुत बडी मराठा सेना दिसम्बर, १६९२मे पूर्वी कर्नाटक पहुँची। जब सन्ताका सैनिक दल कावेरीपाकके पास पहुँचा तब काँजीवरम्‌का मुगल फौजदार अलिमर्दानखाँ उसका सामना करनेके लिए आगे बढा, किन्तु उसकी थोडी-सी सेनाको मराठोने सब ओरसे घेरकर, अलिमर्दानखाँको उन्होने पकड लिया और १३ दिसम्बरको उसकी सारी सम्पत्ति लूट ली गई। एक लाख हूण देनेपर ही उसको छुटकारा मिला।

धन्नाके नेतृत्वमे मराठा सेनाके दूसरे दलने जिजीके चारो ओर घेरा डालनेके लिए लगाए गए पडावोपर आक्रमण किया। विभिन्न चौकियो वालोको जुल्फिकारखाँने आदेश दिया कि वे प्रधान सेनाके साथ वापस आ मिले। इस्माइलखाँ किलेकी पश्चिमी ओर था, एव वहाँसे लौटते

समय मराठोंने उसकी राह रोक ली। वह घायल हुआ और शत्रुओंने उसे क़ैद कर लिया।

१४. मराठोंके साथ शाहज़ादे कामबख़्शके षड्यन्त्र; उसका क़ैद किया जाना

मराठोके पुन: क्रियाशील हो उठने तथा आसपासके प्रदेशमे उन्हीकी शक्तिकी प्रबलता होनेके कारण अब जिजीके बाहर पड़ी हुई मुगल सेना भी सब ओरसे घिर गई, और उनके आपसी झगडोंके कारण उसकी परिस्थिति बहुत ही सकटपूर्ण हो गई। शाहजादे कामबख्शने अपने वयो-वृद्ध प्रभावशाली अभिभावक वजीर असदखाँको रुष्ट कर दिया था, और साथ ही उसने राजारामके साथ गुप्त पत्र-व्यवहार भी प्रारम्भ किया। जुल्फिकारखाँको शाहजादेके इस भेदका शीघ्र ही पता चल गया, और उसने शाहजादेको कड़ी निगरानीमें रखनेके लिए सम्राट्की आवश्यक आज्ञा ले ली। दिसम्बर, १६९२में मुगलोके इस सैनिक पड़ावका शाही दरबारके साथ सारा लगाव टूट गया। तत्काल ही अनेकों भयप्रद गप्पें उड़ने लगी और कामबख्शने समझ लिया कि वह स्वयं बहुत ही सकटपूर्ण परिस्थितिमें था। राजारामके साथ समझौता कर मुगल पड़ावसे सकुटुम्ब निकल किलेमें जा पहुँचने तथा तब मराठोकी सहायतासे दिल्लीके सिहा-सनपर अधिकार करनेका प्रयत्न करना ही उसके बचावका एकमात्र उपाय था, इस बातका उसके अनुचरोंने कामबख्शको पक्का विश्वास दिला दिया।

कामबख्शके इस आयोजनकी सूचना असदखाँको भी अपने जासूसोंसे मिल गई। शाही सेनाके सारे बड़े सेनापतियोने एक स्वरसे माँग की कि शाहजादेको कड़ी नजरबन्दीमें रखा जावे तथा खाइयोको छोडकर सारी सेना पिछले भागमे ही एकत्रित रहे।

घेरा लगानेकी खाइयोको छोड़कर वापस लौटते समय मुगल सेनाको सख्त लडाइयाँ लड़नी पडी। मुगलोका सैनिक पड़ाव वहाँसे कोई चार मील पीछे था। अतएव किलेके दुर्ग-रक्षक भी बाहर निकल आए और धन्ना जादवके साथवाले अपने सैनिक भाइयोके साथ मिलकर उन्होने मुगल सेनाको चारो ओरसे घेर लिया। उस दिन संध्या होनेके बाद ही कही मुगल सैनिक असदखाँके पड़ावपर पहुँच पाए।

इधर शाहजादेने अपने मूर्ख दरबारियोके साथ मिलकर यह षड्यन्त्र रचा था कि जब अगली बार वे दोनो सेनापति उससे मिलने आवे तब उन्हे वहाँ ही कैद कर लिया जावे और यो वह वहाँकी सर्वोच्च सत्ताको अपने हाथमे ले ले। किन्तु उसके दूसरे षड्यन्त्रोकी तरह इसका भी भेद खुल गया था। सारी सेनाके बचाव तथा सम्राट्की प्रतिष्ठाको बनाए रखनेके लिए यह अत्यावश्यक हो गया था कि कुछ भी उपद्रव कर सकनेकी शाहजादेकी शक्तिका पूर्णतया अन्त कर दिया जावे। अतएव कामबख़्शको कैद करनेके लिए जुल्फिकारखाँ और उसके पिता दोनो कामबख़्शके डेरेपर गए और कैदी बना कर उसे असदखाँके निजी डेरेमे ले आए जहाँ उसके साथ पूरी भलमनसाहत बरती गई।

सन्ताजी घोरपडे भी अब जिंजी आ पहुँचा और जुल्फिकारखाँका विरोध करनेमे उसने अपनी सारी शक्ति और बुद्धि लगा दी। प्रति दिन युद्ध होता था। "शत्रुओकी सख्या २०,०००से भी अधिक थी। इधर उनका सामना करनेका सारा भार जुल्फिकारखाँ और कुछ अन्य मनसबदारोपर ही पड़ता था, जिनके साथ केवल २,००० घुड़सवार थे।

१५. जुल्फिकारकी सेनामें अकाल तथा उसका जिंजीसे वाण्डिवाशको वापस लौटना

किन्तु अब मुगल सेना चारो ओरसे घिर गई थी। कुछ ही दिनोमे धान्यकी कमी पूर्ण अकालमे परिणत हो गई। "तब जुल्फिकारखाँ अपने सैनिक दलको लेकर वाण्डीवाशसे धान्य लेने चला।" जब ५ जनवरी, १६९३को वह वहाँसे वापस लौट रहा था तब देसूरके पास सन्ताने उसकी राह रोकी। दूसरे दिन मरहठोने पूरे वेगके साथ उसपर हमला किया, किन्तु मुगलोकी ओरसे दलपत अदम्य वीरतासे लड़ा जिससे विवश होकर मरहठोको पीछे हटना पडा। किन्तु जो खाद्य-सामग्री जुल्फिकारखाँ लाया था वह वैसी बड़ी सेनाके लिए बहुत ही कम थी। भूखो मरते मुगल सैनिकोकी हालत अधिकाधिक बिगडती जा रही थी।

बिना किसी बाधाके उसे वाण्डिवाश लौटने देनेके लिए राजारामको बहुतसा धन रिश्वतमे देकर उसके साथ समझौता करनेके लिए अब असदखाँने गुप्त रूपसे बातचीत शुरू की। राजाराम भी इसपर राजी हो गया। उधर दूसरी ओर दलपत जुल्फिकारसे आग्रह कर रहा था कि

वह वहाँसे वापस न लौटे। किन्तु जुल्फिकारखाँके तोपखानेवाले अपना सारा सामान लादकर पड़ावसे वाण्डिवाशके लिए चल पड़े थे। अब शाहजादेके साथ दोपहरमें वहाँसे रवाना होनेके सिवाय जुल्फिकारखाँके लिए दूसरा कोई चारा नही रह गया था। जब मुगल सेना पड़ावसे निकली तब कोई एक हजार मराठे घुड़सवार उसके पीछे लग गए और उन्होने मुगल सैनिकोका सारा माल-असबाब लूट लिया। तीन दिनमे जाकर कही २२ या २३ जनवरी, १६९३को मुगल वाण्डीवाश पहुँचे। दस दिनके बाद सूचना मिली कि अलीमर्दानखाँके स्थानपर नियुक्त काँजीवरम्का नया फौजदार कासिमखाँ कड़प्पासे बहुतसी सामग्री लेकर एक बड़ी सेनाके साथ वहाँ आ रहा था। सन्ता घोरपड़ेने राहमे उसको रोकनेका प्रयत्न किया। उसके आक्रमण करनेपर कासिमखाँ काँजीवरम्के बडे मन्दिरकी चहारदीवारीमें जा छिपा। दूसरे दिन जुल्फिकारखाँ उसकी मददपर आ पहुँचा; उसने मराठोंको मार भगाया, और कासिमखाँ-को साथ लेकर ७ फरवरीको वह वापस वाण्डीवाशको लौटा। अब पुन: मुगल पडावमें धान्य बहुतायतसे मिलने लगा तथा औरगजेबके जीवित ही नही सकुशल भी होनेके समाचार मिलनेपर सैनिकोकी पूरी तसल्ली हो गई। फरवरीसे लेकर मई, १६९३ तक चार महीनेके लिए जुल्फिकारखाँने वाण्डीवाशमे पडाव किया। कामबख्शको साथ लेकर असदखाँ ११ जूनके दिन शाही पड़ावमे पहुँचा जो तव गलगलामें था। उसकी बहिन जीनत्-उन्निसाके बीच-बचाव करनेपर अन्तःपुरमे ही काम-बख्श अपने पिताके सामने उपस्थित हो सका।

१६. सन् १६९३–९४ई०में कर्नाटकमें सैनिक हलचलें

मद्राससे लेकर दक्षिणमें पार्टो नोवो तकका पूर्वी कर्नाटक प्रदेश इस समय तीन विभिन्न सत्ताओंमें बँटा हुआ था, जिनमें आपसी कशमकश प्राय: चलती ही रहती थी।

ये तीन विभिन्न शक्तियाँ थी —सर्व प्रथम तो वहाँके पिछले स्थानीय हिन्दू शासक तथा विजयनगर राज्यके वे अधिकारी जिन्हे बीजापुर और गोलकुण्डा राज्यकी विजयी सेनाएँ भी पूरी तरह नही दबा सकी थी, दूसरे, तभी नष्ट हुए बीजापुर और गोलकुण्डा राज्योंके वे अधिकारी जो उनके नये मुगल शासककी अधीनता स्वीकार करनेको तैयार नही थे, और अन्तमे शिवाजी तथा व्यकोजीके घरानोके प्रतिनिधि मराठा आक्र-

मणकारी। याचप्पा नायक इनमेंसे पहले वर्गका था। उसके पूर्वजोने वारगलके राजा प्रतापरुद्रके मन्त्रियोसे वेलूरसे २६ मील पूर्वमे स्थित सतगढका किला प्राप्त किया था और वह स्वय भी एक वार गोलकुण्डाके स्थानीय सेहवन्दी सैनिकोका नायक रह चुका था। जव राजाराम जिजी पहुँचा तो याचप्पा नायक उसके साथ आ मिला। मार्च, १६९३मे राजारामको छोडकर उसने पुन सतगढपर अधिकार कर लिया और उससे पूर्वके प्रदेशको अपने आधिपत्यमे लेने लगा। वह वर्प समाप्त होते-होते उसे छ हजारीका मनसव दिलवाकर जुल्फिकारख़ॉने याचप्पाको अपने पक्षमे कर लिया।

उधर मराठा सेनानायकोमे आपसी कलह शुरू हो गया, सन्ताजीका स्वभाव असहनीय प्रमाणित हुआ, और क्रुद्ध होकर वह महाराष्ट्रको लौट गया, तव राजारामने सन्ताजीके स्थानपर धन्नाको सेनापति नियुक्त किया।

फरवरी, १६९४मे जुल्फिकारखॉ दक्षिणी अर्काट जिलेको जीतनेके लिए निकला। उसके अधीन दलपतके बुन्देलोने पहिले ही पहुँचकर पाण्डिचेरीसे १८ मील उत्तरमे स्थित पेरुमुक्कल किलेपर आक्रमण कर उसे जीत लिया था। तब जुल्फिकारखॉ पूर्वी तटपर दक्षिणकी ओर बढा और तजोरके पास जा पहुँचा। तजोर राज्यका पड़ोसी एव उसका सदाका शत्रु त्रिचनापल्लीका नायक पहिले ही मुगलोसे मिल गया था, एव अब तजोरके महाराजा दूसरे शाहजीने जुल्फिकारखॉका विरोध करना सर्वथा निरर्थक समझा। इसलिए शाहजीको भी मुगलोके सामने झुकना पडा। २२ मईको शाहजीने एक पत्रपर हस्ताक्षर कर दिए, जिसके द्वारा उसने औरगजेबकी अधीनता स्वीकार कर भविष्यमे एक स्वामिभक्त सामन्तकी तरह सम्राट्के आदेशोका पालन करने, राजारामको किसी भी तरहकी सहायता न देने, मुगलोको आगे प्रति वर्ष तीस लाख रुपये करके रूपमे देते रहने, और पालमकोटा, सित्तानूर एव तुगानूरके किलोके साथ ही उनके अधीन आसपासके परगने तथा अन्य कई स्थान मुगलोको सौप देनेका वादा किया था। सितम्बर माहमे एक दरबारके समय जुल्फिकारखॉने एकाएक याचप्पाको कैद करवाकर राजद्रोहके अपराधमे उसका सिर कटवा डाला।[1]

---

१. मनूचीने याचप्पाकी पत्नियो और बच्चोके आत्मघातका बहुत ही दारुण

१७. सन् १६९७ ई०में ज़ुल्फ़िक़ारखाँके उद्योग

सन् १६९४ ई०के अन्तमे जुल्फ़िकारखॉने पुन: जिजीका घेरा डाला, किन्तु यह तो औरगजेबको धोखा देनेका एक दिखावा-मात्र था। उस प्रदेशमे सब हीको यह सुज्ञात था कि जुल्फ़िकारख़ॉने मराठोंके साथ गुप्त रूपसे मेल कर लिया था।

१८. सन् १६९६ ई०में ज़ुल्फ़िक़ारखाँकी सैनिक हलचल

दिसम्बर, १६९५के अन्तमे धन्ना जादव वेलूरके पास पहुँचा, तब जुल्फिकारख़ॉने एकाएक घेरा उठा लिया, अपने पड़ाव तथा कुटुम्बको उसने अर्काट भेज दिया और वह स्वय युद्धके लिए तत्पर हुआ। मराठोके दल उस प्रदेशके बहुतसे भागोमे फैल गए; तब तक शाही सेनाकी सख्या कम हो जानेसे वे इतने अधिक स्थानोकी मराठोंके हाथोसे रक्षा नही कर पाए। बुद्धिमानी कर जुल्फिकारख़ॉने अपनी सेनाको एक ही स्थानपर केन्द्रित रखा। परन्तु द्रव्यके पूर्ण अभावके कारण १६९६ ई०के सारे वर्ष भर उसके सारे आयोजनोमे बाधा ही पड़ती रही। मुगल सेनाकी शक्ति तब भी बहुत कम थी, एव केवल अर्काटके किलेके बचावके लिए ही वह प्रयत्नशील रहा। मराठे तो सदैवकी तरह उसके चारो ओर मडराते रहे।

१९. जिंज़ीका घेरा दोबारा लगनेपर उस क़िलेका पतन

नवम्बर, १६९७के प्रारम्भमे जुल्फ़िकारने बड़ी ही तत्परताके साथ पुन: जिजीका घेरा डाला। उत्तरी फाटकके सामने वह स्वय जा डटा;

विवरण सविस्तार लिखा है। उसका यह भी कथन है कि याचप्पापर राजद्रोहका झूठा आरोप लगाकर जुल्फिकारखाँके उसे यो मरवानेका प्रधान कारण यह था कि याचप्पाने सम्राट्की सेवामे एक पत्र भेजकर उसमे जुल्फिकारख़ाँकी पूरी पोल खोल दी थी, मराठोंके साथ गुप्त रूपसे मिलकर जिजीके घेरेको चाहकर दीर्घ काल तक चलाए जानेका विवरण लिखा था, तथा केवल अपने सैनिकोको लेकर उस किलेको आठ ही दिनमे जीत लेनेका भी प्रस्ताव उसने किया था। किन्तु असदख़ाँने इस पत्रको बीचमे ही पकड़वा लिया था।

(भाग ३, पृ० २७१-२)।

शैतानदरी दरवाजेके सामने रामसिंह हाड़ाको नियुक्त किया, तथा जिंजीसे आधे मील दक्षिणमे चिक्कली-दुर्गके विरुद्ध दाऊदखाँको भेजा। उस किलेके बहुत ही पास पहुँच निडर हो आक्रमण कर दाऊदखाँने एक ही दिनमे चिक्कली-दुर्गको जीत लिया, तब वह वापस जिंजी ही चला आया और दक्षिणी दुर्ग चान्द्रायणगढके सामने खाइयोमे डट गया। यदि जुल्फिकारखाँ सचमुच चाहता तो वह उस सारे किलेको दूसरे ही दिन जीत सकता था। किन्तु अपनी सारी सेनाको एकत्र रखने, अधिकाधिक द्रव्य पाते रहने और किसी नए युद्ध क्षेत्रसे भेजे जानेपर वहाँके सैनिक जीवनकी सारी कठिनाइयोसे बचनेके लिए ही इस घेरेको अधिक समय तक चलाए जाना जुल्फिकारखाँकी गुप्त नीति थी।[1] उसने मराठोको जता दिया कि उसके आक्रमण केवल दिखावेके लिए थे, और यो यह घेरा अगले दो महीनो तक चलता ही गया।

अन्तमे औरंगजेब द्वारा किए जानेवाले अपमान और दण्डसे बचनेके लिए किलेको जीतना जुल्फिकारखाँके लिए अनिवार्य हो गया। समय रहते पहिले ही राजारामको सूचना मिल गई थी एव अपने प्रधान सरदारोके साथ जिंजीसे निकलकर वह वेलूर जा पहुँचा, परन्तु अपने कुटुम्बको राजारामने जिंजीमे ही छोड दिया था। तब जुल्फिकारखाँने हमला करनेका आदेश दिया। कृष्णागिरिकी उत्तरी दीवालोपर चढकर दलपतराव अन्दर जा पहुँचा और घमासान युद्धके बाद उसने बाहरी किला जीत लिया। तब दुर्ग-रक्षक काला-कोट कहे जानेवाले भीतरी किलेमे जाने लगे, किन्तु इन मराठा सैनिकोके साथ ही साथ दलपतरावके बुन्देले भी

---

१ "ऊपरी दिखावा बनाए रखनेके लिए यह अत्यावश्यक था कि प्राय किए गए आक्रमणो तथा शत्रु द्वारा उनके पीछे हटाए जानेकी सूचना समय-समयपर सम्राट्के पास भेजी जावे। दूसरी ओर जुल्फिकारखाँके बाद मुगल सेनाका द्वितीय प्रमुख सेनापति दाऊदखाँ सर्वश्रेष्ठ युरोपीय मदिरा खूब पीता था और मदोन्मत हो धार्मिक आवेशमे आकर वह सदैव काफिरोका सर्वनाश करनेका बीडा उठाता था। ऐसा उद्योगोके लिए किए गए दाऊदखाँके प्रस्ताव स्वीकार करना जुल्फिकारखाँके लिए अनिवार्य हो जाता था, किन्तु ऐसे आक्रमण कब होगे और कहाँ होगे इसकी गुप्त सूचना वह शत्रुओके पास पहिले ही पहुँचा देता था। जिससे मार-काटके बाद प्रत्येक बार दाऊदखाँकी सेनाको विवश हो पीछे हटना पडता था।" विल्कीज, खण्ड १, पृ० १३३।

क़ालाकोटमें घुस गए और उसपर भी अधिकार कर लिया। तब बाकी बचे मराठोंने जिजीके सबसे ऊँचे किले राजगिरिमे आश्रय लिया। उधर दाऊदखाॅ भी चान्द्रायणगढमे जा पहुँचा और नगरमेसे या जिजी किलेके भीतरी नीचे मैदानमे होकर वह कृष्णागिरिकी ओर बढा। नगर-निवासी कृष्णागिरिकी चोटीकी ओर भागे, परन्तु वहाॅ भी बचावका कोई उपाय न देखकर उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया। ८ जनवरी, १६९८को सैकडों घोड़े और ऊँट तथा बहुतसा माल-असबाब लूटमे मुगलोके हाथ लगा। राजारामका कुटुम्ब राजगिरिमे था, एव अब राजगिरिको घेरा। उनकी परिस्थिति निराशापूर्ण हो गई थी। राजगिरिके तलेकी खाईको लकडीके पुलकी सहायतासे पार कर रामसिह हाड़ा राजगिरिके शिखरपर जा पहुँचा। मराठा राजघरानेको सुरक्षाका आश्वासन दिया गया; तब राजा-रामकी चार पत्नियाॅ, तीन पुत्र और दो लडकियाॅ किलेसे बाहर निकली और उन्हे आदरपूर्वक कैदमे रख दिया गया। राजारामकी एक पत्नीने तो किलेकी चोटीपरसे नीचे गिरकर आत्म-हत्या कर ली और यो मरकर मुगलों की कैदसे वह बच गई। कुल मिलाकर कोई ४,००० मनुष्य, स्त्रियाँ और बच्चे तब क़िलेमे पाए गए, किन्तु उनमे सैनिक बहुत ही थोडे थे।

जुल्फिकारख़ाॅने जिंजीसे गरमकोण्डा तक राजारामका पीछा किया। किन्तु मराठा राजा बहुत पहिले ही वहाॅसे रवाना हो चुका था, एव वह उसको नही पा सका और राजाराम फरवरी, १६९८मे सकुल विशालगढ पहुॅच गया। जिजीके इतने लम्बे घेरे द्वारा सम्राट् जिस उद्देश्यको पूर्ण करना चाहता था, वह विफल ही रहा। चिड़िया पिजरेसे निकलकर उड़ गई थी।

२०. सन्ता घोरपड़ेके हाथों क़ासिमख़ाँकी पराजय तथा दुडेरीमें क़ासिमख़ाँकी मृत्यु; १६९५

सन्ता घोरपड़े अब तक बीजापुर जिलेमें लूट-मार कर रहा था। उसके पास लूटका बहुत अधिक द्रव्य एकत्रित हो गया था, एवं उत्तर-पश्चिमी मैसूर प्रदेशमे स्थित अपनी जमीदारीमे अपने निवास-स्थानको उसे ले जानेके लिए नवम्बर, १६९५मे सन्ता दक्षिणकी ओर मुड़ा।

तब औरगज़ेबका पड़ाव इस्लामपुरीमे था, उसने क़ासिमख़ाॅको आदेश

दिया कि वह आक्रमणकारियोकी राह रोक कर उनपर आक्रमण करे। सन्ता कासिमखाँसे कूछ दूरीपर ही चक्कर काट रहा था। कासिमखाँ तव कहाँ था और किधर जा रहा था, इसका पक्का पता लगाकर तेज़ीसे कूच करता हुआ सन्ता उसके पास जा पहुँचा और उसकी सेनाके साथ ही कासिमखाँके भी सहारकी उसने ऐसी योजना वनाई, जो मुगल सेना-नायकोकी विलास-प्रियता तथा विवेक-विहीनताके फलस्वरूप अकल्पनीय परिपूर्ण रूपेण सफल हुई। सन्ता घोरपड़ेने अपनी सेनाको तीन दलोमे विभक्त किया, जिनमेसे एकको मुगल पडावको लूटनेके लिए भेजा, दूसरेको मुगल सैनिकोके साथ युद्ध करनेका आदेश दिया, तथा तीसरेको उसने अलग ही रखा कि जहाँ कही भी विशेप आवश्यकता हो उसे तत्काल ही सहायतार्थ भेजा जा सके। इस प्रकार सन्ताने मुगल सेनाको चारो ओरसे घेरकर उस तक कोई भी समाचार पहुँच सकनेके लिए सारे साधनोका अन्त कर दिया गया।

२० नवम्बरके लगभग सूर्योदयके कोई डेढ घण्टे बाद मराठोका पहला दल कासिमखाँके अगले पड़ावके डेरोपर टूट पडा और जो कुछ भी वहाँ था उसे वे साथ उठा ले गए। इसकी सूचना मिलनेपर जहाँ मराठोका आक्रमण हुआ था वहाँके लिए कासिमखाँ जल्दी-जल्दी चल पड़ा। किन्तु अपने मुख्य पडावसे वह दो मील ही गया था कि शत्रुओका दूसरा दल उसके सामने आ पहुँचा और अब युद्ध छिड गया। मुगलोकी तुलनामे शत्रु-सैनिकोकी सख्या बहुत अधिक थी। घमासान लडाई हुई जिसमे दोनो ही पक्षके अनेको सैनिक मारे गए। तब सन्ताके सैनिकोका तीसरा सहायक दल मुगल पडाव और माल-असबाबपर टूट पडा तथा वहाँसे वे सब कुछ लूट ले गए। इसकी सूचना जब कासिम और खानाजादको मिली तब वे बडे जोरोसे मराठोके साथ युद्ध कर रहे थे, किन्तु यह सुनकर वे विचलित हो गए और आपसमे सलाह कर वे दुडेरी[1] तक पीछे हट गए। दुडेरीका किला छोटा ही था और वहाँ खाद्य-सामग्रीका सग्रह भी बहुत सीमित था। अतएव जब ये मुगल सेनापति वहाँ पहुँचे तब उस दुर्गकी शाही रक्षक सेनाने अपने किलेके फाटक बन्द कर अपने इन सैनिक साथियोको

---

१. दुडेरी—१४° २०′ उ०, ७५° ४६′ पू०, मैसूरके चित्तलदुर्ग विभागमे चित्तलदुर्गसे २२ मील पूर्वमे तथा अडोनीसे सीधे ९६ मील दक्षिणमे है। दुडेरी दुर्गके दक्षिणमे पानीका एक वड़ा तालाव है।

अन्दर घुसने नही दिया। तव दोनों खानोंने किलेसे बाहर ही पड़ाव डाला। जब रात पड़ गई तब शत्रुओने उन्हे पूरी तरहसे घेर लिया, यह सब तीन दिन तक चलता रहा। चौथे दिन मराठोने आक्रमण किया। किन्तु शाही तोपखानेका सारा ही गोला-बारूद तब तक समाप्त हो गया था, एव कुछ घण्टो तक विफल प्रयत्न करनेके बाद निराश होकर मुगल सैनिक बैठ गए और कनाडी बन्दूकचियोका निशाना बनने लगे।

तब अपने भूखों मरते सैनिकोका साथ छोड़कर दोनो सेनापति किलेमें जा छुपे। कासिमखाँ बहुत बडा अफीमची था, अतएव अफ़ीम न मिलनेसे तीसरे ही दिन उसकी मृत्यु हो गई।

किलेका खाद्य-सग्रह जब पूर्णतया समाप्त हो गया और जब वहाँ पानी भी बहुत थोड़ा तथा पीने योग्य न रहा, तब खानाजादख़ाँने आत्म-समर्पणकी शर्ते की, बीस लाख रुपये तथा नष्ट-प्राय मुगल सेनाका सारा द्रव्य, माल-असबाब, आभूषण, हाथी, घोडे आदि सब-कुछ सौप देनेका निश्चय हुआ। किलेमें घुसनेके १३ दिन बाद शाही सेनाके बचे-खुचे सैनिक एक-एक कर बाहर निकले। दो दिन तक विश्राम करनेके बाद अपने मराठा रक्षकोंको साथ ले खानाजाद शाही दरबारके लिए चल पड़ा। वह अपना सब-कुछ खो चुका था।

२१. बसवापट्टणमें सन्ताका हिम्मतखाँको मारना

इस आघातके एक माहसे कम समय बाद सन्ताने ऐसी ही सुविख्यात एक और विजय प्राप्त की। अपनी सेना बहुत ही थोडी होनेके कारण हिम्मतखाँने दुडेरीसे ४० मील पश्चिममे बसवापट्टण नामक स्थानमें आश्रय लिया था। दस हजार घुडसवार और लगभग उतने ही पैदलोंको लेकर २० जनवरी, १६९६को सन्ता हिम्मतखाँकी सेनाके सामने पहुँचा। दक्षिणके सबसे अचूक निशानेबाज कर्नाटकी बन्दूकचियोने एक पहाड़ीपर मोर्चा लगाया। आक्रमण कर उन्हे वहाँसे हटानेके लिए हिम्मतख़ाँ आगे बढ़ा, तभी एकाएक उसके ललाटपर गोली लगी। ख़ाँका सारा माल-असबाब लेकर मराठे कुछ दिन बाद वापस लौट गए।

२८ जनवरीको औरंगजेबने हिम्मतख़ाँकी मृत्युका समाचार सुना। बसवापट्टणकी सहायतार्थ हमीदुद्दीन वहाँसे रवाना हुआ। २६ फरवरीको सन्ताने उसपर भी हमला किया, किन्तु इस बार मराठोकी हार हुई, उन्हें उस प्रदेशसे मार भगाया और बसवापट्टणको मराठोके घेरेसे मुक्त किया।

२२. सन् १६९७ ई० मुगलोंके सैनिक आयोजन

मार्च, १६९७मे सन्ता घोरपड़े पूर्वी समुद्री तटसे वापस सतारा ज़िलेको लौट आया, तव उसका सामना करनेके लिए फिरोजजगको भेजा गया। किन्तु तब मराठा सेनापतियोमे आपसी युद्ध छिड़ गया था, जिससे सन् १६९७के पहिले छ. महीनोमे मराठोकी शक्ति वहुत घट गई थी।

२३. संता घोरपड़े और धन्ना जादवमें आपसी युद्ध : संताकी मृत्यु

प्रथम श्रेणीके इन दो मुगल सेनापतियोपर पश्चिममे प्राप्त सुदूर तक सुविख्यात अपनी विजयोसे गर्वित सन्ता मार्च, १६९६मे राजारामके पास जिंजी पहुँचा। उसके अहकार, उद्धत स्वभाव और अवज्ञाके कारण जिंजीका राजदरबार उसके प्रति क्षुब्ध हो गया और अन्तने मई, १६९६मे कॉजीवरम्मे खुल्लमखुल्ला विरोध प्रारम्भ हो गया। धन्ना और अमृतराव निम्बालकरको अपने हरोलमे रखकर राजारामने अपने इस दुर्दभ सेना-नायकपर आक्रमण किया। परन्तु इस वार भी सन्ताकी सैनिक चतुरता विजयी हुई, पराजित होकर धन्ना सीधा पश्चिमी भारतमे अपने घरको लौट गया। अमृतराव युद्धमे काम आया।

कई महीनो तक पूर्वी कर्नाटकमे चक्कर लगानेके बाद मार्च, १६९७मे सन्ता वापस अपने ही प्रदेशको लौट आया। अब यहाँ धन्नाके साथ उसका गृह-युद्ध प्रारम्भ हुआ और अन्य सारे मराठे सेनानायक एक या दूसरेके पक्षमे हो गए। मार्च, १६९७मे सतारा जिलेमे युद्ध हुआ। किन्तु अब भाग्य सन्ताका साथ छोड़ चुका था। सन्ताकी कड़ाई तथा उसके अपमानपूर्ण व्यवहारसे उसके सारे ही सेनानायक उससे रुष्ट हो गए थे, अतएव इस युद्धमे जो घायल या मारे नही गए, वे सब सन्ताका साथ छोडकर धन्नासे जा मिले। सेनाके यो छोड़ देनेपर अपना सब-कुछ गवॉ सन्ता कुछ इने-गिने अनुचरोके साथ युद्ध क्षेत्रसे नागोजी मानेके निवास-स्थान म्हासवड़को भागा। इसी नागोजीके साले अमृतरावको पहिले सन्ताने मार डाला था। नागोजीने सन्ताको कुछ दिन आश्रय और भोजन दिया, तब उसे वहॉसे सकुशल बिदा कर दिया। किन्तु नागोजीकी पत्नी राधाबाई प्रतिहिसाकी प्यासी थी, एव उसने अपने एकमात्र जीवित भाईको उसके पीछे-पीछे भेजा। तेजीसे कूच करते रहनेके कारण थक कर जब सतारा जिलेमे शम्भू महादेव पहाड़ीके पासवाले नालेमे सन्ता

नहा रहा था; तब उसका पीछा करनेवालोने उसको जा मिलाया। म्हासवड़के इस दलने इस विवशतापूर्ण अवस्थामे उसे पकड़कर उसका सिर काट डाला (जून, १६९७)।

एक विस्तृत क्षेत्रमे दूर-दूर तक फैले हुए बडे-बड़े सैनिक दलोका कुशलतापूर्वक सचालन करने, शत्रुके बदलते हुए आयोजनो तथा परिस्थितियोंके अनुसार अपनी युद्ध-चालोमे भी तत्परताके साथ फेरफार कर उनसे पूरा-पूरा लाभ उठाने तथा अपने विभिन्न सैनिक दलोकी गतिविधिको सामूहिक रूपसे सुसगठित करनेकी सन्ताजीमें अनोखी जन्मजात प्रतिभा थी। सन्ताकी सैनिक चालोंकी सारी सफलता प्रधानतया उसकी सेनाकी तीव्र गति और एक मिनटका भी अन्तर पड़े बिना ठीक निश्चित समयपर ही उसके सहकारियो द्वारा उसके आदेशोके पालनपर ही निर्भर रहती थी। अतएव अपने अधिकारियो द्वारा उसकी आज्ञाओंके निर्विवाद पालनके लिए उसका विशेष आग्रह रहता था, और बहुत ही कठोर दण्डो द्वारा वह अपनी सेनामे कड़ा अनुशासन बनाए रखता था, अतएव "बहुतसे मराठा सरदारोंका उसका शत्रु बन जाना" स्वाभाविक ही था।

दूसरी ओर धन्नाकी तुलनामे सन्ता सभ्यता तथा उदारतासे पूर्णतया विहीन निरा असभ्य जगली ही था। अपनी वासनाओका नियन्त्रण करना या सुदूर भविष्यकी कुछ भी सोचना उसके लिए असम्भव था। जिस किसीसे भी वह मिलता था उसके साथ बहुत ही अनादरपूर्वक वर्ताव करनेमे उसे विशेष आनन्द आता था, और इस मामलेमे वह राजारामका भी अपवाद नही करता था। वह न तो किसीके प्रति दया दिखाता था और न वह स्वय ही किसीसे पानेकी अपेक्षा करता था। किसी दूसरेके साथ सहयोग करना उसके लिए स्वभावतया ही सर्वथा असम्भव था, और अपनी जातिकी आवश्यकताओके लिए अपनी इच्छाको उपाश्रित बना देनेके स्वदेशानुरागका उसमें अभाव ही था। मराठोके राजनैतिक इतिहासकी प्रवृत्ति या औरंगजेबकी चढाइयोके साधारण परिणामोपर भी सन्ताका कोई प्रभाव नही पड़ा। एकाकी उल्काकी तरह दक्षिणके आकाशमें सहसा प्रकाश करके उसीकी तरह वह शीघ्र हो विलीन हो गया।

२४. राजारामका महाराष्ट्रको लौटना तथा सन् १६९८-९९में उसकी हलचलें

भीमामें वाढ़ आ जानेसे १९ जुलाई, १६९७को पेड़गाँव और इस्लाम-

पुरीके मुगल पडावोके वह जाने तथा उसके फलस्वरूप सर्वत्र कष्ट और बरबादी होनेके अतिरिक्त सन् १६९७के पिछले छ महीनोमे कोई महत्त्व-पूर्ण घटना नही हुई। किन्तु अगली जनवरीमे जिंजी मुगलोके अधिकारमे आ गया। वहाँसे भागकर दूसरे महीनेमे राजाराम विशालगढ पहुँचा।

सन् १६९९ई०के प्रारम्भमे राजाराम कोकणकी देखभालके लिए दौरे-पर निकला, और सारे किलोकी निगरानी कर जूनके अन्तमे वह वापस सताराको लौट आया। खानदेश और बरारमे होकर एक विस्तृत आक्र-मण करनेका आयोजन बना २६ अक्तूबरके लगभग उसने सतारासे कूच किया।

सताराके किलेका घेरा डालनेके औरगजेबके निश्चयके भेदका पता अवश्य ही राजारामको लग गया होगा, क्योकि १९ अक्तूबरको औरग-जेबके इस्लामपुरीसे रवाना होते ही राजारामने अपने कुटुम्बको सतारासे खेलना पहुँचा दिया और सम्राट्के हाथोमे न पडनेके उद्देश्यसे ही वह स्वय भी २६ अक्तूबरको वहाँसे निकल पडा।

इस विरोधी सेनाका पीछा कर उसे हटानेके लिए तत्काल ही औरग-जेबने बेदारबख्तको अत्यावश्यक आदेश भिजवाया। परेण्डाके किलेसे चार मील आगे बेदारबख्तकी मराठोसे मुठभेड हो गई। एक भयकर युद्धके बाद १३ या १४ नवम्बरको उसने मराठोकी सेनाको छिन्न-भिन्न कर अहमदनगरकी ओर उसे मार भगाया। २६ दिसम्बरको सूचना मिली कि सतारा किलेके नीचे शाही पड़ावसे कोई ३० मीलकी दूरीपर राजा-रामने विश्राम लिया था और तब वह विशालगढ जानेकी सोच रहा था। बरारपर मराठा राजाका वह आक्रमण प्रारम्भ होनेसे पहिले ही रोक दिया गया। किन्तु कृष्णा सावन्तके नेतृत्वमे एक मराठा दल धामुनीके पास कई स्थानोमे लूटमार कर वापस लौट आया। मराठा सेनाके नर्मदा पार करनेका यह सर्वप्रथम अवसर था।

२८. राजारामकी मृत्यु; ताराबाईकी नीति

सम्भवत इस चढाईकी कठिनाइयो तथा मुगलोके निरन्तर पीछा करनेके कारण ही राजारामको ज्वर हो गया था, जिससे २ मार्च, १७०० को सिहगढ़मे राजारामकी मृत्यु हो गई। उसका कुटुम्ब तब विशालगढमे था। धन्ना जादवकी सहायतासे राजारामके मन्त्रियोने तब तत्काल ही

राजारामके स्नेहभाजन उसके अनौरस पुत्र कर्णको गद्दी पर बैठाया, किन्तु शीतलासे पीडित हो वह भी तीन ही सप्ताह बाद मर गया। तब राजाराम-की स्त्री ताराबाईसे उत्पन्न उसके औरस पुत्रको पश्चिमी राज्यके राज्याभिभावक रामचन्द्रकी सहायतासे शिवाजी तृतीयके नामसे गद्दीपर बैठाया। अब राजारामकी दोनों जीवित विधवाओं, शिवाजी तृतीयकी माता ताराबाई तथा शम्भूजी द्वितीयकी जननी राजसबाईने अपने पुत्रका पक्ष लेकर गृह-युद्ध छेड दिया जिसमें विभिन्न अधिकारी तथा सेनानायक एक या दूसरे पक्षका समर्थन करने लगे। किन्तु अपनी योग्यता तथा साहसके कारण उनमे ज्येष्ठ पत्नी ताराबाईको ही राज्यमे सर्वोच्च सत्ता प्राप्त हो गई।

अपने पतिकी मृत्युके समाचार मालूम होते ही ताराबाईने औरंगजेब-की अधीनता स्वीकार करनेका प्रस्ताव किया, तथा राजारामके औरस पुत्रको ७ हजारी मनसब और दक्षिणमे देशमुखीके अधिकार दिए जानेकी मॉग की, एव उसके बदले ७ किले मुगलोको सौप देने और दक्षिणमें नियुक्त शाही प्रतिनिधिकी सेवामे ५,००० सैनिकोंका दल भेजते रहनेका भी सुझाव रखा। औरंगजेबने इस प्रस्तावको ठुकरा दिया। तब मईके अन्तमे रामचन्द्रका प्रतिनिधि रामाजी पण्डित और परशुरामका प्रतिनिधि अम्बाजी शाहजादे आजमके पास पहुँचे, तथा चाहा कि मराठा किले मुगलोंको सौप देनेपर राजारामके छोटे लडकेको जीवनदान देनेके लिए वह औरगजेबसे विशेषरूपसे प्रार्थना करे। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि ये प्रस्ताव विश्वसनीय नही थे, एवं उनका कोई परिणाम नही निकला।

२६. कोंकणमें युद्ध; १६८९-१७०४

शिवाजीने १६५७से लेकर १६६३ ई०के कालमे कोकणको एवं १६७०-७३के वर्षोमे कोली प्रदेशको जीता था। उनकी मृत्युके बाद मुगल उत्तरी कोकणमे उतर आए थे और वहॉंके केन्द्र कल्याणपर कुछ कालके लिए उन्होने अधिकार कर लिया था, किन्तु दिसम्बर, १६८३मे मराठोने कल्याणको वापिस ले लिया और अगले पॉच वर्ष तक कोकणपर मराठो-का निर्विघ्न अधिकार बना रहा। सन् १६८९के बाद, और वह भी वहॉंके एक सुयोग्य स्थानीय अधिकारीके प्रयत्नो द्वारा ही, इन प्रदेशमे मुगल आगे बढ सके।

कल्याणके एक अरब सैय्यद मातवरखाँको जब नासिक ज़िलेका थानेदार नियुक्त किया, तब सन् १६८८में प्रथम बार उसने अपने साहस और दूरदर्शिताका परिचय दिया, जिससे उसकी ओर ध्यान आकर्षित होने लगा। पास-पडोसके कई जमीदारोको उसने अपने साथ कर लिया और शक्ति या लालच द्वारा उसने मराठोके कई किलोपर भी अधिकार किया। शम्भूजीका अन्त होनेके बाद यह विजयी मुगल सेनानी घाटोंको पार कर कोकणमे उतर आया। इस प्रान्तमे अगस्त माहमें माहुलीको भी उसने ले लिया। इस प्रकार कोली प्रदेशसे लेकर नीचे दक्षिणमे बम्बईके अक्षाश तकका सारा उत्तरी कोकण मुगलोके अधिकारमे आ गया। वहाँ मातवरने शाही शासन स्थापित किया और शान्ति स्थापित कर उस प्रदेशमे खेतीबाडी तथा समृद्धि पुन. प्रारम्भ करनेके हेतु उसने किसानोको ला-लाकर वहाँ बसाया।

इन सफल चढाइयोके बाद सन् १६९० ई०मे मातवरखाँ कल्याणको लौट गया और अगले कुछ वर्ष उसने वहाँ शान्तिपूर्वक ही बिताए। किन्तु १६९३के प्रारम्भमे मराठोने अपनी शक्ति पुन प्राप्त कर ली थी और विवश होकर मुगलोको रक्षात्मक नीति ही अपनानी पड रही थी। घूमनेवाले मराठोके लुटेरे दल मुग़ल प्रदेशोपर आक्रमण कर कुछ ही समय पहिले मराठोसे जीते हुए उनके किलोको मुगलोके अधिकारसे वापस लेने लगे। पुर्तगाली सूबेदारको रिश्वत देकर उत्तरी कोकणके अपने किलो और गाँवोमे आवश्यक खाद्य-सामग्री पहुँचाते रहनेके लिए मराठोने पहिले ही प्रबन्ध कर लिया था। अतएव मातवरखाँने पुर्तगाली प्रदेशके इस उत्तरी भागपर आक्रमण किया, जिससे विवश होकर गोआके वाइसरायने मुगलोके साथ सन्धि कर ली और औरगजेबकी सेवामे उपहार भेजकर अपनी अधीनताका प्रमाण भी दिया।

अध्याय १६

औरंगज़ेबके जीवन-कालके अन्तिम वर्ष

१. मराठा नेताओंकी राजनीति व चालें; १६८९–१६९९

शम्भाजीकी गद्दीपर बैठनेके कुछ ही समय बाद जब मराठोंका नया राजा राजाराम जुलाई, १६८९मे मद्रासके पूर्वी तटको भाग गया, तब महाराष्ट्र देशके शासन-प्रबन्धका सारा भार वहाँ पीछे रह जानेवाले उसके मन्त्रियोपर ही आ पड़ा। 'हुकूमत-पनाह'की उपाधि देकर रामचन्द्र नीलकण्ठको इस पश्चिमी प्रदेशका राज्याभिभावक नियुक्त किया। राजा-विहीनके समान इस राज्यका सारा काम-काज उसने बड़ी ही बुद्धिमानी और कार्य-कुशलतासे चलाया। आगे बढते हुए मुगलोको भी उसने रोक दिया।

कर्नाटक पहुँचनेपर राजाराम वहाँ व्यभिचारमें लीन हो गया, किन्तु जन्मसे भी वह बहुत ही निर्बल मनका था। उसकी राजनैतिक स्थितिने उसे पूर्णतया शक्तिहीन बना दिया। राजा बन जानेपर भी न उसकी अपनी कोई सेना थी और न अपना निजी कोष ही, और न उसकी ऐसी प्रजा ही थी जिसपर उसका पूर्ण एकाधिपत्य हो। अपने साथ एक हज़ार या केवल पाँस सौ सैनिक एकत्र करके कोई भी मराठा सेनानायक अपनी सेवाओं तथा आज्ञापालनके पुरस्कारस्वरूप उस नाम-मात्रके मराठा राजासे अपनी सारी मनचाही शर्तें स्वीकार करवा सकता था। अतएव उपाधियाँ देने और जीते हुए प्रदेशोंको भी बाँटनेमें राजाराम बड़ी उदारता दिखाता था। सारे ही मराठा सरदार अपने राजाके पास जिंजी गए, जहाँ उसने उन्हे ख़िताब, सेनाओंका सेनापतित्व तथा ऐसे विभिन्न जिले दिए, जहाँ जाकर उनको लूटमार करना तथा चौथ वसूल करना

थी। जब उसका राज्य दिनोंदिन घटता जा रहा था, तब भी उसके दिए हुए खिताबो और नए नियुक्त पदाधिकारियोंकी सख्या दुगुनी हो गई, जिससे ही राजारामकी राजनैतिक नि सत्त्वता पूर्णतया प्रदर्शित हो जाती है। प्रत्येक अभिमानी स्वार्थी सरदार या नायककी इच्छापूर्ति किए विना राजारामका काम नही चल सकता था।

परन्तु शासकीय सत्ताका यह विकेन्द्रीकरण महाराष्ट्रकी तत्कालीन परिस्थितिके लिए सर्वथा उपयुक्त था। सारे मराठा सेनानायक अपने-अपने स्वार्थोसे प्रेरित होकर अपनी-अपनी इच्छानुसार मुगलोंके विरुद्ध छापामार युद्ध करते रहते थे, जिससे मुगल प्रदेशमे अत्यधिक उपद्रव मचता था और आशातीत हानि पहुँचती थी। किस स्थान विशेषकी रक्षाके लिए प्रबन्ध किया जावे तथा शत्रुको पराजित करनेके लिए किस महत्त्वपूर्ण स्थानपर आक्रमण करना चाहिए यह शाही सेनानायकोंको बिलकुल ही समझमे आता न था। तेजीके साथ घूमनेवाले मराठे सैनिकोंके दल दूर-दूरका धावा मारकर बिलकुल ही अनपेक्षित स्थानोपर अचानक आक्रमण करते थे; और मराठा लुटेरोके ऐसे दल असख्य थे।

जिंजीके मराठा राजदरबारके तथा महाराष्ट्रमे पीछे रह जानेवाले मन्त्रियोमे पारस्परिक द्वेष और वैमनस्य चलते ही रहते थे। परशुराम त्रिम्बकने अपनी एक गुट बना ली और सन्ताजी घोरपडेको भी उसमें सम्मिलित कर लिया। जिसका एक स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि रामचन्द्र धन्ना जादवका पक्ष लेने लगा। सन्ताजी घोरपड़े एव धन्ना जादवकी इस प्रतिद्वन्द्विताके फलस्वरूप सन् १६९६ ई०मे एक गृह-युद्ध छिड़ गया और उन दोनोके बीच तीन युद्ध हुए। जून, १६९७मे सन्ताके मारे जानेपर एक ओर उसके पुत्र राणोजी एव उसके भाई बहीरजी हिन्दूरावमें तथा दूसरी ओर धन्नाके पक्षवालोमे वशपरम्परागत शत्रुता हो गई जिसके दूर होनेमे बहुत समय लगा। किन्तु मराठोके इन आपसी झगड़ोके कारण मुगलोको सुस्तानेके लिए कुछ अवकाश मिल गया।

२. राजमाता बनकर ताराबाईका शासन करना; मराठा राज्यमें आपसी फूट एवं बेबनाव

२ मार्च, १७००को राजारामकी मृत्यु हुई और उसके बाद तीन सप्ताह तक शासन कर जब उसका अनौरस पुत्र कर्ण भी मर गया, तब

ताराबाईने अपने ही औरस पुत्र दस-वर्षीय शिवाजीको गद्दीपर बैठाया और परशुराम त्रिम्बककी सहायतासे वह स्वयं शासन करने लगी। इस प्रकार राज्याभिभावककी देख-रेखमें दूसरी बार मराठा राज्यका शासन-प्रबन्ध प्रारम्भ हुआ। अब महाराष्ट्रका प्रमुख सूत्रधार कोई मन्त्री न था, किन्तु विधवा राजमाता ताराबाई मोहितेके ही आदेशानुसार सब कुछ संचालित होता था। राजारामकी मृत्युके बाद उत्तराधिकारके लिए छिड़नेवाले गृह-युद्ध तथा सन् १६९९ से १७०१ ई० तक होनेवाली औरंगजेबकी निरन्तर सफलताओके फलस्वरूप मराठा जातिके लिए जो विषम संकट उपस्थित हुआ था, अपनी शासकीय योग्यता एवं चारित्र्यबलके द्वारा ताराबाईने मराठोको उससे बचा लिया। विरोधी मुसलमान इतिहासकार खफीखाँको भी विवश होकर स्वीकार करना पडा कि वह बुद्धिमती, साहसी, शासनकलामें निपुण तथा सेनामे लोक-प्रिय रानी थी। "ताराबाईके निर्देशनमें मराठोकी कार्यकारिता दिनोदिन बढने लगी। सेनापतियोकी नियुक्ति और उनकी बदला-बदली, देशमे खेती-वाड़ी, तथा मुगल प्रदेशपर आक्रमणोके आयोजन बनाने जैसे सारे ही महत्त्वपूर्ण कार्य उसने अपने हाथमे ले लिए। दक्षिणके छः सूबोके साथ ही साथ मालवामे मन्दसौर और सिरोज तक धावा मारकर वहाँ बरबादी करनेके लिए सेनाएँ भेजने तथा अपने अधिकारियोको अपने प्रति स्वामि-भक्त बनाए रखनेके लिए उसने ऐसा प्रबन्ध किया कि मराठोंको दबानेके लिए अपने शासन-कालके अन्त तक किए गए औरंगजेबके सारे ही प्रयत्न विफल रहे।"

परन्तु यह प्रभुता प्राप्त करनेके लिए ताराबाईको कठिन संघर्षका सामना करना पड़ा था। कुछ सेनापति उसके आज्ञाकारी थे, परन्तु कुछ उसके आदेशोको सुनते न थे। राजारामकी छोटी रानी एवं शम्भूजी द्वितीयकी जननी राजसबाईने अपने पुत्रको प्रतिद्वन्द्वी राजा बनाया तथा अपना एक विरोधी दल संगठित कर वह ताराबाईसे झगडने लगी। उधर मराठा नेताओंमे एक तीसरा दल भी था, जो जातीय एकता स्थापित करनेके लिए शिवाजीके वंशजोमें ज्येष्ठतर शाखाके प्रतिनिधि होनेके नाते शाहूको राजा बनाना चाहता था। मराठा सेनापतियों, विशेषतया धन्ना जादव और सन्ता घोरपड़े तथा उनके पक्षवालोंकी व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द्विताने इन राजवंशीय झगड़ोंको और भी उलझा दिया।

३. शाहूका कैदी जीवन, १६८९–१७०७ ई०

मुगलोंके मराठा सहयोगी

अक्तूबर, १६८९मे राजगढका किला मुगलोंके अधिकारमे आनेपर सात वर्षकी उम्रमे ही शम्भूजीका ज्येष्ठ पुत्र मुगलोके हाथो कैद हो गया था। यद्यपि उसे सम्राट्‌के डेरेके पास ही रखते थे और उसके साथ बडी ही दयालुताका व्यवहार किया जाता था, उसपर बहुत ही कड़ा पहरा रहता था। उसकी माँ येसुबाई तथा उसके सौतेले भाई मदनसिंह और माधोसिंह भी उसीके साथ रहते थे। सन् १७०० ई०मे शाहू बहुत ही सख्त बीमार पड़ गया, जिससे उसके शरीर और मस्तिष्क इतने अधिक जर्जरित हो गए थे कि वे जीवन भर बेकाम ही रहे।

जैसे-जैसे औरंगजेबके चारो ओर कठिनाइयाँ बढ़ती जा रही थी और ज्यो-ज्यो दक्षिणकी यह उलझन अधिकाधिक विकट होती जा रही थी, शाहूके द्वारा मराठा सेनापतियोसे झगड़ा निपटानेके आयोजन औरंगजेब बनाने लगा। पहिले तो ९ मई, १७०३के दिन शाहूको मुसलमान बन जानेके लिए कहा गया, किन्तु शाहू धर्म-परिवर्तन करनेको तैयार नही हुआ। तब शाहूको कैदसे छुटकारा देकर मराठोंमें आपसी फूट डालनेकी भी औरंगजेबने सोची। शाहजादे कामबख्शके जरिए प्रमुख मराठा सेनापतियोके साथ सन्धि कर शाहूको छोडनेकी शर्तें तय होनेवाली थी। किन्तु यह चाल भी विफल हुई और "राजा शाहूको फिर गुलालबारमे नजरबन्द कर दिया गया।"

औरंगजेबने अपनी पूर्ण निस्सहायताको महसूस किया। अपने जीवनके अन्तिम वर्ष सन् १७०७मे उसने मराठोके साथ सन्धि करनेके लिए एक बार और प्रयत्न करनेका निश्चय किया, किन्तु उसका भी कोई नतीजा नही निकला। मराठोमे गृह-युद्ध छिड गया था, किन्तु उससे लाभ उठानेकी औरंगजेबकी आशा इस बार भी निष्फल ही हुई।

इधर अनेकानेक विभिन्न हेतुसे कई प्रमुख मराठा घराने मुगलोकी सेवामे लगे हुए थे। सिदखेडके जादवरावका कुलीन घराना कई पीढियोसे मुगलोके पक्षमे बना हुआ था। शम्भूजीके अत्याचारोसे पीडित कान्होजी शिर्के और उसके पुत्रोने भागकर मुगल सम्राट्‌का आश्रय लिया था। शिर्के घरानेके साथ ही नागोजी माने भी सदैव मुगलोके प्रति स्वामिभक्त बना

रहा और बहुत समय तक उसने मुगलोंकी उल्लेखनीय सेवाएँ की। औरंग-जेबके तीन अन्य भक्त मराठा सेवक थे आवजी अढल, रामचन्द्र और बहीरजी पाँढरे।

मराठा सरदार सतवाजी डफले भी मुगल सेवक था। इस घरानेकी गणना पहिले आदिलशाही सुलतानके सरदारोमें होती थी। आदिलशाही घरानेका अन्त होनेपर मुगल विजेताने उन्हे अपनी सेवामें ले लिया। सन् १६९५से पहिले सतवाने स्वयं तो मुगलोके पक्षको छोड़ दिया था, परन्तु अगस्त, १७०१मे उसे पच-हजारी मनसव दिए जाने तथा १३ अप्रैल, १७००को सताराके घेरेके समय प्रदर्शित उसके स्वर्गीय पुत्रकी वीरता व आत्म-बलिदानके पुरस्कार-स्वरूप जथका परगना जागीरमें मिलनेपर वह पीछा औरंगजेबके पक्षमे हो गया।

कई हज़ार मराठा पहाड़ी पैदल सैनिक, मावले, औरगज़ेबकी सेनामें नौकर थे। किन्तु इसका एकमात्र वास्तविक प्रभाव यही होता था कि वे कोई उपद्रव नही कर सकते थे।

४. औरंगज़ेबका सतारा किलेको घेरना

मराठोके वडे ही सुदृढ क़िलोपर चढाई करनेके लिए १९ अक्तूवर, १६९९को औरंगजेव इस्लामपुरीसे चला, औरगजेबके जीवनके अगले छः वर्ष इन्ही चढाइयोमे खप जानेवाले थे। एक-एक कर उसने सतारा, पार्ली, पन्हाला, विशालगढ (खेलना), कोण्डाना (सिंहगढ़), राजगढ और तोरणाके सुप्रसिद्ध पहाड़ी किले जीते, इनके अतिरिक्त पाँच और कम महत्त्वके स्थानोंपर भी उसका अधिकार हो गया था। किन्तु यह वात विशेष रूपसे स्मरणीय है कि एकमात्र तोरणा छोडकर दूसरा कोई भी किला आक्रमण करके जीता नही गया, कुछ समयके उपरान्त ही इन अन्य किलोने आत्मसमर्पण किया और उसके लिए भी कुछ-न-कुछ कीमत अवश्य ही चुकानी पडी थी, वहाँके दुर्गरक्षकोको अपना निजी सारा माल-असवाव लेकर वेरोक-टोक जाने दिया गया और अपने विरोधका अन्त कर देनेके पुरस्कारस्वरूप वहाँके किलेदारोंको वहुमूल्य इनाम दिए गए।

अपनी उदयपुरी वेगम, उसके पुत्र शाहजादे कामवख्श तथा अपनी वेटी शाहजादी जीनत उन्निसाको औरंगज़ेवने अनावश्यक माल-असवाव,

अतिरिक्त अधिकारियो, सैनिकोके कुटुम्वो और छावनीके नौकरोंके साथ इस्लामपुरीमे ही छोड दिया था। एक उपयुक्त सेना देकर वहाँकी देख-रेखका भार वजीर असदखाँको सौपा गया। घेरा डालनेवाले मुगल सैनिक पडावके आसपास मण्डरानेवाले या इस्लामपुरीके इस केन्द्रपर आक्रमण करनेको उद्यत रणतत्पर मराठे सैनिकदलोके साथ युद्ध करनेका काम जुल्फिकारखाँको सौपा गया, जिसे अव नसरतजगका खिताव मिला।

इस्लामपुरीसे चलकर शाही सेना ८ दिसम्वरको सताराके सामने जा पहुँची। किलेकी शहरपनाहसे कोई डेढ मील उत्तरमे स्थित करंजा नामक गाँवमे उसने अपना पडाव डाला। अपने नौकरो तथा वारवरदारीके पशुओको एक ही स्थानपर पाँच मीलके घेरेमे एकत्रित कर शाही सेनाने अपने पडावके चारो ओर किलेवन्दीकी दीवाल खड़ी कर दी जिससे कि मराठा आक्रमणकारी शाही पडावमे न घुस सके। ९ दिसम्वरको किलेका घेरा डालनेका काम प्रारम्भ हुआ। उस पथरीली धरतीमे खोदनेका काम बहुत ही धीरे-धीरे और वडी ही कठिनाईसे हो पाता था। दुर्गरक्षक निरन्तर रातदिन सव तरहके अस्त्रोकी वौछार मुगल सेनापर करते रहते थे। किन्तु किलेको पूरी तरह घेरा भी नही जा सका था, जिससे इस घेरेका अन्त होने तक भी शत्रु सताराके क़िलेमे आते-जाते ही रहते थे।

दुर्गरक्षक सेना बारम्वार मुगलोपर आक्रमण भी करती थी, किन्तु हर बार थोडी बहुत हानिके साथ मुगल उन्हे विफल मनोरथ ही मार भगाते थे। किन्तु युद्धक्षेत्रमे उतरी हुई दूसरी मराठा सेनाएँ ही मुगलोंके लिए सबसे बडा खतरा सावित हुई, क्योकि घेरा डालनेवाली इस मुगल सेनाकी हालत भी उन्होने एक घिरे हुए नगरकी-सी कर दी। घास-दाना एकत्र करनेवाले मुगल सैनिक-दल भी प्रमुख मुगल सरदारोके सरक्षणमे बिना शक्तिशाली रक्षकोके बाहर भी नही निकल सकते थे। धन्ना, शकरा तथा अन्य शत्रु सेनानायक सारे मुगल प्रदेशमे फैल गए और गाँवोपर आक्रमण कर मुगलोकी चौकियोको हटाने तथा वनजारोको भी इधर-उधर जानेसे रोकने लगे।

कड़ी मिहनतके बाद तरबियतखाँने २४ गज लम्बी एक सुरग खोद कर तैयार की जो किलेकी दीवालके नीचे तक पहुँच गई थी। किन्तु दीवाल तोडकर उसपर आक्रमण करना अनुचित समझा गया। तब २३ ज़नवरीको शाही सेनासे नौकर २,००० मावलोने अचानक क़िलेकी दीवाल

फांदकर अन्दर जा पहुँचनेका प्रयत्न किया, किन्तु उन्हें सफलता न मिली। १३ अप्रैलको दो सुरंगे दागी गई। पहिलीके चलनेसे कई दुर्गरक्षक मर गए और गिरी हुई दीवालके ढेरके नीचे हवालदार प्रयागजी प्रभु दब गया, किन्तु उसे जीवित ही खोदकर निकाल लिया गया। दूसरी सुरग बाहरकी ओर फूटी; एक बुर्ज उड़ गई और आक्रमणके लिए दीवालके नीचे एक साथ एकत्र हुए बहुतसे मुगल सैनिकोंपर वह गिरी, जिससे कोई दो हजार मुग़ल सैनिक मर गए। इस धड़ाकेसे दीवालमे कोई बीस गज चौडी दरार पड़ गई। कुछ वीर शाही सेनानायक और विशेषतया बीजापुर जिलेमे स्थित जथ राज्यके सस्थापक सतवा डफलेका बेटा बाजी चव्हाण डफले शहरपनाहके सिरेकी ओर दौड़ पड़े और "ऊपर चले आओ! यहाँ दुश्मन नही है!" चिल्ला-चिल्लाकर अपने साथियोको भी बुलाने लगे। किन्तु किसी भी मुगल सैनिकने उनका साथ नही दिया। इस धड़ाकेसे आई हुई आपत्तिसे बच जानेवाले मुगल सैनिक इतने स्तब्ध और भयभीत हो गए थे कि उनमेसे कोई भी अपनी खाईमेसे नही निकला। अचानककी इस घटनासे उत्पन्न हुई दुर्गरक्षकोकी घबडाहट तब तक दूर हो चुकी थी, वे अब तत्परताके साथ उस टूटी हुई दीवालकी ओर झपटे और मुगलोंकी एकमात्र आशा उस वीर सेनापतिको भी उन्होंने मार डाला।

अन्तमे हताश होकर सताराके किलेदार सुभानजीने शाहजादे आजमके द्वारा औरगजेबसे शर्तें कर ली। २१ अप्रेलको उसने अपने किलेपर शाही झण्डा चढ़ा दिया और दूसरे दिन अपने अन्य साथी दुर्गरक्षकोंके साथ ही उसने क़िला ख़ाली कर दिया। शाहजादे मुहम्मद आजमके सम्मानार्थ इस किलेका नाम बदलकर 'आजमतारा' रखा गया।

८. पार्लीके किलेको जीतना

इसके कुछ ही दिनों बाद सतारासे छः मील पश्चिममें स्थित पार्ली क़िलेका घेरा डालकर मुगलोने वहाँ खाइयाँ खोदी। यह क़िला शिवाजीके गुरू रामदास स्वामीका निवास-स्थान था, और जब मुगल सताराके किलेको घेरे हुए थे तब मराठा शासनका प्रधान केन्द्र इसी किलेमें था। राजारामकी मृत्यु तथा सताराके किलेके पतनके बाद हताश होकर मराठा शासनका प्रमुख माल-हाकिम परशुराम पार्लीके किलेसे निकल भागा, परन्तु उसके अधीन अधिकारी क़िलेमें ही रहकर मुगलोका विरोध करते

रहे। अन्तमे वहाँके किलेदारसे शर्तें कर ली गईं और घूस देकर ९ जूनको पार्ली किला भी खाली करवा लिया गया।

इन दोनो घेरोमे शाही सेनाके बहुत अधिक आदमी, घोडे और बारबरदारीके पशु व्यर्थ ही मर गए। शाही कोष खाली था, सैनिकोकी तीन वर्षकी तनख्वाह चढी हुई थी, जिस कारण वे भूखो मर रहे थे। पहिले कभी न हुई ऐसी मूसलाधार वर्षा मईके प्रारम्भसे ही होने लगी, जो जुलाईके अन्त तक होती ही रही। वापस भूपणगढको लौटनेके लिए २१ जूनको शाही सेना वहाँसे चल पडी, किन्तु इस यात्रामे बेचारे सैनिकोकी कठिनाइयाँ असहनीय हो गई। बारबरदारीके प्राय. सारे ही पशु घेरेके दिनोमे मर चुके थे। ४५ मीलका यह रास्ता तय करनेमे मुगल सेनाको ३५ दिन लगे। तब ३० अगस्त, १७००ई०को शाही पडाव वहाँसे ३६ मील दूर मान नदीपर स्थित खवासपुर ले गए और वहाँ उस नदीके दोनो ही किनारो तथा नदीके मध्यमे सूखे भागपर भी शाही सैनिकोने पडाव किया। तब ऊपर पहाडोमे असमय ही घनघोर वर्षा हो जानेसे अक्तूबरकी एक रातके समय जब सब सैनिक गहरी नीद सो रहे थे, नदीमे एकाएक भयकर बाढ आई, जिससे उसका पानी दोनो किनारोसे भी ऊपर चढकर आसपासके मैदानोमे फैल गया। कई आदमी और पशु इस बाढ़मे मर मिटे और उससे भी अधिक सैनिक तथा कई सरदार भी बिलकुल दरिद्री तथा नगे हो गए, प्राय सारे ही तम्बू तथा अन्य माल-असबाब बरबाद हो गए।

आधी रातसे कुछ ही पहिले जब प्रथम बार बाढका पानी पडावमे जा घुसा तब सारी सेनामे बडे जोरोसे कोलाहल मच गया। सम्राट्को भय हुआ कि मराठे पडावमे घुस आए है, अतएव वह घबडाकर उठा, किन्तु ठोकर खाकर गिर पडा, जिससे उसका दाहिना घुटना उखड गया। इस जोडको हकीम पीछा ठीक तरह नही जमा सके, जिससे शेष जीवन भर वह उस पैरसे कुछ लँगड़ाता ही रहा। शाही-दरबारके चापलूस इसे सम्राट्के पूर्वज विश्व-विजेता तैमूरलगकी विरासत बताकर औरगजेबको दिलासा देते थे।

शाही सेनाके इन सारे दुर्भाग्योसे मराठोने पूरा-पूरा लाभ उठाया।

६. पन्हालाका घेरा, १७०१ ई०

अब पन्हालापर आक्रमण हुआ। ९ मार्च, १७०१को औरंगजेब वहाँ

पहुँचा, और पन्हाला तथा उसके साथ ही उसके पड़ोसी किले पावनगढको भी पूरी तरह घेरकर कोई १४ मीलकी लम्बाईमे यह घेरा डाला। "जहाँ कही भी वे सिर उठावे वही उन्हे दबा देनेके लिए" एक घूमते-फिरते सैनिक-दलके साथ नसरतजगको वहाँसे रवाना किया। किन्तु पथरीले स्थानमे सुरग खोदनेका काम बहुत ही धीरे-धीरे चलना अवश्यम्भावी था, और साथ ही भयकारक वर्षा ऋतु भी दिनोंदिन पास आ रही थी। जहाँ सम्राट्के दोनो सर्वोच्च सेनापतियो नसरतजग और फिरोजजगमे इतनी उत्कट प्रतिस्पर्धा घर कर गई थी कि दोनोको साथ ही एक स्थान-पर किसी कार्यमे लगाना सर्वथा असम्भव हो गया था, वहाँ अब तर-बियतखाँ और फतेहउल्लाखाँमे भी प्रतिद्वन्द्विता छिड गई, तथा तब ही आगे बढे हुए गुजरातके एक नये सुयोग्य अधिकारी मुहम्मद मुरादसे सारे ही पुराने अधिकारी ईर्ष्या करने लगे। सेनापतियोके इस आपसी बेबनाव और द्वेषके कारण उनका एक-दूसरेसे सहयोग करना सर्वथा असम्भव हो गया। उलटे एक-दूसरेके कार्यमे बाधा डालते रहनेका ये गुप्त रूपसे भरसक प्रयत्न करते थे। बरसात शुरू होनेसे पहिले ही पन्हालापर अधिकार कर लेनेके लिए वहाँके किलेदार त्रिम्बकको बहुत बड़ी रिश्वत दी गई, तब २८ मई, १७०१को उसने वह किला मुगलोंको सौप दिया।

७. खेलनाका घेरा

तब औरगजेब खेलनाके (अथवा विशालगढके) किलेको जीतनेके लिए निकला। पन्हालासे तीस मील पश्चिममें समुद्रसे ३,३५० फुट ऊँची सह्याद्रि पर्वतकी चोटीपर स्थित इस किलेसे पश्चिममे दूर तक कोकणके मैदान फैले हुए है। इस जिलेमे काफी ठण्डक रहती है और वहाँ पानी भी बहुत बरसता है, सत्रहवी शताब्दीमे यहाँकी पहाड़ियाँ, वृक्षो और घनी झाड़ियोसे पूरी तरह ढकी हुई थी।

वर्धनगढसे ७ नवम्बर, १७०१ ई०को रवाना हो राहमें १२ पड़ाव करनेपर औरंगजेब मलकापुरके पास पहुँचा। यहाँ एक सप्ताह तक वह ठहरा रहा और तब तक आगेकी राह ठीक करनेको उसने मजदूरों आदि-को वहाँ भेजा। अभी अम्बाघाटीको सारी सेनाके निकल सकने योग्य बनाना था। अनेको रास्ता बनानेवालो और पत्थर तोड़नेवालोंको एक सप्ताह तक वहाँ लगाकर निरन्तर कड़ी मिहनतके बाद फतेहउल्लाखाँने

इस कठिन कार्यको किसी तरह पूरा किया। तब घेरा डालनेके लिए २६ दिसम्बरके दिन अहमदखाँको भेजा गया। १६ जनवरी, १७०२को औरगजेबने भी खेलनासे एक मीलकी ही दूरीपर पहुँच वहाँ अपना डेरा लगाया। उस घाटीको पार करने तथा उसके पडाव और माल-असवावको किलेके नीचे तक पहुँचानेमे औरगजेबके अनुयायियोको अत्यधिक कठनाइयाँ और हानि उठानी पडी।

जनवरीसे लेकर जून, १७०२ तक पूरे पाँच माह यह घेरा चलता ही गया। और तब बम्बईके समुद्री तटकी भयकारक वर्षा ऋतु प्रारम्भ होकर आज्ञाकारी मुगल सेनाको तर-बतर करने लगी। बेदारबख्तसे वहुत बडी रिश्वत लेकर ४ जूनको किलेदार परशुरामने किलेके परकोटेपर शाहजादेका झण्डा चढाया और ७ जूनकी रातको दुर्गरक्षकोने वह किला खाली कर दिया।

खेलनासे लौटते समय मुगल सेनाने जो दु.ख उठाए थे वे सर्वथा अवर्णनीय थे। उसी हालतमे ३८ दिनमे ३० मीलका रास्ता पार कर १७ जुलाई, १७०२को यह दुर्दशापन्न सेना पन्हालाके पास पहुँची। अन्तमे १३ नवम्बर, १७०२को मुगल भीमा नदीके उत्तरी तीरपर बहादुरगढ अथवा पेड़गाँव पहुँचे।

८. कोण्डानाके (सिंहगढ़), राजगढ़ और तोरणाके घेरे

केवल १८ दिन ही विश्राम करनेके बाद २ दिसम्बरको औरगजेब कोण्डाना (सिंहगढ) जीतनेके लिए चल पड़ा और २७ दिसम्बरके दिन वहाँ पहुँचा। शाही कुटुम्ब, दफ्तर और सारा भारी माल-असबाव बहादुरगढ भेज दिया गया। घेरा प्रारम्भ हुआ, परन्तु जी लगाकर कोई भी व्यक्ति प्रयत्न नही करता था एव पूरे तीन माह इसी तरह व्यर्थ ही बरबाद हुए। उधर वर्षा ऋतु भी निकट आ रही थी, एव सम्राट्के अधिकारियोने किलेदारको बडी घूस देकर ८ अप्रैल, १७०३ ई०को किलेपर अधिकार कर लिया।

कोण्डानासे रवाना होकर एक सप्ताहमे शाही सेना पूना पहुँची (१ मई), जहाँ सात माह तक वह ठहरी रही। सन् १७०३–४ ई०मे वहाँ बिलकुल ही वर्षा नही हुई, जिससे सारे महाराष्ट्रमे अकाल पड़ गया और महामारी फैल गई।

तब राजगढ पहुँचकर ३ दिसम्बर, १७०३को शाही सेनाने वहाँका घेरा डाला। आक्रमण कर उन्होने ६ फरवरी, १७०४को किलेके पहिले फाटकपर अधिकार कर लिया। दुर्गरक्षक अब भीतरी क़िलेमे जा घुसे। अन्तमें शर्ते कर १६ फरवरीकी रातको किलेदार वहाँसे भाग खड़ा हुआ।

उसके बाद औरगजेबने तोरणाका घेरा डाला। १० मार्चकी रातमें केवल २३ मावले पैदल सैनिकोको साथ ले अमानुल्लाख़ाँने चुपचाप क़िलेकी दीवाल फाँदी और शत्रुपर आक्रमण कर दिया। किसी भी प्रकारकी रिश्वत दिए बिना केवल बलपूर्वक इस एक किलेको ही औरंगजेबने जीता था।

तोरणासे शाही पडाव खेड़ पहुँचा, जहाँसे २२ अक्तूबर, १७०४को औरगजेबने अपने जीवन-कालकी अन्तिम चढ़ाईके लिए प्रस्थान किया।

९. बेरड़ जाति, उनका प्रदेश तथा उनका नायक

बीजापुर नगरसे पूर्वमें स्थित कृष्णा और भीमा नदियोंके बीचका प्रदेश बेरड़ोका निवास-स्थान है। कन्नड़ आदिवासी जातिके लोग ढेड़ भी कहलाते है और हिन्दू जातियोंमें निम्नतर श्रेणीके अछूतोंमें उनकी गणना होती है। वे बहुत ही शक्तिपूर्ण तथा परिश्रमी होते है। वे प्राय. जंगली ही होते है और उच्च जातीय अति-सभ्य हिन्दुओकी तरह वे सुकुमार नही हो पाए है। वे बकरे, गाय, सूअर, मुर्गो आदिका माँस खाते है, और अत्यधिक मदिरापान भी करते है। उनका रग साँवला, शरीर सुगठित, कद मझौला, चेहरा गोल, गाल चिपटे, होठ पतले तथा बाल पतले या घुघराले होते है। वे कठिनाइयाँ सहन कर सकते है, किन्तु किसी स्थायी उद्योग-धधेमे लगना या शान्तिपूर्वक जीविका पैदा करना उनकी प्रकृतिके विपरीत है। उनके जातीय सगठनके अनुसार विभिन्न घरानोके प्रमुखोके नियन्त्रण तथा सारी जातिके मुखियाकी सर्वोच्च न्याय-सत्ताके कारण उस जातिमे अनुशासन तथा एकता बनी रहती थी। ईसाकी १७ वी और १८ वी शताब्दियोमे दक्षिणी भारतके साहसी अचूक निशानेबाज प्राय. इसी जातिके होते थे। युद्धमें वीरता दिखाने तथा वहाँ लगनेवाले घावो तथा मृत्यु तककी पूर्ण उपेक्षाके लिए वे सुविख्यात थे। उसी तरह बहुत ही दक्ष ढोर चुरानेवालोसे जैसी आशा की जा सकती है, वैसी ही चतुराई वे रातके समय आक्रमण करने या अचानक छापा मारनेमे भी दिखाते थे, तथा उनकी यह विशेषता सर्वत्र सुज्ञात थी। उनके नामके अर्थ-श्लेष

अलंकार द्वारा समकालीन इतिहासकार उन्हे 'बेडर' (निर्भीक) कहा करते थे।

कृष्णा और भीमाके बीचवाले शोरापुर प्रदेशके बेरड नायको या शासकोकी राजधानी सागर बीजापुरसे कोई ७२ मील पूर्वमे है। सन् १६८७ ई०मे जब मुगलोने सागरपर अधिकार कर लिया, तब नायकने सागरसे ही १२ मील दक्षिण पश्चिममे वागिनखेडा नामक नई राजधानी बनवाई। औरगजेबके शासन-कालके अन्तिम वर्षोमे यह किला भी मुगलोने उससे छीन लिया, तब नायक अपनी राजधानीको वागिनखेड़ा-से चार मील ही दूर उसी पर्वत श्रेणीके पूर्वी ढालपर स्थित शोरापुर ले गया।

पाम नायकका भतीजा तथा उसका गोद लिया हुआ उत्तराधिकारी पीडिया नायक सन् १६८३मे शाही दरबारमे पहुँचा, औरगजेबकी सेवामे उपस्थित हुआ तब उसे शाही सेनामे मनसब भी मिल गया। मुगलोके सागर जीतने तथा उसके काकाकी मृत्युके वाद वह वागिनखेड़ाका किला बनाने और अपनी सेना सगठित करनेमे ही लगा रहा। अपनी ही जातिके कोई बारह हजार बहुत अच्छे निशानेबाज उसने एकत्र किए तथा धीरे-धीरे तोपे, गोला-बारूद और अन्य युद्ध-सामग्री भी इकट्ठा करता रहा। पीडिया नायक कुलबर्गा जिलेमे लूटमार भी करता था। अन्तमे उसकी यह लूटमार इतनी अधिक बढ गई कि उसके विरुद्ध कार्यवाही करना अनिवार्य हो गया।

१०. औरंगजेबका वागिनखेड़ा जीतना, १७०५

सन् १७०४ ई० समाप्त होते-होते जब सारे ही महत्त्वपूर्ण मराठा किले जीते जा चुके, तब अन्तमे औरगजेब वागिनखेड़ाके लिए रवाना हुआ और ८ फरवरी, १७०५को उसका घेरा प्रारम्भ हुआ।

किलेके फाटकके सामने नीचे मैदानमे दक्षिणकी ओर 'तलवरखेड़ा' नामक एक गाँव है, जिसके चारो ओर मिट्टीकी दीबाल बनी हुई है। सारी आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करनेके लिए किलेमे रहनेवाले दुर्गरक्षकोके वास्ते इस गाँवका बाजार ही एकमात्र स्थान है। इसीके पास घास-फूसकी बनी हुई झोपडियोका 'ढेडपुरा' नामक एक और गाँव है। साधारण गरीब बेरड़ोके कुटुम्ब यहाँ रहकर आसपासकी भूमिमे खेतीबाड़ी करते है।

इस सारे प्रदेशमें ये ही तीन स्थान है जहाँ मनुष्योंकी कोई बस्ती है। किन्तु किलेके पास ही पूर्व और उत्तरमें कई एक ऐसी पहाड़ियाँ है, जो घेरा डालनेवालोके लिए बहुत ही उपयोगी हो सकती है। वहाँकी लाल धरतीके कारण उनमेसे एक 'लाल टेकरी' कहलाती थी, जिसपरसे वागिनखेड़ा किलेके एक भागका भीतरी हिस्सा कुछ-कुछ देख पडता था। उस किलेकी सुरक्षाके लिए यह लाल टेकरी बहुत ही महत्त्वकी थी, किन्तु आसपासकी इन पहाडियोपर भी छोटी-छोटी बुर्जे बना लेने या वहाँ कोई सुदृढ चौकियाँ स्थापित करनेकी बेरडोने कभी नही सोची।

एक दिन प्रात कालमे किलेकी आरक्षाओंके मर्म स्थानोको खोजनेके लिए जब मुगल सेनापति देखभाल कर रहे थे तब उन्होने एकाएक लाल टेकरीपर हमला कर दिया और उसके सिरेपरके बेरड़ निशानेबाजोको मार भगाया तथा उस टेकरीपर अधिकार कर लिया। चट्टानोवाली उस पहाड़ीपर खाइयाँ खोदकर वहाँ अपनी स्थिति सुदृढ करना मुगलोके लिए सर्वथा असम्भव था। तत्काल ही बेरड़ोने अपने पैदल सैनिकके बड़े-बड़े दल भेजे, "चीटियो और टिड्डियोकी ही तरह असख्य" इन बेरड़ोने उस पहाडीको घेर लिया और पहाडीकी चोटीपर एकत्र हुए शाही सैनिकोपर वे पत्थरो और बन्दूकोकी गोलियोके घातक निशाने लगाने लगे। बहुतसे मुगल सैनिक मारे गए और अन्तमे विवश होकर मुगलोको वह पहाड़ी छोड देनी पड़ी।

किन्तु २६ मार्चको धन्ना जादव और सन्ता घोरपड़ेके भाई हिन्दूरावके नेतृत्वमे पाँच या छ हजार मराठा घुड़सवारोका एक दल उनके बेरड़ मित्रोकी सहायतार्थ किलेके पास आया। कई मराठा सेनापतियोके कुटुम्बोने भी उस किलेमे शरण ली थी, अतएव उन्हे किलेमेसे निकालकर किसी सुरक्षित स्थानमे पहुँचा देना ही मराठोंका पहला कार्य था। इस आगन्तुक मराठा सेनाके प्रधान दलने जब क़िलेके सम्मुख पहुँचकर घेरा डालनेवाली मुगल खाइयोंके साथ युद्ध करनेका कोलाहलपूर्ण दिखावा कर शाही सेनाको वहाँ उलझाए रखा, तब उनकी सहायतार्थ किलेकी दीवालोपरसे भी बड़ी जोरोसे गोलाबारी हुई। उसी समय चुने हुए २,००० मराठा घुडसवारोने वागिनखेड़ा क़िलेके पिछले दरवाजेसे मराठा स्त्रियो और बच्चोको निकाला तथा तेज भागनेवाली घोड़ियोपर वैठाकर उन्हे वहाँसे साथ ले गए। इस दूसरे दलके पृष्ठ भागकी रक्षार्थ पैदल सैनिकोंकी एक टुकड़ी किलेसे निकल आई।

जहाँ तक भी वे उसकी राजधानीकी रक्षामे उसको सहायता देंगे, तब तक कई हजार रुपये प्रति दिनके हिसाबसे मराठोको देते रहनेका पीडिया-ने वादा किया था। अतएव पास हीमे ठहरकर मराठे बारम्बार मुगलोपर आक्रमण करने लगे। अब तो स्वय मुगल सेनाकी भी हालत घिरे हुओकी-सी हो गई। उनकी सारी गतिविधि ही रुक गई, अपने पडावकी सीमासे बाहर निकलना भी उनके लिए कठिन हो गया। पडावमे घास और दाना बिलकुल ही नही मिलता था। औरगजेबने अपने सेनापतियोकी भर्त्सना की, किन्तु उसका भी कोई प्रभाव नही हुआ।

अब पीडियाने औरंगजेबके प्रति आत्मसमर्पणका प्रस्ताव किया। पास और दूरसे सारी ही सहायक सेनाको एकत्रित करनेके लिए पर्याप्त अव-काश प्राप्त करना ही उसकी इस बातचीतका वास्तविक उद्देश्य था।

अब्दुल गनी नामक एक मधुर-भापी परन्तु झूठा कश्मीरी फेरीवाला पीड़ियाकी ओरसे सन्धिका प्रस्ताव लेकर एक दिन शाही गुप्तचर विभागके मुखिया हिदायत-केशके पास पहुँचा। औरगजेबने उस पत्रका अनुकूल उत्तर दिया। तब अगली बार पीड़ियाने अपने भाई सोमसिहको शाही पडावमे भेजा और जमीदारी, सारी जातिका मुखिया पद तथा शाही मनसब अपने उस भाईको दिए जानेपर किला भी मुगलोको सौप देनेका पीड़ियाने प्रस्ताव किया। शाही पड़ावमे ठहरकर सोमसिहने वहाँ खबर उडा दी कि पागल होकर पीडिया मराठोके साथ भाग गया था। अगली बार वही कश्मीरी बेरड मुखियाकी माँकी ओरसे एक सन्देशा लाया, जिसमे भी उसी खबरको दुहराया गया और सोमसिहको वापस लौटने देनेके लिए प्रार्थना की गई, जिससे कि सात दिनमे किला खाली किया जा सके। सम्राट्ने सोमसिहको वापस जाने देनेकी स्वीकृति दे दी और अब लड़ाई भी बन्द हो गई।

किन्तु यह सब झूठ कब तक चलता! शीघ्र ही भण्डा फूट गया। यह सब धोखेबाजी ही थी। पीड़िया जीवित, सर्वथा स्वस्थ तथा तब भी किलेमे ही था। मुगलोको किला सौप देनेसे उसने इनकार कर दिया और अब मुगलोपर पुनः आक्रमण करने लगा। यह सब देखकर सम्राट् क्रोध और लज्जाके मारे पागल हो उठा।

अब औरगजेबने सब ओरसे अपने सारे ही योग्यतम सेनापतियोको वहाँ बुलवा लिया। नसरतजग २७ मार्चको वहाँ आया और दूसरे दिन शाही घुड़सवारोको साथ लेकर वह तेजीसे लाल टेकरीके पास जा पहुँचा।

घेरेके प्रारम्भमे इसी टेकरीपर एक बार मुगलोंका अधिकार हो गया था, परन्तु बादमें बेरड़ोने उन्हे वहाँसे पीछे हटनेको विवश किया था। इस टेकरी-पर चढकर नसरतजगने वहाँसे शत्रुओको मार भगाया। तब बेरड़ भागकर पहाड़ीके नीचे तलवरखेड़ामे जा पहुँचे और वहाँकी मिट्टीकी दीवालोके पीछे आश्रय लेकर वहीसे गोलियाँ चलाने लगे। लाल टेकरीके इस आक्र-मणमें तथा उस गाँवके बाहर बहुतसे राजपूत मारे गए। किन्तु नसरतजंग ने दलपत बुदेलाको आदेश दिया कि पासकी एक और पहाड़ीपर अधिकार कर ले जो तब भी शत्रुओंके हाथमे थी। इस दूसरी पहाड़ीसे भागकर बेरड़ ढेड़पुरामें पहुँचे। इतनी मारकाटके बाद परकोटेके पास ही नसरतजगने जो स्थान अपने अधिकारमें कर लिया था, उसे उसने अपने हाथसे निकलने नही दिया। पहाड़ीके पासके जिन कुँओसे शत्रु अपने लिए पानी ले जाते थे, कुछ दिनों बाद नसरतने उनपर भी अधिकार कर लिया। २७ अप्रेलको उसने तलवरखेड़ापर आक्रमण किया। जिस किसीने विरोध किया उसको मारते हुए मुगल परकोटेवाली उस पेठमे घुसे, तब बाकी बचे हुए शत्रु वहाँसे भाग खड़े हुए।

अब आगे युद्ध करते रहना बेरड़ोको सर्वथा निस्सार देख पड़ा। तब रातके समय पिछले दरवाजेसे निकलकर पीड़िया नायक 'दुर्दिनके अपने मराठा सगियोके साथ' भाग गया। दूसरे दिन रात पड़नेके बाद जब किलेमेसे बन्दूके चलना बन्द हो गई, तब मुगल सैनिक किलेमे गए और उन्होने किलेको बिलकुल ही निर्जन पाया। अब वहाँ गड़बडी, लूटमार और आग लगानेका अजीब दृश्य उपस्थित हुआ। शत्रुओने किलेको खाली कर दिया है, यह समाचार फैलते ही शाही सेनाके अनुयायी, साधारण सैनिक और उस पड़ावके सारे ही गुण्डे-बदमाश किलेमे जा घुसनेको हडबड़ाकर भागे। किलेमे पहुँचकर वहाँकी सारी सम्पत्तिको शाही अधिकारी जब्त कर ले उससे पहिले ही लूटमारकर जो कुछ हथिया सके उसे उठा लानेको वे सब वहाँ पहुँचे। जलते हुए छप्परोसे होती हुई आग बारूदके एक कोठेमें जा पहुँची, जिससे बड़े जोरोसे एक धड़ाका हुआ और अनेको मनुष्य उड़ गए। दो-तीन दिन बाद बारूदके दूसरे कोठेमें भी विस्फोट हुआ। वागिनखेड़ा जीत लिया गया, परन्तु उसका मुखिया बच निकला था, एवं अपने विजेताओंको बादमे भी निरन्तर सतानेके लिए वह जीवित था। यो इन तीन महीनोकी औरगजेबकी सारी मिहनत निरर्थक हो गई।

११. औरंगजेबके निरन्तर युद्धोंके कारण देशका उजड़ना एवं सर्वत्र अराजकताका फैलना

अकबरने जिसे स्थापित किया तथा शाहजहाँके समय जिसकी समृद्धि और शान-शौकतकी प्रसिद्धि सारे ससारमे फैल गई थी, ईसाकी १७वी शताब्दीके अन्तमे वही साम्राज्य निराशापूर्ण ह्रासकी अवस्थामे पहुँच गया था। साम्राज्यका राज्य-शासन, सस्कृति, आर्थिक जीवन, सैनिक शक्ति, और सामाजिक सगठन, सब-कुछ ही वडी तेजीसे विशृखलित हो सर्वनाशकी ओर बढ रहे थे। इन पच्चीस वर्षोके निरन्तर युद्धोमे साम्राज्यके जान-माल, आदिका भयकर अपव्यय हुआ। दक्षिण देश तो पूर्णतया बरबाद हो गया। समकालीन विदेशी दर्शक मनुचीने लिखा है, "औरगजेब अहमदनगरको वापस लौट गया, और पीछे उन प्रान्तोके खेतोमे वृक्षो और फसलोका नामो-निशान भी नही रहा, उनके वजाय सर्वत्र मनुष्यो और पशुओकी हड्डियोके ढेर पडे थे। हरियालीके स्थानपर सर्वत्र खाली जमीन वीरान पडी थी। उनकी सेनामे प्रति वर्ष कुल मिलाकर एक लाख मनुष्य मरते थे, सेनामे प्रति वर्ष मरनेवाले पशुओ, बारवरदारीके बैल, ऊँट, हाथियो, आदिकी सख्या तो तीन लाखसे भी ऊपर पहुँच जाती थी। दक्षिणी प्रान्तोमे सन् १७०२से १७०४ तक निरन्तर महामारी (ओर अकाल) बने रहे। इन दो वर्षोमे कोई २० लाखसे अधिक प्राणी मरे।"

वागिनखेडाके पाससे रवाना होकर जब वह वापस उत्तरकी ओर लौट पडा, तव ५०-६० हजार मराठोका एक वडा दल शाही सेनासे कुछ ही मील पीछे-पीछे सगर्व चला। खाद्य-सामग्रीको शाही सेना तक न पहुँचने देने तथा पिछड़ जानेवालोको पकड़ ले जानेका वे प्रयत्न करते रहे, और कभी-कभी शाही पड़ावपर भी आक्रमण कर देनेका आयोजन करते थे।

इस सारी परिस्थितिको आँखो देखनेवाला भीमसेन लिखता है—"पूरे राज्यमे सर्वत्र मराठोका पूर्ण प्राधान्य हो गया और उन्होने सारे ही रास्ते रोक दिए। लूटमार कर वे अपना दारिद्रय दूर करते तथा बहुतसा धन भी एकत्र कर लेते थे। मैने सुना है कि वे हर हफ्ते मिठाई और द्रव्य दान कर सम्राट्की दीर्घायुके लिए प्रार्थना करते है, क्योकि वह (उनके लिए तो अवश्य ही) विश्वम्भर है! धान्यकी कीमत दिनो-

दिन वढती ही जा रही थी। शाही पड़ावमें तो विशेप रूपसे वहुत अधिक आदमी भूखों ही मर जाते थे। वलपूर्वक अनुचित रुपया वसूल करनेके अनेको अवैध तरीके और कारण वहाँ प्रचलित हो गए थे। सिहासनारूढ होनेके समयसे ही सम्राट् किसी भी नगरमे नही रहे है, किन्तु इन युद्धो तथा तदर्थ कष्टपूर्ण यात्राएँ करते रहनेका ही मार्ग उन्होने चुना है; जिससे उनके पड़ावके अनुचरोने अपने कुटुम्बियोसे होनेवाले दीर्घकालीन विछोहसे क्षुव्ध हो उन्हे भी पडावमे ही वुला लिया तथा वे सव तव वहाँ उनके साथ रहने लगे थे। (उन तम्वुओमे ही) यो एक नई पीढीका जन्म हुआ, वही शिशु युवा हुए और युवक वूढे हो गए, तथा वृद्धावस्था पार कर आगे देवताओके उस परलोककी भी उन्होने तैयारी कर ली, किन्तु फिर भी उन्होने कभी घरकी सूरत नही देखी और सदैव यही जाना कि ससारमे रहनेके लिए डेरेके अतिरिक्त दूसरा कोई आश्रय स्थान नही है। जब कभी मराठे किसी स्थानपर आक्रमण करते है तव वहाँके प्रत्येक परगनेसे जितना भी वे चाहते है रुपया ले लेते हैं और वे अपने घोडोंको खडी फसले खिलाते है या उनसे उन फसलोको रुँदवा देते हैं। उनका पीछा करती हुई जो भी शाही सेना आती है, उन खेतोके (पुन) आवाद किए जानेपर ही उसका वहाँ कुछ भी गुजारा हो सकता है। सारी शासन-व्यवस्था विलीन हो गई है।·······साम्राज्य वीरान हो गया है। रैयतने खेती करना छोड़ दिया है. जागीरदारोको अपनी जागीरोसे एक फूटी कौड़ी भी नही मिलती है। अपने अधिकारियोको वेतन देनेकी मराठा शासनकी प्रथा भी उठ गई है। अतएव मराठा राजकर्मचारी चारो ओर लूटमार करके ही अपना पालन करने लगे है, और अपनी लूटसे प्राप्त मालका थोडा-सा ही भाग वे अपने राजाको भी देते है।"

१२. लूटमार तथा युद्ध करनेके मराठोंके तरीके

अपनी लूटमारको भी मराठोने एक व्यवस्थित पद्धतिका स्वरूप दे दिया था। "जहा कही भी ये आक्रमणकारी पहुँच जाते थे, वहाँ स्थानीय लगान, आदि वसूल करने लग जाते थे, और यों अपने वाल-वच्चोंके साथ वहा शान्तिपूर्वक रहते कई महीने और वर्ष भी विता देते थे। परगनोको वे आपसमे वाट लेते थे और शाही शासनकी देखा-देखी वे अपने ही सूवेदार, लगान वसूल करनेवाले कमाविसदार और सड़कोकी सुरक्षाके लिए

राहदार भी नियुक्त करते थे। सैनिकोंका नायक ही उनका सूबेदार होता था, किसी भी बडे कारवाँके आनेकी सूचना मिलते ही वह (कोई) सात हजार घुडसवारोके साथ उसे जा मिलाता और उसे लूट लेता था। चौथ वसूल करनेके लिए उन्होने सर्वत्र कमाविशदार नियुक्त कर दिए थे। जब कभी कोई सशक्त जमीदार या शाही फौजदार कमाविशदारका विरोध कर उसे वहाँसे चौथ वसूल नही करने देता, तब कमाविशदारकी मदद-के लिए सूबेदार वहाँ जा पहुँचता और वहाँकी बस्तीको घेरकर उसे वीरान कर देता था। मराठा राहदारका कार्य यह था—जब कभी कोई व्यापारी चाहता कि मराठोकी किसी भी बाधाके विना ही वह कहीको यात्रा करे तब राहदार उससे प्रत्येक गाडी या बैलका कुछ रुपया लेकर उसके लिए वह रास्ता खुला कर देता था। शाही फौजदार जो राहदारी वसूल करता था उसका तीन या चार गुना रुपया मराठा राहदार यो हड़प लेता था। प्रत्येक सूबेमे मराठोने एक या दो गढियाँ बनवाई, जहाँ वे आश्रय ले सके और जहाँसे चलकर वे आसपासके प्रदेशपर धावा मार सकें।" (खफीखाँ)।

सन् १७०३के बाद सारे दक्षिणमें तथा उत्तरी भारतके भी कुछ भागोमे मराठोका ही पूरा दौरदौरा था। मुगल अधिकारी बेबससे हो गए और आत्मरक्षा तथा बचावकी ही सोचने को बाध्य हुए। उनकी शक्ति बढनेके साथ ही मराठोकी चालो तथा गति-विधिमे भी परिवर्तन होने लगे। शिवाजी और शम्भूजीके समयमे जिस तरह चपल छापा-मार मराठे लूटमार कर भाग जाते थे, अरक्षित व्यापारियो और गाँवोको लूटते थे और मुगल सेनाके आनेकी सूचना मिलते ही तत्काल बिखर जाते थे, अब उनका यह सारा तरीका ही बदल गया, जिसे देखकर सन् १७०४मे मनुचीने लिखा था—"आजकल ये (मराठा) सेनानायक तथा उनके सैनिक पूर्ण आत्मविश्वासके साथ घूमते-फिरते हें, क्योकि उन्होने मुगल सेनापतिओको त्रस्त कर दिया है और मुगल उनसे अब डरने भी लगे है। अब उनके पास तोपे, बन्दूके, तीर-कमान, आदि सब-कुछ है और उनका माल-असबाब तथा तम्बुओको ढोनेके लिए उनके अपने हाथी और ऊँट भी हैं। साराश यह है कि अब मराठा सेना भी मुगल सेनाकी ही तरह सुसज्जित तथा उसीकी तरह प्रयाण भी करती है।"

औरगज़ेबके राज्यकी भीतरी व्यवस्था भी पूर्णतया विशृंखलित हो गई थी। अधिकारी असाध्य भ्रष्टाचारी और बिलकुल ही अयोग्य हो गए

थे; शाही आज्ञाओंके विरुद्ध स्थानीय शासक सारे बन्द किए गए कर (अबवाब) पुनः वसूल करने लगे; उनके बुढापेमें साम्राज्यके दूरस्थ कर्मचारी औरगजेबके आदेशोंका उल्लघन करते थे, तथा सारे शासनकी कार्यक्षमता ही नष्ट हो गई।

१३. औरंगजेबका अहमदनगरको लौटना, १७०५

२७ अप्रैल, १७०५के दिन वागिनखेड़ापर अधिकार हो जानेके बाद औरंगजेबने अपना पडाव वहाँसे उठा लिया। अब उस किलेसे आठ मील दक्षिणमें कृष्णा नदीके किनारे देवापुर नामक एक शान्त हरे-भरे गाँवमें औरंगजेवने अपना पड़ाव किया। अब उसकी उम्र हिजरी सन्‌के हिसाब-से नव्वे वर्षकी हो गई थी, एवं इन पिछले दिनोकी इस सारी कड़ी मिहनतके कारण वह यहाँ बीमार पड़ गया।

सारे पड़ावमें निराशा छा गई। अत्यधिक दर्दके मारे वह बारम्बार बेसुध हो जाता था। इसी हालतमें उसने १०-१२ दिन निकाले, और तब बहुत ही धीरे-धीरे उसकी हालत सुधरने लगी, किन्तु फिर भी अत्यधिक दुर्बलता बनी ही रही।

२३ अक्तूबर, १७०५को उसने देवापुरसे पडाव उठा लिया, और पालकीमें बैठकर वह उत्तरकी ओर लौटा। थोड़ी-थोड़ी दूरीपर प्रति दिन पड़ाव करता हुआ वह सुविधानुसार २० जनवरी, १७०६को अहमदनगर पहुँचा। दक्षिण-विजयके लिए जिस दिन वह वहाँसे चला था, उसके पूरे २३ वर्ष बाद अब वहाँ लौटा। इसी स्थानको उसने अपनी (जीवन-) यात्राका अन्तिम पड़ाव घोषित किया।

१४. औरंगजेबके अन्तिम वर्षोंके दुःख और निराशाएँ

औरंगजेबके जीवनके ये अन्तिम वर्ष अवर्णनीय विषादसे पूर्ण रहे। उसने देखा कि भारतपर दृढ़ताके साथ न्यायपूर्वक शासन करनेके उसके जीवन भरके प्रयत्नोंका परिणाम राजनैतिक क्षेत्रमे भी विलकुल ही उलटा हुआ और सारे साम्राज्यमे अराजकता और विशृङ्खलताका दौरदौरा हो गया। अपने वुढापेमे औरगजेवके दिलको अकथनीय सूनापन घेरे रहा। एक-एक कर सारे ही वयोवृद्ध अमीर मरते गए; अव उसके यौवनकालके गए-बीते वातावरणमे पली-पोसी पीढ़ियोंका अकेला प्रतीक उसका वजीर

असदखाँ ही उसका एकमात्र व्यक्तिगत साथी रह गया था, और वह भी उम्रमे औरगजेबसे पाँच वर्ष छोटा था। जब बूढा सम्राट् अपने शाही दरबारियोंकी ओर दृष्टि डालता था, तब उसे अपने चारो ओर कम उम्रके ही व्यक्ति दिखाई पढते थे, जो स्वभावसे ही भीरु, चाटुकारी, जिम्मेवारी लेनेसे घबरानेवाले, सच बात कहते हिचकिचाने तथा अपने स्वार्थ और पारस्परिक द्वेषकी क्षुद्र भावनाओसे प्रेरित हो निरन्तर षड्यन्त्र करते रहनेवाले थे। उसके साथ अधिक आत्मीयता स्थापित करनेके लिए औरोका उत्साह उसके कट्टरतापूर्ण अतिसयमके कारण आप ही मन्द हो जाता था। सर्व-साधारणकी दृष्टिमे औरगजेब सासारिक हर्ष और विषाद तथा मानवीय दुर्बलताओ और करुणासे बहुत ही ऊपर था, साधारण मानवीय गुणोमेसे कदाचित् ही कोई उसमे पाया जाता था, तथा यहाँ रहते हुए भी वह इस लोकका प्राणी नही प्रतीत होता था, अतएव उनके हृदयोपर उसका ऐसा अलौकिक आतक छाया हुआ था कि वे उससे दूर ही रहते थे। साम्राज्यके निरन्तर बने रहनेवाले काम-काजसे जब कभी उसे कुछ अवकाश मिलता था तब दो ही व्यक्ति उसके सहचर होते थे, एक तो थी उसकी बेटी जीनत्-उन्निसा, जो स्वय भी अब बढ़ी हो चली थी, और दूसरी थी उसकी सबसे छोटी पत्नी पशुकी-सी मूर्ख अर्द्धांगी उदयपुरी बेगम, जिसके पुत्र कामबख्शकी मूर्खतापूर्ण सनको तथा व्यसनी स्वेच्छाचारने उसके शाही पिताकी सारी आशाओको भग कर दिया था। औरगजेबकी मरती हुई आँखोने अपने कई निकट सम्बन्धियोको एक-एक कर इस लोकसे बिदा होते देखा, जिससे इन अन्तिम दिनोमे उसका गार्हस्थ्य जीवन दु:ख और निराशाके अधकारसे पूर्णतया भर गया था।

१५. शाही प्रदेशोंमें मराठोंके उत्पात : १७०६-१७०७

अप्रेल या मई, १७०६में अपने सारे बडे-बडे सेनापतियोके नेतृत्वमे एक बडी मराठा सेना शाही पडावसे चार मीलकी दूरीपर आ धमकी और वहाँ आक्रमण करनेका भी उसने आयोजन किया। इस मराठा सेना-का सामना करनेके लिए औरगजेबने खान-इ-आलम तथा अन्य सेना-नायकोको भेजा। बहुत देर तक घमासान युद्ध करनेके बाद ही वे मराठो को वहाँसे दूर हटानेमे समर्थ हुए।

उधर गुजरातमे मुगलोपर एक भयकर आपत्ति आ गई। खानदेशका

इनूमन्द नामक एक कलार इधर कुछ समयसे दिन-दहाड़े डकैती करने लगा था, अब उसने मराठा सेनापतियोसे सम्बन्ध जोड़ा, और धन्ना जादव तथा उसकी सेनाको साथ लेकर उसने मार्च १७०६मे गुजरातके धनी व्यापार-केन्द्र बड़ौदाके नगरको लूटा। वहाँके फौजदार नजरअलीको हराकर मराठोने उसे तथा उसके सैनिकोको कैद कर लिया।

इसी प्रकार धन्ना जादव और अन्य मराठा सेनापतियोके नेतृत्वमें कई मराठा दल औरंगाबादके प्रान्तको बारम्बार लूटते रहते थे।

सितम्बर, १७०६मे जब वर्षा ऋतु समाप्त हुई तब मराठोंके उपद्रव दस गुना हो गए। धन्ना जादवने मुगलोके पुराने प्रदेश बरार और खानदेशपर धावा मारा, किन्तु मीरजके अपने पड़ावसे चलकर नसरतजगने उसका पीछा किया, तब बीजापुरकी ओर होता हुआ धन्ना कृष्णा नदीके पार चला गया। उधर औरगाबादसे शाही पड़ावको आनेवाले एक वहुत लम्बे काफिलेको अहमदनगरसे २४ मीलकी ही दूरीपर चाँदाके पास मराठोंने लूट लिया और उसका सब-कुछ वे छीन ले गए।

१६. औरंगज़ेबके अन्तिम दिन

औरगजेबकी सेनाओके चारों ओर जब इस प्रकार अनेको आपत्तियाँ बढती जा रही थी, तब शाही पड़ावकी आन्तरिक कठिनाइयोके कारण वहाँकी परिस्थिति और भी अधिक सकटपूर्ण हो गई थी। अपने असीम अहकार तथा महत्त्वाकांक्षासे प्रेरित हो मुहम्मद आजम उत्सुक था कि अपने सारे अन्य प्रतिद्वद्वियोको अपनी राहसे हटाकर वह स्वय औरगजेबका उत्तराधिकारी वने। इसी कारण उसने सम्राट्के कान भरकर शाहआलमके तीसरे वेटे सुयोग्य अजीमउश्शानको पटनाकी सूवेदारीसे वापस लौट आनेका आदेश भिजवा दिया था। साम्राज्यके वजीर असदखाँ और कुछ अन्य अमीरोको भी उसने अपने पक्षमें कर लिया था। अव वह कामवख़्शपर अचानक आक्रमण कर उसे मार डालनेके लिए उपयुक्त अवसरकी खोजमें था। कामवख़्शके विरुद्ध आजमके शत्रुतापूर्ण आयोजन दिनोदिन अधिकाधिक सुस्पष्ट होते जा रहे थे, एव औरगजेवने वीर स्वामिभक्त सुलतान हुसैनको (मीर मंगलको) कामवख़्शकी सेनाका फौजवख़्शी नियुक्त कर उक्त शाहजादेकी सुरक्षाका भार उसे सौंपा।

फरवरी, १७०७के प्रारम्भमें वेहोशी और अस्वस्थताका एक और

दौरा औरंगजेबको हो गया, इधर कुछ समयसे ऐसे दौरे अधिक जल्दी-जल्दी होने लगे थे। तब कुछ समयके लिए पुन. उसका स्वास्थ्य सुधर-सा गया और वह सदैवके समान फिर अपना दरबार करने तथा राजकीय कार्यकी देखभाल करने लगा। किन्तु उसने अनुभव किया कि होनहार अब अधिक दूर न था। उधर आजमकी दिनोदिन बढ़नेवाली अधीरता और उसकी हिंसापूर्ण उच्चाकांक्षा किसी भी दिन मर्यादासे बाहर हो सकती थी, जिससे उस शाही पड़ावकी शान्ति तथा वहाँ एकत्र जन-समाजकी कुशलके लिए वे बहुत ही भयकारक हो गई। अतएव औरंगजेबने कामबख्शको बीजापुरका सूबेदार नियुक्त कर, एक बड़ी सेनाके साथ उसे ९ फरवरीके दिन अपने प्रान्तके लिए रवाना किया। चार दिन बाद १३ फरवरीको उसने मुहम्मद आज़मको मालवाका सूबेदार बनाकर मालवा जानेके लिए उसे भी वहाँसे विदा कर दिया, किन्तु वह चालाक शाहज़ादा जानता था कि उसके पिताकी मृत्यु अब निकट ही थी एवं वह बहुत ही धीरे-धीरे चल रहा था और हर दूसरे दिन विश्राम भी करता जाता था।

अपने पाससे अपने सब बेटोंको विदा कर देनेके चार दिन बाद ही उस थके बूढ़े जर्जरित सम्राट्को तेज़ बुखार हो गया, फिर भी तीन दिन तक हठ कर वह बराबर दरबारमें आ औरोंके साथ ही यथा समय दिनमें पाँच बार नमाज़ पढता रहा। इन दिनोंमे वह भावी अनिष्ट-सूचक निम्न-लिखित दो पंक्तियाँ प्राय. दुहराया करता था.—

"प्रति पल, प्रति क्षण, श्वास-श्वासमें,
यह नश्वर जगत होता परिवर्तित।"

अपने इन अन्तिम दिनोंमें उसने अपने पुत्रों, आज़म और कामबख्शके नाम बहुत ही करुणापूर्ण दो पत्र लिखवाए. जिनके अनुवाद आगे परिशिष्टमें दिए हैं। इनमे उसने सांसारिक वस्तुओंकी असारताकी ओर निर्देश कर आपसमें भ्रातृस्नेह बढ़ाने तथा जीवनमें शान्ति और संयम प्राप्त करनेके लिए विशेष आग्रह किया।

शुक्रवार, २० फरवरी, १७०७के प्रात.कालमे औरंगजेब अपने शयनागारसे निकला, उसने सुबहकी नमाज़ पढ़ी और तब हाथमें माला लेकर जप करने तथा इस्लाम धर्मके मुख्य मन्त्रोंको—ईश्वर एक है और मुहम्मद ही उसके एकमात्र सच्चे पैग़म्बर हैं—वह दुहराने लगा। धीरे-धीरे उसपर बेहोशी छाने लगी, साँस रुक-रुक कर चलने लगी; किन्तु

अपने शरीरकी इन स्वाभाविक दुर्बलताओंपर भी उस दुर्दम आत्माका इतना पूर्ण आधिपत्य था कि आठ बजेके लगभग जब तक उसका शरीरान्त नही हो गया उसकी अंगुलियाँ निरन्तर माला फेरती ही रही और उसके ओठ 'कलमा'का जाप करते रहे। उसकी बडी इच्छा थी कि मुसलमानोके लिए बहुत ही पवित्र दिन शुक्रवारको ही उसका शरीरान्त हो, और उस उदार परमात्माने अपने एक सच्चे भक्तकी इस प्रार्थनाको तो स्वीकार किया।

२२ फ़रवरीको मुहम्मद आजम लौटकर पड़ावमे पहुँचा, और अपने पिताकी मृत्युपर मातम मनाकर तथा अपनी बहिन जीनत्-उन्निसा बेगमको सान्त्वना दे, उसने कुछ दूर तक अपने पिताके शवको कन्धा दिया और तब मुसलमान सन्त शैख़ जैनुद्दीनकी समाधिकी चहार-द्रीवारीमें ही गाड़े जानेके लिए उसे दौलताबादके पास ख़ुल्दाबाद भेज दिया गया।

महान् मुगल सम्राटोमे एकको छोड़ कर दूसरे सबमे महान् इस मुगल शासकके अस्थि, आदि अवशेषोंपर एक साधारण-सी सीधी-सादी कब्र बनी हुई है; वहाँ न तो नीचे कोई संगमरमरका चौतरा ही बना हुआ है और न उसपर कोई सुन्दर सुडौल गुम्बज ही है; हाँ! दिल्लीके बाहर बनी हुई उसीकी बहिन जहाँनाराकी कब्रके समान औरंगजेबकी कब्रके ऊपर रखे गए बड़े पत्थरमें खुदी हुई गहराईमे भी हरी-हरी दूब उगानेके लिए मिट्टी भरी हुई है।

परिशिष्ट

१. आजमके नाम औरंगज़ेबका अन्तिम पत्र

"तुम्हें शुभ शान्ति प्राप्त हो!

"बुढापा आ गया है और दुर्बलता बहुत बढ़ गई है; मेरे अंग-प्रत्यंग शक्तिहीन होते जा रहे है। मै अकेला ही आया था और एकाकी ही जा रहा हूँ। मै नहीं जानता कि मै कौन हूँ और अब तक क्या करता रहा हूँ। पूजा-प्रार्थनामें बीते समयके अतिरिक्त जो भी दिन मैने यहाँ बिताए

है उनसे मुझे खेदके अतिरिक्त कुछ नही मिला। न मैने साम्राज्य-पर ही कोई (सच्चा) शासन किया और न मै अपनी प्रजाका पालन ही कर पाया।

"ऐसा बहुमूल्य जीवन व्यर्थ ही बीत गया। मेरा स्वामी सदैव मेरे घरमे विद्यमान रहा है, किन्तु मेरी अंधी आँखें उसके वैभवको नही देख सकती है। जीवन स्थायी नही होता है, गए बीते दिनोका कोई चिन्ह भी नही रह जाता है, और भविष्यसे कोई भी आशा नही की जा सकती है।

"मेरा ज्वर उतर गया है, और पीछे रह गए है केवल चमडी और यह ऊपरी भूसा। मेरा पुत्र कामबख्श, जो बीजापुर गया है, मेरे पास ही है। और तुम तो उससे भी अधिक निकट हो। मेरे पुत्रोमेसे प्यारा शाहआलम ही सबसे अधिक दूर है। उस परमात्माकी ही इच्छानुसार पौत्र मुहम्मद अजीम (बगालसे लौटकर) हिन्दुस्तानके पास तक आ पहुँचा है।

मेरे सारे सैनिक भी मेरे समान ही असहाय हतबुद्धि और घबराए हुए है। अपने प्रभुको छोड़ देनेके कारण ही मै पारेके समान चचल और उद्विग्न हूँ। वे (सैनिक) यह नही सोचते कि हमारा स्वामि परमपिता (सदैव हमारे) साथ है। मै अपने साथ (इस जगतमे) कुछ भी नही लाया था, और अब अपने पापोका भार मै अपने साथ ले जा रहा हूँ। मै नही जानता हूँ कि मुझे क्या दण्ड मिलनेवाला है। यद्यपि मुझे उसकी उदारता और दयाकी पूरी-पूरी आशा है, फिर भी अपने किए हुए कर्मोके कारण ही यह चिन्ता मुझे नही छोडती है। जब मै अपने आपसे ही बिदा हो रहा हूँ तब दूसरा और कौन मेरे साथ रहेगा ?" (पद्य)

"हो कैसा भी वहाँ तूफान,
डाल रहा हूँ जलमे अपनी नौका मै अनजान।

"यद्यपि वह परम पालक अपने दासोको बचाता ही रहेगा, फिर भी बाहरी दुनियाकी दृष्टिसे तो मेरे पुत्रोका यह कर्तव्य है कि उसके (ईश्वरके) जीव और मुसलमान व्यर्थ ही नही मारे जावे।

"मेरे पौत्र बहादुरको (अर्थात् बेदारबख्तको) मेरे अन्तिम आशीर्वाद पहुँचा देना। बिदाईके समय मै उसे नही देख सका हूँ, उससे मिलने-

की इच्छा रह गई। जैसा कि दिखाई देता है, बेगम दु खके मारे संतप्त है, किन्तु ईश्वर सबके हृदयोका स्वामी है। दृष्टि सकुचित हो जानेपर निराशाके अतिरिक्त कुछ भी हाथ नही लगता।

"बिदा! बिदा! अल्‌बिदा!"[1]

२. कामबख़्शके नाम औरंगज़ेबका अंतिम पत्र

"मेरे पुत्र, मेरे कलेजे (के समान जो मेरे दिलके निकट है)। यद्यपि अपने प्रभुत्व-कालमे मैने ईश्वरेच्छाके प्रति आत्मसमर्पण करनेकी सलाह दी, और जहाँ तक भी सम्भव हो सका अपनी शक्तिसे भी परे तदर्थ प्रयत्न किया, किन्तु ईश्वरको यह मजूर नही था, और किसीने भी मेरी एक न सुनी। अब मै मर रहा हूँ एव उस सम्बन्धमे मेरे कुछ भी कहनेसे कोई लाभ नही होगा। जो भी पाप और कुकर्म मैने किए है उनका भार मै अपने साथ ही ले जाऊँगा। कैसी विचित्र बात है कि मै (जगतमें) अकेला ही आया था और (अब) अपने साथ इतना (बडा) काफिला लिए वापस लौट रहा हूँ। जिस ओर भी मै दृष्टि डालता हूँ, वहाँ उस ईश्वरके अतिरिक्त दूसरा कोई भी इस काफिलेका नायक नही देख पडता है। सेना तथा दलानुयायियोंकी चिन्ताके मारे ही मेरा मस्तिष्क उदास हो गया है और इस अन्तिम समय भी उसीकी आशकाएँ मुझे सता रही है। यद्यपि ईश्वर अपने प्राणियोकी सुरक्षाका भार उठावेगा, किन्तु साथ ही मेरे पुत्रों और मुसलमानोंका भी यह कर्तव्य है। जब मेरा शारीरिक बल भरपूर था, तब मै यत्किचित् भी उनकी सुरक्षा नही कर सका; और अब तो मै अपने आपकी भी देख-रेख नही कर सकता हूँ। मेरे अंगोंका हिलना-चलना भी बन्द हो गया है। जो साँस निकल जाती है उसके वापस लौटनेकी भी कोई आशा नही रहती। ऐसी अवस्थामें सिवाय प्रार्थनाके और मै कर ही क्या सकता हूँ? मेरी बीमारीके समय तुम्हारी माता उदयपुरीने (बेगमने) मेरी सेवा-शुश्रूषा की; वह तो मेरे साथ (दूसरे लोकमे) चलनेको इच्छुक है। तुम्हे और तुम्हारे बच्चोको मै

---

१ ब्रिटिश म्यूजियमके हस्तलिखित ग्रन्थ स० एडीशनल, २६,२४०से मेरे लिए अनूदित। रुक्कात०की लीथोपर छपी हुई प्रतिमे दिया गया उपर्युक्त पत्रका पाठान्तर अस्वीकार्य माना है।

ईश्वरके भरोसे छोडता हूँ। मै तो काँप रहा हूँ। तुमसे मै विदा लेता हूँ ‥ ‥‥ सासारिक लोग धोखा देते है (अक्षरशः अर्थ होगा—गेहूँका नमूना दिखाकर वे जौ ही बेचते है), उनकी ईमानदारीपर विश्वास करके ही कोई काम न करो। सकेतो और लक्षणों द्वारा ही काम किया जाना चाहिए। दाराशिकोहने ठीक प्रबन्ध नही किया था, जिससे वह अपने ध्येय तक पहुँचनेमे असफल रहा। उसने अपने सैनिकोका वेतन पहिलेसे भी बहुत अधिक बढा दिया था, किन्तु जब आवश्यकता हुई तब उसके प्रति उनकी सेवाएँ दिनोंदिन घटती ही गई। इसी कारण वह दु खी था। अपनी शतरजीकी सीमाके भीतर ही पाँव रखो।

"जो कुछ भी मुझे तुम्हे कहना था वह यहाँ बता दिया है। अब मै बिदा लेता हूँ। इस बातका पूरा-पूरा ध्यान रखो कि किसान और प्रजा व्यर्थ ही बरबाद न हो, और मुसलमान न मारे जावे, अन्यथा इस सबका दण्ड मुझे भुगतना पडेगा।" (इण्डिया आफिसमे सगृहीत, हस्तलिखित ग्रथ स० १३४४, प० २६ अ)।

३. औरंगजेबका अन्तिम वसीयतनामा

(इण्डिया आफिस लायब्रेरीमे संगृहीत, हस्तलिखित ग्रन्थ स० १३४४, प० ४९ ब। कहा जाता है कि औरगजेबके ही हाथका लिखा हुआ यह कागज उसकी मृत्यु-शैय्याके तकियेके नीचे पडा मिला था।)

मै (अपने जीवन भर) असहाय था, और अब वैसा ही निस्सहाय मै यहाँसे बिदा ले रहा हूँ। मेरे जिस किसी भी पुत्रको सम्राट् बननेका सौभाग्य प्राप्त हो उसे चाहिए कि यदि बीजापुर और हैदराबादके दो प्रान्त लेकर ही कामबख्श सन्तुष्ट हो जावे तो उसको वह नही सतावे। असदखाँसे अच्छा वजीर न हुआ है और न (आगे भी कभी) होगा। दक्षिणका दीवान दयानतखाँ अन्य शाही अधिकारियोसे बेहतर है। अपने जीवनकालमें साम्राज्यके बँटवारेका मैने जो प्रस्ताव किया था, उसे स्वीकार कर लेनेके लिए मुहम्मद आजमशाहसे स्वामिभक्तिपूर्ण आग्रहके साथ प्रार्थना की जावे, अगर वह उनके लिए तैयार हो जावे तो विभिन्न सेनाओमे कोई युद्ध नही होंगे और न मनुष्योकी हत्या ही होगी। मेरे वशपरम्परागत सेवकोको न तो नौकरीसे अलग किया जावे और न

उनको सताया जावे। सिहासनारूढ़ होनेवालेको दिल्ली और आगराके सूबोंमेसे कौनसा भी एक सूबा लेना चाहिए। जो कोई भी आगरा सूबा लेनेको तैयार हो उसे पुराने साम्राज्यके चार सूबे—आगरा, मालवा, गुजरात और अजमेर तथा उनके साथ सम्बद्ध चकले भी—तथा दक्षिणके चार सूबे—खानदेश, वरार, औरंगाबाद और बीदर तथा उनके बन्दरगाह भी मिलेगे। जो दिल्ली सूबा लेनेको सहमत होगा उसे पुराने साम्राज्यके ग्यारह सूबे—दिल्ली, पंजाब, काबुल, मुलतान, थत्ता, कश्मीर, बगाल, उडीसा, बिहार, इलाहाबाद, और अवध मिलेगे। (फ्रेजर कृत 'नादिर-शाह', पृ० ३६-३७पर इस बँटवारेका दूसरा पाठान्तर दिया है; अर्विन कृत 'लेटर मुग़ल्ज', १, पृ० ६ भी देखो।)

हामिदुद्दीन खान बहादुर कृत 'अहकाम-इ-आलमगीरी'मे औरग-जेबका कहा जानेवाला एक दूसरा वसीयतनामा दिया गया है। (इस ग्रन्थका मूल भाग तथा अनुवाद मैने 'एनेकडोट्स आफ औरंगज़ेब' नामसे प्रकाशित किया है; देखो उनका अध्याय ८)। वह इस प्रकार है:—

"मै ईश्वरकी वन्दना करता हूँ। उसके जो सेवक (उसकी भक्तिमे लगकर) स्वयं पवित्र हो गए है, और जिनसे वह सन्तुष्ट है, उन्हे मै आशीर्वाद देता हूँ।

मेरी अन्तिम वसीयत और मृत्यु-लेख (के रूपमें मेरे कुछ निर्देश यह) है :—

(१) अन्यायमे डूबे हुए इस पापीकी (अर्थात् मेरी) ओरसे हसन-की—परमात्मा उन्हे शान्ति प्रदान करे—पवित्र कब्रको (वहाँ चढ़ाए गए कपडेसे) ढाँक देना, क्योंकि पापके सागरमें डूबे हुओके लिए दया और क्षमाके उस स्रोतका सहारा लेनेके अतिरिक्त उनकी रक्षाका दूसरा कोई उपाय नही है। इस महान् पुण्यात्मक कार्यको पूरा करनेके साधन मेरे पुत्र शाहजादे आलीजाहके (आजमके) पास है, वे उनसे प्राप्त करो।

(२) मेरी सी हुई टोपियोकी क़ीमतसे प्राप्त आमदनीमेसे बचे हुए चार रुपये और दो आने महालदार आलाबेगके पास जमा है। उससे लेकर वह रकम इस असहाय प्राणीका कफन मोल लेनेमे व्ययकी जावे। कुरान-नकल द्वारा कमाए गए तीन सौ पाँच रुपये मेरे व्यक्तिगत व्ययके लिए मेरे बटुएमे है। मेरी मृत्युके दिन उन्हे फ़कीरोको बाँट देना। क़ुरान नक़ल

कर कमाए हुए धनको शिया सम्प्रदायवाले आदरणीय समझते हैं,[1] अतएव उसे मेरे कफन आदि अन्य आवश्यकीय वस्तुओपर व्यय न करना।

(३) अन्य आवश्यक वस्तुएँ शाहज़ादे आलीजाहके कर्मचारीसे ले लेना, क्योकि मेरे पुत्रोमे वही मेरा निकटतम उत्तराधिकारी है, और (मुझे दफनाते समय) उचित या अनुचित (विधि)का सारा ही उत्तर-दायित्व उसीपर है, यह बेबस व्यक्ति (अर्थात् औरगज़ेव) उनके लिए जवाबदेह नही है, क्योकि मुर्दोका तो सब-कुछ ही पीछेवालोकी दयापर निर्भर रहता है।

(४) सच्चे मार्गसे बहककर दूर पथ-भ्रष्टोकी घाटीमें इस भटकने-वालेको खुले सिर ही गाड़ देना क्योकि जो कोई भी बरवाद पापी उस सम्राटो-के-सम्राट्के (ईश्वरके) सामने खुले सिर पहुँचता है, वह अवश्य ही उसकी दयाका पात्र बन जाता है।

(५) मेरी अर्थीपरके कफनको गाज़ी नामक सफ़ेद मोटे कपड़ेसे ढाँकना। उसपर कोई तम्बू खड़ा नही किया जावे। गायको (के जुलूस) की-सी नई रस्मे न करना। पैगम्बरके मौलाद समान कोई उत्सव भी तव नही मनाया जावे।

(६) साम्राज्यके शासनके (अर्थात् मेरे उत्तराधिकारीके लिए) यह उचित होगा कि इस लज्जाविहीन प्राणीके साथ जो बेचारे सेवक मरु भूमि और (दक्षिणके) उजाड़ जगलोमे मारे-मारे फिरते रहे है, उनके प्रति दयापूर्ण बर्ताव करे। यदि उन्होने प्रकट रूपसे कोई अपराध किए हो, तब भी दयालुता दिखा (उनके अपराधोकी) उपेक्षा कर उदारतापूर्वक उन्हे क्षमा ही प्रदान करना।

(७) मुतसद्दीके कामके लिए ईरानियोंसे वढ़कर दूसरी किसी जातिके व्यक्ति नही होते हैं। सम्राट् हुमायूँके समयसे लेकर अब तक युद्धमें भी इस जातिके किसीने भी युद्ध-क्षेत्रसे मुँह नही मोड़ा है, उनके सुदृढ पाँव कभी नहीं उखड़े है। अपने स्वामीकी आज्ञाओका उल्लघन या उसके प्रति विश्वासघातका अपराध उनसे कभी नही हुआ है। किन्तु उन्होने

---

१. हस्तलिखित प्रति एन्-के पाठान्तरका यह भी अर्थ हो सकता है कि "कुरानकी नकलें कर प्राप्त किए गए धनको शिया सम्प्रदायवाले अवैध [प्रकारका धन] मानते हैं"।

इस बातपर सदैव जोर दिया है कि उनके प्रति विशेष आदरके साथ निर्वाह होना सदैव कठिन ही रहा है। किसी तरह उनका समाधान कर बड़ी ही चतुराईके साथ तुम्हे उनके प्रति व्यवहार करना चाहिए।

(८) तूरानी लोग सदैवसे सैनिक ही रहे है। आक्रमण करने, धावा मारने, रातके समय छापा मारने और शत्रुको पकडनेमे वे बड़े ही चतुर होते है। युद्ध करते-करते वापस हटनेकी आज्ञा पाकर अर्थात् दूसरे शब्दोमे चढे हुए तीरको पीछा उतार लेनेमे भी कोई आशका, निराशा या लज्जाकी भावना उन्हे बिलकुल ही नही सताती है। (युद्धमे) अपने स्थानसे न हटकर अपना सिर तक कटवानेकी हिन्दुस्तानियोकी-सी घोर जड़तासे वे सैकडो कोस दूर है। इस जातिके प्रति तुम्हे हर तरहकी कृपा दिखानी चाहिए, क्योकि कई एक अवसरोपर वे जैसी महत्त्वपूर्ण आवश्यक सेवा कर सकते है वैसी दूसरे कोई नही कर सकते।

(९) बारहाके सैय्यद पूज्य है, एव उनके प्रति तुम्हारा बर्ताव कुरानकी इस आयातके अनुसार होना चाहिए, "(पैगम्बरके) निकट सम्बन्धियोंको उनके अधिकारके अनुसार सब कुछ दो।" पुन उनका आदर करने तथा उनके प्रति कृपा दिखानेमे कभी ढिलाई न करो। पवित्र आययमे लिखा है, "मै कहता हूँ कि इसके लिए बदलेमें (मेरे) सम्बन्धियोके प्रति प्रेमके सिवाय मैं तुमसे और कुछ नही चाहता", तदनुसार इस घरानेके प्रति स्नेह (मुहम्मद साहबकी) पैगम्बरीका उपहार-मात्र है एव उनके प्रति वह प्रदर्शित करनेमे भूल न करो और उसका फल तुम्हे इस लोक तथा परलोक दोनोमे मिलेगा। किन्तु बारहाके इन सैय्यदोके साथ अपने व्यवहारमे तुम्हे पूरी-पूरी सावधानी बरतनी चाहिए। हृदयमे उनके प्रति पूरा प्रेम रखो, किन्तु प्रत्यक्ष रूपसे कभी उनको ऊँचा पद न दो। क्योकि एक बार शासनमें पूर्ण शक्ति प्राप्त कर लेनेके बाद स्वय सम्राट् बननेकी इच्छा होने लगती है। यदि कभी तुमने यत्किंचित् भी उनके हाथमें शासन सौपा तो उसका परिणाम तुम्हारा अपना ही अपमान होगा।

(१०) जहाँ तक भी किसी प्रकार सम्भव हो एक साम्राज्यके शासकको तो इधर-उधर घूमते रहनेसे कदापि घबराना नही चाहिए। किसी एक ही स्थानपर उसे बहुत काल तक नही ठहरना चाहिए। यद्यपि एक

स्थानपर ठहरनेसे उसे ऊपरी तौरपर विश्राम मिलेगा, किन्तु वास्तवमें उससे हजारो आपदाएँ और कष्ट उसके सिरपर आ पडेगे।

(११) कभी जपने पुत्रोका विश्वास न करो, और न अपने जीवन-कालमे ही उनके साथ घनिष्ठताका बर्ताव करो। क्योकि यदि सम्राट् शाहजहाँने दाराशिकोहके साथ ऐसा वर्ताव नही किया होता तो उसका वह खेदजनक अन्त नही होता। सदैव इस कहावतको ध्यानमे रखो कि—"सम्राट्के शब्द सदैव निष्फल ही रहते है"।

(१२) साम्राज्यके समाचारोकी पूरी जानकारी रखना ही शासनका प्रधान आधार-स्तम्भ है। एक क्षणकी असावधानीके फलस्वरूप अनेको वर्षो तक अपमान भुगतना पड़ता है। मेरी ही लापरवाहीसे वह नराधम शिवा निकल भागा, और (उसका परिणाम यह हुआ कि) मुझे अपने जीवनके अन्त तक (मराठोके विरुद्ध) कड़ी मिहनत करनी पडी।

(सख्याओमे) बारह एक पवित्र सख्या है, अतएव मैने भी बारह आदेशोसे ही इसे समाप्त किया है। (पद्य)

यदि तुम इस (शिक्षाको) ग्रहण करोगे तो मै तुम्हारी बुद्धिको प्यार करूँगा।

यदि तुमने उसकी अवहेलना की तो अफसोम ! सद् अफसोस ! !

●

अध्याय १७

उत्तरी भारतका विवरण

१. मारवाड़में तीस-वर्षीय युद्ध

जून, १६८१ ई०में महाराणाके साथ सन्धि करके जब औरंगजेब स्वय दक्षिण चला गया तब मेवाडके साथ होनेवाला युद्ध समाप्त हो गया, किन्तु मारवाड़में यह राजपूत-युद्ध आगे भी चलता ही रहा। राठौड़ोंके राज्यके महत्त्वपूर्ण नगरों तथा सामरिक महत्त्वके स्थानोंपर तब भी मुगल सेनाओका ही अधिकार था, और स्वामिभक्त राठौड विरोधी बने उनके विरुद्ध युद्ध चलाए जा रहे थे। इन विरोधी राठौडोने पहाडियों तथा मरु भूमिपर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। वहाँसे यदा-कदा मैदानोंपर धावा कर व्यापारियोके काफिलो या अन्य यात्रियोके दलोंके साथ लूटमार करते थे, और जिन मुगल चौकियोकी सुरक्षाका प्रबन्ध समुचित नही होता था उन्हे जीत लेते थे। उनके ऐसे आक्रमणोके कारण खेतोंका जोतना-बोना या शाही सैनिकोके सरक्षणके बिना रास्तोपर यात्रा करना भी असम्भव हो गया था। कोई आश्चर्य नही कि मारवाड़में तब सदैव अकाल ही रहा, और राठौड़ोंके ख्यातकारने लिखा कि उन वर्षोंमें "अकाल और तलवारने मिलकर धरतीको पूरी तरह निर्जन कर दिया।"

लगातार युद्ध, स्थानोंको जीतने तथा उनपर पुन: अधिकार करते रहनेमे ही मारवाड़की एक पीढ़ीका सारा समय गुजर गया। महाराष्ट्रकी सैनिक परिस्थितिकी प्रतिक्रिया जोधपुरकी स्थितिपर अवश्य होती ही रहती थी, जिससे धीरे-धीरे यहाँ हालत सुधरती ही गई और उसके परिणाम-स्वरूप अन्तमें राठौड़ देशभक्तोंको सफलता मिली तथा औरग-

जेवकी मृत्युके बाद तत्काल ही उनका राजा अपने वशपरम्परागत सिहासनपर पुन आरूढ हो सका।

सन् १६८१से १७०७ ई० तकके इन २७ वर्षोका मारवाडका इतिहास अलग-अलग विभागोमे बँट जाता है। सन् १६८१से १६८७ ई० तक वहाँ मारवाड़की प्रजाकी तरफसे युद्ध चलता रह, उनका राजा बालक था और उनका जातीय नेता दुर्गादास मारवाड़ छोड़कर सुदूर महाराष्ट्रमे था। अपने-अपने अलग नेताओके नेतृत्वमे राठौड़ राजपूत लड़ते ही रहे, उनपर कोई भी एक केन्द्रीय सत्ता नही थी। जहाँ कही भी हो सके वहाँ मुगलोपर आक्रमण करनेके सिवाय शत्रुके विरुद्ध लड़ाईकी उनकी कोई एक सम्मिलित योजना नही थी। यदा-कदा होनेवाले इन छोटे-छोटे युद्धोमें राठौडोकी वीरता तथा स्वामिभक्तिके कई एक अपूर्व उदाहरण सामने आए।

सन् १६८७मे जब दुर्गादास दक्षिणसे लौट आया और अजीतसिह अपने अज्ञातवाससे प्रगट हुआ, तब इस युद्धका दूसरा दौर शुरू हुआ। तब पहिले तो राठौडोको उल्लेखनीय सफलता मिली। बूदीके हाडोके साथ आ मिलनेपर उन्होने मुगलोको मारवाड़के मैदानोसे निकाल बाहर किया, मालपुरा और पुर-माण्डलपर सन् १६८७मे आक्रमण किया, तथा तीन वर्ष बाद अजमेरके सूबेदारको भी पराजित किया और लूटमार करते हुए मेवात और दिल्लीके पश्चिम तक जा पहुँचे। तथापि वे अपने देशपर अपना आधिपत्य नही स्थापित कर सके। सन् १६८७मे जब अजीतसिह और दुर्गादास इस स्वजातीय सेनाका नेतृत्व करने लगे थे, उसी वर्ष औरगजेबकी ओरसे शुजातखाँ नामक एक बहुत ही सुयोग्य और साहसी व्यक्तिको जोधपुरका अधिकारी नियुक्त किया गया। अगले चौदह वर्ष तक वह इस पदपर बना रहा और उस अरसेमे उसने मारवाड़पर मुगलोका आधिपत्य बनाए रखा।

मारवाड़का फ़ौजदार शुजातखाँ गुजरातका सूबेदार भी था। अपने अनुयायी सैनिकोकी सख्या वह कदापि कम होने नही देता था और उसके घूमने-फिरनेमे बहुत ही तत्परता तथा फुर्ती थी। हर साल वह कमसे कम छ और कई बार आठ महीने भी मारवाड़मे तथा बाकी रहे महीने गुजरातमे बिताता था। अतएव जब कभी युद्धका मौका आ जाता तब वह राठौड़ोको सफलतापूर्वक रोक सकता था, किन्तु सन् १६८८मे उसने राठौड़ोके साथ एक समझौता भी कर लिया था। राहपरसे गुजरनेवाले

व्यापारियोंके साथ राठौड़ोंके कोई छेड-छाड़ न करनेपर उनसे वसूल होनेवाली शाही चुगीका चौथा भाग राठौडोको दे दिया जाता था। यह तो एक प्रकारकी चौथ ही थी।

किन्तु ९ जुलाई, १७०१को शुजातखाँ मर गया, और तब उसके स्थानपर मारवाडकी फ़ौजदारी शाहजादे मुहम्मद आजमको दी गई। आजमने पुनः अजीतके साथ युद्ध प्रारम्भ कर दिया, और यों राजपूतोंके स्वातन्त्र्य-युद्धका तीसरा दौर प्रारम्भ हुआ। दोनो ही पक्षोंकी बहुत खून-खराबी तथा कई एक हारोके बाद अन्तमे मुगलोकी लोभपूर्ण नीति बिलकुल ही विफल हुई और सन् १७०७में मारवाडके जातीय राजघरानेने उस राज्यपर पूर्ण अधिकार कर लिया।

मारवाड़की राजधानी तथा वहाँके अन्य नगरोपर मुगलोका अधिकार हो जानेके बाद राठौड़ोने पहाडो तथा दुरूह कोनोमे आश्रय लिया। किन्तु उन खुले मैदानोंपर तो तब भी राठौड़ोके घूमनेवाले दलोके आक्रमण होते रहते थे। मारवाडपर आधिपत्य करनेवाली इस सेनाकी एक या दूसरी चौकीके पास दोनो विरोधी दलोकी मुठभेड़ होती रहती थी, जिनमे कभी एक ओर कभी दूसरे पक्षकी हार होती थी। कवि करणीदानने उस समयकी दशाका बहुत ही अच्छा वर्णन लिखा है, वह लिखता है—"सूर्यास्तसे दो घड़ी पहिले ही मरुमें सारे दरवाजे बन्द हो जाते थे। किलोपर मुसलमानोंका राज्य था, किन्तु मैदानोमे तो अजीतकी ही आज्ञाका पालन होता था। ... ... सारे रास्ते अब बन्द थे।"

२. दुर्गादासका मारवाड़में लौट आना; १६८७–१६९८

महाराष्ट्रसे लौटकर सन् १६८७मे दुर्गादासके वापस मारवाड़ चले आनेपर वहाँ राठौडोके उपद्रव फिर बहुत बढ गए, और उनके सौभाग्यसे इस समय उन्हे एक बहुत ही उपयोगी साथी भी मिल गया। बूँदीका शासक अनिरुद्धसिंह हाडा औरंगजेबका एक स्वामिभक्त [illegible] सेनानायक था।

वतकी बहिनसे विवाह किया। कोई एक हजार हाडा सवारोके साथ उसके आ मिलनेसे राठौडोकी जातीय सेनाकी शक्ति बढ गई।

राठौडो और हाडोकी इस सम्मिलित सेनाने मुगलोंकी अधिकाश चौकियोके सैनिकोको या तो मार डाला या उन्हे वहाँसे खदेड दिया। तब उन्होने उत्तरमे शाही प्रदेशोपर एक साहसपूर्ण धावा किया और शाही राजधानी दिल्लीके पास तक जा धमके। वहाँसे लौटनेके बाद माण्डलके पास एक युद्धमे दुर्जनसाल खेत रहा।

सन् १६७० ई०मे दुर्गादासको एक उल्लेखनीय सफलता मिली। अजमेरके नए सूबेदार सफीखाँ मारवाडकी सीमापर ससैन्य जा डटा था, दुर्गादासने उसे वापस अजमेर तक खदेड दिया। मारवाडके जिन भागोपर तब भी मुगलोका अधिकार था, निरन्तर लूटमार कर वहाँ वह उपद्रव करता ही रहता था, जिससे वहाँके रास्तोपर यात्रियोका आना-जाना भी आपत्पूर्ण हो गया था। ऐसी कठिन परिस्थिति उत्पन्न हो जानेपर शुजातखाँको स्वय यह मामला हाथमे लेना पडा। उसने बडी ही चतुराई-से कई एक राजपूत मुखियाओ, ठाकुरो और पट्टावतोको अपने पक्षमे कर उन्हे शाही सेवा करनेके लिए प्रोत्साहित किया।

सन् १६८१मे अकबरके भाग जानेके समयसे ही राठौडोने उसकी पुत्री सफियत्-उन्निसाको आश्रय दिया था, उसे वापस अपने पास ले आनेके लिए औरगजेब तबसे ही बहुत उत्सुक था। तदर्थ सन् १६९२मे राठौडोसे बातचीत की गई, किन्तु तब वह विफल ही रही। दो वर्ष बाद पुन यह बात छेडी गई और इस बार यह मामला सुयोग्य चतुर शुजात-खाँको सौपा गया। अहमदाबादसे ६० मील उत्तर-पश्चिममे स्थित पाटण-के नागर ब्राह्मण फारसी भाषामे इतिहास-लेखक ईश्वरदासको यह काम सौपा जो पहिले जोधपुरमे मालगुजारी वसूल करनेवाला अमीन रह चुका था।

ईश्वरदासके कई बार दुर्गादासके पास जानेके बाद अन्तमें अपने महाराजा तथा अपनी ओरसे औरगजेबके साथ समझौता करनेको दुर्गा-दास तैयार हो गया, और उसने शाहजादीको वापस औरगजेबको लौटा दिया। ईश्वरदास शाहजादीको शाही दरबारमे ले आया।

अकबरका पुत्र बुलन्दअख्तर अब भी राठौडोके ही पास था, एवं अब उसे वापस लानेके लिए प्रयत्न प्रारम्भ हुए। किन्तु इस बार दुर्गादासने

अजीतसिहको जोधपुर वापस दिए जानेकी माँग की, जिससे इस मामलेके तय होनेमें दो वर्ष लग गए।

सन् १६९८में औरंगजेब भीमाके तटपर इस्लामपुरीमें था, बुलन्द-अख्तरको साथ लेकर दुर्गादास शाही पडावमें वहाँ पहुँचा। जन्मकालसे ही उस बेचारे शाहजादेका सारा जीवन अक्खड राजपूत किसानोमें बीता था; उसने न तो कभी कोई नगर देखा था और न कोई राजदरबार ही; किसी सुसंस्कृत आदमीसे बात करनेका भी उसे मौका नही मिला था। साफ सुथरी आदरपूर्ण हिन्दुस्तानी भी वह नही बोल सकता था। यह देखकर कि सम्राट्का यह पौत्र केवल राजस्थानी बोली ही बोल सकता था, स्वयं सम्राट्को बहुत ही धक्का पहुँचा, परन्तु उसके दरबारी तो मनोरजित हुए। किसी बड़े सुसभ्य नगरमें एकाएक पहुँच जानेवाले देहाती युवकके समान बुलन्दअख्तर भी बहुत ही भयभीत-सा हो गया। पुन. उन प्रारम्भिक दिनोके उसके राजपूत साथियोंने उसके दिलमें यह बात कूट-कूट कर भर दी थी कि औरगजेब एक प्रकारका दानव है जो बुलन्द-अख्तरके पिता शाहजादे अकबर तथा उसके कुटुम्बियोका कट्टर शत्रु है। अब उसने देखा कि उसके बाल्यकालके उन सरक्षको तथा कौमार्यके उन साथियोसे दूर किया जाकर वह उसी भयप्रद औरगजेबको सौप दिया गया था। ऐसी हालतमे मुँह न खोलकर गूगा बना रहना ही उसे सबसे ठीक जान पडा। उसे धीरे-धीरे पढ़ाया जाकर सुसस्कृत बनाया गया, जिससे आगे चलकर सम्राट्के साथ रह कर शाही मोहर संभालनेका काम भी उसे सौपा गया। दुर्गादासको पुरस्कार-स्वरूप तीन हजारीका मनसव देकर पाटणका फौजदार बनाया गया।

३. अजीत और दुर्गादास; १७०१-१७०७

दुर्गादासके साथ यह समझौता मई, १६९८में हो गया था, किन्तु सन् १७०१-२मे विवश होकर उसने दूसरी बार पुनः शाहजादेके विरुद्ध विद्रोह किया। सच बात यह थी कि इस समझौतेके वाद भी, अजीत और दुर्गा-दास, दोनोके दिलोंमें मुगल शासकोके प्रति पूर्ण अविश्वास बना रहा जिससे वे सशंक शाही दरवारसे दूर ही रहे।

साम्राज्यका विद्रोही वनकर जव दुर्गादास पुन. मारवाड़मे पहुँचा,

तब सन् १७०२ ई०मे खुले-आम विद्रोही बनकर अजीतसिह भी उससे जा मिला और मुगलोपर कुछ आक्रमण भी किए। किन्तु मिलकर भी वे दोनो इस बार कुछ भी न कर सके। मारवाडकी आर्थिक हालत पूरी तरह बिगड चुकी थी, पूरे पच्चीस वर्ष तक निरन्तर छापा-मार युद्ध करते-करते राठौड भी बहुत थक गए थे। अब अजीत और दुर्गादासमे भी अनबन हो गई, जिससे तो मारवाडकी परिस्थिति और भी बिगड गई। औरगजेबने इस सबसे लाभ उठाया। दूसरोकी सलाह सुननेका अजीतको धीरज न था, वह बहुत ही उद्धत स्वभावका था। मारवाडके मत्रियो एव प्रमुख अधिकारियोपर दुर्गादासका जो प्रभाव था और राठौडोमे दुर्गादास जितना लोक-प्रिय था उसे देखकर अजीतको बहुत ही ईर्ष्या होती थी। ऐसे समय जब सारी परिस्थिति ही औरगजेबके विरुद्ध होती जा रही थी, तब राठौड नेताओके इस आपसी विरोधसे औरगजेबको बहुत सहायता मिली, और अगले पाँच वर्षो तक उसने अजीतको उसके राज्य तथा राजधानीसे बाहर ही रखा।

सब ओर बढते हुए अपने शत्रु-दलको देख औरगजेबने अन्तमे अपनी विवशताको स्वीकार कर सन् १७०४मे अजीतको मेडताकी जागीर दी और यो उससे एक प्रकारकी सधि कर ली। बिना किसी लाभवाली अपनी उस स्वतन्त्रताको बनाए रखना कठिन देखकर नवम्बर, १७०५मे दुर्गादासने भी शाहजादे आजमके द्वारा औरंगजेबकी अधीनता जब पुन स्वीकार कर ली, तब उसका पुराना मनसब तथा गुजरातमे पाटणकी वह फौजदारी उसे वापस मिल गए।

औरगजेबके शासन-कालके अतिम वर्ष सन् १७०६मे मराठोंने गुजरातपर आक्रमण कर रतनपुरमे मुगलोको बुरी तरहसे पराजित किया था। तब तीसरी बार विद्रोही बनकर अजीतने पुन सिर उठाया। दुर्गादास भी शाही पडावसे फिर भाग खडा हुआ, और अजीतके साथ सम्पर्क स्थापित कर थेराड तथा अन्य स्थानोमे विद्रोह करवाने लगा। किन्तु इस समय शाहजादा बेदारबख्त गुजरातका सूबेदार था एव उसने दुर्गादासके विरुद्ध सेना भेजी, तब दुर्गादास भागकर सूरतसे दक्षिणमे कोलियोके जगलोवाले पहाडी देशमे जा पहुँचा। इधर कुछ समयसे अजीतसिंह भी विद्रोह कर रहा था। नागोरका मुहकमसिह औरगजेबके पक्षमे था, एव दुनाडामे मुहकमसिहके साथ अजीतका युद्ध हुआ, जिसमे विजयी

होनेपर अजीतकी प्रतिष्ठा और शक्ति बढ गई। इसी समय अहमदनगरमें औरंगजेबके मरनेके समाचार मारवाड़ पहुँचे, और तब ७ मार्च, १७०७को घोडेपर सवार होकर अजीतने जोधपुरकी राह पकड़ी और उस नगरके नायब फौजदार जाफरकुलीको वहाँसे निकाल बाहर किया तथा अपने पिताकी राजधानीपर अजीतने अधिकार कर लिया। मुहकमसिहने मेड़ता भी खाली कर दिया और घायल हो नागोरको भाग गया। सोजत और पालीको भी अजीतने जीत लिया। गंगा-जल और तुलसी-दलसे जोधपुरके किलेको शुद्ध किया गया। दुर्गादासके जीवनका ध्येय यो सफलतापूर्ण पूरा हुआ।

४. आगराके पास जाटोंके उपद्रव

अपनी मृत्यु पर्यन्त चलनेवाले जिन अनन्त युद्धोंमे औरंगजेब सन् १६७९ ई०से उलझ गया था, उनका धीरे-धीरे उत्तरी भारतकी राजनैतिक परिस्थितिपर भी प्रभाव पड़ने लगा। दक्षिणी युद्धोंमे होनेवाली क्षतिके कारण वहाँ धन तथा सैनिकोका निरन्तर अभाव ही बना रहता था, जिसकी पूर्तिके लिए कम-ज्यादा द्रव्य और युवा सैनिक उत्तरी भारतसे प्रति वर्ष वहाँ भेजे जाते थे। वर्षपर वर्ष बीतते गए, और तब भी न तो सम्राट् ही अपनी राजधानीको लौटा और न कोई शाहजादा ही वापस वहाँ आया। नर्मदासे उत्तरके सारे ही पुराने सुसमृद्ध सूबे बहुत ही साधारण योग्यतावाले अमीरोको सौपे गए थे और उनके साथ सेना भी बहुत ही थोड़ी थी। इसके साथ ही व्यापारियोके मालसे लदे हुए, साम्राज्यकी आमदनीका रुपया, सेनाके लिए अत्यावश्यक युद्ध-सामग्री, और अमीरोके कुटुम्बो तथा माल-असबाबको लेकर सुदूर दक्षिणको जानेवाले लम्बे-लम्बे काफिले उत्तरी भारतके रास्तोंपरसे निरन्तर गुजरते रहते थे और उनकी सुरक्षाके लिए आवश्यक सैनिक भो उनके साथ नही होते थे, जिससे राहमें पड़नेवाली लुटेरा जातियोको उनपर आक्रमण करनेका बहुत ही लोभपूर्ण मौका मिल जाता था। दिल्लीसे आगरा और तब धौलपुर तथा आगे मालवामें होकर दक्षिणको जानेवाली शाही सड़क जाटोंके ही प्रदेशमे होकर गुजरती थी। इन वीर सशक्त मेहनती जाटोंको लूटमार न करने देनेके लिए शक्तिशाली सेनाके आक्रमणका डर ही एकमात्र उपाय था।

औरगजेबके दक्षिणपर चढाई कर देनेसे उत्तरी भारतमें जाटोको जो मौका मिला, उससे सन् १६८५मे राजाराम तथा रामचेहरा नामक दो नए जाट नेताओने पूरा लाभ उठाया। सनसनी और सोगरके ये जमीदार पहिले तो अपने स्वजातियोको एकत्रित कर उन्हे सैनिक सगठन तथा आमने-सामनेके युद्धोकी शिक्षा देते रहे। प्रत्येक जाट किसानको लाठी और तलवार चलाना पहिले ही आता था, अब उन्हे सैनिक दलोमे सगठित कर अपने ऊपरी अधिकारियोकी आज्ञा माननेकी शिक्षा दी गई, जिससे उन्हे बन्दूके देते ही वह जाट सेना तैयार हो जानेवाली थी। सडक-रास्तोसे बहुत दूर जगलोमे उन्होने कई एक छोटी-छोटी गढियाँ बना ली थी, अपने इन सैनिक अड्डोसे निकलकर जाट बाहर लूटमार करते थे, हार जानेपर उनके मुखिया यही आश्रय लेते थे और उनकी लूटका माल भी यही जमा किया जाता था। इन गढियोके चारो ओर उन्होने मिट्टीकी मोटी-मोटी दीवाले बनाकर उन्हे बहुत सुदृढ बना लिया था क्योकि इन दीवालोपर गोला-बारीका भी कोई असर नही हो पाता था। तब वे शाही सडकपर धावे करने लगे और आगराके बाहरी उप-नगरो तक लूटमार भी मचाई।

आगराका सूबेदार सफीख़ाँ राजारामके इन उपद्रवोको दबा नही सका। जाटोके दलोने राहगीरोका सडकपर आना-जाना भी बन्द कर दिया और इस जिलेके कई गॉव भी उन्होने लूटे। कुछ ही दिनो बाद धौलपुरके पास सुप्रसिद्ध तूरानी सेनानायक अगरख़ाँपर आक्रमण कर राजारामने उसे मार डाला। अगरख़ाँ इस समय बीजापुरके पास पड़े शाही पड़ावसे चलकर काबुल जा रहा था। राजारामकी इस धृष्टतापूर्ण सफलतासे औरगजेब विचलित हुआ और दिसम्बर, १६८७मे उसने जाटोके विरुद्ध चलनेवाले युद्धका सचालन करनेके लिए वहाँका प्रधान सेनापति बनाकर शाहजादे बेदारबख़्तको भेजा।

किन्तु शाहजादेके पहुँचनेसे पहिले ही उस जाट नायकने कई एक अत्याचार कर डाले। पजाबकी सूबेदारी सभालनेके लिए जानेवाले हैदराबादके मीर इब्राहीमपर, जो अब महाबतख़ाँ कहलाने लगा था, सन् १६८८के प्रारम्भमे उसने आक्रमण किया। इसके कुछ ही समय बाद उसने सिकन्दरामे बने हुए अकबरके मकबरेको लूटा। उसे तोड़-फोड़ कर

वहाँके कालीन, सोने-चाँदीके बरतन तथा कन्दीले, आदि सब-कुछ उठा ले गए।[1]

वहाँ पहुँचते ही बेदारबख़्त बड़ी ही तत्परताके साथ मुगल सेनाका संचालन करने लगा। उधर इस प्रदेशमें दो विभिन्न राजपूत जातियोमें चलनेवाले आपसी युद्धमें सम्मिलित हो जानेसे विरोधी दलवालोने राजारामको ४ जुलाई, १६८८के दिन गोलीसे मार दिया।

आम्बेर (जयपुर)के नए राजा विषनसिंह कछवाहको मथुराका फ़ौजदार बनाकर औरगजेबने उसे जाटोके इस उपद्रवको जडसे उखाड़ फेंकने तथा तब सनसनीके परगनेको अपनी जागीरमें सम्मिलित कर लेनेका विशेष कार्य सौपा था। किन्तु जाट-प्रदेशके उन दुस्तर जगलोंमें पानी और खाद्य-सामग्रीके अभावके कारण आक्रमणकारी सेनाको वहाँ अनेक कष्टोंका सामना करना पडता था। तथापि सनसनीका घेरा डालनेवाले दृढतापूर्वक वहाँ ही डटे रहे। जनवरी, १६९०मे एक सुरंगके ठीक तरहसे चल जानेसे उस किलेकी दीवाल टूट गई, जहाँपर मुग़ल सेनाने आक्रमण किया। तीन घण्टो तक बराबर डटकर सामना करनेके वाद जाटोंकी पराजय हुई और किलेपर मुगलोका अधिकार हो गया। इस युद्धमे जाटोंके कोई १५०० सैनिक मारे गए और शाही पक्षके भी २०० मुगल तथा ७०० राजपूत घायल हुए या खेत रहे। अगले वर्ष २१ मई १६८१को एकाएक आक्रमण कर राजा विषनसिंहने जाटोके दूसरे सुदृढ किले सोगरको भी जीत लिया।

मुगलोंकी इन सारी चढाइयोका परिणाम यह हुआ कि जाटोका नया नेता ऐसे अज्ञात कोनो और दुरूह स्थानोमें जा घुसा जिनका शाही सेनानायकोंको पता तक न था। तब अगले कुछ वर्षो तक इस परगनेमें पूरी शाति रही। राजारामके भाई भज्जाका वेटा चूडामन ही अब जाटोका नया नेता था। सुसगठन करने और सुअवसरोसे पूरा-पूरा लाभ उठानेकी

---

१ ईश्वरदास, प० १३२ ब। मनुची लिखता है कि—"वहाँ लगे हुए काँसेके बडे दरवाजेको तोड़कर वहाँ वे घुस पडे और तब लूटमार शुरू की। वहाँ जडे हुए वहुमूल्य रत्नो तथा सोने-चाँदीके वरतन लूटे, और जो कुछ भी वे उठाकर नही ले जा सके उन्हे जला डाला। खोद-खाद कर उन्होने अकवरकी हड्डियोको भी वाहर निकाला और क्रुद्ध हो आगमे डालकर उन्होने उन्हें भी जला दिया।" (२, पृ० ३२०)।

अद्‌भुत चतुराई चूडामनमे थी, जिससे उसने एक राजघरानेकी स्थापना की जो अब तक भरतपुरपर राज्य करता रहा था। "उसने सैनिकोकी सख्या ही नही वढाई, परन्तु अपनी सेनाको अधिक शक्तिशाली बनानेके लिए उसने बन्दूकचियो और घुडसवारोके दल भी सगठित किए जिन्हे उसने कुछ ही दिनो बाद पुन पैदल सैनिक बना दिया। राहपरसे गुज़रनेवाले कई शाही मत्रियो और अधिकारियोको लूटनेके बाद अब वह प्रान्तोसे दक्षिण भेजे जानेवाले शाही खजाने तथा सम्राट्‌की खास वस्तुओको भी लूटने लगा।" किन्तु चूडामनकी शक्तिका पूर्ण उत्थान औरगजेबकी मृत्युके बाद ही हुआ। सन् १७०४के लगभग उसने सनसनीको पुन मुगलोके अधिकारसे छीन लिया। किन्तु आगराके सूबेदार मुख्तारखॉने ९ अक्तूबर, १७०५के दिन फिर सनसनीपर मुगल आधिपत्य स्थापित किया।

५. पहाड़सिंह गौड़ और उसके पुत्रोंके मालवामें उपद्रव; १६८५ ई०

पश्चिमी बुन्देलखण्डमे स्थित इन्दरखीका जमीदार पहाडसिह गौड मालवामे शाहबाद धधेराका शाही फौजदार था। लालसिह खीची चौहान-पक्ष लेकर सन् १६८५के प्रारम्भमे उसने बूँदीके हाडा अनिरुद्धसिहको हराया तथा उसका सारा पडाव और माल-असबाब उसने लूट लिया। तब पहाडसिह मालवाके गॉवोमे लूटमार करने लगा। इस समय मालवा सूबेकी देखभाल राय मुलूकचन्द कर रहा था, एव उसने आक्रमण कर दिसम्बर, १६८६मे पहाडसिहको मार डाला। किन्तु पहाडसिहका पुत्र भगवन्त इस विद्रोहको चलाए गया। मार्च, १६८६मे भगवन्तको भी शाही अधिकारियोने मार डाला। तब भी यह विद्रोह कई वर्ष तक चलता गया। अन्तमे इन गौड विद्रोहियोने आत्मसमर्पण किया। सन् १६९२के बाद उनके पुन शाही सेनामे नियुक्त किए जानेका विवरण मिलता है।

६. बिहारमें गंगाराम तथा मालवामें गोपालसिंह चन्द्रावतके विद्रोह

गगाराम नामक एक दरिद्री गुजराती नागर ब्राह्मण इलाहाबाद और बिहारमे स्थित खान-इ-जहॉ बहादुरकी जागीरोका दीवान था। गगाराम-की अनुपस्थितिमे खानके दूसरे नौकरोने उसके विरुद्ध खानके कान भर

दिए थे। खानने गंगारामको बुला भेजा। अपने जीवन और सम्मानकी अब गगारामको कोई आशा न रही एव वह विद्रोही हो गया। कुछ दिन तक इधर-उधर लूटमार करनेके बाद अन्तमें गंगाराम मालवामें जा पहुँचा और अक्तूबर, १६८४में उसने सिरोंजको लूटा। कुछ ही दिनो बाद वह उज्जैनमें मर गया।

मालवामें स्थित रामपुराकी अपनी जमीदारीको सँभालनेके लिए वहाँके जमीदार राव गोपालसिंह चन्द्रावतने अपने पुत्र रतनसिंहको रामपुरा भेज दिया था। वह दुष्ट युवक मुसलमान बन गया और औरगजेबका कृपापात्र बन अपनी वशपम्परागत उस जमीदारीको अपने नाम करवा लिया, जिसका नाम अब बदलकर इस्लामपुरा रखा गया था। जब इसकी सूचना गोपालसिहको मिली तब बिना आज्ञा लिए ही शाही सेना छोड़कर वह रामपुरा पहुँचा और जून, १७००में उसे अपने पुत्रके अधिकारसे छीन लेनेका प्रयत्न किया। परन्तु जब उसे सफलता नही मिली तब निराश होकर उसने औरगजेबके प्रति आत्मसमर्पण कर दिया। किन्तु जब उसकी आयका दूसरा कोई जरिया नही रह गया, तब सन् १७०६के प्रारम्भमे वह मराठोके साथ जा मिला, और उसी वर्ष जब मार्च महीनेमें मराठोने बड़ोदाको लूटा तब उनके साथ हो गोपालसिंह भी गुजरात गया था।

७. बंगालमें अंग्रेज़ी व्यापार

अग्रेजोने सन् १६१२में अपनी पहली कोठी सूरतमे स्थापित की थी और व्यापारकी अपनी वस्तुएँ थल मार्गसे आगरा तथा दिल्ली भेजते थे और बदलेमें वहाँकी वस्तुएँ मगवाते थे। सन् १६२० तथा बादमे पुनः १६३२मे उन्होने आगरासे बिहार प्रान्तमे पटना तक व्यापार करनेका भी प्रयत्न किया, किन्तु सूरतसे वहाँ तक थल मार्ग द्वारा विशेषतया शोरा जैसी बड़े आकार-प्रकारकी वस्तुएँ भेजनेमे इतना अधिक व्यय हो जाता था कि यह आयोजन अतमें छोड़ देना पड़ा। गोलकुण्डा राज्यके बन्दरगाह मसलीपट्टममे भी अग्रेज व्यापारियोकी एक शाखा थी।

सन् १६३३मे अग्रेजोने अपनी एक कोठी बालासोरमे तथा दूसरी कोठी कटकसे २५ मील दक्षिण-पश्चिममे स्थित हरिहरपुरमे खोली। कुछ समय बाद सन् १६४०में मद्रासके सेट जार्ज किलेको बनाना प्रारम्भ किया।

विजयनगर राजघरानेके हिन्दू राजासे धरतीका कुछ भाग मोल लेकर वहाँ यह किला बनाया जा रहा था, यो अग्रेजोने "भारतमे अपना सर्वप्रथम स्वतन्त्र केन्द्र स्थापित किया"। यह स्थान मुगल साम्राज्यकी सीमाओसे बाहर था। सन् १६५१मे अग्रेजोने बगालमे कलकत्तासे २४ मील उत्तरमे गगाके किनारे हुगली स्थानपर अपना पहाला व्यापार-केन्द्र स्थापित किया। पटनासे उत्तरमे सिंधिया या लालगजमे नावोमे डालकर वे प्रधानतया शोरा लाते थे। रेशम और शक्कर भी मोल लेकर वे ले जाते थे। तव शाहजादा शुजा बगालका सूबेदार था, सन् १६५२मे उसने अपनी ओरसे लिखकर एक निशान (शाहजादेका विशेप आदेश) उन्हे दे दिया था कि सब तरहकी चुगी और अन्य करोके वदले प्रति वर्ष उनके तीन हजार रुपये देते रहनेपर अग्रेजोको बगालमे व्यापार करने दिया जावे। यूरोपसे आने-जानेवाले सारे ही जहाजोका माल कई वर्षो तक बालासोरमे ही उतारा-चढाया जाता रहा।

सन् १६५८मे इगलैण्डके अधिकारियोने भारतमे सव अग्रेजी कोठियोकी व्यवस्थाको सुसगठित किया। अग्रेजी कम्पनीके ये सारी कोठियाँ सूरतमे नियुक्त अध्यक्ष और उसकी परिषदके अधीन कर दी गई, हुगली और मद्रासमे अवश्य प्रधान एजन्सियाँ रहने दी गई।

बगालमे अग्रेजोका व्यापार सन् १६५८मे बहुत ही अच्छी तरह चल रहा था। कच्चा रेशम बहुतायतसे मिल जाता था, तरह-तरहके बहुत ही सुन्दर रेशमी कपडे मिलते थे, अच्छी किस्मका शोरा भी बहुत ही सस्ता था, उवर इगलैण्डसे भेजे गए सोने-चाँदीको भारतीय बड़ी ही तत्परताके साथ मोल लेते थे।

सन् १६६१ई०मे अग्रेजोकी इन भारतीय कोठियोकी शासन-व्यवस्थामे कुछ और फेरफार किए गए। मद्रासमे भी एक स्वतन्त्र अध्यक्षकी नियुक्ति की जाकर वहाँके उस केन्द्रको सूरतकी ही बराबरीका पद दिया गया, तथा बगालमे नियुक्त अधिकारियोको अब मद्रासके अध्यक्षके अधीन कर दिया गया। बगालमे अग्रेजोका व्यापार वड़ी ही तेजीसे वढता जा रहा था, सन् १६६८मे कम्पनीने बगालसे ३४,००० पाउण्ड कीमतका माल खरीदकर यूरप भेजा, सन् १६७५मे भेजे गए मालकी कीमत ८५,००० पाउण्ड तक हो गई, बढते-बढते सन् १६७७ ई०मे १,००,००० पाउण्ड कीमतका माल तथा सन् १६८०मे १,५०,००० पाउण्ड मूल्यका माल बगालसे बाहर भेजा गया। हुगली केन्द्रकी अधीनतामे सन् १६६८मे

ढाका तथा सन् १६७६मे मालदाकी नई कोठियाँ खोली गई। स्थानीय कारखानोसे वे बहुतसा माल मोल लेते थे, परन्तु वहाँ मोल लिए गए रेशमकी रगाईको सुधारनेके लिए अग्रेजोने युरोपीय रगरेजोको बंगाल भेजा। समुद्रके मुहानेसे लेकर हुगली तक गगामे जहाजोके आने-जानेकी ठीक-ठीक व्यवस्था करनेके लिए सन् १६६८मे अग्रेजोने बगाल नाविक-दलकी (पायलेट सर्विसकी) स्थापना की। बगालकी खाड़ीमेसे होता हुआ पहला अग्रेजी जहाज सन् १६९७मे गगामे ऊपर तक गया।

८. बंगालके मुगल अधिकारियों और अंग्रेज व्यापारियोंमें अनबन

बंगालके स्थानीय मुगल अधिकारी अग्रेजोसे नियम-विरुद्ध बहुतसा रुपया वसूल करते थे, और उनके व्यापारमे बाधा भी डालते थे, जिससे उनमे अनबन बढती जा रही थी, होते-होते यह मामला तूल पकड़ गया। स्थानीय अधिकारी अग्रेज कम्पनीकी नावोको रोककर उनमे रखा हुआ सारा माल जब्त करते रहे। चुगी चुकानेसे छुटकारा पानेके लिए हेजेसने शायेस्ताखाँको बहुत-सा रुपया देनेका प्रस्ताव भी किया, किन्तु उससे कोई भी नतीजा नही निकला। अन्तमे अग्रेज व्यापारियोका धीरज छूट गया। भारतीय शासकोके भरोसे न रहकर अपनी शक्ति द्वारा ही अपनी रक्षा करनेको वे उद्यत हुए। भारतीय तटपर ही किसी अच्छे सुविधापूर्ण स्थान-को जीतकर वहाँ अपना स्वतत्र किला बनानेकी वे सोचने लगे, जिससे उनके व्यापारमे किसी भी प्रकारकी छेड-छाड या बाधा नही डाली जा सके। सन् १६८६मे जाकर यह युद्ध सचमुच छिड़ गया।

मुगल साम्राज्यके स्थानीय अधिकारियोके विरुद्ध अंग्रेज व्यापारियोकी ये तीन शिकायते थी.—

(१) शाहजादा शुजा जब बगालका सूबेदार था, तब केवल रु० ३,०००) प्रति वर्ष देते रहनेपर अग्रेज व्यापारियोको चुगी तथा अन्य करोसे माफी दे दी गई थी तथा भविष्यमे चुगीकी दर, आदि न बढानेका भी तब वादा किया गया था। किन्तु अब शुजाके उस हुक्मके विरुद्ध, लाए हुए सारे मालपर चुगी वसूल की जा रही थी। अग्रेजोका यह भी दावा था कि १५ मार्च, १६८०को दिए गए औरगजेबके फरमानके अनु-सार बाहरसे लाए हुए मालपर सूरतमें ३½%के हिसाबसे सम्मिलित चुंगी दे देनेके बाद सारे मुगल साम्राज्यमें उन्हे बिना किसी रोक-टोकके

व्यापार करनेका पूरा अधिकार था, और तव कही भी अन्यत्र उनसे कोई भी चुगी या कर वसूल नही किया जा सकता था।

(२) राहदारी, पेशकश और मुशीके मेहनतानेके नामसे स्थानीय अधिकारी रुपया वसूल करते थे, और फरमाइश कर प्रान्तीय सूबेदार जो माल मगवाता था उसका भी मूल्य नही चुकाया जाता था।

(३) वगालके सूबेदार शायेस्ताखाँ और शाहजादा अजीमुश्शान तथा अन्य उच्चाधिकारी वहाँसे गुजरनेवाले मालके वन्द पार्सलोको खोलकर उनमेसे अपनी पसन्दका माल निकाल लेते थे और अपनी इच्छानुसार उचितसे वहुत ही कम उनका मूल्य चुकाते थे। स्थानीय फौजदार भी कई बार ऐसी ही मनमानी करते थे। कुछ सूबेदार तो, जिनमे शाहज़ादे अजीमुश्शानका नाम विशेषरूपेण उल्लेखनीय था, यो बलपूर्वक कम कीमतमे माल लेकर उसे बाजारमे पूरी कीमतपर बेचकर रुपया कमाते थे। इस प्रथाको 'सौदा-इ-खास' कहते थे।

१० अप्रैल, १६६५को औरगजेबने आदेश दिया कि भविष्यमे बाहरसे लाए जानेवाले मालपर चुंगी दो निश्चित दरोके अनुसार वसूल की जावेगी, मुसलमानोसे २½% और हिन्दुओसे ५%। हिन्दुओके समान यूरोपीयोपर भी प्रत्येक व्यक्तिकी गणनाके अनुसार जजिया कर लगाकर उसे वसूल करनेमे मुगल शासकोने कठिनाईका अनुभव किया, एव जज़ियाके बदलेमे आनेवाले उनके मालपर वसूल की जानेवाली चुगीकी दरको बढाकर ३½% कर देनेका प्रस्ताव मार्च, १६८०मे किया गया था।

बगालमे अग्रेजोने दो बातका दावा किया था (१) शुजा द्वारा सन् १६५२मे निश्चित कुल मिलाकर केवल रु० ३,०००) देकर ही लाए हुए सारे मालकी अस्ल कीमतपरसे चुगो देनेसे छूटकारा पाना। (२) औरगजेबके सन् १६८०के फरमानके अनुसार सूरतके बन्दरगाहमे एक बार चुँगी चुका देनेके बाद भारतके अन्य किसी भी भागमे बिना कोई कर या चुँगी दिए बेरोक-टोक व्यापार करना। किन्तु उनकी ये दोनो ही माँगे बिलकुल सारहीन तथा निराधार थी, किसी भी प्रकार उनका समर्थन नही किया जा सकता था।

शुजा केवल एक प्रान्तीय सूबेदार था। अपनी सूबेदारीके समय यदि उसने किसी एक व्यापारी-वर्गके प्रति पक्षपात किया और थोड़ासा रुपया लेकर ही उन्हे विशेष सुविधाएँ दी, तो उसके बाद होनेवाले सूबेदारोके

लिए शुजाका वह निशान तब तक मान्य नही हो सकता था जब तक कि उसमे दी गई शर्ते सम्राट् द्वारा स्वीकृत होकर शाही फ़रमानके रूपमे नही जारी की जावे। औगरंजेबके सन् १६८०के फरमानका जो अर्थ अंग्रेजोने लगाया था, वह भी सर्वथा गलत था। सूरतमे उतारे गए मालपर चुगी देनेसे ही इस फरमानके आधारपर इगलैण्ड या चीनसे सूरत न होकर सीधे बंगाल जानेवाले दूसरे मालपर भी चुंगी न देनेकी छूटकी मॉग करना किसी भी प्रकारकी चतुराईपूर्ण दलीलसे भी न्याय-सगत प्रमाणित नही किया जा सकता, क्योकि सूरत होकर नही जानेके कारण उसपर सूरतमे कोई भी चुँगी वसूल नही की जा सकती थी।

दूसरी दो शिकायतोमे अग्रेजोने जिन कुप्रथाओ और वसूलियोका उल्लेख किया था, उनका अन्त कर देनेके लिए औरगजेबने कई वर्ष पहिले ही आदेश दे दिए थे, और शाही आज्ञाओका उल्लघन करके ही अब तक वे जारी रखे गए थे।

९. औरंगजेबके साथ बंगालमें अग्रेजोंका युद्ध; १६८६–८९

स्थानीय फौजदारकी आज्ञाओका उल्लघन कर २८ अक्तूबर, १६८६-को तीन अग्रेज सिपाहियोने हुगलीके मुगल शहरके बाजारमे जा घुसनेका प्रयत्न किया, जिसमे वे घायल हुए और बादमे उन्हे कैद कर फौजदारके सम्मुख ले गए। कप्तान लेस्लीने उन्हे छुड़ानेका प्रयत्न किया, परन्तु कुछ सैनिकोके मारे जानेके बाद उसे असफल हो वापस लौटना पडा। किन्तु शीघ्र ही अग्रेजोकी छावनीसे सैनिक सहायता मिलनेपर वह पुन आगे बढा और फौजदारके मकान तथा उसके आगेके शहरके भागको लूटकर उन्हे जला डाला। उसी दिन सध्याके समय अग्रेजोके जहाज भी वहाँ तक जा पहुँचे और उन्होंने वहॉ पड़े हुए एक मुगल जहाजपर अधिकार कर लिया। फौजदार तो वेश बदलकर वहॉसे भाग गया।

हुगलीपर अग्रैजोके इस प्रकार आक्रमण करनेका विवरण जब शाये-स्ताखॉंने सुना तो उसने शान्ति भंग करनेवाले अंग्रेजोको दबानेका ही निश्चय किया। अपनी सारी सम्पत्ति लेकर २० दिसम्बरको अग्रेज हुगली-से चल दिए और सुतनतीमे आकर ठहरे जहॉ वर्तमान कलकत्ता नगर बसा हुआ है।

फरवरी, १६८७मे लड़ाई फिर छिड़ गई। मटिया वुंर्जके पासवाले नमक-

के शाही गोदामोको उन्होने जला दिया और वर्तमान कलकत्तासे दक्षिण-पूर्वमे आधुनिक 'गार्डन रीच'के स्थानपर तब बने हुए थानाके किलेपर अग्रेजोने आक्रमण किया। अग्रेजोके जहाज गगामे आगे बढ़े और उन्होने हिजली टापूपर अधिकार कर लिया तथा बगालकी खाडीमे उपस्थित सारी जल-थल सेनाओको वहाँ एकत्र किया।

अग्रेजोको हिजलीसे मार भगानेके लिए १२,००० सैनिकोको लेकर अब्दुस्समदखाँ नामक शायेस्ताखाँका एक अफसर मई, १६८७ आधा बीतते-बीतते वहाँ पहुँचा। ११ जूनको अंग्रेजोने हिजलीका किला खाली कर दिया और अपनी सब तोपे तथा साथका सारा गोला-बारूद लेकर अपने झण्डे उडाते एव ढोल बजाते हुए वहाँसे चल दिए। १६ अगस्तको शायेस्ताखाँने अग्रेजोको एक पत्र लिखा, जिसमे उनके इन पिछले उपद्रवो तथा हिसापूर्ण कार्योके लिए उसने उन्हे बहुत फटकारा, किन्तु साथ ही कलकत्तासे २० मील दक्षिणमे उलुबेरिया नामक स्थानपर अपना किला बनाने तथा हुगलीके साथ पुन व्यापार करनेकी उसने आज्ञा दे दी। अतएव अपने जहाजोके साथ कारनाक लौट आया और सितम्बर १६८७मे उसने सुतनतीमे पडाव किया।

अगले वर्ष कप्तान हीथ इगलैण्डसे आया और कारनाकके स्थानपर बगालका एजेन्ट बना। बगालमे अग्रेजोकी कोठियाँ बन्द कर वहाँसे चले जानेका ही हीथने निश्चय किया। तब २९ नवम्बर, १६८८को उसने पुराने बालासोरके मुगल किलेपर हमला किया और उसके बाद नये बालासोरपर भी उसने अधिकार कर लिया। अन्तमे बंगाल सम्बन्धी अपने सारे आयोजनोको छोडकर १७ फरवरी, १६८९को जहाजमें बैठकर वह मद्रास चला गया।

अग्रेजोके विरोधकी ये सारी बाते सुनकर औरगजेबने आज्ञा दी कि सारे अग्रेज तत्काल कैद कर लिए जावे, उनकी सब कोठियोपर अधिकार कर लिया जावे तथा उनके साथ न तो कोई व्यापार किया जावे और न किसी प्रकारका सम्पर्क ही रखे। परन्तु समुद्रपर तो अग्रेजोका ही पूर्ण प्रभुत्व था और मक्का जानेवाले जहाजोको वे रोक सकते थे। पुन· उसके साथ चलनेवाले व्यापारके बन्द हो जानेसे साम्राज्यकी सागरकी आमदनी भी बहुत घट गई। अन्तमें फरवरी, १६९०मे पश्चिमी तटके अग्रेजो और मुगल साम्राज्यके बीच सन्धि हो गई। पहिलेके ही समान स्वतन्त्रतापूर्वक बगालमे भी व्यापार करनेकी उन्हे आज्ञा दे दी गई।

पुनः एजेन्ट बनकर २४ अगस्त १६९०को कार्नाक मद्राससे सुतनती पहुँचा। यों कलकत्ता नगरकी स्थापना हुई और तभीसे उत्तरी भारतमें अंग्रेजोंकी सत्ताका प्रारम्भ हुआ। १० फरवरी, १६९१को मुगल साम्राज्यके प्रधान वजीरने बंगालके दीवानके नाम एक शाही हस्व-उल्-हुक्म लिख भेजा, जिसके अनुसार चुंगी और अन्य करोंके बदले प्रति वर्ष रु० ३,०००) देते रहनेपर उन्हें उस प्रान्तमें बिना किसी रोक-टोकके व्यापार करते रहनेकी आज्ञा दी गई।

१०. पश्चिमी समुद्री तटपर मुगलोंके साथ अंग्रेजोंका युद्ध

किन्तु लन्दनमें इस अंग्रेजी कम्पनीका अध्यक्ष सर जोशिया चाइल्ड बहुत ही उग्र स्वभावका दृढ़चरित्रवाला व्यक्ति था। उसने दृढ़तापूर्ण स्वतन्त्र नीतिका ही अनुसरण करनेका निश्चय किया, और आवश्यकता होनेपर मुगल साम्राज्यसे बदला लेनेको वह तत्पर हो गया। इधर भारतमें स्थित सारी अंग्रेजी कोठियोंका प्रधान संचालक सर जान चाइल्ड बहुत ही शक्तिहीन और अयोग्य था। लन्दनसे प्राप्त आदेशोंके अनुसार मुगलोंकी पहुँचसे बाहर हो जानेके लिए वह २५ अप्रैल, १६८७को सूरतसे बम्बईके लिए रवाना हुआ। सूरतके मुगल फौजदारने इसका यही अर्थ लगाया कि अंग्रेज युद्धके लिए तैयारी कर रहे थे, अतएव उसने अंग्रेजोंकी कोठीके चारों ओर शाही सेना बैठा दी, जिससे सूरत कोठीकी परिषद्के अध्यक्ष बेंजामिन हैरिस और उनके प्रमुख सहायक सेम्युअल एनस्ले वहाँसे बाहर नहीं निकल सके।

कर दिया और जहाजो बेड़ेमे समुद्री तटका चक्कर लगाकर सारे ही भारतीय जहाजोपर उसने अधिकार कर लिया।

इसके जवाबमें मुगलोने सूरतमे पकडे गए सारे अंग्रेज कैदियोंके पैरोमे बेडियाँ डाल दी, उसी बुरी हालतमे उन अंग्रेजोने पूरे सोलह महीने (दिसम्बर, १६८८से अप्रेल, १६९० तक) बिताए। साथ ही मई, १६८९मे मुगल जल-सेनाके नायक जजीराके सिद्दीने बम्बईपर आक्रमण किया और शाही सेनाने उस टापूपर उतरकर वहाँके बाहरी भागोपर अधिकार कर लिया। उस टापूकी सुरक्षाके लिए वहाँ नियुक्त अंग्रेज सैनिक दलको बम्बईके किलेमे आश्रय लेना पडा, और वहाँ निरन्तर बढते हुए मुसलमानोके सैनिक दलने उस किलेको घेर लिया। तब विवश होकर अंग्रेज गवर्नर चाइल्डने १० दिसम्बर, १६८९ के दिन जी० वेल्डन और अब्राहम नेवारोको औरगजेबकी सेवामे भेजा और दया कर क्षमा प्रदान करनेके लिए प्रार्थना की। २५ दिसम्बर, १६८९के अपने शाही हुक्म द्वारा औरगजेबने अंग्रेजोको क्षमा कर दिया। डेढ़ लाख रुपया जुर्माना देने तथा भारतीय जहाजोसे लूटे गए सारे मालको लौटानेपर अंग्रेजोको पुन: पहिलेके समान भारतमे व्यापार करते रहनेकी आज्ञा मिल गई।

११. सत्रहवीं शताब्दीमें भारतीय सागरों के युरोपीय समुद्री डाकू

पन्द्रहवी शताब्दीमे वास्को द गामाके भारत पहुँचनेके साथ ही हिन्द महासागरमे भी युरोपीय समुद्री डाकुओका प्रवेश हो गया था। सोलहवी और सत्रहवी शताब्दियोमे युरोपके सब ही देशो तथा सारे ही वर्गोके व्यापारी तथा साहसिक भारतीय सागरोमे एकत्र होने लगे तथा भारतीय व्यापारकी वृद्धिके साथ ही विभिन्न युरोपीय देशवालोकी समुद्री डकैती भी बढती ही गई।

सन् १६३५मे काबने तथा तीन वर्ष बाद सर विलियम कौर्टनने भारतीय जहाजोको लूटा। इन अंग्रेजोकी लूटमारका नतीजा सूरतकी कोठीके उनके देशवासी निरपराध व्यापारियोको भुगतना पडा। अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनीके ये कर्मचारी दो माह तक कैद रहे और हर्जानेके रूपमे रु० १,७०,०००) देनेपर ही वे छूट पाए।

सत्रहवी सदीके पिछले पचास वर्षोमे अनगिनित समुद्री डाकू हिन्द

महासागरमें आ पहुँचे। प्राय अपने एकाकी जहाज मे ही वे चक्कर काटते थे और किसी भी राष्ट्रके जहाजको लूटनेसे वे यत्किंचित् भी नही हिचकते थे। उस समयके समुद्री डाकुओमे टीच, एव्होरी, किड, राबर्ट्स, इगलैण्ड और टयूके नाम विशेषरूपेण उल्लेखनीय है। इन सारे समुद्री डाकुओमें अग्रेजोकी सख्या ही अधिक थी। यही नही अन्य युरोपीय देशोके रहनेवाले समुद्री डाकू भी प्राय: अपने-अपने जहाजोंपर इगलैण्डका ही झण्डा उडाते थे। अतएव भारतीय अधिकारी यो ईमानदार व्यापारियो और ऐसे बदमाश डकैतोमें भेद नही कर पाते थे, जिससे इन डाकुओंके इन उपद्रवोके लिए भी ईस्ट इण्डिया कम्पनीके कर्मचारियोंको ही उत्तरदायी माना जाता था।

इन समुद्री डाकुओमे सबसे प्रसिद्ध हेमरी ब्रिजमन था, जिसने अपना उपनाम एव्होरी रखा था। सितम्बर, १६९५मे उसने बहुमूल्य मालसे लदे हुए 'फतेह मुहम्मदी' नामक जहाजपर अधिकार कर लिया। यह जहाज सूरतके व्यपारियोमे सबसे प्रमुख अब्दुलगफूरका था। कुछ समय बाद उसने अरब जानेवाले मुगल जहाज 'गंज-इ-सवाई'को हथिया लिया, जिसपर भारतीय तीर्थ-यात्री मक्का जाते थे और व्यापारके लिए बहुतसा भारतीय माल भी उसपर लाद कर वहां भेजा जाता था। मोखासे लौटते समय बम्बई और दमनके बीचमे एव्होरीने कुछ अन्य डकैत जहाजोंको साथ लेकर 'गज-इ-सवाई' पर आक्रमण किया। युरोपीयोकी गोला-बारी बहुत ही अचूक एव घातक हुई। जहाजपर आग लग गई। तब डकैत उसपर सब ओरसे चढ गए। तीन दिन तक उन्होने सुविधापूर्वक उस जहाजको सब लूटा। अपने लूटे हुए दुर्गतिपूर्ण जहाजको लेकर उसके

कैद कर लिए गए थे। कैदमे बैठे-बैठे ही एनस्ले हमेशा औरगजेबको प्रार्थना-पत्र भेजता रहा, जिनमे उसने 'गज-इ-सवाई' पर किए गए इस आक्रमणमे अग्रेज कम्पनीके कर्मचारियोका कोई भी हाथ न होनेकी वात निश्चयपूर्वक कही, और निर्दोप होनेके कारण उन सबको कैदसे मुक्त किए जानेके लिए माँग की। बम्बई का गवर्नर सर जान गायर भी बडे जोरोसे लिखा-पढी करने लगा। अपने देशवासियोके यो कैद किए जानेका उसने तीव्र विरोध किया और इस मामलेमे न्याय करनेकी उसने प्रार्थना की।

१२ यूरोपीय व्यापारियोंके प्रति औरंगजेबकी नीति

अपने शाही झण्डेवाले जहाजके लूटे जाने तथा अपने स्वधर्मियोके प्रति किए गए अत्याचारोको सुनकर औरगजेब बहुत ही क्रुद्ध हुआ। किन्तु उस जैसा चतुर व्यक्ति यो जल्दी ही विचलित होनेवाला नही था। सबसे अधिक वह चाहता था कि तीर्थ-यात्रियोको लेकर मक्का जानेवाले जहाजोकी सुरक्षाके लिए युरोपीय युद्ध-पोतोको उनके साथ भेजे जानेका समुचित प्रबन्ध करवा दे। युरोपीय व्यापारपर रोक लगानेमे भी उसका यही उद्देश्य था कि इस तरह युरोपीयोको दबाकर वह अपना काम कम खर्चमे सफलतापूर्वक कर सके।

डच लोगोने प्रस्ताव किया कि बिना किसी तरहकी चुगी या कर दिए सारे साम्राज्यमे व्यापार करनेका एकाधिकार यदि उन्हे दिया जावे तो वे भारतीय सागरोसे सारे समुद्री डाकुओको मार भगावेगे और साथ ही अरब जानेवाले तीर्थ-यात्रियोकी सुरक्षाका भार भी वे उठा लेगे। किन्तु औरगजेबने इस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया। उधर एनस्लेने भी लिख भेजा था कि यदि मुगल साम्राज्य अग्रेजोको प्रति वर्ष चार लाख रुपये दे तो वे अरब सागरमेसे गुजरनेवाले भारतीय जहाजोकी सुरक्षाके लिए उनके साथ अपने युद्ध-पोत भेज देगे या उनकी सुरक्षाकी जिम्मेदारी उठा लेगे। अग्रेजो द्वारा माँगे गए रुपयेकी रकमको घटानेके लिए औरगजेबने बहुत कहा-सुनी की। अन्तमे एनस्लेने सुरक्षार्थ जहाज देनेके प्रतिज्ञा-पत्रपर हस्ताक्षर कर दिए और तब २७ जून, १६९६, को अंग्रेज कैदी छोड दिए गए।

सन् १६९६मे अग्रेज अमीरोके एक दलने 'एडवेंचर' नामक एक जहाज़ तैयार करवाकर उसे सुसज्जित किया। फरासीसियोसे लड़नेके साथ ही

हिन्द महासागरके सारे समुद्री डाकुओंको मार-भगाकर उनका नामो-निशान मिटानेका काम भी इसी जहाजको सौपा गया। विलियम किड इस जहाजका कप्तान था। १६९७के प्रारम्भमें कालिकट पहुँचकर किड स्वय समुद्री डाकू बन बैठा और उसकी सफलतासे प्रोत्साहित होकर अन्य कई उपद्रवी अंग्रेज भी उसके दलमे आ मिले।

ईस्ट इण्डिया कम्पनीके कई जहाजोंपर अधिकार करनेके साथ ही २ फरवरी, १६९८को किडने मुगल साम्राज्यके प्रमुख अमीर मुखलिसखाँके जहाज "क़ैदा मरचण्ट" को भी हथिया लिया। १६९८के पिछले महीनोमें शिह्वर्स नामक एक डच समुद्री डाकूने जिद्दा और सूरतके हसनखाँ नामक व्यापारी के एक अच्छे जहाजपर अधिकार कर लिया, जिसपर कोई १४ लाख रुपयेकी कीमतका माल लदा हुआ था।

सूरतके अंग्रेज व्यापारियोंका छूट जाना अब सम्भव नही था। २३ दिसम्बर, १६९८को सूरतके मुगल फौजदारने अंग्रेजोकी सूरत कोठीको घेर लिया और एनस्लेको अन्तिम आदेश दिया कि औरंगजेबके आदेशानुसार यदि अंग्रेज शाही जहाजोंकी समुद्री डाकुओंसे सुरक्षा करते रहनेका प्रतिज्ञा-पत्र नही दे सके तो दस दिनके भीतर ही वे इस देशको छोड़कर चले जावे। डच और फरासीसियोके साथ भी इसी तरहका बर्ताव किया गया। अगस्त, १६९८में औरंगजेबका आदेश सूरत पहुँचा कि समुद्री डकैतीसे होनेवाली हानिका उत्तरदायित्व अंग्रेज, डच और फरासीसी तीनोंपर ही माना जावेगा, एवं अब तककी हानिके हरजानेके रूपमें तीनों ही राष्ट्रोंके व्यापारी मिलकर कुल १४ लाख रुपया दे।

अन्तमें समुद्री डाकुओका दमन करनेके लिए अग्रेज, डच और फरासीसी, तीनों होने साथ मिलकर कार्यवाही करना स्वीकार किया। भविष्यमें होनेवाले नुकसानका हरजाना भरनेका भार तीनो हीने मिलकर उठानेका वचन दिया तथा इसी आदेशके प्रतिज्ञा-पत्रोपर भी उन्होने हस्ताक्षर कर दिए। जब यह समझौता औरंगजेबके पास पहुँचा, तब मुगल साम्राज्यमे युरोपीयोके व्यापार करनेपर लगाई गई रुकावटोंको उसने दूर कर दिया, और सूरतके फौजदारको लिख भेजा कि इस मामलेको वह अपने ही ढंगसे तय कर डाले।

८ अप्रेल, १६९९को सूरतमे एक नई अग्रेजी कम्पनीकी स्थापना की गई, जिसका अध्यक्ष सर निकोलस वेट बना। इस नई कम्पनीके हितार्थ इस माललेको ठीक तरहसे तय करनेके लिए सर विलियम नारिसको

इंगलैण्डके बादशाहका राजदूत बनाकर इंगलैण्डसे मुगलशाही दरबारमे भेजा गया, किन्तु यह राजदूत इस कम्पनीके लिए कोई भी लाभदायक विशेषाधिकार नही प्राप्त कर सका। उधर औरगजेबने उससे यह माँग की कि भारतीय सागरोसे समुद्री डाकुओका नामनिशान मिटा देनेका वादा वह कर ले। किन्तु नारिस जानता था कि यह एक सर्वथा असम्भव कार्य था।

इसी समय बेटने षड्यन्त्र कर फरवरी, १७०१मे सर जान गायरको अमानतखाँ द्वारा सूरतमे कैद करवा दिया था। यदा-कदा मिलनेवाली कुछ स्वतन्त्रताके अतिरिक्त छ वर्ष तक वह यो कैदमे ही रखा गया।

२८ अगस्त, १७०३को सूरतके जहाजोको सूरतके पास ही समुद्री डाकुओने पकड लिया। इस घटनाके समाचार ३१ अगस्तको सूरत पहुँचे। सूरतके फौजदार इतबारखाँने युरोपीय कम्पनियोके सारे ही भारतीय दलालोको पकड लिया और पुरानी अग्रेजी कम्पनीके दलालोसे तीन लाख रुपये बलपूर्वक वसूल किए, डच कम्पनीके दलालोसे भी उसने और तीन लाख रुपये लिए। यह सारा विवरण सुनकर औरगजेबने इतबारखाँकी कार्यवाहीकी निन्दा की, और फरवरी, १६९९मे दबाकर करवाए गए समझौतेको उसने रद कर दिया।

किन्तु वास्तवमे युरोपीयोके लिए यहाँ किसी भी प्रकारकी शान्ति सम्भव नही थी। जुलाई, १७०४मे जो शाही आदेश प्राप्त हुए उनके अनुसार भी सर जान गायर और उसकी परिषद्के सब सदस्य कैद ही रहे, जहाँ उन्हे उपयुक्त सुविधाएँ और छूट अवश्य मिलती रहती थी। मक्कासे लौटनेवाले भारतीय तीर्थ-यात्रियोको वापस लानेवाले एक धन-पूर्ण जहाजपर अधिकार कर डच लोगोने मुगल साम्राज्यसे बदला लिया। अन्तमे औरगजेबने साफ तौरपर अनुभव किया कि समुद्रपर कुछ भी कर सकना उसके लिए सर्वथा असम्भव था। अतएव अपनी प्रजाको मक्काकी तीर्थ-यात्रा कर सकनेका अवसर देनेके लिए युरोपीयोसे बिना किसी शर्तके समझौता करना अनिवार्य हो गया था। उसने नेताबतखाँको आदेश दिया कि जिस किसी भी प्रकार हो सके डचो द्वारा कैद किए गए तीर्थ-यात्रियोको, जिनमे नूर-उल्-हक तथा फख्र-उल्-इस्लाम नामक दो साधु भी थे, वह छुड़ावे। समुद्री डकैतियोसे होनेवाले नुकसानका हरजाना भरने सम्बन्धी प्रतिज्ञा-पत्र भविष्यमे युरोपियोसे लिखवानेकी मनाही भी औरगजेबने कर दी थी।

अध्याय १८

औरंगज़ेबके शासन-कालमें कुछ प्रान्त[1]

१. बंगाल : वहाँकी प्राकृतिक समृद्धि तथा मुग़लों द्वारा स्थापित शांतिसे उसमें वृद्धि

मुगल साम्राज्यके सारे प्रान्तोमे वगाल ही ऐसा था जिसे प्रकृतिने भी सब तरहसे अनुगृहीत किया है। वहॉ इतनी अधिक वर्षा होती है कि कृत्रिम सिंचाईके लिए परिश्रम करना बिलकुल ही अनावश्यक हो जाता है। खेतोसे प्राप्त धान्यके सिवाय वहॉकी अनगिनित मछलियोसे भरपूर नदियो और तालावोंसे तथा फलोसे लदे हुए उपवनोसे भी उस प्रान्तके निवासियोंको कई गुना अधिक खाद्य सामग्री प्राप्त होती है। वहाँका तो केवल जल-वायु ही खराब है। इसी कारण औरंगजेव इस प्रान्तको "रोटीसे परिपूर्ण नरक" कहता था। ऐसे प्रदेशमे समृद्धि और आबादीकी वृद्धिके लिए वहॉ केवल शान्ति-स्थापनाकी ही आवश्यकता थी। सत्रहवी शताब्दी भर मुगल साम्राज्यकी छत्र-छायामे वगालमें स्थायी रूपसे शान्ति बनी रही और वहॉका शासन-प्रवन्ध भी ठीक तरह होता रहा।

ईसाकी सोलहवी शताब्दीमे वगालमे निरन्तर अराजकता और वरवादी वनी रही; प्रान्तका स्वतन्त्र राज्य पतनोन्मुख हो छिन्न-भिन्न हो रहा था, और वगाल-विजयके लिए मुगलोके युद्ध वहुत समय तक चलते रहे थे। जनता की दुर्दशा तव चरम सीमाको पहुँच गई थी, राजनैतिक अराजकता के कारण प्रान्तकी समृद्धि तथा सस्कृति दिनोदिन विनष्ट होती जा रही थी। पिछली पठान सल्तनतकी आन्तरिक अवनति तथा

---

१. भारतके प्रत्येक सूवेका औरगजेवके राज्य-कालका अलग-अलग इतिहास यहाँ देना न तो सभव है और न आवश्यक ही। जिन प्रान्तोके मामले साम्राज्यकी दृष्टिसे विशेष महत्वके रहे, इतिहासकार केवल उन्हींकी ओर कुछ ध्यान दे सकता है।

पतनके बाद अकबर द्वारा उसका जीता जाना प्रान्तके लिए बहुत ही हितकर प्रमाणित हुआ। किन्तु अकबरके राज्यकालमे बगालका शासन ठीक तरहसे सुसंगठित नही किया जा सका था, एवं वह विजेताओ द्वारा किए गए सशस्त्र सैनिक अधिकारके समान ही था। प्रान्तके पुराने स्वाधीन अफगान शासको और हिन्दू जमीदारोसे नाम-मात्रके लिए बादशाहका आधिपत्य स्वीकार करवानेके अतिरिक्त वहाँ सूबेदार अधिक कुछ भी नही कर सका था। उनसे टाँका वसूल करके ही अकबरके समयके सूबेदारोंको सतोष करना पडता था। सूबेकी राजधानी तथा सैनिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण समझे जानेवाले जिन नगरोमे मुगल फौजदार नियुक्त थे, उन सबके आसपासके जिलोमे ही वहाँकी जनताके साथ मुगलोका कुछ-कुछ सीधा सम्बन्ध स्थापित हो सका था, प्रान्तमे अन्यत्र बगालकी जनता वहाँके अमीरो या जमीदारोके अधीन थी। विभिन्न जमीदारोके अपने-अपने स्वतन्त्र सैनिक दल थे। सिहासनारूढ होनेके बाद जहाँगीरने इस्लामखाँको बंगालका सूबेदार बनाया था। मई १६०८से लेकर ११ अगस्त, १६१३ तक वह बगालका सूबेदार रहा। इस्लामखाँ बहुत ही महत्त्वाकांक्षी, कर्मठ उत्साही अमीर था। बारम्बार चढाई कर उसने धीरे-धीरे बगालके स्वतन्त्र जमीदारोको दबा दिया और मैमनसिह, सिलहट एवं उड़ीसामे अफगान शासकोकी रही-सही शक्तिको भी मिटा दिया। तब बगालके सब ही भागोमे शाति तथा मुगल शासकोके साथ वहाँ की जनताका सीधा सम्बन्ध स्थापित किया। तदनन्तर कोई डेढ शताब्दी तक बंगालमे सर्वत्र बहुत-कुछ आन्तरिक शान्ति बनी रही, जिससे उस प्रान्तकी समृद्धि तथा आबादी पुन बढने लगी। वहाँका व्यापार बडी ही तेजीके साथ फैलने लगा, उद्योगधन्धे बढने लगे और वैष्णव पन्थियोने प्रान्तीय भाषामे महत्त्वपूर्ण साहित्यकी रचना कर उसकी बहुत उन्नति की। पूर्वी बगालके नदी किनारेवाले जिलोमे अराकानियो और बादमे उन्हीके साथी चटगाँव-के पुर्तगाली फिरगी समुद्री डाकुओका उपद्रव बहुत बढा, किन्तु औरगजेबके शासन-कालके प्रारम्भमे सन् १६६६मे ही शायेस्ताखाँने उसका अंत कर दिया था। सत्रहवी शताब्दीके उत्तरार्द्धमे अग्रेजो और डचोका व्यापार बगालमे दिनोदिन बढने लगा। वे निरन्तर भारतीय माल मोल लेते रहते थे और उनकी स्थानीय कोठियाँ भी व्यापारको बढावा देती थी, जिससे प्रान्तमे मालका उत्पादन और उसके साथ वहाँकी समृद्धि भी दिनोदिन बढ़ते ही गए।

२. औरंगजेबके राज्य-कालमें बंगालके सूबेदार

सन् १६६४में शायेस्ताखाँ पहली बार बंगालका सूबेदार नियुक्त हुआ था और तब वह चौदह वर्षो तक उसी पदपर बना रहा। अपनी इस बहुत ही दीर्घकालीन सूबेदारीमें उसने पहिले चटगाँवके समुद्री डाकुओंके अड्डोंको नष्ट कर बंगालकी नदियों तथा वहाँके समुद्री तटको उनके उपद्रवोंसे सुरक्षित कर दिया; तब फिरंगी समुद्री डाकुओको अपने पक्षमें कर उन्हे ढाकाके आसपास बसा दिया। प्रान्तके आन्तरिक शासन-सम्बन्धी उसकी नीति भी बहुत ही धीमी, उदार तथा लाभदायक थी। मीरजुमलाकी मृत्युके बादके वर्षोमें स्थानीय अधिकारी पहिलेसे माफ किए गए लगानवाली भूमिको जब्त करने लगे थे, शायेस्ताख़ाँने आते ही उनकी इस कार्यवाहीको बन्द कर दिया।

प्रति दिन उसका आम दरबार लगता था और बहाँ बड़ी ही तत्परताके साथ वह न्याय करता था तथा पीड़ितोकी शिकायते दूर करनेके लिए यत्न करता था। इसे वह अपना सबसे महत्त्वपूर्ण कर्तव्य मानता था। माल खरीदने और बेचनेकी उसने पूरी स्वतन्त्रता दे दी। उसके पूर्वाधिकारीने दो कर लगाए थे; 'जकात'के नामसे व्यापारियो तथा यात्रियोंकी आमदनीका चालीसवाँ भाग करके रूपमें वसूल होता था; हर प्रकारके उद्योग-धन्धेवालो तथा व्यापारियोसे 'हासिल' नामसे एक और कर लिया जाता था, जिससे केवल शायेस्ताख़ाँकी निजी जागीरमें ही कोई १५ लाख रुपयोकी आमदनी होती थी। शायेस्ताख़ाँने इन दोनों अवैधानिक करोको छोड़ दिया। अपनी सैनिक शक्ति द्वारा उसने बंगालमें बहुत लम्बे समय तक शान्ति बनाए रखी; उस अरसेमें उसने- अपनी राजधानी ढाकामे अनेक सुन्दर मकान बनाकर उसे सजाया तथा सारे प्रदेशमे स्थान-स्थानपर सराये बनवाई। पुराने शाही ढंगका वह एक उदार अमीर था। सन् १६८०से लेकर सन् १६८८ तक लगभग नौ वर्ष तक शायेस्ताख़ाँने दूसरी बार वहाँकी सूबेदारी की। इस कालकी सवसे महत्त्वपूर्ण घटना थी ईस्ट इण्डिया कम्पनीके साथ उसका युद्ध जिसका पहिले ही वर्णन किया जा चुका है। बंगालमे लोकप्रवाद है कि उसकी सूवेदारीके समय वंगालमे चावल एक रुपयेका आठ मन विकता था।

सूबेदार बनकर इब्राहीमख़ाँ जून, १६८९में बंगाल पहुँचा। वह बूढ़ा आदमी नरम स्वभावका एकान्तप्रिय व्यक्ति था; उसे पुस्तकोसे वहुत

प्रेम था। न तो वह दृढ-प्रतिज्ञ ही था और न कड़ी मेहनत ही कर सकता था, एव उसने सारे मामलोमे ढील दे दी, जिससे अन्तमे सारी शासन-व्यवस्थाका अन्त हो गया और प्रत्येक व्यक्ति स्वेच्छाचारी हो गया। न्याय-शासन वह स्वयं करता था। लालच एव अस्थिरता उसमे नाम-मात्रको भी न थी। उसने खेती-बाडी तथा व्यापारकी वडी उन्नति की। बगाल पहुँचते ही सबसे पहिले उसने अंग्रेजोके साथ सन्धि की, और उसने समझा-बुझाकर पुन बगालमे बसनेके लिए उन्हे प्रेरित किया।

किन्तु १७वी शताब्दीके पिछले अर्द्धांशका वगाल एक पुस्तक-प्रेमी शासकके लिए सर्वथा अनुपयुक्त स्थान था। इब्राहीमखाँके ढीलेढाले नरम शासन तथा उसके आलसी युद्ध-विरत स्वभावसे उन प्रान्तके उपद्रवकारियोने पूरा लाभ उठाया। मेदिनीपुर जिलेके चटवा-बर्डा स्थानके जमीदार शोभासिहने विद्रोह किया, और उड़ीसाके अफगानोके मुखिया रहीमखाँके साथ मिलकर वह अपने पडोसी वर्धमान जिलेके बडे तहसीलदार राजा कृष्णरामकी जमीदारीको लूटने लगा। थोड़ीसी सेना लेकर कृष्णराम उनका सामना करनेको आगे बढा, परन्तु उसकी हार हुई और वह मारा गया। तब कृष्णरामकी पत्नी, उसकी पुत्रियाँ और उसकी सारी सम्पत्ति विद्रोहियोके हाथ पडी तथा वर्धमानके शहर-पर उनका अधिकार हो गया। पश्चिमी बगालका फौजदार नूरुल्लाखाँ डरके मारे दरवाजे बन्द किए हुगलीके क़िलेमे ही घुसा बैठा रहा, एव विद्रोहियोने उस किलेको जा घेरा। तब एक रात वह बडी मुश्किलसे अपनी जान बचाकर उस किलेसे निकल भागा, परन्तु उसकी सारी सम्पत्ति तथा वह किला शोभासिहके हाथ लगे।

वहाँ विद्रोह आरम्भ होनेपर बंगालमे रहनेवाले तीनो युरोपीय राष्ट्रो-के व्यापारियोने अपनी-अपनी सम्पत्तिकी रक्षाके लिए देशी सैनिक नौकर रख लिए थे, और कलकत्ता, चन्द्रनगर और चिनसुराकी अपनी-अपनी कोठियोके चारो ओर आवश्यक किले-बन्दी करनेके लिए भी उन्होने सूबेदारसे आज्ञा ले ली थी। अतएव जब बंगालमें सब दूर उपद्रव और अराजकता फैली हुई थी, तब विदेशी व्यापारियोके इन किलोमे शान्ति बनी हुई थी और वहाँ सुरक्षाके साधन भी थे जिससे वहाँ शरण लेनेके लिए सव इच्छुक थे। डचोने हुगलीका किला जीतकर उसे वापस मुगलोको सौप दिया।

अब शोभासिंह स्वयं तो अपने प्रमुख स्थान वर्धमानको लौट आया, किन्तु नदिया और मुर्शिदाबादके सुसमृद्ध नगरों पर अधिकार करनेके लिए उसने सेनानायक रहीमखाँको ससैन्य उधर भेजा। वर्धमानमें राजा कृष्णरामकी पुत्रीने छुरा भोंककर शोभासिंहको मार डाला। तब विद्रोही सेनाने रहीमखाँको अपना नेता चुना और अब रहीमशाहके नामसे उसका राज्याभिषेक हुआ। इब्राहीमखाँ अब भी ढाकामें निश्चेष्ट बैठा था, और इधर गंगासे पश्चिमके सारे बंगाल प्रदेशपर विद्रोहियोका अधिकार हो गया था। रहीमखाँने अपनी सेना बढाकर १०,००० घुडसवारों और ६०,००० पैदलोंको कर ली थी। उसने मुर्शिदाबाद, मालदा और राज-महलके धनपूर्ण नगरोको लूटा।

बंगालके इस विद्रोह तथा इब्राहीमखाँकी अकर्मण्यताके पूरे समाचार सुनते ही औरगजेबने उसको बगालकी सूबेदारीसे अलग कर दिया और १६९७ ई० आधा बीतते-बीतते अपने पौत्र शाहजादे अजीमुश्शानको उसने उस पदपर नियुक्त किया। शाहजादा तब दक्षिणमे था। उसके बंगाल पहुँचनेसे पहिले ही इब्राहीमखाँके पुत्र जबरदस्तखाँने, जो तब वर्धमानका फौजदार था, राजमहल और मालदापर पुन. अधिकार कर लिया। उसके बाद जबरदस्तखाँने भगवान-गोलामे विद्रोहियोके पडावपर हमला किया और दो दिनके युद्धके बाद मई, १६९७मे उसने रहीमखाँको मुर्शिदाबाद और वर्धमानमेसे खदेडकर निकाल बाहर किया। तब रहीम-खाँने जंगलोंकी शरण ली।

नवम्बरमें शाहजादा वर्धमान पहुँचा और कई माह तक वहाँ ठहरा रहा। जबरदस्तखाँके उस प्रान्तसे चले जानेके कारण अब विद्रोहियोने वहाँ फिर सिर उठाया और चारों ओर वे पुनः उपद्रव मचाने लगे। हुगली और नदिया जिलोको लूटनेके बाद शाही सेनाका सामना करनेके लिए रहीमखाँ वर्धमानके पास पहुँचा। वहाँ एक भेटके समय उसने विश्वासघात कर शाहजादेके दीवान ख्वाजा अनवरकी हत्या की और तब शाही सेना-पर बडे जोरसे आक्रमण किया, परन्तु इस युद्धमे वह स्वय मारा गया। अपने नेताके मारे जानेपर विद्रोही सेना तितर-बितर हो गई।

अब सन् १७००में मुहम्मद हादी उर्फ कारतलबखाँको मुर्शिदकुलीखाँ-का खिताब देकर बंगालका दीवान बनाया। नये दीवानके चतुराईपूर्ण सुप्रबन्धके कारण जल्दी ही बंगाल बहुत ही सुसमृद्ध प्रान्त बन गया।

उसने बहुत ही सावधानीके साथ अपने कर्मचारियोंको चुना। उनके द्वारा उसने धरतीकी पैदावार तथा चुँगीकी आमदनीमे बढ सकनेकी पूरी-पूरी गुँजाइशका ठीक-ठीक पता लगाया। इनकी वसूलीका काम उसने अपने हाथमे लिया और जमीदार एव जागीरदार जो कुछ भी बीचमे ही गबन कर लेते थे उसको बिलकुल बन्द कर दिया, जिससे शाही वार्षिक आय बहुत बढ गई।

मुर्शिदकुलीखाँ शाहजादे अजीमुश्शानको माल-सम्बन्धी मामलोमे किसी भी प्रकारका हस्तक्षेप नही करने देता था। एव दीवानकी हत्या करनेके लिए उस मूर्ख शाहजादेने षड्यन्त्र रचा, परन्तु मुर्शिदकुलीखाँकी युक्ति, बुद्धिमत्ता एव साहसके कारण वह विफल हुआ। भविष्यमे पुन. ऐसे घातक फदोसे बचनेके लिए शाहजादा सूबेदारके निवास-स्थान ढाका-को छोड़कर मुर्शिदकुलीखाँ अपना माली दफ्तर मकसूदाबाद नामक अधिक केन्द्रीय गाँवमे ले गया, जिसका नाम उसने बदल दिया और अपने ही नामपर मुर्शिदाबाद रखा। आगे चलकर १८वी शताब्दीके प्रारम्भिक पचास वर्षो तक बगालकी राजधानी इसी नगरमे बनी रही। इस षडयन्त्र का विवरण सुनकर औरंगजेब बहुत ही क्रुद्ध हुआ, और उसने शाहजादे-को बिहार चले जानेका आदेश दिया। जनवरी, १७०३ ई०से बिहार प्रान्तकी सूबेदारी भी इसी शाहजादेको दे दी गई थी एव अगले तीन वर्षो तक (१७०४से १७०७ तक) अजीमुश्शान पटनामे रहा। उसके प्रार्थना करनेपर पटना नगरका नाम पलटकर शाहजादेके नाम पर अजीमाबाद रखनेकी स्वीकृति औरंगज़ेवने दे दी।

बंगाल प्रान्तकी आयमेसे बचे हुए करोडो रुपये मुर्शिदकुलीख़ाँ हर साल औरगजेबकी सेवामे भेजता रहता था। मराठोके साथ कभी समाप्त नही होनेवाले युद्धोमे अन्य साधनोसे प्राप्त सारी आमदनी व्यय हो जाती थी, एव बगालसे प्राप्त होनेवाले इस द्रव्यसे औरगजेबको बहुत ही समयो-चित सहायता मिलती थी। मुर्शिदकुलीख़ाँके सामने कालमे सबको इस बातका अनुभव हो गया कि प्रान्तका शासन सुदृढ सुयोग्य हाथोंमे है। अपने ही आदमियोके द्वारा वह सारी वसूली सीधे ही कर लेता था और यो दलालो या जमीदारोके अपने निजी लाभकी सारी रकम आप ही बच रहती थी। मुर्शिदकुलीख़ाँकी आज्ञाएँ इतनी अटल होती थी कि बडेसे बड़े विद्रोही भी उसके सामने काँपते थे, और चुपचाप उसकी आज्ञाओका

पूर्णतया पालन करते थे। हफ्तेमें दो दिन वह स्वयं ही न्याय-शासन करता था। वह मामलोंको ऐसी निष्पक्षतासे निपटाता था, और ऐसी कड़ाईके साथ अपने फैसलोंका पालन करवाता था कि किसीको भी दूसरों-पर अत्याचार करनेका साहस नही होता था।

औरंगजेबकी मृत्युके कुछ ही वर्ष बाद दिनोंदिन शिथिल होकर जब दिल्लीकी केन्द्रीय सत्ताका पूर्ण पतन होने लगा तब मुर्शिदकुलीखाँ बंगालका स्वाधीन शासक बन बैठा। उसके शासन-कालमें बंगालमें पूर्ण शान्ति छा गई और वहाँ की समृद्धि अधिकाधिक बढ़ने लगी।

३. मालवा; मुग़ल कालमें उसका महत्त्व

मालवाका मुगल-कालीन प्रान्त उत्तरमें यमुना नदीसे लेकर दक्षिणमें नर्मदा नदी तक फैला हुआ था। उसके पश्चिममें चम्बलके दूसरे पार राजपूताना था, तथा पूर्वमें स्थित बुन्देलखण्डकी मालवासे लगी हुई पश्चिमी सीमाको बेतवा नदी निर्धारित करती थी। मालवामै बसने-वालोमे राजपूत ही सबसे प्रमुख है, जो अनगिनित छोटी-छोटी जातियो या सुविख्यात जातियोंके उपविभागोमें बँटे हुए है। किन्तु राजपूतानेके समान यहाँ विभिन्न घरानोके अपने ही सुसंगठित राज्य नही है। पुनः मालवामें राजपूतोंकी न तो संख्या ही इतनी है और न उनका महत्त्व ही इतना अधिक है कि वहाँ बसनेवाली अन्य जातियाँ सर्वथा नगण्य ही रहे। मालवा के उत्तरी भागमें जाट दूर-दूर तक फैले हुए है; तथा दक्षिणी एवं दक्षिण-पूर्वी भागमें गोण्ड बहुत अधिक संख्यामें एकत्र पाए जाते है; उनके अतिरिक्त कुछ विभिन्न केन्द्रोमें वाहरी मुसलमान भी, जिनमें प्रधानतया पठान ही अधिक है, आ बसे है। संख्यामे अधिक होते हुए भी आदिवासी बस्तियों और सभ्यतासे दूर पहाड़ो और जगलोमें ही रहते थे।

खेती-वाड़ीसे पैदा होनेवाली सम्पदा मालवामे वहुतायतसे पाई जाती है। अफ़ीम, गन्ना, अंगूर, खरबूजे, पान आदि वहुमूल्य वस्तुओकी पैदावार वहाँ वहुत होती है, साथ ही वहाँके जगलपूर्ण प्रदेशोमें हाथियोके वड़े-वड़े झुण्ड भी पाए जाते थे। उद्योग-धन्धोवाले मुगल सूवोमे गुजरातके वाद मालवाकी ही गणना होती थी। मुग़ल साम्राज्यकी उत्तरी राज-

धानियाँ आगरा और दिल्लीसे दक्षिण भारतको जानेवाले सारे सैनिक मार्ग इसी प्रान्तमें होकर गुजरते थे, जिससे भी उस कालमे मालवाका विशेष महत्त्व था।

जहाँ वीर योद्धा राजपूत भी बसते हो ऐसे प्रधानतया हिन्दू प्रान्त मालवामे औरंगजेबकी मन्दिर-ध्वसक नीतिका विरोध न होना तथा हिन्दुओपर लगनेवाले जजिया करका भार सिर झुकाकर चुपचाप स्वीकार कर लेना सर्वथा अनहोनी बाते थी। अपने पूज्य धार्मिक स्थानोकी रक्षा करनेके लिए वे इस्लामके प्रतिनिधियोंका सामना करते थे। यह सब-कुछ होते हुए भी औरगजेबके शासन-कालके पूर्वार्धमे मालवामे विद्रोह बहुत ही कम हुए और वे भी कुछ क्षेत्रो तक ही सीमित रहे। छत्रसाल बुन्देला और बख्तबुलन्द गोण्डके आक्रमणोके अतिरिक्त मालवामे १७वी शताब्दी-के अन्त तक शान्ति बनी रही और वहाँका शासकीय इतिहास महत्त्वपूर्ण घटनाओसे विहीन रहा। किन्तु राजारामके जिजीसे लौटकर महाराष्ट्र वापस आनेके बाद वहाँ एक ऐसा नया दौर प्रारम्भ हुआ जिससे अगले पचास वर्षोंमे मालवाके राजनैतिक इतिहासमे युगान्तरकारी उलट-फेर हो गए।

४. मालवापर मराठोंके आक्रमण; १६९९-१७०६

नवम्बर, १६९९मे मराठोका एक दल लेकर कृष्णा सावत प्रथम बार नर्मदा नदी पार कर मालवामे धामुनीके पास तक जा पहुँचा। इस प्रकार जो रास्ता खुला वह आगे चलकर भी किसी प्रकार बन्द नही किया जा सका और अन्तमे १८वी शताब्दीके पूर्वार्द्धकी समाप्ति तक मालवापर मराठोका पूर्ण आधिपत्य हो गया। जनवरी, १७०३मे मराठोने पुन नर्मदाको पार किया और उज्जैनके आसपास तक उपद्रव किया। अक्तूबर, १७०३मे नीमा सिन्धिया बरारमे जा धमका, फिरोजजगके नायब सूबेदार रुस्तमखाँको हराकर उसे कैद कर लिया, तब नीमाने हुशंगाबाद जिलेपर आक्रमण किया और छत्रसाल बुन्देलाके आमत्रणपर उसने नर्मदा नदी पार की और मालवामे जा पहुँचा। कई गाँव और नगर लूटनेके बाद अन्तमे उसने सिरोजको जा घेरा। इसी समय एक दूसरे मराठे दलका पीछा करता हुआ फिरोजजग बरारमे आया हुआ था, अपना भारी सामान और तोपे आदि उसने पीछे छोड़ दी और अच्छे

फुर्तीले घुडसवारोंको लेकर तेजीसे उसने (आधे नवम्बरके लगभग) सिरोजके पास मराठे आक्रमणकारियोको जा मिलाया और तत्काल ही उनपर हमला कर दिया। नीमा घोड़ेपर बैठकर भाग खडा हुआ। कई मराठे और उनके मालवाके राजपूत तथा अफ़गान साथी मारे गए या घायल हुए। रुस्तमख़ाँके साथियो तथा उसके ढोरोको घेरकर नोमा साथ ले गया; फिरोजजगने अब उन्हे छुडाया।

फरवरी, १७०४में फिरोजजगने नीमाका और भी आगे तक पीछा किया और धामुनीके जगलोंमें जब नीमाको उसका खयाल तक नही था, फिरोजजगने उसे एकाएक जा घेरा। कई मराठे मारे गए और बहुतसा लूटका माल मुगलोके हाथ लगा। इस हमलेमें मुगल सेनाको भी हानि उठानी पडी।

फिरोजजगकी इस विजयसे मुगलोको बहुत लाभ पहुँचा। बरारमे मराठोके इन उपद्रवोंके कारण शाही सूचनाएँ, आदेशपत्र, आदि पिछले ३-४ महीनेसे नर्मदा पार नही भेजे जा सके थे। पुन. मालवापर आई हुई जो विकट आपत्ति इस बार फिरोज़जगकी तत्परता एव साहसके कारण टल गई थी, उसने औरगजेबकी आँखे खोल दी और तव मालवाकी सकटपूर्ण परिस्थिति उसके सामने बहुत ही स्पष्ट हो गई। वीर शाहजादा बेदारबख्त, जो एक कुशल सेनापति भी था, तब औरगाबाद और ख़ानदेशका स्थानापन्न सूबेदार था। ३ अगस्त, १७०४को औरगजेबने उसे वहाँसे बदलकर मालवाका सूबेदार नियुक्त किया। मार्च, १७०६ तक बेदारबख्त मालवापर शासन करता रहा। तब उसे आदेश मिला कि तत्काल ही गुजरात जाकर उस प्रान्तकी सुरक्षाका पूरा-पूरा प्रबन्ध करे।

इस समय शाहजादेका विश्वस्त सेनानायक आम्बेरका नया नवयुवा राजा सवाई जयसिह था। अपनी महत्त्वपूर्ण सैनिक सेवाओ द्वारा सवाई जयसिहने शाहजादेका ध्यान विशेष रूपसे आकृष्ट किया था, और उसपर शाहजादेका विश्वास भी हो चला था।

इन पिछले वर्षोंमे मालवामें विद्रोह करनेवालोंमे नासिरी अफगान, गोपालसिह चन्द्रावत, सिरोजका गोपाल चौधरी, अब्बास अफगान और उमर पठान विशेष उल्लेखनीय है। वास्तवमे इन वर्षोंमे मालवामें छोटे-मोटे विद्रोह इतने अधिक हुए कि उनकी ठीक-ठीक गणना करना किसी

प्रकार संभव नही। "मराठे, बुन्देले और बेकार अफगान प्रान्तमें सर्वत्र उपद्रव मचा रहे थे" (१७०४ ई०)। औरगजेबके ही शव्दोंमे नतीजा यह हुआ कि "खानदेशका सूबा बिलकुल ही उजड गया।. ....मालवा भी बरबाद हो गया और वहाँ बहुत ही कम आबादी शेष रही है।"

५. छत्रसाल बुन्देलाका प्रारम्भिक जीवन

चम्पतराय बुन्देलेके चौथे पुत्र, छत्रसाल बुन्देलाका जन्म १६५० ई०मे हुआ था। कोई आधी शताब्दी तक वह सफलतापूर्वक मुगल साम्राज्यका सामना करता रहा और अन्तमे उसने एक स्वाधीन राज्यकी स्थापना की जिसकी राजधानी पन्ना थी। इक्यासी वर्षकी दीर्घ आयुमे सन् १७३१मे उसका देहान्त हुआ।

प्रारम्भमे छत्रसाल बुन्देला मिर्जा राजा जयसिहकी निजी सेनामे भरती हो गया और सन् १६६५में उसने शिवाजीके विरुद्ध की गई चढ़ाई मे भाग लिया था। उसकी महत्त्वपूर्ण सेवाओके पुरस्कार-स्वरूप अगस्त, १६६५मे उसे ३-सदीका शाही मनसब दिया गया। परन्तु छत्रसालको यह मनसब अपने लिए किसी भी प्रकार समुचित नही जान पडा। अब वह भी शिवाजीके समान साहसपूर्ण स्वाधीन जीवन बितानेके स्वप्न देखने लगा। दक्षिण जाकर उसने शिवाजीसे भेट भी की।

किन्तु शिवाजीने उसको यही सलाह दी कि वह वापस अपने प्रदेशको लौट जावे और अपने प्रभावसे वहाँके निवासियोको मुगलोके विरुद्ध विद्रोह करनेके लिए प्रेरित करे। मन्दिरोका विध्वंस करनेकी जो नीति सन् १६७०मे औरगजेबने अपनाई थी उससे छत्रसालको अपने प्रयत्नोमे बहुत सहायता मिली। हिन्दू धर्मके रक्षक-और क्षत्रियोके मानको बढाने-वालेके रूपमे लोगोने उसका स्वागत किया। मुगलोके प्रति उसकी पूर्ण स्वामिभक्ति होते हुए भी ओरछाके राजा सुजानसिह बुन्देलाने छत्रसाल-को गुप्त सदेशा भेजकर उसकी सराहना की और उसकी सफलताके लिए हार्दिक इच्छा भी प्रकट की थी।

६. मुग़लोंके साथ छत्रसालके युद्ध

"छत्रसालके विद्रोही हो जानेके समाचार सुनकर (सन् १६७१मे)

बुन्देलोंमें एक नए उत्साहका सचार हो गया"। लूट द्वारा अधिकाधिक धन प्राप्त करनेकी आशासे बहुतसे बुन्देला योद्धा छत्रसालका साथ देनेको उसके साथ एकत्र होने लगे। प्रारम्भिक वर्षोमें छत्रसालके आक्रमण विशेषतया धामुनी जिले और सिरोंज नगरपर ही होते रहते थे।

छत्रसालको निरन्तर सफलता मिलती जा रही थी, जिससे कुछ ही वर्षोमे लोगोंकी सारी हिचकिचाहट दूर हो गई और कई छोटे-छोटे जमीदार और शासक छत्रसालके साथ आ मिले। जिस किसी भी स्थान या प्रदेशसे उसे वहाँकी माली आमदनीका चौथाई भाग चौथके रूपमें मिल जाता था, मराठोके समान छत्रसाल भी वहाँ लूटमार नही करता था। ज्यों-ज्यो औरंगजेब दक्षिणके मामलोंमे अधिकाधिक उलझता गया, त्यो-त्यों उत्तरमे छत्रसालको दिनोदिन अधिक महत्त्वपूर्ण सफलताएँ मिलती गई। उसने भेलसाको लूटा और कालिजर तथा धामुनीपर अधिकार कर लिया। अब उसके आक्रमणोका क्षेत्र भी नित्य-प्रति बढने लगा।

मार्च, १६९९में सिरोंजसे ७० मील उत्तरमे स्थित राणोद नामक स्थानका फौजदार शेर अफगनखाँ छत्रसालके विरुद्ध बढ़ा। एक घमासान युद्धके बाद छत्रसालने भागकर किलेमें आश्रय लिया, तव खानने उस क़िलेको जा घेरा; छत्रसाल किसी तरह उस किलेसे बच निकला। किन्तु अगले वर्ष जब पुनः दोनोमें मुठभेड हुई तब खानके गोली लगी और वह मारा गया और यो छत्रसालने पिछले वर्षकी अपनी पराजयका बदला लिया।

फिरोजजगने प्रार्थना कर छत्रसाल वुन्देलाको चार हजारीका शाही मनसब देनेके लिए सन् १७०५में औरगजेबको राजी कर लिया, तव फिरोजजंगके सुझावको मानकर छत्रसाल भी औरगज़ेवकी सेवामे दक्षिण-मे उपस्थित हुआ।

७. गोण्ड राज्य और मुग़लोंके साथ उनके सम्बन्ध

गढाके गोण्ड राजाने १६वी शताब्दीमें अपना एक वहुत वड़ा राज्य स्थापित किया था। किन्तु अकवरके सेनापतियोने उस राज्यको छिन्न-भिन्न कर डाला, जिससे पिछले गोण्ड राजा चौरागढ़के आस-पास ही

शासन करते रहे तथा १७वी शताब्दीके मध्य तक वे सर्वथा नगण्य हो गए थे।

अब गोण्डोमे देवगढका शासक ही सबसे प्रमुख माना जाता था। उधर चाँदामे एक दूसरा गोण्ड राजा शासन करता था, जो देवगढके गोण्ड राजघरानेका कट्टर प्रतिद्वन्द्वी तथा घोर शत्रु था। इन गोण्ड राजाओके पास बहुतसा धन संचित था, उसी प्रदेशमेसे खोदकर निकाले गए रत्न भी उनके पास बहुतायतसे थे और साथ ही उनके पास हाथियो-के बडे-बडे झुण्ड भी थे। इन सबको हथियानेके लिए मुगल लालायित हो उठे। सन् १६३७ई०मे एक मुगल सेनाने उस प्रदेशमे पहुँचकर वहाँके उन शासकोको टाँका देते रहनेकी शर्त माननेके लिए बाध्य किया था। किन्तु यह टाँका ठीक समयपर नही चुकाया जा सका और यो बाकी रहे टाँकेकी रकम बढते-बढते सन् १६६६के अन्त तक १५ लाख रुपये हो गई।

मुगल सेना लेकर जनवरी, १६६७मे जब दिलेरखाँ गोडवानामे पहुँचा, तब चाँदाके राजाने मुगलोकी पूर्ण अधीनता स्वीकार कर ली और कुल मिलाकर एक करोड रुपये देनेका वादा किया। दो महीने तक वहाँ ठहर कर दिलेरखाँने चाँदाके राजासे कोई ७७ लाख रुपये वसूल किए। तब तो देवगढके राजा कुकसिहने भी अधीनता स्वीकार कर ली और निश्चित समयमे १८ लाख रुपये देनेके सिवाय जुर्मानेके रूपमे ६ लाख रुपये और देनेको वह राजी हो गया। किन्तु वह अपने वादेके अनुसार यह सब रुपया नही चुका सका। तब मुगलोने देवगढपर चढाई कर वहाँ आधिपत्य कर लिया। तब तो अपना राज्य वापस पानेके लिए अपने दो भाइयो और एक बहिनके साथ वह राजा मुसलमान बन गया। परन्तु इस्लाम धर्म स्वीकार करनेके बाद भी यह गोण्ड राजा पूर्णतया आज्ञाकारी नही बन सका। तब उस राज्यके एक दूसरे हकदारको मुसल-मान बनाकर राजा बख्तबुलन्द नामसे उसे देवगढकी गद्दीपर बैठाया।

चाँदाके राजा रामसिहको अक्तूबर, १६८३मे गद्दीसे उतार कर उसके स्थानपर किशनसिहको वह राज्य दे दिया गया। एक मुगल सेनाके साथ एतकादखाँ उस राज्यकी राजधानीमे २ नवम्बरको जा पहुँचा और वहाँ किशनसिंहको गद्दीपर बैठा दिया। किशनसिहके बाद जुलाई, १६९६मे उसका बड़ा लडका बीरसिह गद्दीपर बैठा।

८. देवगढ़के गोण्ड राजा बख़्तबुलन्दका स्वाधीन होना

जून, १६९१मे औरंगजेबने बख्तबुलन्दको देवगढ़की गद्दीसे उतार कर वह राज्य दूसरे ही किसी मुसलमान गोण्डको दे दिया। कुछ वर्ष तक नजर-बन्द रहनेके बाद भविष्यमे ठीक तरह आचरण करनेकी जमानत देनेपर अगस्त, १६९५मे उसे छोड़ दिया गया। किन्तु इसके कुछ ही समय बाद देवगढ़मे गड़बड़ होने लगी। अपना राज्य वापस मिलनेकी अब बख्तबुलन्दको कोई आशा नही रह गई थी। इस समय देवगढ़ और चान्दा दोनों ही राज्योंके शासक कम उम्रवाले लड़के थे, एवं साहसपूर्ण कार्यवाही कर स्वयं लाभ उठानेके लिए उसे यह अवसर बहुत ही उपयुक्त जान पड़ा। एव वह शाही सेनासे चुपचाप निकल भागा और सीधा देवगढ़ पहुँचा तथा बड़ी मेहनत, युक्ति तथा सफलताके साथ उसने वहाँ विद्रोहका झण्डा खड़ा किया। अपने पड़ोसी बराबर प्रान्तमे भी वह लूटमार करने लगा। तब ससैन्य उसका सामना कर फिरोजजंगने उसे हरा दिया और जून, १६९९मे देवगढपर अधिकार कर लिया। विद्रोही बख्तबुलन्द वहाँसे भी बच निकला और एक बड़ी सेनाके साथ वह मालवामें जा पहुँचा। तदनन्तर गढ़ाके राज्यपर अधिकार कर जुलाईमे उसने नरेन्द्रशाहको पुनः उसके पूर्वजोंकी गद्दीपर बैठाया।

उसके सैनिक मोर्चेके पीछे भी औरगजेबका ध्यान बटानेके उद्देश्यसे देवगढ आनेके लिए आमन्त्रित करनेके हेतु बख्तबुलन्दने अक्तूबरमे दो दूत राजारामके पास सतारा किलेमे भेजे। परन्तु अपने सेनापतियोकी सलाह मानकर राजारामने देवगढ न जाना ही उचित समझा। मार्च, १७०१के प्रारम्भमें एक बड़ी सेना एकत्र कर अपने काका नवलशाहके साथ बख्तबुलन्दने बरारके सूबेदार अलीमर्दानखाँपर हमला किया, किन्तु इस युद्धमें बख्तबुलन्दकी हार हुई, नवलशाह मारा गया, बख्तबुलन्द स्वय घायल हुआ और उनके पक्षके बहुतसे सैनिक खेत रहे।

बख्तबुलन्दके शासन-कालमें वैनगंगा और कन्हन नदीके बीचके उपजाऊ प्रदेशको धीरे-धीरे आबाद किया गया, जिससे कुछ ही समयमें यह भाग बहुत समृद्ध हो गया। मेहनती किसान और उद्योग-धन्धेवाले गोण्डवानामें आ पहुँचे; वहाँ कई नगर बस गए और नए गाँव आबाद हो गए। परन्तु बख्तबुलन्दके उत्तराधिकारी चाँद सुलतानकी १७३९मे मृत्यु हो

जानेके बाद देवगढका सारा गौरव विलीन हो गया और तब नागपुरके मराठा राजघरानेने उसपर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

९. मुगलोंकी अधीनतामें कश्मीरकी परिस्थिति

मुगल सम्राट् कश्मीरको अपने आमोद-प्रमोदके लिए एक सुन्दर स्थानसे अधिक कुछ नही समझते थे। उस प्रदेशकी धरती या वहाँके निवासियोकी हालतको यत्किचित् भी सुधारनेके लिए उन्होने कभी कोई प्रयत्न नही किया।

कश्मीरकी सर्वसाधारण जनता पूर्ण अज्ञान तथा बहुत अधिक दारिद्र्यके गहरे गर्तमें डूबी हुई थी। गाँवोमे रहनेवाले अधिकाश लोग आदिमवासियोका-सा बिलकुल ही सादा जीवन बिताते थे, और आवश्यक कपडोके अभावमे प्राय नगे ही घूमते-फिरते थे तथा सर्दीसे अपना बचाव करनेके लिए केवल एक कम्बल अपने शरीरपर लपेट लेते थे। कश्मीर प्रदेशकी सारी बस्तियाँ बहुत दूर-दूर बसी हुई थी और उन्हे एक दूसरेसे मिला सकनेवाली सडके भी वहाँ बिलकुल ही नही थी, जिससे बाहरी देशोसे कुछ भी अनाज वहाँ ले जाना सर्वथा असम्भव था, हरेक घाटीवालोको अपनी आवश्यक खाद्य सामग्री अपने यहाँ ही उत्पन्न करनी होती थी। बाढ या अधिक बर्फ पड़ जानेके समान प्राकृतिक दैवी आपत्तियोके कारण जब कभी वहाँसे आना-जाना बिलकुल बन्द हो जाता था तब हजारो कश्मीर-निवासी बेवस हो अकालके कारण मर जाते थे। सभ्य ससारके आम रास्तोसे यह प्रान्त बहुत दूर पडता था। ले जानेकी कठिनाइयोके कारण बाजारमे पहुँचते-पहुँचते कश्मीरमे पैदा होनेवाली या वहाँ बनाई जानेवाली वस्तुओका मूल्य बहुत बढ जाता था। इस प्रान्तका अपना कोई विशेष उद्योग-धन्धा नही था और वहाँ बननेवाले शालोके धन्धेपर भी शाही अधिकार था और वह काम करनेवाले मजदूर भी शाही कारखानोसे अपना नियुक्त दैनिक वेतन-मात्र पाते थे। कश्मीरमे बननेवाला सुन्दर कागज भी केवल शाही दरबारमे काममे आता था और वहाँके आदेशानुसार ही बनता था।

कश्मीरके निवासी इतने अधिक पिछडे हुए और सभ्यतासे अनभिज्ञ थे कि वहाँके समाजकी उच्च श्रेणीवालोको भी औरगजेबके शासन-कालके अन्त तक शाही मनसब पानेके योग्य नही समझा जाता था। कश्मीरके

सूबेदारकी विशेष सिफारिशपर ही सन् १६९९में प्रथम बार औरंगजेबने कश्मीर-निवासियोंको शाही मनसब देनेकी बडी कठिनाईसे स्वीकृति दी थी। किसी भी कश्मीरी हिन्दूको मुगल साम्राज्यमें कोई पद नही दिया गया। वहाँके ग्राम-निवासी गरीब मुसलमानोंको असभ्य जंगली समझा जाता था, तथा वहाँके शहर-निवासी मुसलमान चापलूसी करनेवाले झूठे एवं कायर धोखेबाज समझे जाते थे। अतएव मुगल-कालीन भारतमे मीठी-मोठी बातें करनेवाले दगाबाज ही कश्मीरी कहे जाते थे। कश्मीरकी जनता बिलकुल ही अपढ और बहुत दरिद्री थी तथा उसपर वहाँका शासन सामन्तशाही था, जिससे साधारण कश्मीरियोमें दासताकी भावना इतनी भर गई थी कि वे अपनी बहू-बेटियोंकी इज्जत बेचनेसे भी यत्किचित् नही हिचकते थे।

कश्मीर-निवासियोके अन्ध विश्वास उनके अज्ञानसे किस भी प्रकार कम नही थे। उस सुहावने जल-वायुमें मुसलमान सन्तों और उनके चेलोके दल दिनों-दिन बढते जा रहे थे और श्रद्धालु लोगोसे अनुचित लाभ उठाकर अधिकाधिक समृद्ध होते जा रहे थे। कश्मीरके नगरोमें शिया-सुन्नियोका आपसी धार्मिक विरोध प्राय: बढते-बढते उपद्रव या आपसी युद्ध तकमे परिणत हो जाता था। ऐसे समय वहाँका सूबेदार यदि इन आपसी झगड़ोसे दूर रहनेवाला हुआ तब ही कही सैनिक दबाव द्वारा वह कुछ शांति बनाए रख सकता था। विभिन्न धार्मिक फिरकोवालोका आपसी मनमुटाव भी बहुत ही जल्दी बढकर दो विरोधी दलोके सार्वजनिक झगड़ोंमे बदल जाता था। काजीके आवेशपूर्ण उत्तेजक भाषणोंसे प्रेरित होकर सुन्नी लोग, शिया लोगोंको लूटने, उनके घरोंको जलाने तथा जो कोई भी शिया पकड़मे आ जावे उसे मारनेको दौड़ पड़ते थे। शस्त्रोसे सज्जित इन उपद्रवियोके साथ कई बार सूबेदारकी शाही सेनाकी भी जमकर लड़ाई होती थी। यदि कभी यह आशका हो जाती कि सूबेदार स्वय किसी ऐसे शियाको आश्रय दे रहा है जिसपर सुन्नी अत्याचार करना चाहते थे, तब सुन्नी उपद्रवी या सुन्नी सैनिक सूबेदारके निवास-स्थानपर भी हमला कर देनेसे हिचकिचाते न थे।

गाँवोके निवासी बहुत ही दरिद्री थे और अधनगे जंगलियोंके समान वे रहते थे। वे अज्ञानके अन्धकारमें ही पड़े थे और स्वच्छताकी भावना तो उन्हे छू नही पाई थी। नगर-निवासियोंकी हालत भी कोई अधिक

सुखमय नही थी । वहाँकी झीलमे यदा-कदा आकस्मिक हानिकारक बाढ भी आ जाती थी एव वहाँके निवासियोको बरबस नदी या झील के किनारेसे दूर पहाडीके ऊपरवाले सकडे भागमे ही अपने सब मकान बनाने पडते थे। भूकम्प भी कभी-कभी हो जाता था एव मकान हलकी लकडीके ही बनाए जाते थे। वहाँ सरदी इतनी अधिक पडती है कि प्रत्येक घरमे दिन-रात आग जलाए रखना आवश्यक हो जाता है। इन सारी अनिवार्य बातोके फलस्वरूप वहाँके नगरोमे आग लगना एक बिलकुल साधारण बात थी। जब कभी वहाँ आग लगती थी तो लकड़ी और घासके बने हुए मनुष्योके वे सारे छोटे-छोटे घर एक सिरेसे दूसरे सिरे तक एक साथ ही जलकर साफ हो जाते थे।

१०. कश्मीरमें औरंगज़ेबके सूबेदार और उनकी कार्यवाहियाँ

औरगजेबके शासन-कालके ४८ वर्षोमे कुल बारह सूबेदारोने कश्मीरपर शासन किया। एकके बाद आनेवाले दूसरे सूबेदारकी निजी विभिन्नताके अनुसार प्रान्तके जीवनमे भी फेर-बदल होता जाता था। इतमादखाँ और फाजिलखाँके-से कुछ सूबेदार विद्वानोका आदर करते थे और बडे ही सोच-विचारके साथ वे न्याय-शासन करते थे। सैफखाँके समान कई दूसरे स्वय अधिकाधिक धन एकत्र करनेके लिए निरन्तर नये-नये अवैधानिक कर लगाकर कड़ाई के साथ उन्हे वसूल करते रहते थे।

अर्द्ध शताब्दी लम्बे औरगजेबके शासन-कालमे कश्मीरमे प्राकृतिक विपत्तियाँ भी कई आई, जिनमे विशेष रूपेण उल्लेखनीय थी—(जून, १६६९ और १६८१के) दो भूकम्प, (१६७३ और १६७८मे) दो बार राजधानीमे आग लगना, (१६८१ की) बाढ और १६८८मे अकाल पडना। सन् १६६३मे औरगजेब स्वय कश्मीर गया था। इस कश्मीर-यात्राका आँखो-देखा विस्तृत विवरण बर्नियरने लिखा है, यद्यपि इस यात्राके सन्-सवत् देनेमें उसने भूल की है। पुन १६६६मे तिब्बतके बाहरी भागको भी जीत लिया गया था। फारसी इतिहास-ग्रन्थोमे वहाँके शासकका नाम दलदल नजमल दिया है, जिसने औरगजेबकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। कश्मीरके तत्कालीन इतिहासकी यही दो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ थी।

सन् १६८४मे कश्मीरमे शिया और सुन्नियोमे भयकर विरोध उठ

खडा हुआ तथा तब उनके बीचमें जो युद्ध हुआ संभवतः उस कालके ऐसे युद्धोंमें सबसे भीषण था। श्रीनगरका हसनाबाद मुहल्ला शियोंका एक सुदृढ अड्डा है। वहाँ रहनेवाले अब्दुस्शकूर नामक एक शिया और उसके लड़कोने अब्दुस्सादिक नामक सुन्नीको कुछ हानि पहुँचाई थी, जिससे कुछ समय बाद उनका यह आपसी झगड़ा लम्बे अरसे तक चलने-वाली कट्टर शत्रुतामें बदल गया। इसी बीच शिया लोगोंने सार्वजनिक रूपसे कुछ ऐसे कार्य किए तथा बातें की जिनसे पहिले तीन खलीफा-ओंके प्रति तिरस्कार प्रगट होता था। (शिया फ़िरकेके धर्म-शास्त्रके के अनुसार ये प्रथम तीन खलीफ़ा बिना किसी न्यायपूर्ण अधिकारके बलात् खलीफ़ा बन बैठे थे)। शिया अपराधियोंने सूबेदार इब्राहीमख़ाँकी शरण ली। धार्मिक भावनाओंसे उत्तेजित काजी मुहम्मद यूसुफने नगर-वासियोकी भीड़को उभाडा; तब सुन्नियोंकी उस भीड़ने हसनाबादके मुहल्लेमें आग लगा दी। इस उपद्रवके समय सूबेदारके लड़के फिदाई-ख़ाॅने हसनाबादवालोंकी मदद की। उधर तिब्बतकी चढ़ाईसे तब ही लौटे हुए काबुलके सेनानायकों तथा कुछ कश्मीरी मनसबदारोने भीड़का साथ देकर फिदईख़ाॅका सामना किया। दोनो ही पक्षके कई आदमी मारे गौ ए अवरहुतसे घायल हुए और जनताकी भीड़ने भयकर उत्पात मचाया।

इब्राहीमख़ाॅने जब देखा कि इस झगड़ेमें भी उसको सफलता नही मिली, तब विवश होकर उसे अब्दुस्शकूर और अन्य शिया अपराधियोंको काजीको सौप देना पड़ा। काजीने धार्मिक व्यवस्थाके अनुसार शकूर, उसके दो पुत्रो तथा एक दामादको मृत्यु-दण्ड दिया। सुन्नी उपद्रवकारि-योंका सारे नगरमें दोरदौरा था; उसके सुन्नी होते हुए भी उन्होने मुफ्तीके मकानको जला डाला। शियोके धर्म-गुरु बाबा कासिमको राहमे पकड़ लिया गया और बहुत ही दुर्गति करनेके बाद उसे मार डाला। फिदाई-ख़ाॅने ससैन्य नगरका चक्कर लगाया और भीड़के अन्य कई लोगोके साथ सुन्नियोके एक स्थानीय नेताको भी मार डाला। इसी बीच शैख बका बाबाने सुन्नियों की एक भीड़ एकत्र कर इब्राहीमख़ाॅके मकानको भी आग लगा दी थी। तब तो सूबेदारने बका बाबा, काजो, वहाॅके वाकया-नवीस, सूबेके बख़्शी और श्रीनगरके कुछ और प्रमुख व्यक्तियोको कैद कर लिया। इन सब उपद्रवोके समाचार सुनकर औरंगजेबने इब्राहीमख़ाँको सूबेदारीसे अलग कर दिया और सारे सून्नी क़ैदियोंको छोड़ देनेका हुक्म दिया।

१६९८-९ ई०के लगभग कश्मीरमें एक ऐसी घटना घटी, जिससे वहाँके मुसलमानोकी धार्मिक भावना बहुत अधिक उमड उठी थी। ख्वाजा नूरुद्दीनने पैगम्बर मुहम्मद साहबका एक सुप्रसिद्ध पूजनीय बाल बीजापुर-मे कहीसे प्राप्त किया था। ख्वाजाकी मृत्युके बाद ख्वाजाका शव कश्मीर भेजा गया और उनके साथ ही पैगम्बर साहबका वह बाल भी कश्मीर लाया गया। उस बालको देखने तथा उस पूजनीय स्मृति-चिह्नको छूनेके लिए नगरकी गलियो और चौकोमे वहाँके सारे मुसलमान एकत्र हुए थे।

मई १६९२मे एक दूसरी घटना घटी, जो कश्मीरकी जनताके पूर्ण अन्धविश्वासको स्पष्टतया चित्रित करती है। रमजानका महीना था जब मुसलमान रोजे रखते है। कुछ अच्छी स्थिति वाले मीर हुसैन नामक एक विदेशीने कश्मीर आकर तख्त-इ-सुलेमान पहाड़ीके पास एक कुटिया बनाई और वही अपना डेरा डाला। रमजानके महीनेमें उस ऋतुके उपलक्षमे दिये जलाकर उसने बडा उत्सव मनाया। अपने मनोरंजन तथा इस दृश्यको देखनेके लिए श्रीनगरके बहुतसे लोग वहाँ गए। तब दिनके तीसरे पहर वहाँ बड़े जोरोसे आँधी आई, बिजलियाँ चमकने लगी, पानी बरसने लगा और सारे नगरमे रात्रिका-सा अधेरा हो गया। कुछ समय तक यह सब चलता रहा, और यह सोचकर कि सूरज डूब चुका है लोगोने अपना रोजा खोल दिया। किन्तु दो-तीन घण्टेके इस आँधी-तूफानके बाद जब सूरज फिर देख पडा तब बेवकूफ बनकर यो अपमानित होनेपर सारे निवासी हक्के-बक्केसे रह गए, क्योकि रमजान महीनेमे दिनके समय कुछ भी खाना-पीना मुसलमानके लिए सबसे अधिक पापपूर्ण कार्य माना है। कश्मीरकी राजधानीके सारे ही छोटे-बड़े लोगोने इस आश्चर्यजनक प्राकृतिक घटनाको उस विदेशी फकीरकी जादूगरीको ही करामात समझा, जिससे उन सब लोगोकी बुद्धि तथा उनमे शिक्षाके पूर्ण अभावका ही प्रदर्शन होता है। "धर्म-रक्षक और सत्यके पूर्ण ज्ञाता" बादशाह औरग-जेबने भी जनताके इस विश्वासको ही ठीक माना और उस जादूगरको वहाँसे निकाल बाहर किया।

११. गुजरात, उसकी सुविधापूर्ण स्थिति तथा वहाँकी नानाविध आबादी

वहाँके घरेलू धधो और व्यापारके कारण ही गुजरात सुसमृद्ध रहा

है। शहरपनाहवाले शहरों या उनके आसपास बसे हुए सुरक्षापूर्ण गाँवोंमें ही ये घरेलू धन्धे पनपते थे। गुजरातके सब ही निवासी, हिन्दू और मुसलमान दोनों स्वभावतया भारतके अन्य सब प्रान्तवासियोसे कही अधिक व्यापार-कुशल है; साथ ही अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थितिके कारण भी गुजरातको व्यापार-सम्बन्धी अनेकानेक लाभ और सुविधाएँ प्राप्त है। खानदेश, बरार और मालवा जैसे समृद्धिपूर्ण भीतरी प्रान्तो तथा उत्तरी भारतके अन्य भागोका भी व्यापारका सारा माल विदेशोको भेजे जानेके हेतु जहाजोपर लादा जानेके लिए गुजरात ही पहुँचता था। भारतके बडे-बड़े बन्दर, हिन्दू कालमे भडोच और मुसलमानी युगमे सूरत, इसी प्रान्तके समुद्री तटपर थे। बाहरी मुसलमानी देशोसे सम्बन्ध बनाये रखनेके लिए मुगल कालमें गुजरात ही भारतका प्रमुख द्वार था। अरबके पवित्र तीर्थस्थानोको जानेवाले हजारों मुसललान यात्री नजफ़ और कर्बलाके पवित्र स्थानोकी यात्रा करनेवाले शिया श्रद्धालु भक्त सूरतको राह ही जाते थे। अपने भाग्यकी परीक्षा करनेवाले यात्री, व्यापारी और विद्वान् तथा ईरान, अरब, तुर्की, मिश्र, जजीबार और खुरासान तथा बर्बरी तकके राजनैतिक शरणार्थी समुद्री राह द्वारा इन्ही गुजराती बन्दरगाहोंसे भारतमे प्रवेश करते थे। इस समुद्री राहसे भारत आनेमे कम रुपया लगता था और यह अधिक सुरक्षित भी थी एवं उस ओरसे आनेवाले यात्री भी अब सुलेमान और हिन्दूकुश पर्वत-श्रेणियोको पारकर आनेवाले थल-मार्गको छोडकर इसी समुद्री राहको ही अपराते थे।

अपनी विशेष भौगोलिक परिस्थितिके कारण गुजरातकी आबादी सदैव नानाविध रही है, और वहाॅ पुराने कालसे ही बहुतसे विदेशी बसते आए है, जिनमे विशेष रूपेण उल्लेखनीय है, अग्नि-पूजक पारसी, इस्मालिया फिरकेके वे विधर्मी मुसलमान जो साधारणतया वोहरे कहे जाते है और महदवियोका कट्टरता-विहीन फिरका। इनके अतिरिक्त वाहरसे आए हुए अनेकानेक घरानों तथा भारतमें मुग़लोके आनेसे पहिले यहाँ शासन करनेवाले मुसलमान जातियोके रहे-सहे वशज, सव ही इसी समुद्री तटपर आ वसे थे, जिससे तव भी इस प्रान्तकी आवादीमें विभिन्न जातियोंका अनोखा सम्मिश्रण हो गया था। गुजरातके हिन्दुओमे भी कम आन्तरिक विभिन्नताएँ नही थी। १७वी शताब्दीमें उस प्रान्तकी भीतरी सीमाओवाले प्रदेशमें कई एक आदि-वासी तथा लुटेरा जातियाँ वसती थी, जिनको या तो सभ्यता छू भी नही गई थी या शान्तिपूर्ण जीवन

बिताना जिनके लिए सर्वथा असम्भव था। दक्षिणी गुजरातमे कोली थे, बगलानेके दक्षिण-पूर्वी प्रदेशमे भील बसे हुए थे और पूर्वी सीमापर जगली राजपूत या राजपूत-मिश्रित अन्य जातियोका जोर था ; पश्चिममे काठी थे, और इन सबके अतिरिक्त गिरासिये तो सारे ही प्रान्तोमे यत्र-तत्र फैले हुए थे। प्रदेशकी शान्तिको भग करनेके लिए ये गिरासिये सदैव तत्पर रहते थे। औरगजेबके शासन-कालमे वहाँ उपद्रव करनेको इन गिरासियोके साथ मराठे भी जा मिले, जिससे आगे चलकर अन्तमे मराठोने उस प्रान्तमे मुगल शासनकी इति-श्री ही कर दी।

१२. औरंगजेबके समयमें गुजरातमें दैवी आपत्तियाँ एवं आक्रमण

मध्यकालमे गुजरातमें अकाल प्राय: पड़ते ही रहते थे, और औरग-जेबके शासन-कालमे यह परिस्थिति किसी भी प्रकार नही सुधरी थी। सन् १६८१, १६८४, १६९०-१, १६९५-६ और १६९८मे गुजरातमे अकाल पडनेका विवरण हमे मिलता है। १६९६मे तो ऐसा भयकर अकाल पडा था कि 'पाटलसे लेकर जोधपुर तक कही भी पानीकी बूँद या घासका एक तिनका देखनेको नही मिल सकता था'। इन दैवी विपत्तियोके साथ ही महामारी भी कई वर्षोतक कई नगरोमे निरन्तर बनी रही, जिससे वे नगर वीरान हो गए। जब मुगल-राजपूत युद्ध चल रहा था तब महा-राणा राजसिहके पुत्र भीमसिहने १६८०मे गुजरातपर भी हमला किया और बडनगर, विशालनगर तथा अन्य कई समृद्ध नगरोको लूटा। प्रान्त-की शान्तिको तब भग करनेवाली यही एक महत्त्वपूर्ण घटना थी।

१३. गुजरातपर मराठोंका आक्रमण

सन् १७०६के प्रारम्भमे मराठोने शाही मुगल सेनाको बहुत बुरी तरहसे हराया था। शाहजादा आजम (२५ नवम्बर, १७०५को) अहमदा-बाद नगरसे रवाना हो गया था और बेदारबख्त ३० जुलाई १७०६को ही वहाँ पहुँचा। इसी बीचमे यह भयकर पराजय मुगल सेनाको सहनी पडी। तब प्रान्तकी सुरक्षाका ठीक प्रबन्ध नही था, एव उस स्थितिसे लाभ उठाकर धन्ना जादव मराठोके दल लेकर वहाँ जा पहुँचा। राज-पीपल्यामे रतनपुर नामक स्थानपर धन्नाने एक-एक कर मुगल सेनाओके दो दलोको बुरी तरह हराया। उन सेनाओके सफ़दरख़ाँ और नजरअली-

ख़ाँ नामक सेनानायकोंको मराठोने कैद कर लिया और उनके छुटकारेके लिए द्रव्यकी माँग की। मराठोने शाही सेनाओके पड़ावोको भी जी भर कर लूटा। इस युद्धमें हजारो मुसलमान मारे गए या कैद हुए (१५ मार्च १७०६)।

जब प्रान्तका नायब-सूबेदार अब्दुल हामिदख़ाँ स्वय एक सेना लेकर मराठोंका सामना करनेको वढा, तब विजयी मराठोंने उसकी थोड़ी-सी सेनाको बाबा प्यारेके घाटके पास जा घेरा। नायब-सूबेदार तथा अन्य सारे शाही सेनानायकोको मराठोने कैद कर लिया तथा शाही सेनाके पड़ाव और सारे माल-असबाबको उन्होंने लूट लिया। तब मराठोने आसपासके पड़ोसी प्रदेशोसे चौथ वसूल की और जिन नगरो या गाँवोने चौथ नही दी उन्हे लूटते हुए वे वापस लौट गए। मराठोके इस उपद्रवसे लाभ उठानेके लिए कोली भी विद्रोही हो गए और उन्होने बड़ोदाके धनवान् व्यापार-केन्द्रको दो दिन तक खूब लूटा।

१४. वोहरों और खोजाओंपर धार्मिक अत्याचार

इसमालिया फिरकेके धार्मिक गुरु कुतुबको ओरगजेबके शासन-कालके प्रारम्भमें ही शाही आज्ञा द्वारा मृत्यु-दण्ड दिया गया था। सन् १७०५मे औरंगजेबने सुना कि कुतुवके उत्तराधिकारी खानजीने, जो अब इस्मा-लिया फिरकेका धार्मिक गुरु बन गया था, अपने बारह दाई (प्रतिनिधि) भेजे थे जो गुप्त रूपसे मुसलमानोंको इन अधार्मिक आचार-विचारकी ओर आकर्षित कर रहे थे, तब औरगजेबने हुक्म दिया कि इन वारह व्यक्तियों तथा उस फिरकेके कुछ और लोगोको क़ैद कर लिया जावे, और उन्होने जो द्रव्य एकत्र किया हो उसे तथा इस धार्मिक फिरकेकी ६०से भी अधिक धार्मिक पुस्तकोके साथ कैद किए गए उन सब व्यक्ति-योंको भी बहुत ही कडे पहरेमे शाही दरवारमे भेज दिया जावे। इस शाही आज्ञाका पालन किया गया। अपठित वोहरो तथा उनके वच्चोको सुन्नी फिरकेके धार्मिक तत्त्वों और सुन्नी आचार-विचारकी शिक्षा देनेके लिए प्रत्येक गाँव और शहरमें कट्टर मुसलमान मौलवी नियुक्त किए गए। सुन्नी रीतिके अनुसार वोहरोंकी मसजिदोमे भी आवश्यक परिवर्तन औरगजेवके शासन-कालके प्रारम्भमें ही कर दिए जा चुके थे।

गुजरातमें मोमिन (अथवा मतिया) और काठिवाड़मे खोजा कह-

लानेवाले अन्य मुसलमान फ़िरके भी थे, जिनमेंसे बहुतसे पहिले हिन्दू थे और सैय्यद इमामुद्दीन नानक एक मुसलमान सन्तने उन्हें मुसलमान बनाया था। अहमदाबादसे ९ मील बाहर करमता नामक स्थानपर इसी सन्तकी कब्र है, जो इन दोनो फिरकेवालोका प्रमुख तीर्थ-स्थान है। अपने धार्मिक गुरुकी जिस प्रकार वे पूजा करते थे, वह किसी भी प्रकार मूर्ति-पूजासे कम नही थी। वे उसके पैरकी अँगुलियाँ चूमते थे और उसके पैरोमें ढेरो चाँदी-सोना चढ़ाते थे। वह धर्मगुरु स्वयं शाही ठाठ-बाठके साथ पड़देमें रहता था। अपनी वार्षिक-आयका दसवाँ हिस्सा वे स्वयं ही करके रूपमे उसको भेट करते थे जिससे उसका सारा कारोबार चलता रहता था। औरंगज़ेबने हुक्म दिया कि सैय्यद शाहजी नामक उनके इस धर्म-गुरुको कैद किया जावे। राहमें ही विष खाकर शाहजीने आत्म-हत्या कर ली, तब उसका बारह-वर्षीय लड़का औरंगज़ेबके पास भेजा गया। तब तो गुजरातमें उसके सारे अनुयायी विद्रोही हो गए और यह कहकर कि गुजरातके सूबेदारने ही उनके धर्मगुरुकी हत्या की थी उससे अपना बदला लेनेके लिए वे उतारू हो गए। उन्होंने भड़ौचके फौजदारका सामना कर उसे मार डाला और उस नगरपर अधिकार कर लिया और ४,००० व्यक्तियोका उनका दल उस नगरपर आधिपत्य किए वहाँ डटा रहा। बहुत दिनो तक उस नगरका घेरा डाले रहनेके बाद ही कही सूबेदार पुन. उस नगरपर अधिकार कर सका। तब उस नगरमें जो भी धर्मान्ध व्यक्ति पकड़े जा सके उन सबको उसने मरवा डाला।

•

अध्याय १९

औरंगज़ेबका चरित्र और उसके शासनका परिणाम

१. भारतकी समृद्धिका मूल कारण—शांति

सारे विदेशी दर्शकोंको यही दिखाई दिया कि जब औरगजेब दिल्लीके सिंहासनपर बैठा, तब मुगल साम्राज्यका वैभव तथा उसकी शक्ति चरम सीमापर पहुँच चुके थे। सुदूरके विदेशी राजदरबारोमे भी "हिन्दीकी दौलत" एक सुज्ञात लोक-प्रसिद्ध बात हो गई थी। महान् मुगलोके शाही दरबारकी शोभा और प्रतापको देखकर "फ्रासकी राजधानीके ऐश्वर्यसे सुपरिचित आँखे भी चकाचौधित हो गई"। और ऐसे समय औरगजेबका-सा सुशिक्षित शासक और पक्का सेनानायक ऐसे सुसमृद्ध साम्राज्यका शासक बना; उसका निजी जीवन बहुत ही सादा, निष्कलक तथा धार्मिकतापूर्ण था ; पुन· तब वह बहुत ही स्वस्थ था और उसकी बुद्धि भी पूर्णतया परिपक्व हो गई थी। अतएव लोगोको यह आशा होने लगी कि औरगजेबके शासन-कालमे साम्राज्य न जाने कितने गौरव और सत्ताको प्राप्त कर सकेगा। तथापि औरगजेबके लम्बे परिश्रमपूर्ण जीवनका परिणाम हुआ—पूर्ण विश्रृङ्खलन तथा अत्यधिक दुर्दशा। इतिहासकारका यह कर्तव्य हो जाता है कि वह इस अद्भुत घटनाके ठीक-ठीक कारण ढूँढ निकाले।

भारतके समान गरम सजल उपजाऊ देशमें विरोधी मनुष्यों और जीव-जन्तुओ या कड़ी धूप तथा अतिवृष्टि या अनावृष्टि द्वारा होनेवाली हानिकी पूर्ति प्रकृति स्वयं बड़ी ही तत्परताके साथ कर देती है, इसलिए अन्य देशोकी अपेक्षा कही अधिक यहाँके जातीय जीवनका मूल तत्त्व शान्तिपूर्ण सुव्यवस्था ही होता है। यदि विदेशोसे उसपर आक्रमण न हों और यदि यहाँके जीवनमें प्रगतिशीलता उत्पन्न हो जावे तो भारत-निवासी बड़ी ही तेजीके साथ सुसमृद्ध और शक्तिशाली बनकर अत्यधिक

सांस्कृतिक उन्नति भी कर सकते है। अकबर, उसके पुत्र और पौत्रके एक शताब्दी तक चलनेवाले सुदृढ बुद्धिमत्तापूर्ण शासनोमे भारतके आधेसे भी अधिक भागमे पूर्ण शान्ति बनी रही। मुगलो द्वारा शासित भारतके इस अधिक सुसमृद्ध और आबाद भागमे उन्नति तथा विकासकी प्रेरणा दिनोदिन बढती ही गई। पानीपतके दूसरे युद्धके बाद निरन्तर होनेवाली सैकडो मुगल विजयोने भारतीयोमे यह सुदृढ विश्वास उत्पन्न कर दिया था कि मुगल सेना अजेय थी और मुगल प्रदेशपर किसीका भी आक्रमण कर सकना बिलकुल अनहोनी बात थी। किन्तु इस विश्वासको शिवाजीने मिथ्या प्रमाणित कर दिया। भारतमे मुगलो द्वारा स्थापित शान्ति और सुव्यवस्था ही उनके साम्राज्यके आगे भी बने रहनेका एकमात्र कारण हो सकती थी, परन्तु औरगजेबकी मृत्युके समय वह शान्ति और सुव्यवस्था नाममात्रको भी भारतमे नही रह गई थी।

भारतके समान कृषि-प्रधान देशमे खेती करनेवाले किसान ही एकमात्र राष्ट्रीय समृद्धिके कारण होते है। सीधे या परोक्ष रूपसे ही क्यो न हो, धरती ही देशकी राष्ट्रीय समृद्धिको प्रति वर्ष बढाती है। उद्योग-धधेवालोको भी अपना माल बेचनेके लिए किसानो या धरतीकी आमदनीसे धन प्राप्त करनेवालोपर ही निर्भर रहना पड़ता है, एव यदि उनके पास बेचनेको अधिक अन्न न हो तो वे कोई भी दूसरी वस्तुएँ मोल नही ले सकते है। अतएव भारतमे तो किसानोकी दुर्दशाके फलस्वरूप किसानोके साथ ही अन्य दूसरे सब लोगोकी भी दुर्गति हो जाती है। फ्रासकी कहावत 'किसान दरिद्री तो राज्य भी दरिद्री' भारतके लिए तो अत्यधिक उपयुक्त है। सार्वजनिक शान्ति और सम्पत्तिकी सुरक्षा किसानोके लिए जितनी आवश्यक है, उससे भी कही अधिक वे उद्योग-धन्धेवालो तथा व्यापारियोको जरूरी होती है क्योकि लाभदायक व्यापारक्षेत्रकी खोजमे उन्हे अपना माल दूर-दूरके देशमे ले जाना पड़ता है और आवश्यकता पडनेपर लम्बे समयके लिए उधारखाते भी खोलने पडते है। किसानो द्वारा पैदा किए गए मालके अतिरिक्त भागकी बचतसे ही आगे चलकर कुछ भी सम्पत्ति एकत्र की जा सकती है। अतएव उसकी सम्पत्तिके लिए खतरा उत्पन्न होनेके कारण जब कभी किसानकी पैदावार घटने लगती है या अपनी आमदनीमेसे कुछ बचा रखनेके लिए किसानको कोई प्रोत्साहन नही रह जाता है तब राष्ट्रीय मूलधनमे वृद्धि होना भी बन्द हो जाता

है, और उससे देशकी आर्थिक स्थितिको गहरा आघात लगता है। सार्वजनिक अशान्ति, अव्यवस्था तथा अरक्षाकी परिस्थितिके उत्पन्न हो जानेसे भारतमें जो देशव्यापी तथा बहुत समय तक बना रहनेवाला प्रभाव पडता है उसका सबसे अच्छा उदाहरण हमें औरंगजेबके शासन-कालमे देखनेको मिलता है। तबकी घटनाओंसे ऊपर लिखी बातोकी सत्यता भी पूर्णतया प्रमाणित हो जाती है।

२. औरंगजेबके लगातार युद्धोंके आर्थिक दुष्परिणाम

पूरे पच्चीस वर्ष तक निरन्तर दक्षिणमे औरगजेबके युद्ध चलते रहे, जिनके फलस्वरूप साम्राज्य और देशकी आर्थिक स्थिति बहुत बिगड़ गई, उसका देशपर सर्वव्यापी भयकर प्रभाव पडा, जो बहुत समय तक बना रहा। शाही सेनाकी चढ़ाइयो तथा विशेषतया उसके अनेकानेक घेरोके कारण उन प्रदेशोके पेड़ और घास बिलकुल ही बरबाद हो गए। शाही कागज-पत्रोके अनुसार तब शाही सेनामे कोई १,७०,००० सैनिक थे, और सभवतः उनके साथ पडावके नौकरोकी सख्या इसकी दस गुनी हो जाती थी। अतएव जहाँ कही भी यह शाही सेना पहुँच जाती थी, कुछ ही दिनोमे वहाँ कोई भी हरियाली बाकी बचती न थी। उधर जो कुछ भी वे अपने साथ नही उठा ले जा सकते थे, मराठे आक्रमणकारी उस सबको नष्ट कर देते थे। पुन वे खडी फसले अपने घोडोको खिला देते थे तथा लूटमारके बाद मकान और पीछे छोड़ी जानेवाली सारी सम्पत्तिको वे जला देते थे। अतएव यह पढकर आश्चर्य नही होता है कि अपनी अन्तिम चढ़ाईके बाद जब सन् १७०५मे औरगजेब वापस लौटा तब तक सारा देश बरबाद होकर पूर्णतया वीरान हो चुका था। "उन प्रांतोके खेतोमे न तो फसले रही थी और न कोई वृक्ष ही, उनके स्थानपर वहाँ सब ओर मनुष्यो और ढोरोंकी हड्डियाँ बिखरी पडी थी" (मनुची)। यो उस प्रदेशमें दूर-दूर तकके जंगलोंके बिलकुल ही कट जानेसे वहाँकी खेतीपर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा। युगो तक निरन्तर चलनेवाले इन युद्धोसे साम्राज्यका कोष बिलकुल ही खाली हो गया तथा वहाँके अन्य नागरिक भी दरिद्री हो गए, अतएव आवश्यक द्रव्यके अभावमे बहुत अधिक समय बीतनेपर भी मकानो या सड़कोंकी दुरुस्ती नही हो सकती थी।

साधारण मजदूरोको एकाएक बेगार और भूखकी व्यथाका तो सामना

करना पड़ता ही था, साथ ही ऐसी चढ़ाइयोके समय प्राय' फैलनेवाली महामारी आदि भयकर बीमारियाँ भी उन्हे पीडित करती थी। शाही पडावमे अधिक सुविधाएँ, सुरक्षा तथा सुव्यवस्थाका होना स्वाभाविक ही था, परन्तु तथापि वहाँ दक्षिणकी इन लडाइयोके कारण प्रति वर्ष एक लाख मनुष्य तथा हाथी, घोडे, ऊँट, बैल आदि मिलाकर तीन लाख जानवर मरते रहते थे। गोलकुण्डाके घेरेके समय सन् १६८७मे अकाल पडा। "हैदराबाद नगरके घर, नदियाॅ और मैदान, सव जगह मुर्दे भर गए। शाही पडावमे भी यही हालत थी। ७७ कोसो तक मुर्दोके ढेर ही देख पडते थे। निरन्तर बरसातसे उन शवोका मास और चमडी गल गई। कुछ महीनोके बाद जब वरसातका अन्त हुआ तब हड्डियोके वे ढेर दूरसे हिमाच्छादित पहाडियोके समान दिखाई पडते थे।" जिन प्रदेशोमे तब तक शान्ति और समृद्धि बनी हुई थी वहाॅ भी अब ऐसी ही बरबादी होने लगी। बडी ही बारीकीके साथ देखनेवाला इतिहासकार भीमसेन पूर्वी कर्नाटकके विषयमे लिखता है—"बीजापुर, गोलकुण्डा और तैलङ्गके (राजघरानोके) शासनके समय इस प्रदेशके बहुतसे भागोमे खेतो होती थी। किन्तु शाही सेनाओके आते-जाते रहनेके कारण वहाॅके लोगोको अब जो कठिनाइयाॅ तथा अत्याचार सहन करने पडे उनके फलस्वरूप वहाॅके अनेको स्थान बिलकुल ही उजड गए है।" यही हालत उसने बरारमे भी देखी थी।

सन् १६८८ ई०मे बीजापुरमे भयकर महामारी (प्लेग) फैली, जिसमे तीन महीनेमे कोई एक लाख स्त्री-पुरुष मर गए। अगस्त, १६९४मे शाहजादे आजमके पडावमे भी प्लेगके फैलनेका उल्लेख मिलता है। सूरतके अग्रेज व्यापारियोके विवरणोमे भी सन् १६९४ तथा १६९६मे सारे पश्चिमी भारतमे ऐसी ही घातक महामारियोके फैलनेका वर्णन मिलता है। सन् १६९६मे कोई १५,००० स्त्री-पुरुष मरे। एक पीढी तक युद्धकी यह परिस्थिति चलती रही, जिसके फलस्वरूप जन-साधारणके पास कोई सम्पत्ति नही बच रही, और अब कोई विरोध करने या किसी भी सकटका सामना कर सकनेकी भी शक्ति उनमे नही रह गई। जो कुछ भी उन्होने पैदा किया था या जितना भी पिछली पीढियोसे उनके पास बच रहा था वह सब-कुछ दोनो विरोधी दल लूट ले गए, और उसके बाद जब कभी अकाल पडा या अनावृष्टि हुई तब किसान और बिना धरतीवाले मजदूर सब ही बेबस हो मक्खियोकी तरह मरने लगते थे। शाही पड़ावमे धान्य,

आदि वस्तुओंका प्रति दिन अभाव रहता था और प्रायः वह अकालकी हद तक भी पहुँच जाता था।

३. युद्ध, उपद्रवों तथा शाही करोंके भारसे व्यापार और उद्योग-धन्धोंको हानि पहुँचना

भारतके कई एक भागोंमें खेती कर सकनेके लिए आवश्यक शान्ति और सुरक्षाके न रहनेके कारण वहाँके किसान भूखों मरने लगे, तथा अन्तमें क्षुब्ध हो अपनी पेट-भराईके लिए राह चलतोंको लूटने तथा डाके डालने लगे। दक्षिणके किसानोंने घोड़े और शस्त्र एकत्र कर लिए और अब वे आक्रमण करनेवाले मराठोंका साथ देने लगे। अब स्थान-स्थानपर आक्रमणकारियोंके दल भी बनने लगे, जिससे अनेकों गाँव-निवासी इस काम-धन्धेमें लग गए और उनमेंसे वीर और साहसी लोगोंको यश और धन कमानेका भी अवसर मिलने लगा। इन दुःखपूर्ण २५ वर्षोंमें व्यापार बिलकुल ही बन्द हो गया था। नर्मदाके दक्षिणमें सही सलामत आगे बढ़नेके लिए काफ़िलोंके साथ हथियारबन्द शक्तिशाली सैनिक दलोंका होना सर्वथा अनिवार्य हो गया। अतएव अपने निर्दिष्ट स्थानपर सुरक्षित जा पहुँचनेके लिए इन काफिलोंको अनेक बार सुदृढ़ शहरपनाहवाले शहरोंमें महीनों तक ठहरा रहना पड़ता था। नर्मदासे दक्षिणके शाही मार्गोंपर होनेवाले मराठोंके उपद्रवोंके कारण शाही डाक तथा सम्राट्के भोजनके लिए भेजे जानेवाले फलोंके टोकरे भी कई बार हफ्तों तक नर्मदाके उत्तरी तीरपर ही रुके रहते थे; एक बार तो उनके पूरे पाँच महीने तक यों रुके रहनेका उल्लेख मिलता है।

ही कारीगरोंके कौशलकी कमी भी होने लगी तथा सास्कृतिक दर्जा भी नीचे गिरने लगा। देशके कई बडे भागोसे तो कला-कौशल तथा सस्कृति बिलकुल ही लोप हो गयी।

राहसे गुजरनेवाले मुगल सैनिक उधरकी फसलोको रौद देते थे, एव वहाँके किसानोको उनके इस नुकसानकी (पायमाली-इ-जरायतकी) उचित पूर्तिके लिए सम्राट्ने विशेष अधिकारियोका एक दल नियुक्त किया था, परन्तु तदर्थ आवश्यक धनके अभावके कारण प्राय इस दयालु शाही आदेशकी उपेक्षा ही की जाती थी। शाही सेनाके पीछे-पीछे नौकरो, मजदूरो, दरवेशो आदि कई एक अन्य विविध प्रकारके लोगोका बहुत बडा दल चलता था जो औरगजेबके 'इस घूमते हुए तम्बुओके नगर'का अनुसरण इसी आशासे करता था कि शाही दरबार और सेनाकी उस भीड द्वारा गिराए गए रोटीके टुकडोको एकत्र कर वे उससे ही अपनी उदरपूर्ति करले। शाही सेनाके पीछे-पीछे चलनेवाला यह दल गरीब किसानोपर सबसे अधिक अत्याचार करता था। शाही सेनाको अपने ऊँट किराए देनेवाले बलूची और नौकरी या काम-धन्धेकी खोजमे रहनेवाले वेकार अफगान देहातवालोको बडी ही बेदर्दीसे पीटते और उनको लूटते थे। धानको इधर-उधर ले जाकर उसका व्यापार करनेवाले घुमक्कड बनजारे अनाजसे लदे हुए बैल अपने साथ लिये बड़ी-बड़ी टोलियोमे घूमते रहते थे और कई बार एक-एक दलमे पॉच हजारसे भी अधिक बनजारे होते थे। बनजारो के ये दल बहुत शक्तिशाली होते थे और वे छोटे-छोटे शासकीय अधिकारियोको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते थे। वे भी कई बार राहमे पडनेवाले लोगोको लूट लेते थे, खेतोमे खड़ी फसलें अपने ढोरोंको चरा देते थे और फिर भी उन्हे कोई दण्ड नही दिया जाता था। मराठा सैनिकोके पीछे अब बेरडो और पिण्डारियोके भी दल चलने लगे, और बेरड तथा पिण्डारी, ये दोनो ही निरे डाकू और केवल लुटेरे थे।

इनके सिवाय गॉववालोको वहाँके पुराने और नए दोनो परस्परविरोधी जागीरदारोके वहाँके गुमाश्तोके आपसी झगडोका भार भी उठाना पडता। लगानकी कभी पूरी न चुकनेवाली रकममें बाकी रहा रुपया वसूल करनेके बहाने पुराने जागीरदारका गुमाश्ता वहाँसे चल देनेसे पहिले जो कुछ भी हो सकता था बलपूर्वक ले लेनेका प्रयत्न करता था, और कई बार नये जागीरदारके गुमाश्तेके आनेके बाद भी बाकी वसूल करनेके

लिए कई महीनों तक उस गाँवमें टिका रहता था। उधर नया तहसील-दार भी अपनी उदर-पूर्तिके लिए भूखे अधमरे किसानोसे अपने खातेके बहुत-कुछ रुपये वसूल करनेमें जुट जाता था।

४. मुगल शासनका दिवाला

अंग्रेजोंने ठहर-ठहरकर ही क्रमश भारतको जीता था; लगातार आक्रमण करके उन्होंने एकवारगी यह सफलता नही प्राप्त की थी। प्रत्येक आक्रमणकारी गवर्नर जनरलके बाद आनेवाले गवर्नर जनरलकी नीति शान्तिपूर्ण तथा भारतके देशी राज्योमें हस्तक्षेप न करनेकी ही रहती थी, तथा व्ययमें कमी करनेकी ओर भी वह पूरा ध्यान देता था। वेलेज्लीकी विजयोकी आवेशपूर्ण नीतिसे जो आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया था वह शान्त तथा धीमी नीतिवाले बार्लो और मिण्टोके शासन-कालोमे दूर हो गया। युद्ध-प्रिय लार्ड हेस्टिंग्ज और एमहर्स्टके समय जो खजाना खाली हो गया था उसे शान्ति-प्रिय बेण्टिकने पुन परिपूर्ण कर दिया। परन्तु औरगजेबके समयमे यह नही हुआ। मारवाड राज्यपर आधिपत्य करनेके लिए उसने १६७९मे जो युद्ध प्रारम्भ किया वह उसके शासन-कालके अन्त तक लगातार चलता हो गया। वीच-वीचमे कुछ ठहरकर पुनः शान्ति-पूर्ण नीति अपनाने तथा सैनिक व्ययको घटानेकी बड़ी आवश्यकताको उसने कभी नही समझा, जिससे कि उसकी प्रजाको कुछ अवकाश मिल जाता और पिछले युद्धमें जो हानि हुई थी उसको पूरा कर भावी युद्धोके लिए आवश्यक सामग्री आदिको वे एकत्र कर सकते। अपने शासन कालकी एकत्रित वचत, सन् १६७९मे हिन्दुओपर लगाए गए नये जजिया करसे होनेवाली नई आमदनी तथा आगरा और दिल्लीके तलघरोमे पीढ़ियोसे सचित सारी सम्पतिको भी कुछ ही वर्षोमे औरगजेवने खर्च कर डाली।

इस प्रकार साम्राज्यका अन्तिम संचित कोष भी समाप्त हो गया और तव शासकीय सत्ताका दिवाला निकलना सर्वथा अनिवार्य हो गया। सैनिको तथा शासकीय अधिकारियोके पिछले तीन-तीन वर्षके वेतन भी तव तक चुकाए न जा सके थे। वेतन नही मिल रहा था और वनिया आगे उधार देनेको तैयार नही था, जिससे लोगोके भूखो मरनेकी नौवत आ जाती थी और वे कई वार शाही दरवारमे भी धरना देकर उपद्रव

खडा कर देते थे तथा अपने सेनानायकके दीवानको गालियाँ देकर कभी-कभी उसको मार-पीट भी देते थे। तनख्वाहके पेटे दी जानेवाली जागीरो सम्बन्धी हुक्मोका जारी किए जानेके बाद भी कई बार बरसो तक पालन नही होता था, क्योकि जिसको वह जागीर दी जाती थी उसको वे गाँव वास्तवमे सिपुर्द नही किए जा सकते थे। जागीर दिए जानेके लिए हुक्म होनेके बाद वह जागीर उसके सिपुर्द होनेमे कई बार इतनी अधिक देरी हो जाती थी कि व्यगपूर्वक लोग कहा करते थे कि तब तक एक बालक सफेद बालोवाला बूढा हो जाता था। वहाँके किलेदारको घूस देकर एक छोटेसे मराठा किलेपर भी अधिकार करनेमे रु० ४५,००० नकदके लगभग खर्चा हो जाता था। इतना रुपया प्रत्येक किलेपर व्यय करके मराठोके सारे किलोपर अधिकार करना औरगजेबके लिए सर्वथा असम्भव था। तथापि घूस देकर या उसका घेरा डालकर एकके बाद दूसरे किलेको लेनेमे औरगजेब हठपूर्वक बराबर लगा ही रहा। घेरा डालकर किलेपर अधिकार करनेमे तो कोई दस गुना अधिक रुपया व्यय होता था।

अन्तमे दक्षिणमे लडनेवाली मुगल सेनाका उत्साह और हिम्मत बिलकुल ही टूट गए। इस अनन्त निरर्थक युद्धसे सैनिक हैरान हो गए,[1] किन्तु फिर भी औरगजेब न तो किसीके विरोधकी ओर ध्यान देता था और न किसीकी हितकर सलाह ही सुनता था।

९. शासनमें शिथिलता और सार्वजनिक उपद्रव

बढे हुए खर्चो तथा दक्षिणमे चलनेवाले इस निरन्तर युद्धकी उत्तरी भारतकी स्थितिपर भी अहितकर प्रतिक्रिया हुई। साम्राज्यके उन पुराने सुव्यवस्थित शान्तिपूर्ण सुसमृद्ध प्रान्तोसे भी वहाँके युवा पुरुष, वहाँकी सचित सम्पत्ति तथा सुयोग्य व्यक्ति सुदूर दक्षिणको खिचे चले गए। वहाँके श्रेष्ठ सैनिक, सर्वोच्च अधिकारी और वहाँ एकत्रित सारी आमदनी दक्षिणमे भेज दी गई। हिन्दुस्तानके इन सूबोका शासन निम्नकोटिके अधिकारी ही चलाने लगे। उनके साथ अब बहुत ही थोड़ी सेना रहती

---

१. औरंगजेबने मुअज्जमको लिखा था कि "रेगिस्तान और जगलोमे मेरे साथ घूमते रहनेके कारण अब मेरे अधिकारी यह चाहने लगे है कि मेरी मृत्यु हो जावे।" (एनेक्डोट्स—स० ११)।

थी तथा प्रान्तीय आमदनीका इतना थोड़ा भाग पीछे रहने दिया जाता था कि केवल उतनेमें ही अपना गौरव बनाए रखना सूबेदारके लिए असम्भव-सा हो जाता था। दक्षिणकी ही तरह कुछ समय बाद उत्तरमे भी अब कभी-कभी सब तरहके उपद्रवी लोग सिर उठाने लगे। इन उत्तरी सूबेदारोकी बाकी रही आमदनी पहिले ही समुचित नही थी, और वास्तवमें अब वह भी दिनोदिन घटने लगी। देश-व्यापी अशान्तिके कारण किसानोसे लगान भी पूरा वसूल नही होता था। किसानोको पूरी तरह बरबाद कर देनेवाली मुग़ल जागीरोकी वास्तविक शासन-प्रबन्ध-व्यवस्थाकी अपेक्षा साम्राज्यके लिए अधिक हानिकारक वस्तु ढूँढे नही मिलती। एकके वाद नियुक्त होनेवाले दूसरे जागीरदारके या एक ही जागीरदारके एक ही साथ दो परस्पर-विरोधी गुमाश्तोमे उस जागीरके किसानोंका सब कुछ ले लेनेकी होड़-सी लग जाती थी। शाही खालसा प्रदेशमें भी ऐसी ही बरबादी करनेवाली नीति बरती जाती थी और हर एक जिलेका प्रत्येक तहसीलदार किसानोसे भरसक सब-कुछ चूसनेका प्रयत्न करता था।

यो मुगल शासन एक विषम चक्करमें जा फँसा था; राजनैतिक उपद्रवों तथा माली शासनके गलत तरीकोके कारण जागीरोसे वसूल होनेवाला रुपया दिनों-दिन कम ही होता जा रहा था। आमदनीके निरन्तर घटते रहनेके कारण सूबेदारको भी विवश होकर अपने पास रखे जानेवाले सैनिकोंमे बारम्बार कमी करनी पड़ती थी। सशस्त्र सैनिकोकी संख्या घटनेसे प्रान्तके उपद्रवी लोग अधिकाधिक सिर उठाते थे, जिससे किसानोकी दुर्दशा बढती ही थी और यों माली आमदनी में और भी अधिक कमी हो जाती थी।

राजपूत तथा स्वयंको क्षत्रिय जातिका बतानेवाले सब हिन्दुओका एकमात्र उद्योग तथा पेशा था युद्ध करना। जब मुगलोने सारे उत्तरी भारतपर अपना एकछत्र शासन स्थापित किया तब पश्चिममें भारतीय सीमापर होनेवाले युद्धो या सुदूर दक्षिणमे तब तक स्वाधीन रहे प्रदेशोको जीतनेमें राजपूतोको लगाया गया। मुगल सेनामे सम्मिलित हो राजपूत पहिले मुगल-झण्डेके नीचे मध्य एशिया और कन्धारमें लड़े थे। परन्तु औरगजेबके शासन-कालसे मुगलोंकी यह सैनिक कार्यवाही भारतीय सीमाओमे ही सीमित हो गई। दक्षिणके बाकी रहे राज्योके औरंगजेब

द्वारा जीत लिए जानेके बाद दो विभिन्न कारणोसे राजपूतोमे बेकारी बढ गई। प्रथम तो उन जीते गए राज्योकी सेनाओंके स्वामी-विहीन स्थानीय सैनिकोको भी नौकर रखना आवश्यक हो गया। दूसरे अब जीते जानेको बहुत ही थोड़ा प्रदेश रह गया था। ऐसी परिस्थितिमे राजपूत घरानेके महत्त्वाकाक्षी नवयुवकोके लिए केवल दो ही रास्ते रह गए थे, या तो अपने पैत्रक राज्य या जागीरपर अधिकार करनेके लिए वे अपने ही घरानेवालोसे लडे या लूटमार करने लगे।

६. औरंगजेबके शासन-कालमें भारतीय सभ्यताका पतन : उसके कारण तथा लक्षण

औरगजेबके शासन-कालमे मध्यकालीन भारतीय सभ्यताके पतनके सुस्पष्ट लक्षण कई एक बातोमे देख पडे। ललित कलाओका ह्रास हो गया था, साथ ही तबकी नई पीढीके लोगोका बौद्धिक स्तर भी पहिलेवालोसे बहुत ही नीचा था। अकबर और शाहजहाँके समयकी पौरुषत्व-पूर्ण परम्पराओमे बड़े हुए लोगोमे स्वतन्त्र विचारकी बुद्धि अधिक थी तथा अधिक जिम्मेदारी सभालने और पूरी-पूरी सूझ-बूझसे काम करनेकी योग्यता उनमे बहुतायतसे पाई जाती थी। ज्यो-ज्यो १७वी शताब्दी बीतती गई उस प्रकारके वे सारे पुराने उच्चाधिकारी एक-एक कर मरते गए। अब उनके स्थानपर जो अधिकारी आए उनमे पहिलेवालोकी-सी उदारता, क्षमता और हिम्मत न थी। सदैव सशंक रहनेवाला औरगजेब स्वय उन्हे समुचित साधन और अवसर नही देता था, एव ये अधिकारी जिम्मेदारी उठाने या अपनी सूझ-बूझ और प्रेरणासे कुछ भी काम करने से हिचकिचाते थे, और अपनी निजी उन्नति के लिए भी चाटुकारिता तथा अपने सरक्षकोकी सिफारिशसे ही काम निकालते थे। अपने बहुत ही लम्बे जीवन-कालमे औरगजेबकी जानकारी तथा उसका अनुभव दिनो-दिन बढते ही गए, जिससे उसके समयकी नवयुवा पीढी औरगजेबकी तुलनामे बौद्धिक दृष्टिसे स्वयको बहुत ही हीन और छोटा अनुभव करती थी। ज्यो-ज्यो उसकी उम्र बढती गई औरगजेब अधिकाधिक हठी होता गया और तब वह दूसरोकी बातपर ध्यान न देकर अपनी ही मनमानी अधिक करता था। उसकी मृत्यु पर्यन्त किसीको भी यह साहस नही होता था कि वह औरंगजेबकी बातको काटे या उसका विरोध करे।

कोई भी उसे निष्कपट सलाह नहीं देता था और न कोई अप्रिय सत्य बात ही उसे कह सकता था। सुदूर दक्षिणमें चलनेवाले निरन्तर युद्धोसे उसे अवकाश ही नही मिलता था तथा वहाँके पडावोंके कठोर जीवनमें समुचित वातावरणका भी पूर्ण अभाव था एवं उच्चवर्गीय समाजकी राजसी सभ्यता निरन्तर गिरती ही गई। तब ये अमीर और सरदार ही समाजके कर्णधार होते थे, एवं सारे भारतीय समाजके बौद्धिक वर्गका भी धरातल धीरे-धीरे नीचा होता गया। अब विशुद्ध साहित्यिक फैजीके स्थानपर जफर जतली जैसे अनगढ़ कविकी कृतियोंसे ही उनका मनोरंजन होता था।

निरन्तर बिगडती हुई भारतकी इस बदली हुई दुर्दशापूर्ण हालतको देखकर इतिहासकार भीमसेन और खफीखाँको बहुत ही खेद होता था, तथा वे अकबर और शाहजहाँके समयके व्यक्तियोंके गुणों और उनके गौरवकी ओर बड़ी ही लालसा भरी दृष्टिसे देखते थे। औरगजेब स्वयं भी भविष्यकी आशंकाओंसे त्रस्त होकर निराशाके साथ दुःखपूर्वक सिर हिलाता था और अपनी मृत्युके बाद पूर्ण सर्वनाश होनेकी ही भविष्य-वाणी करता था।

औरंगजेबके शासन-कालके पिछले वर्षोमें और उसके उत्तराधिका-रियोके समय भी सुयोग्य व्यक्तियोको कभी पूर्ण प्रोत्साहन नही दिया गया, और उसकी निजी योग्यताके आधारपर ही किसीकी उन्नति नही की गई। पतित व्यक्तियो, चापलूसों, सवरे हुए दभी लोगो, बड़े अमीरोके सम्बन्धियो या पुराने अधिकारी वर्गके घरानोके भाई-बेटोको सन्तुष्ट करनेके लिए ही साम्राज्यके विभिन्न पद उन्हे दिए जाते थे; उन पदोके साथ अनिवार्य रूपसे सम्बद्ध आवश्यक जन-सेवाके पवित्र उत्तरदायित्व-की ओर कोई भी ध्यान नही देता था। औरंगजेबके शासन-कालमें मुसलमानी धर्मान्धता तथा सकीर्ण दृष्टिकोण और पिछले मुगलोंके समयमे विलासिता तथा आलस्यके कारण ही साम्राज्यका शासन बरबाद हो गया और पतनोन्मुख साम्राज्य अपने साथ ही भारतीय जन-समाजको भी पतनके गहरे खड्डमें खीच ले गया।

७. मुगल कुलीन वर्गका नैतिक पतन

अमीरोंके घरानोंमें नैतिक पतनके चिह्न सुस्पष्ट रूपसे देख पड़ने

लगे थे और इससे ही मुगल साम्राज्यको सबसे अधिक हानि पहुँची। पुराने अमीर घरानोके आचार-विचार-१७वी शताब्दीके पिछले वर्षोमे बहुत ही निन्दनीय हो गए थे। उन घरानोके वशज स्वय बहुत ही निकम्मे और सर्वथा अयोग्य हो गए थे, तथापि निम्न श्रेणीके जिस किसी भी सुयोग्य व्यक्तिको उच्च शासकीय पदोपर काम करनेके लिए आगे बढाया जाता था उसके प्रति वे ईर्ष्या करते थे उसके प्रति नीच व्यवहार कर उसका अपमान करते थे और उसकी उन्नतिमे बाधा डालनेका भरसक प्रयत्न करते रहते थे। मुगल अमीरोके नैतिक पतनका एक बहुत ही अर्थपूर्ण उदाहरण हमे वजीरके पौत्र मिर्जा तफख्खुरके चरित्रमे मिलता है। अपने साथी गुण्डोको लेकर वह दिल्लीमे अपने महलसे निकलता और तब बाजारमे दूकानोको लूटता तथा डोलियोमे बैठकर नगरकी आम सडकोंपरसे निकलनेवाली या यमुना नदीकी ओर जानेवाली हिन्दू स्त्रियोको उडाकर उनके साथ व्यभिचार करता था, फिर भी न तो वहाँ कोई ऐसा शक्तिशाली या साहसी न्यायाधीश ही था जो उसे दण्ड दे सकता और न ऐसे अत्याचारोको रोकनेके लिए वहाँ पुलिसका कोई समुचित प्रबन्ध ही था। "जब कभी अखबारो या अधिकारियोकी सूचनाओं द्वारा इन घटनाओकी ओर सम्राट्का ध्यान आकर्षित किया जाता था, वह स्वयं कुछ भी नही करता था और उन मामलोको वजीरके ही सिपुर्द कर देता था।"

सबसे उपजाऊ प्रान्तोमे जमीनकी पैदावारके सारे अतिरिक्त भागको समेटकर मुगल अमीर अपने निजी भंडारोमे ले जाते थे, जिससे भारतके इन मुगल अमीरोका भी रहन-सहन ऐसा ऐश्वर्य और सुखपूर्ण हो गया था जिसका ईरानके स्वय शाह या मध्य एशियाके सुलतान भी सपना नही देख सकते थे। अतएव दिल्लीके अमीरोके महलोमे विषय-भोग अपनी चरम सीमाको पहुँच गए थे। उनके हरम सदैव अनेकानेक देशो और अनगिनत विभिन्न जातियोकी नाना विधिके ढंग, चरित्र तथा बुद्धिवाली अनेको स्त्रियोसे भरे रहते थे। मुसलमानी कानूनके अनुसार ऐसी रखेलियोसे होनेवाले पुत्रोको भी विवाहित स्त्रियोसे उत्पन्न पुत्रोके ही बराबर पैतृक सम्पत्तिका भाग मिलता है। समाजमे भी इन दासी-पुत्रोका स्थान किसी प्रकार हीन नही होता है। उन अमीरोके हरमोमे जो कुछ भी होता था उसे देख-सुनकर विवाहित स्त्रियोसे उत्पन्न पुत्र भी कम उमरमे ही उन सब दुर्गुणोको सीख लेते थे। नीच कुलकी व्यभि-

चारी प्रवृत्तिवाली नवयुवा सुन्दर स्त्रियाँ उनकी माताओंकी प्रतिद्वन्द्वी बनकर उन महलोंमें रहती थी और उनके बढे हुए ठाट-बाट और प्रभाव-के कारण उनकी माताओंको अपमानित होना पड़ता था।

मुग़ल अमीर और सरदारोंके पुत्रों की शिक्षाका कोई ठीक प्रबन्ध नहीं था और न उन्हे किसी बातकी व्यवहारिक शिक्षा ही मिल पाती थी। हिजड़ों और दासियोके लाड-प्यारमें ही उनका लालन-पालन होता था। जन्मसे लेकर युवा होने तक उनका जीवन पूर्ण सरक्षण मे ही बीतता था और उनकी राहके सारे कॉटे उनके नौकर ही दूर कर देते थे। छुटपनसे ही कुकर्मोंसे परिचित हो जाते थे; विलासपूर्ण जीवनके कारण उनका शरीर सुकोमल बन जाता था; और उसपर भी उन्हे अपनी श्रेष्ठता तथा अपने धनके अत्यधिक महत्त्वका पाठ पढ़ाया जाता था। इन बालकोंको घरपर पढानेवाले शिक्षकोंकी स्थिति बहुत ही दयनीय थी; जहाॅ तक स्वयं उनके छात्रकी इच्छा न हो वे कोई भी अच्छी बात नही कर सकते थे। इसी कारण मुगल अमीरोके पुत्रोका नैतिक पतन हताश कर देनेवाली अबाध तेजीसे हो रहा था। उनमेसे अधिकांश और शाह-आलम एवं कामबख्श जैसे औरंगजेबके पुत्र भी उस हद तक पहुॅच गए थे कि तब उनका कुछ भी सुधार हो सकना सभव नही रहा। औरंगजेब बारम्बार उन्हे आदेश देता रहता था, परन्तु उसकी कोई सुनता न था, जिससे अन्तमे निराश होकर उसने कहा—"लगातार कहते-कहते मै तो पागल हो गया, किन्तु तुममेसे किसीने मेरी बातोंपर कुछ भी ध्यान नही दिया।"

अनियंत्रित व्यभिचार, चोरी-छिपे मदिरा-पान और जुआखोरीके दुर्गुणोंके साथ ही अमीर घरानों तथा मध्यमवर्गके भी पुरुषोमें अप्राकृतिक व्यभिचारकी लत प्रायः पाई जाती थी। कहे जानेवाले कई सत भी इस पापाचरणसे नही बच सके थे। उसपर भी रोक लगानेके लिए औरग-जेबके सारे आदेश और जनतामे सदाचार बढानेके लिए नियुक्त अधि-कारियोके अनवरत प्रयत्न भी मुगल अमीरोंको मदिरा पीनेसे रोकनेमें सफल नही हुए। इतिहासकारोके समकालीन विवरणोमें कई अमीरोके आमोद-प्रमोदके विचित्र तरीको तथा उनकी सर्वथा अनोखी रुचिका उल्लेख मिलता है। (मनूची, ४, पृ० २५४–६, २६२)।

८. लोकप्रचलित अन्धविश्वास

सभी वर्ग और जातिके लोग घोर अन्धविश्वासोमे पूरी तरह फँसे हुए थे। दरिद्री और धनवान सभीके जीवनका प्रत्येक कार्य ज्योतिषोकी सलाहके विना नही हो सकता था। कट्टर औरगजेवने भी 'पैगम्बर मुहम्मदके झूठ-मूठ चरण-चिह्नों और बालोकी (असार-इ-शरीफकी) परिक्रमा ऐसी श्रद्धा तथा आदरके साथ की थी मानो वे ईश्वरके साक्षात् प्रतीक ही हो। उनके प्रति औरगजेबकी इस भावना और पत्थरपर बने विष्णुके पद-चिह्नोकी हिन्दुओ द्वारा पूजामे किसी भी प्रकारकी विभिन्नता ढूँढ निकालना कठिन ही है। निम्न कोटिकी मानव-पूजाके कारण जन-साधारणका चरित्र बहुत ही पतित हो गया था। जिस प्रकार हिन्दू और सिक्ख गुरुओ और महन्तोकी पूजा करते थे, उसी प्रकार इन दोनो धर्मों-को माननेवालोके साथ ही, मुसलमान भी सतो, पीरो और फ़कीरोको पूजते थे, और चमत्कार दिखाने, तावीज देने, जादू-टोना करने तथा अचूक दवा देनेके लिए उनसे प्रार्थना करते थे। इन बातोमे ढोगी जादू-गरोकी खूब चलती थी, अपने पास पारस मणि होनेका भी वे दिखावा करते थे, और यो अमीर और गरीब सभी उनसे कुछ पानेको इच्छुक रहते थे। कीमिआगिरी द्वारा सोना वना सकनेकी विद्यापर सर्व-साधारण-का पूर्ण विश्वास था, और उच्च वर्ग के पढे-लिखे लोग भी इस विद्याके जाननेवालोकी सहायता कर उन्हे प्रोत्साहन देते थे और उन्हे सम्राट्के दरबारमे पेश करनेके लिए वादा करते थे।

इस प्रकारके अज्ञान और अहकारका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि सब ही वर्गके लोग विदेशियोको उपेक्षा और तिरस्कारकी दृष्टिसे देखने लगे थे। यह सत्य है कि कई धनी मानी भारतीय अमीर तोपे ढालनेवाले युरोपीय मिस्त्रियो, युरोपीय तोपचियो तथा कुछ युरोपीय चिकित्सकोको भी आश्रय देते थे, क्योकि उनकी सफलताप्रद विशेष निपुणताको अपनी आँखोसे देख कर उन्हे उनकी योग्यतापर विश्वास हो गया था। यूरपमे बनी हुई विलास-साधनकी वस्तुएँ भी वे बड़ी ही उत्सुकताके साथ मोल लेते थे। तथापि किसी भी भारतीय अमीर या विद्वान्ने युरोपीय भाषाओ,[१] कला-कौशल अथवा युद्ध-विद्याको सीखनेका

१. फारसी जाननेवाले युरोपीय या अरमेनियन लोग ही मुगलोके शाही दरबारमे पहुँचनेवाले युरोपीय यात्रियोके लिए दुभाषिएका काम करते थे। सन् १७०३

कोई प्रयत्न नहीं किया। सोलहवी और सत्रहवी सदियोंके मुग़ल सम्राट् और भारतीय अमीर कितने स्वार्थान्ध तथा स्वेच्छाचारी थे, इस बातका पूरा पता किसी भी आधुनिक भारतीय देश-भक्तको इसी बातसे लग जावेगा कि जहाँ वे प्रति वर्ष लाखो रुपये खर्च कर युरोपमे बनी हुई सुख-भोग और कलाकी अनेकों वस्तुएँ मोल लेते थे, वहाँ जनसाधारणकी शिक्षा या सार्वजनिक धन्धेके लिए उन्होने एक भी छापाखाने या लिथो-का पत्थर तक मँगवानेकी कभी नही सोची।

दासोंकी अधिकता होनेके कारण भारतीय समाजका नैतिक और बौद्धिक धरातल बहुत ही गिर गया था। युद्धके कैदियो तथा हारे हुए घरानोके लोग दास बनाए जाते थे, उसके अतिरिक्त अकालके समयमें या अपने कर्जेके चुकानेके लिए भी स्त्री-पुरुषोको उनके माता-पिता बेच देते थे। हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनोंमे ही यह एक प्राचीन कानूनी तरीका था कि लिया हुआ ऋण समयपर न चुका सकनेकी हालतमें कर्ज देनेवाला ऋणीको सकुटुम्ब बिकवा सकता था। कुछ अपराधोंका दण्ड यही होता था कि उनके अपराधियोंको दास बनाकर उन्हे खुले-आम बेच दिया जावे। इस प्रकारकी दासियोंके बेचे जानेके उल्लेख पेशवाओके रोजनामचोंमें मिलते है। अंग्रेजोके अधीन पूर्णिया जिलेमे भी यह दास-प्रथा १९वी शताब्दीके चतुर्थांश तक थोड़ी-बहुत चलती रही।

९. अधिकारियोंमें घूसखोरी; अधिकारी वर्गका जीवन और उसका चरित्र

इने-गिने हकीम और वैद्यों तथा प्रतिष्ठित पुरोहित या धर्माधिकारी घरानोंको छोड़नेपर बाकी रहे सारे पढे-लिखे मध्यम वर्गके सब ही लोग नौकरी-पेशा ही थे। व्यापारियों और छोटे-छोटे जमीदारोमे ऐसे बहुतसे

ई०के लगभग औरंगजेबके पत्रोमे अंग्रेजी भाषा जाननेवाले केवल एक ही मुसलमानका (मुतमादख़ाँका) उल्लेख मिलता है। गोआ प्रदेशके कुछ शेणवी ब्राह्मण पुर्तगाली भाषा जानते थे, और बम्बईमे रहनेवाले अंग्रेजोके लिए ये ही मराठी पत्रो का अनुवाद पुर्तगाली भाषामे करते थे। मद्रासकी अंग्रेज और फ़रा-सीसी कोठियोंवाले ब्राह्मण दुभाषिये नौकर रखते थे, जो अपने स्वामीकी भाषाके अतिरिक्त 'मूरो'की (अर्थात् फारसी) भाषा भी जानते थे।

थे जो अपनी धन-समृद्धिक हिसाबसे मध्यम वर्गमे गिने जा सकते थे, परन्तु विद्यामे उनसे वे वहुत पीछे थे और उन्हे साहित्यसे भी कोई रुचि नही होती थी। सैनिक तथा दूसरा सव शासन चलानेके लिए अनगिनित कर्मचारियो और हिसाव जाननेवालोकी भी आवश्यकता होती है।

इगलैण्डके ट्यूडर और स्टुअर्ट वादशाहोके शासन-कालकी ही तरह भारतमे भी सरकारी दफ्तरोसे अपना काम निकलवानेवालोसे खुले-आम विशेष शुल्क या अपना पुरस्कार लेकर उनका काम कर देनेकी सुज्ञात और सर्वमान्य प्रथा थी। इसके अतिरिक्त वडेसे लेकर छोटे तक कई एक अधिकारी घूस लेकर अनुचित पक्षपात या न्याय-शासनमे मनचाहा हेर-फेर भी कर देते थे। पदाधिकारियोका यो घूस लेना समाजमे निन्दनीय समझा जाता था और अधिकारी गुप्त रूपसे छिपाकर ही रिश्वत लेते थे। औरगजेबके शासन-कालमे भी ऐसे कई अधिकारी थे जो कभी घूस नही लेते थे। परन्तु अधिकार-प्राप्त व्यक्तियोका भेटे लेने या भेटे माँगना भी एक सुप्रचलित और सर्वसाधारण द्वारा मान्य प्रथा थी।[1]

सम्राट्की निजी सेवामे रहनेवाले मन्त्रियो और प्रभावशाली दरबारियोको तो धन एकत्र करनेका बहुत ही सुवर्ण अवसर मिलता था। बादशाहकी व्यक्तिगत सेवाके लिए एकान्तमे (तकर्रुवमे) उपस्थित होनेके समय सुअवसरपर प्रार्थियोका निवेदन सम्राट् तक पहुँचा देने तथा उपयुक्त सिफारिश कर देनेके लिए वे वहुत-कुछ रुपया ले लेते थे। अपनेसे ऊपरवाली श्रेणीको भेटके रूपमे जो कुछ भी देना पडता था, उसे वे अपनेसे नीचेवाली श्रेणीसे वसूल कर लेते थे, और यो वह दवाव ऊपर सम्राट्से चलकर नीचे किसानो तक जा पहुँच जाता था और अन्तमे

---

१ नूरजहाँका पिता जहाँगीरका प्रधान-मन्त्री वनकर भी वडी ही निर्लज्जतापूर्वक भेंटें माँगता था। औरंगजेवके प्रारम्भिक वजीरोमेसे जाफरखाँका भी यही हाल था। उसे दक्षिणकी सूवेदारीपर वना रहने देनेके लिए सम्राट्से प्रार्थना करनेके हेतु जयसिंहने वजीरको रु० ३०,०००) की थैली भेंट की थी। निम्न श्रेणीके साधारण पदको भी पाने या उसपर वने रहनेके लिए उसे शाही दरवारमे प्रत्येकको कुछ न कुछ देना पड़ा, जिसपर भीमसेनने वहुत ही दुःख और अरुचि प्रगट की है। घूस ले-लेकर कई काज़ी भी वहुत धनी हो गए थे, जिनमे सवसे अधिक वदनाम अब्दुलवहाव था। यही हाल कई सरदारोका भी था।

उसका भार धरती जोतनेवाले किसानों तथा व्यापारियोंको ही उठाना पड़ता था।

कायस्थ और खत्री दोनों ही जातियोके मुशियोंमे मदिरापानकी कुप्रथा बहुत पाई जाती थी। राजपूत सैनिक भी इस दुर्व्यसनके शिकार थे। कुरानमें की गई रोकके होते हुए भी मुसलमान अमीरों और सैनिक या अन्य पदाधिकारियोमे बहुतसे इसके आदी थे। विशेषतया तुर्की तो इस बारेमे बहुत बदनाम थे। अपने घरोसे बहुत दूर स्थानोपर नियुक्त श्रेणीके अधिकारी कुछ स्थानीय स्त्रियोको रखेलीके रूपमे अपने हरममे एकत्र कर लेते थे।

१०. जन-साधारणके जीवनकी पवित्रता और उनके सीधे-सादे आमोद-प्रमोद

मुगल कालीन भारतके सामाजिक जीवनका ऊपर दिया हुआ चित्र बहुत ही अन्धकारपूर्ण देख पड़ता है; किन्तु यदि हम उसके कई अन्य पहलुओपर ध्यान नही देगे तो यह बिलकुल ही अधूरा तथा तदर्थ असत्य ही समझा जावेगा। अनिवार्य रूपसे यह तो स्वीकार करना पड़ता है कि तब भी करोड़ो भारतोयोका गृहस्थ जीवन पवित्रतामय और सीधी-सादी चंचलता तथा हँसी-खुशीसे भरपूर था। इसी सदाचारने भारतीय जन-समाजको पिछले साम्राज्यके पतित रोमन लोगोके-से पूर्ण सर्वनाशके दुर्भाग्यपूर्ण अन्तसे बचा लिया। पीड़ित मानव-हृदयको सात्वना देने, वीरतापूर्ण धैर्य धरनेका पाठ पढ़ाने तथा अपढ़ जन-समाजके हृदयोमे आवश्यक सहृदयता और सरसता भर देनेके लिए हमारे यहाँ अनेकों लोक-गीत, वीर काव्य तथा कहानियाँ प्रचलित थी। तुलसीदास कृत महाकाव्य "रामचरितमानस"ने हमारे करोड़ो स्त्री-पुरुषोमें कर्तव्य-निष्ठा, पौरुष और आत्म-त्यागकी भावना भर दी, तथा सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवनके लिए आवश्यक व्यवहार-बुद्धिकी उन्हे पूरी-पूरी शिक्षा दी। हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तोके नगरो और कस्बोमे आज भी लोग प्रति वर्ष उसकी कथाका अभिनय करते है, तथा प्रत्येक हिन्दू घरमे उसका पाठ होता है।

बगाल, तिरहुत, उड़ीसा, आसाम तथा देशके कई एक अन्य भागोमे

शंकरदेव और चैतन्य द्वारा प्रचारित वैष्णव धर्मने वहाँके लोगोमें एक अनोखी नम्रता और आस्था भर दी थी, जिससे वहाँ पहिले प्रचलित पशुपतिकी और तान्त्रिक उपासनाका निर्लज्ज किन्तु पौरुषपूर्ण अनाचार बहुत कम हो गया। १७वी शताब्दीमे यह नया वैष्णव धर्म विकसित होकर बहुत फैला, और उसके फलस्वरूप जनताके जातीय जीवनमे अनेको नई विशेषताएँ आ गई, जिनमेसे कुछ थी—व्यक्तिगत भक्तिका बाहुल्य, बालको और असहायोके प्रति सहानुभूति तथा दया, सस्कृतके साथ ही जन-समाजकी साधारण बोलचालकी भाषाओके साहित्यकी उन्नति, नाच-गानका विशेष प्रचार, और दरिद्रियो तकके दैनिक जीवनमे शृगार एव प्रेमकी समधुरताका सचार। विभिन्न वर्गीय व्यक्तियोमे जो सामाजिक भेद-भाव पाए जाते थे, उनको भी दूर कर उनमे भावनाकी समानतासे उत्पन्न होनेवाली एकताको यह स्थापित करती थी। इस लोकप्रिय धार्मिक साहित्यके सिवाय देशके विभिन्न भागोमे पजाबके हीर-राझा जैसे जनताके हृदयोको लुभानेवाले लोकगीत भी जनसाधारणमे प्रचलित थे[1] जिनसे कडी मिहनत तथा राजनैतिक पीड़नके भयंकर भारको कुछ समयके लिए भुलाकर वे अपना मनोरजन कर लेते थे। उत्तर और दक्षिण, भारतमे सर्वत्र धार्मिक उपदेशो, व्याख्यानो तथा गभीर साहित्यके स्थानपर अब कीर्तनोका प्रचार बढा। इन पद्यात्मक धार्मिक कथानकोमे यत्र-तत्र गीत भी होते थे और कथा सुनानेवालेके साथ ही श्रोतागण भी सुर मिलाकर साथ-साथ गाते थे। इस प्रकार ये कीर्तन बहुत ही लोक-प्रिय हो गए।

हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेशोको छोडते हुए अन्य प्रदेशोमे बसनेवाले उस समयके साधारण मुसलमानोके लिए देश भाषामे कोई धार्मिक काव्य साहित्य था ही नही। किन्तु विभिन्न मुसलमान सन्तोकी कब्रोपर प्रति वर्ष उर्स मनाए जाते थे, जहाँ दूर-दूरसे हज़ारों यात्री तीर्थ-यात्रा करने आते थे। ऐसे अवसरपर वहाँ जो मेले लगते थे उनमे प्रत्येक धर्म और जातिके स्त्री-पुरुष सम्मिलित होते थे। इसके सिवाय नगरोमे रहने-

---

१. देशी भाषाओके लोक-प्रिय धार्मिक और प्रेमकाव्यका ही यहाँ उल्लेख किया है। उच्च वर्गोमे प्रचलित होनेवाली एक और देशी भाषाके साहित्यका प्रारम्भ औरंगजेबके बाद ही हुआ। उसकी मृत्युके दस वर्ष बाद औरंगाबादके वलीसे इसका आरम्भ होता है। रेख्ता = उर्दू।

वाले स्त्री-पुरुष, बूढे और बच्चे सभी सैर करनेके लिए हर हफ्ते अपने पासके उपनगरमे स्थित सन्तकी समाधिके उपवनमे चले जाया करते थे। किन्तु ऐसे अवसरोंपर धर्माचरणकी ओर कोई ध्यान नही देता था और वे सारा समय आमोद-प्रमोदमे ही बिताते। इस प्रकार अनाचार वहुत बढने लगा तब फिरोजशाह तुगलककी तरह औरंगजेबने भी इस प्रथाको बन्द करनेके लिए शाही हुक्म दिया। किन्तु यह प्रथा इतनी अधिक प्रचलित और लोक-प्रिय हो गई थी कि उसको यो बन्द नही किया जा सकता था। समय-समयपर भरनेवाले ऐसे मेलों और तीर्थ-स्थानोमे जाना ही तब भारतीय ग्राम-निवासियोके दिल-वहलावका एकमात्र तरीका था एव वहाँ जानेके लिए स्त्री-पुरुष सब ही लालायित रहते थे। मुसलमानोके लिए अजमेर, कुलबर्गा, निजामुद्दीन औलिया और बुरहानपुर, तथा हिन्दुओके लिए मथुरा, प्रयाग, बनारस, नासिक, मदुरा और तजोर जैसे तीर्थ स्थानोका विशेष सास्कृतिक महत्त्व था। यहीसे भारतीय सस्कृतिका प्रसार होता था और प्रान्तीय विभिन्नताएँ तथा मानसिक दृष्टिकोणकी संकीर्णता भी यही दूर होती थी।

११. औरंगजेबका चरित्र

औरंगजेब बहुत अधिक साहसी और असाधारणतया वीर था। यो तो उसके अयोग्य निकम्मे प्रपौत्रोसे पहिलेके तैमूर घरानेके सारे ही वशजोमे व्यक्तिगत वीरता पाई जाती थी, परन्तु औरगजेबमें इस गुणके साथ कई और विशेषताएँ थी, जिनके लिए हमें अब तक यही कहा गया है कि वे उत्तरी युरोपकी जातियोमे ही खास तौरपर वंशपरम्परागत आई है। औरगजेबमे व्यक्तिगत वीरताके साथ ही ठण्डे दिमागसे नाप-तोलकर ही काम करनेका स्वाभाविक गुण पाया जाता था। पन्द्रह वर्षकी उम्रमे उसने बिना किसी साथीके अकेले ही मदमस्त क्रुद्ध हाथीका सामना किया था। तबसे लेकर ८७ वर्षकी अवस्थामें वागिनखेड़ाका घेरा लगानेवाले मोरचो की खाइयोमे निर्भीक खडे होने तक उसने निरन्तर अपनी व्यक्तिगत निडरता तथा साहसका परिचय दिया। उसका शान्त आत्म-सयम, निकटतम संकटमे भी उसका उत्साहवर्धक बाते कहना, तथा धरमत और खजवाके युद्धोमे उसका मृत्यु तककी पूर्ण उपेक्षा करना, भारतीय इतिहासकी सुप्रसिद्ध अमर घटनाएँ है।

व्यक्तिगत साहस और अनोखी शान्त दृढता उसे प्राप्त थी ही। पुन: अपने जीवनके प्रारम्भसे ही औरंगजेबने सम्राट् बननेके सकटपूर्ण और कडी मिहनतवाले जीवन-ध्येयको प्राप्त करनेका निश्चय कर लिया था, तथा उस महान् पदके उपयुक्त स्वयको बनानेके लिए उसने स्वाभिमान, आत्मगौरव, स्वाध्याय और आत्मसयमके गुणोको प्राप्त करनेका विशेप रूपसे भरसक प्रयत्न किया। अन्य शाहजादोसे सर्वथा विपरीत औरगजेब-का अध्ययन बहुत ही विस्तृत, सूक्ष्म और साथ ही गम्भीर भी था। पुस्तकोके प्रति उसका प्रेम मरते दम तक बराबर बना रहा। अरबी और फारसीके सिवाय वह तुर्की और हिन्दी भी बडी ही सरलताके साथ बोल सकता था। उसीकी प्रेरणा और प्रोत्साहनके फलस्वरूप मुसलमानी कानूनका सबसे बडा संग्रह-ग्रन्थ "फतवा-इ-आलमगीरी" भारतमे ही तैयार हुआ। इस ग्रथके द्वारा भारतमे मुसलमानी कानूनकी सही और सरल व्याख्या आगेके लिए कर दी गई थी, एव इस ग्रन्थके साथ औरग-जेबका नाम सम्बद्ध किया जाना सर्वथा उपयुक्त था।

ग्रन्थोके अध्ययनके अतिरिक्त औरगजेबने बाल्यकालसे ही सोच-समझकर बोलने तथा काम करने और दूसरोके साथ व्यवहारमे पूरी चतुराई बरतनेका अभ्यास कर लिया था। जब वह शाहजादा था, तब अपनी व्यवहार-कुशलता, चतुराई और नम्रतासे उसने अपने पिताके शाही दरबारके सर्वोच्च अमीरोको अपना मित्र बना लिया था। सम्राट् हो जानेपर भी उसने अपने ये गुण नही छोडे और उन्हे इतना व्यक्त किया कि किसी साधारण प्रजाजनमे भी उनका उतना पाया जाना एक विशेषता होती। इन्ही सारी बातोसे उसके समसामयिक लोग उसे "शाही पोशाकमे एक दरवेश" ही कहा करते थे।

औरगजेबकी पोशाक, उसका खानपान, मनोरजन आदि उसका सारा व्यक्तिगत जीवन बहुत ही सादा और सुनियमित था। उसमे कोई दुर्गुण नही थे और धनवान् आलसी लोगोके निष्पाप आमोद-प्रमोदोसे भी वह बहुत दूर रहता था। उसकी पत्नियोकी सख्या कुरान द्वारा निश्चित चारसे सदैव कम ही रही।[1] अपनी पत्नियोके प्रति वह सदैव पूरी तरह सच्चा

---

१ दिलरस बानू १६५७ ई०मे मर गई। नवाबबाईको सन् १६६०के बाद दिल्लीमे एकान्त जीवन बिताना पडा। औरंगाबादी सन् १६८५मे अपनी मृत्यु तक अवश्य औरंगजेबके साथ रही। उदयपुरीके साथ औरंगजेबका विवाह सन्

और अनुरक्त रहा। यह पढ़कर हँसी आए बिना नही रहती कि औरंगजेबको केवल दो ही बातोका शौक था, करौदे खाने और 'खड़डली' नामक मुख-सुवासक चबाते रहनेका। शासन-प्रवन्धकी देख-रेखमें वह आश्चर्यजनक मेहनत करता था। वह प्रतिदिन नियमित रूपसे राजदरबार करता था, और कभी-कभी दरबार दिनमे दो-दो बार भी लगाता था। प्रत्येक बुधवारको न्याय-शासन सम्बन्धी मामलोंको सुनता था। इस सबके सिवाय पेश किए गए सभी पत्रों और प्रार्थनापत्रोपर अपने हाथसे ही वह आदेश लिखता था तथा शाही दफ्तरसे दिए जानेवाले जवाबोको भी वह पूराका पूरा लिखवा देता था। २१ मार्च, १६९५के शाही दरबारका इटालियन चिकित्सक गेमेली करेरीने इस प्रकार वर्णन लिखा है—"उसका (औरंगजेबका) कद ठिगना, नाक लम्बा, शरीर दुबला और वृद्धावस्थाके कारण झुका हुआ था। उसकी गेहुँआ रगकी चमड़ीपर गोल डाढ़ीकी सफेदी और भी अधिक चमकती थी। विभिन्न काम-धधोके बारेमें उसे पेश किए गए प्रार्थना-पत्रोंपर उसे अपने हाथसे स्वयं आवश्यक हुक्म लिखते देखकर मेरे हृदयमें उसके प्रति विशेष आदर उत्पन्न हो जाता था। यह लिखा-पढी करते समय वह चश्मा नही लगाता था और उसके सुप्रसन्न चेहरेको देखकर यही प्रतीत होता था कि उसे अपना यह काम बहुत ही रुचिकर है।"

इतिहासकारोंने लिखा है कि यद्यपि मृत्युके समय उसकी उमर कोई ९० वर्षकी थी, अन्त समय तक उसकी मन:शक्ति तथा इन्द्रियाँ ज्योंकी-त्यों काम करती थी। उसकी स्मरणशक्ति तो सचमुच ही अद्भुत थी। जिस किसीको भी उसने एक बार देख लिया या जो कोई भी बात उसने एक बार सुन ली उसे वह जीवन भर कभी भूलता न था।" बुढापेके कारण पिछले वर्षोमे वह कुछ ऊँचा सुनने लगा था, पुन: दुर्घटनासे उखड़े हुए उसके दाहिने घुटनेका उसके हकीम ठीक-ठीक इलाज नही कर सके थे, जिससे उसका वह पॉव कुछ लंगड़ाने लगा था। इन दो अपवादोके सिवाय मृत्यु-समय तक उसकी सारी शारीरिक शक्तियॉ यथावत् ही बनी रही।

१६६० ई०के लगभग हुआ था और औरंगावादीकी मृत्युके वाद उसके शासनकालके पिछले अर्द्धांशमे यह उदयपुरी ही औरंगजेबकी एकमात्र जीवन-सगिनी रही।

१२. अत्यधिक केन्द्रीकरण करनेकी उसकी भयंकर भूल; शासन-व्यवस्थापर उसके दारुण दुष्परिणाम

किन्तु इतने लम्बे समय तककी उसकी सारी आत्म-शिक्षा और उसकी यह अनोखी कार्यशक्ति ही एक प्रकारसे उसकी विफलताका प्रधान कारण बन गई। इनके फलस्वरूप औरगजेबके मनमे अगाध आत्मविश्वास और दूसरोके प्रति अविश्वास उत्पन्न हो जानास्वाभाविक ही था। प्रत्येक कार्यमे अपने निजो विचारोके अनुसार सर्वांग सम्पूर्णता प्राप्त करनेके लिए भरसक प्रयत्न करनेका वह आदी हो गया था। यही कारण था कि शासन और युद्ध दोनोकी ही छोटीसे-छोटी बातो तककी स्वय व्यवस्था करने तथा आप ही उनका निरीक्षण भी करनेमे वह सदैव लगा रहता था। राज्यके सर्वोच्च शासकके इन अत्यधिक हस्तक्षेपोके कारण विभिन्न सूबेदार, सेनापति तथा सुदूर प्रदेशोके स्थानीय शासक भी हर बातके लिए सदैव उसका ही मुँह ताकने लगे, उनमे उत्तरदायित्व-की भावना रह ही नही गई थी, एव बदली हुई परिस्थितियोके अनुसार स्वयको तत्परतासे उनके अनुरूप बना लेनेकी योग्यता और आवश्यक प्रेरणा-शक्तिका उनमे उत्पन्न हो सकना असम्भव हो गया था। वे दिनो-दिन जीवनविहीन कठपुतलियोके समान बनते गए जो राजधानीमे स्थित अपने सम्राट् द्वारा धागे खीचे जानेपर ही किसी तरह कार्यके लिए प्रेरित होते थे। भारतके समान विस्तृत तथा विभिन्नतामय साम्राज्यके शासनको अध पतित करनेके लिए इससे अधिकसुनिश्चित दूसरा कोई उपाय हो ही नही सकता था। बारम्बार रोके जानेके कारण साहसी, प्रतिभाशाली और ओजस्वी अधिकारियोका भी सारा उत्साह भग हो जाता था और वे विवश होकर उदासीन और अकर्मण्य बन जाते थे।

ऐसे सम्राट्को अनोखी राजनैतिक या शासकीय प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति कदापि नही कहा जा सकता है। उसमे तो केवल ईमानदारीके साथ निरन्तर मेहनत करते रहनेकी शक्ति थी। किसी बडे महकमेके अधिकारीके पदके लिए वह सर्वथा सुयोग्य और पूर्णतया उपयुक्त था। परन्तु उसमे वह प्रतिभा न थी कि आगे जन्म लेनेवाली भावी पीढियोके जीवन और विचारोको नूतन ढाँचेमें ढालनेके लिए आवश्यक नई नीति तथा नए नियमोको पहिलेसे ही निश्चित कर उनको आरम्भ कर सकने

योग्य बुद्धिवाला दूरदर्शी राजमर्मज्ञ वह बन सकता। यद्यपि अकबर निरक्षर था और यदा-कदा उसका स्वभाव अत्यधिक उग्र भी हो जाता था, भारतके मुगल सम्राटोंमें केवल उसीमे ऐसे राजमर्मज्ञके लिए अत्यावश्यक असाधारण बुद्धि पाई जाती थी।

औरंगजेब संतोका-सा कठोर जीवन बिताता था और उन्हीके समान वह अपनेमे सदैव नम्र दीनता भी दिखाया करता था, तथा अपने सारे धार्मिक कृत्योको, कुछ बाह्याडम्बरके साथ ही क्यो न हो, प्रति दिन ठीक समयपर विधिवत् पूरा करता था। अपने चरित्रकी वास्तविक त्रुटियोंसे पूर्णतया अनभिज्ञ औरंगजेब अपने कर्त्तव्यके इस संकीर्ण आदर्शसे ही प्रेरित होता था, मनुचीके सुझावके विपरीत उसके इस धर्माचरणका आधार राजनैतिक धूर्तता कदापि न थी। अपने साम्राज्यकी मुसलमान प्रजाके लिए तो वह यों एक आदर्श व्यक्ति बन गया था। वे उसे 'आलमगीर जिन्दा पीर' कहते थे और उन्हे पूरा विश्वास था कि वह चमत्कार कर सकनेवाला पीर है। औरंगजेबको भी यह बात पसन्द थी ऐसा उसके कार्योसे स्पष्ट हो जाता है। अतएव उसमें सारे गुणोंके होते हुए भी राजनैतिक दृष्टिसे औरंगजेब पूर्णतया विफल रहा। परन्तु उसका व्यक्तिगत चरित्र ही उसके शासनकी इस पूर्ण विफलताका एकमात्र कारण नही था; उसके तो अन्य कई गहन कारण थे। यह कहना कदापि ठीक नही कि केवल औरंगजेबके ही कारण मुगल साम्राज्यका पतन हुआ। आते हुए इस पतनको रोकनेके लिए उसने निस्सन्देह कोई प्रयत्न नही किया, प्रत्युत समूचे देशमें पहिलेसे ही चल रही कई एक विनाशकारी प्रवृत्तियोंको उसने बहुत उत्तेजित किया जिसकी विवेचना आगे की जाती है।

१३. मुग़ल शासनका वास्तविक स्वरूप और उद्देश्य

मुगल साम्राज्यसे भारतको अनेकों लाभ पहुँचे, परन्तु न तो वह यहाँके सारे लोगोंको एक राष्ट्रके रूपमे सुसगठित कर सका और न उसके समयमें यहाँ एक सुदृढ़ सशक्त स्थायी शासनका निर्माण ही हो पाया।

ताजमहल और तख्तताऊसके रत्नों और सोने-चाँदीसे ही चकाचौंधित होकर मुगल भारतके साधारण मानवकी दुर्दशाकी ओर से दृष्टि

नही मोड लेनी चाहिए। तब मानवकी स्थिति अधम दाससे किसी प्रकार अधिक अच्छी न थी। यदि उनपर अत्याचार करनेवाला व्यक्ति कोई अमीर, उच्च अधिकारी या जमीदार होता, तव तो उसके विरुद्ध जन-साधारणको न तो कोई आर्थिक स्वतन्त्रता ही थी और न कोई व्यक्तिगत स्वाधीनता ही, अपनी दाद-फरियाद सुनाकर न्याय पानेका कोई अपरिहार्य अधिकार जन-साधारणको तव प्राप्त नही था। राजनैतिक अधिकारोके सपने भी कोई नही देख सकता था। समूचे देशकी सारी प्रजाको मानवीय भेडोके समान ही समझा जाता था, परन्तु एक सशक्त चतुर सम्राट्के शासन-कालमे अमीरोकी दशा भी उससे किसी प्रकार अच्छी न थी। अमीरोको कोई भी सुनिश्चित कानूनी अधिकार नही प्राप्त थे, क्योकि राज्य-शासनका कोई विधान था ही नही। अपनी भौतिक सम्पत्ति और मालमत्तेपर भी उन्हे पूर्ण अधिकार प्राप्त नही थे। सिहासनपर बैठनेवाले निरकुश शासककी इच्छापर ही सब कुछ निर्भर रहता था। वास्तवमे तबका राज्य-शासन तो विद्रोहो या विप्लवकी आशंकासे सयत तानाशाही ही थी। देशकी सारी शक्ति और साधनोसे राजदरबारका उद्भव होता था, तथा उस राजदरबारका एकमात्र केन्द्र था वहाँका सम्राट्, इस प्रकार समूचे देशकी सम्मिलित शक्तियो और जीवनका अन्तिम फल होता था केवल शासककी समृद्धि तथा उसकी सतोषपूर्ण आत्मनिर्भरता।

अन्य निरंकुश राजतंत्रोके समान ही मुगल-कालीन भारतमे भी सर्वश्रेष्ठ सम्राट्के शासनमे सारे जन-साधारणका सुख बहुत ही अस्थायी बना रहता था, क्योकि वह सब बिलकुल केवल एक ही व्यक्तिके चरित्र-पर निर्भर रहता था। "पढ़ाई-लिखाई और अन्य शिक्षाकी मुगल-कालीन पद्धति ऐसी ठीक तथा सपूर्ण न थी कि उससे सुयोग्य उत्तराधिकारियोकी परम्परा बराबर चलती ही जाती। अपनी आपसी ईर्ष्या और द्वेषके कारण विभिन्न बेगमे युवा हो जानेपर भी अपने शाहजादोको राजधानीके राजनैतिक मामलोमे कुछ भी भाग लेनेसे सदैव रोकती रहती थी। .. .. यदि कोई शाहजादा राज्यके मामलोमे ठीक तरह भाग लेता था तो उसके सम्बन्धमे अपने पिताके विरुद्ध षड्यन्त्र करनेकी आशका की जाने लगती थी। .. जहाँ शासनकी जिम्मेदारी एक मन्त्री-मण्डलपर हो, वहाँ ही वशपरम्परागत राजतत्र किसी प्रकार स्थायी हो सकता है, क्योकि राजसिहासनपर बैठनेवालेके दुराचारो या उसकी अयोग्यतापर

ऐसा जिम्मेदार मन्त्री-मण्डल ही परदा डाल सकता है।" "मुगल सम्राट् ऐसा मंत्री-मण्डल कभी सगठित नही कर सके। अपने शाही दरबारमें बहुतायतसे आ जुटनेवाले ऐसे साहसिकोके दलपर ही सम्राट्को निर्भर रहना पडता था, ... जिनका प्रमुख उद्देश्य तथा कार्य अपने सम्राट्का मनोरंजन करना ही होता था; वे किसी भी प्रकार आधुनिक ढंगके (केबिनेट) मन्त्री-मण्डलकी तरह कार्य नही कर सकते थे।" ....वंश-परम्परागत कुलीन उच्च घरानोको उन्नत करते रहनेकी नीतिको मुगलोंने कभी नही अपनाया।"

कुरानके अनुसार मुसलमानी शासन-व्यवस्था सैनिक शासन ही है; राज्यके सब मनुष्य इस्लाम धर्मके सच्चे सैनिक होते है और सम्राट् (खलीफा) उनका सेनापति होता है। सेनामे साधारण सैनिकोंके साथ अन्य अफसरोको भी कोई अधिकार नही होता है कि वे अपने सर्वोच्च सेनानायकसे कुछ भी पूछें-ताछे या किसी मामलेपर उससे विवाद कर सके। खलीफ़ा बादशाह ईश्वरकी ही प्रतिच्छाया (जिल्ला-इ-सुभानी) होता है, और ईश्वरके दरबारमे "क्यों या कैसे" पूछनेकी बात ही नही होती है। बादशाहका दरबार ईश्वरके दरबारका ही प्रतिरूप (नमूना-इ-दरबार-इ-इलाही) होता है, एव बादशाहके शासनमें भी वही सब कुछ होना चाहिए। मुसलमानी शासन-व्यवस्थाके मूल तत्त्वोके अनुसार हिन्दुओं तथा अन्य ग़ैर-मुसलमान भी राष्ट्रके रूपमें सगठित सैनिक भ्रातृत्व अथवा सैनिकोका एक स्थायी पड़ाव ही था।

१४. रहन-सहन तथा आदर्शोंकी विभिन्नताके कारण हिन्दुओं और मुसलमानोंका एकीकरण असम्भव हो गया

मुसलमानी राजनीतिके मूल सिद्धान्तोके अनुसार अल्पसंख्यकोको कोई राजनैतिक अधिकार प्राप्त हो ही नही सकते। राजकीय सत्ता बहु-संख्यक प्रमुख जातिको ही प्राप्त होनी चाहिए तथा सारे विभिन्न धर्मों, मतो तथा रहन-सहनको पूर्णतया दबा समान धर्म तथा सामाजिक जीवन-की स्थापना कर उस राज्यमे एकान्वित जातिकी सृष्टि की जानी चाहिए। ऐसी परिस्थितिमे केवल राजनैतिक आधारपर ही कोई संगठन करनेकी न तो कोई सोच सकता था और न तब वैसा सम्भव ही हो सकता था।

राजनैतिक कारणोसे दलित तथा शासकीय दृष्टिसे बेहूदा मानी जानेवाली जातियाँ भारतमे तो अत्यधिक बहुसख्यक थी और प्रमुख शासक जातिकी सख्याकी तुलनामे उनका अनुपात तीन गुनेसे भी अधिक हो जाता था, साथ ही आर्थिक दृष्टिसे वे अपने शासकोसे कही अधिक सुयोग्य, समृद्ध तथा धन पैदा करनेवाले होते थे, और शारीरिक शक्ति या बुद्धिमे भी वे मुसलमानोसे किसी प्रकार कम नही थे।

कई सदियोके बीत जानेपर भी इन दोनो जातियोमे किसी प्रकारका समन्वय हो सकना सम्भव नही हो पाया, क्योकि दोनोके आदर्श तथा रहन-सहन एक दूसरेसे सर्वथा विपरीत थे। हिन्दू एकान्तप्रिय, सहिष्णु और अध्यात्मबादी होता है; अपने व्यक्तिगत प्रयत्नो, अप्रकट साधना तथा एकाकी तपके द्वारा आत्म-साक्षात्कार कर स्वयं मोक्ष-प्राप्ति करना ही उसका सर्वोच्च ध्येय रहता है। उसकी दृष्टिमे जन्म एक अभिशाप तथा उसके सारे मानव सगी-साथी उसे अपने सच्चे ध्येयसे भ्रमित करने-वाले कारण-मात्र है। उसके विचारानुसार जीवनका सच्चा सुख प्राप्त करनेके लिए ईश्वरदत्त उपहारोके उपभोगके स्थानपर उनका परित्याग तथा अपने भावोके उल्लासपूर्ण विकासकी अपेक्षा उनका पूर्ण दमन ही अत्यावश्यक होता है। इसके विपरीत प्रत्येक मुसलमानको यह सिखाया जाता है कि यदि वह इस्लाम धर्मकी सशक्त लड़ाकू सेनाका सैनिक नही बन सका तो उसका जीवन ही व्यर्थ है। ईश्वरोपासना भी उसे दूसरोके साथ दलबद्ध होकर ही करनी चाहिए। जिहाद द्वारा अन्य लोगो-मे अपने धर्मके प्रचार और उसमे उनके काफिरी धर्मका नाश करनेके लिए तत्परतापूर्यक प्रयत्न करके उसे अपने धर्ममें अपनी दृढ़ आस्थाका सुस्पष्ट प्रमाण देना चाहिए। वह एक धर्म-प्रचारक है, एवं अपने पड़ो-सियोंकी आत्माओके कल्याणकी ओरसे वह कदापि उदासीन नही रह सकता है, प्रत्युत जो भी भौतिक तथा आध्यात्मिक साधन उसे प्राप्य हो उन सबका प्रयोग कर अपने पडोसियोके कल्याणके लिए उसे अपना कर्तव्य पूरा करना चाहिए। पुन इस्लाम धर्ममे इस बातका सुस्पष्ट रूपसे प्रतिपादन किया गया है कि इस ससारमे जन्म लेना सर्वथा अच्छा है और उनके उपयोगके लिए ही ईश्वरने यह जगत् अपने सच्चे धर्मानु-यायियोंको उत्तराधिकारमे दिया है।

उनमे पाए जानेवाले व्यावहारिक दृष्टिकोण और सामाजिक एकताके

कारण ही मुसलमान साहित्यके अतिरिक्त अपनी कलाओं और संस्कृतिको हिन्दुओंसे कही अधिक विकसित तथा समुन्नत कर सके थे। मुसलमानोके मनोरजनके साधनोंमे अधिक सरसता और विभिन्नता पाई जाती है। मुगल-कालमें हिन्दू राजा-रईस भी ऐश्वर्य-विलासकी ओर झुके थे, परन्तु उनका यह प्रयत्न मुसलमान अमीरोंकी बहुत ही भद्दी नकलसे अधिक नही बन सका। भिखमंगों और मेहनत-मजदूरी करनेवालोंके सिवाय अधिकतर मुसलमान जनताका आचरण विशेष सभ्य और उनका रहन-सहन अधिक खर्चीला होता है; इसके विपरीत उसी सामाजिक स्तरके हिन्दू अधिक धनी होते हुए भी मुसलमानोंकी अपेक्षा कही अशिष्ट और असस्कृत होते है। निम्न श्रेणीके हिन्दू निस्सन्देह उसी वर्गके मुसलमानों-से अधिक स्वच्छ और बुद्धिमान् होते है।

१८. औरंगजेबके शासन-कालमें हिन्दुओंपर राजनैतिक दमन तथा उनका पददलित किया जाना

सहभोज सम्बन्धी रोकटोकके साथ ही धार्मिक सिद्धान्तो और कृत्योंमें विभिन्नता, आपसमें शादी-ब्याह करनेका निषेध, तथा सांसारिक जीवन सम्बन्धी दृष्टि-कोणमें विपरीतताके कारण भी हिन्दू-मुसलमानोमें एका-न्वय होना सर्वथा असम्भव था। पुन. कुरानमें दिए आदेशोके अनुसार चलाए जानेवाले कट्टर मुसलमानी शासनमे हिन्दुओका जीवन ही सर्वथा असम्भव और भार स्वरूप हो जाता था। ईश्वरके सर्वोच्च सेवक होनेके नाते अपने कर्तव्यको पूरा-पूरा समझकर उसे कार्य-रूपमे परिणत करते समय, अनुकरणीय सच्चरित्रता तथा धार्मिक जोशवाला कोई बादशाह, कैसी भी झिझक या किसीके प्रति विशेष कृपा दिखाए बिना, यदि अपनी नीतिको तर्कसम्मत चरम सीमा तक ले जाता है, तब उस राजनीतिका अन्तिम परिणाम क्या होता है, इसका सबसे अच्छा उदाहरण हमे औरंग-जेबमें देखनेको मिलता है। जिन पाठशालाओमें हिन्दू शास्त्रोका पठन-पाठन होता था, उन्हे उसने बन्द करवा दिया। हिन्दुओके मन्दिर तुड़वा डाले गए। हिन्दुओके मेलोपर रोक लगा दी गई। अपने रहन-सहन द्वारा उन्हे अपने दलित होनेका सार्वजनिक रूपसे प्रदर्शन करना पड़ता था। साथ ही विशेष करो द्वारा उनपर आर्थिक भार भी बहुत अधिक डाल दिया गया था। आठवे अध्यायमें पहिले ही बताया जा चुका है कि उन्हे अब सरकारी नौकरी भी नही मिल सकती थी।

इस प्रकार औरगजेबके राज्यमे हिन्दुओंको अपना जीवन अज्ञानके अन्धकारमे ही बिताना पडता था। वे न तो अपने धर्मसे कोई सान्त्वना प्राप्त कर सकते थे और न उनका अपना कोई सामाजिक सगठन ही बन सकता था। सार्वजनिक आमोद-प्रमोद भी उनके लिए निषिद्ध थे। राज्य-के अनेको कर उनका स्वार्जित धन भी उनके पास नही रहने देते थे। स्वच्छन्द स्वाभाविक गति-विधिसे तथा समुचित सुयोगोके प्राप्त होते रहनेसे उत्पन्न होनेवाला मानवीय आत्म-विश्वास भी उनमे नही रहने दिया गया था। सक्षेपमे उन्हे जीवन भर सार्वजनिक अपमान और राजनैतिक असमर्थताओका निरन्तर सामना करना पडता था। जहाँ तक वह हिन्दू बना रहता था, वहाँ तक स्वर्ग और पृथ्वी दोनोके द्वार उस मानवके लिए बन्द थे। अतएव औरगजेबके शासनका परिणाम यह हुआ कि हिन्दू निरन्तर विद्रोह करनेके लिए उत्तेजित होते गए। यही नही, हिन्दुओ की बुद्धि, उनके सगठन और उनके आर्थिक साधन, सबका ही ह्रास होता गया, तथा साम्राज्यकी दो-तिहाई आबादीके इस पतनसे वह साम्राज्य भी अशक्त हो गया।

१६. भारतमें मुसलमानोंका पतन; उसके कारण

औरगजेबकी इस नीतिसे मुसलमान जनताको भी कोई लाभ नही पहुँचा, परन्तु उसका दूसरा ही कारण था। तुर्क केवल सैनिक ही बन सकते थे, उन्हे दूसरा कोई काम-धधा नही आता था, एव सारे वयस्क तुर्कोका सेनामे भर्ती होना स्वाभाविक ही था, युद्ध ही उनका एकमात्र पेशा था। स्थायी रूपसे सैनिक बननेवालोके लिए लगातार गार्हस्थ्य जीवन बिता सकना कदापि सम्भव नही। मुगल कहे जानेवाले शासक वर्गके लोग वास्तवमे तुर्क ही थे। साम्राज्यका शासन-सगठन भी प्रधान-तया सैनिक ढाँचेपर बना हुआ था। पुन. समाजका नैतिक सौजन्य बहुत-कुछ सैनिकोके आचार-विचारपर ही निर्भर रहता है। अतएव मुगल-कालीन मुसलमानी समाजका सारा जीवन और सेनासे असम्बद्ध मुसल-मान नागरिकोका रहन-सहन भी छावनीमे अस्थायी रूपसे रहनेवाले सैनिकोका-सा ही होता था।

भारतमे मुसलमानोको जो विशेष स्थिति प्राप्त थी, उसीसे उनका बौद्धिक पतन भी बहुत शीघ्रताके साथ होने लगा। वे भारतमे स्थायी

रूपसे बस गए थे। उनमेंसे कई तो वास्तवमें भारतीय ही थे। तब तक सब हीकी शकल-सूरत, उनके आचार-विचार, रीति-रस्मे, आदि भी भारतीय बन चुके थे। तथापि उनके धार्मिक गुरु उन्हे प्राचीन अरबकी ही ओर आकर्षित करते थे, और मानसिक भोजनके लिए पैगम्बरके सदियों पुराने गए-बीते युगका ही आसरा लेनेके लिए उन्हे कहते थे। उनकी धार्मिक भाषा अरबी ही हो सकती थी, किन्तु भारतके मुसलमानों-मे एक फ़ी सदी भी अच्छी तरह अरबी नही जानते थे। उधर उनकी सास्कृतिक भाषा फारसी थी, जिसे कुछ अधिक मुसलमानोने कठिनाईके साथ सीख ली थी और उसे बहुत ही अशुद्ध बोलते थे, जिसे सुनकर ईरानमें पैदा हुए लोग हँसी उड़ाकर उनका तिरस्कार भी करते थे। साहित्यिक लिखा-पढीके लिए भारतीय भाषाओको काममे लेना १८वी शताब्दीके बाद तक भारतीय मुसलमान अपने लिए अपमानजनक समझते थे। अतएव इस जातिके अत्यधिक लोगोके लिए उनका अपना कोई साहित्य था ही नही। बहुत ही थोड़े लोग आसानीसे फारसी बोल या लिख-पढ सकते थे, एव उनके सिवाय दूसरोकी शिक्षा इसी कारण रुक रुक जाती थी और अपने व्यक्तिगत जीवनमें भी उन्हे कोई बौद्धिक आनन्द नही प्राप्त हो सकता था। निरन्तर बढनेवाला सजीव धार्मिक साहित्य भी उन्हे नही प्राप्त हो सकता था। हिन्दुस्तानीमें लिखी गई प्रेम सम्बन्धी गजलो या भक्तिपूर्ण गीतो और फारसीमे लिखे गए सूफी काव्य-से ही न तो सारी जातिके सर्वव्यापी अज्ञानको दूर किया जा सकता है और न उनसे समाजमे संस्कृतिका प्रसार ही हो सकता, इस प्रकारके कामोके लिए वे सर्वथा अनुपयुक्त थे।

यो प्रत्येक कट्टर मुसलमानने सदैव यही अनुभव किया कि वह भारत-मे रहता अवश्य था, परन्तु वह भारतका नही था। अपनी इस जन्मभूमि भारतके साथ अपना कोई भी सम्बन्ध स्थापित करनेका उसे साहस भी नही हो सकता था, क्योकि उसे यही सिखाया गया था कि ऐसा करनेसे उसकी आत्माका नाश हो जावेगा। इस देशकी परम्पराओं-को, यहाँकी भाषा तथा सास्कृतिक विशेषताओंको उसे कदापि नही अप-नाना चाहिए; ये सारी बाते उसे ईरान और अरबसे ही लेनी चाहिए। अपने दीवानी और फौजदारी कानूनके लिए भी उसे बगदाद तथा काहिराके न्यायज्ञोके ग्रन्थ तथा वहाँके न्यायाधीशोके निर्णयोंका ही

आसरा लेना चाहिए। भारतमें रहनेवाला मुसलमान बौद्धिक दृष्टिसे सर्वथा विदेशी था, वह अपने आपको यहाँके वातावरणके उपयुक्त नहीं बना सका। सभ्य समाजके निर्देशन तथा मानव जीवनकी व्यवस्थाके लिए कुराननें दिए गए आदेश खानाबदोशका जीवन बितानेवाले मनुष्यों-के समाजके उपयुक्त गए-बीते युगके थे। अकबर जैसे बुद्धिवादीने तभी यह तर्क किया था कि जिस देशकी अरबसे कोई भी समानता नहीं थी, वहाँ १६वीं और १७वीं शताब्दियोंमें रहनेवालोंके लिए कुरानके ये आदेश अवश्य पालनीय बनाना सर्वथा अनुचित था।

इस विदेशीय और बिलकुल ही अव्यावहारिक आदर्शके लिए यों अस्वाभाविक परिश्रम करनेसे भारतीय मुसलमानोंमें जो बौद्धिक शून्यता आ गई थी, उससे उनकी मानसिक और सामाजिक उन्नति ही नहीं रुक गई, परन्तु उनसे कई एक अहितकर कुरीतियोंका उनके हृदयोंमें उत्पन्न होना और वहाँ उनका जड़ जमा लेना एक अवश्यम्भावी बात हो गई। अपने व्यक्तिगत धर्म तथा एक जीवित ज्वलन्त विश्वासके लिए मानव हृदयमें चिरकालसे जो तीव्र उत्कण्ठा चली आ रही है, उसको शान्त करनेके लिए प्रति दिन अरबी पुस्तकका केवल पाठ कर लेना (हिफ़्ज़-इ-कलाम-अल्लाह) या जमैयतके साथ नमाज़ पढ़नेकी वही उबानेवाली शारीरिक कसरत प्रतिदिन पाँच बार करना ही किसी प्रकार काफ़ी नहीं होता है। अतएव वे प्यासी आत्माएँ कुछ भी ख्यातिवाले अपने पड़ोसी जीवित सन्तों या भूतकालीन सुप्रसिद्ध सन्तोंकी कब्रोंकी देखभाल करने-वाले उनके लोभी उत्तराधिकारियोंके पास पहुँचीं, क्योंकि उन दोनोंके ही बारेमें यह विश्वास किया जाता था कि वे चमत्कार कर सकते थे।

कुरान और सुन्नियोंके धर्म-शास्त्रकी व्यवस्था यहूदी जातिके लोगोंने की थी, जिनका जातीय जीवन और चाल-चलन भारतीयोंसे स्पष्टतया विभिन्न है, एवं केवल इसी कारण कि भारतीय जातिके कुछ लोगोंने अरबोंके इस धर्मको स्वीकार कर लिया था, उनमें पाए जानेवाले ये जातीय भेद किसी भी प्रकार दूर नहीं हो सकते थे। भारतमें प्रचलित इस्लाम धर्मकी ये कभी न पूरी हो सकनेवाली कमियाँ थीं।

१७. हिन्दू समाजकी अवनति और उसकी स्वभावगत कमज़ोरियाँ

मध्यकालीन हिन्दुओंकी दशा भी इतनी ही दुःखद थी। उनका एक

राष्ट्रके रूपमे संगठित होना तो दूर रहा, वे अपना सुगठित सम्प्रदाय भी नही बना सकते थे। जनेऊ पहनने, वेद पाठ कर सकने, सार्वजनिक जलाशयों और मन्दिरोंमें प्रवेश पाने, छुआछूत और सुदूर दक्षिणमें सामने आने तककी योग्यताको लेकर निरन्तर चलनेवाले जातीय झगडोके कारण सारा हिन्दू समाज अनगिनित छोटी-छोटी पूर्णतया विभिन्न जातियोमे बँटा हुआ था एव हिन्दुओमें मुसलमानोकी-सी सामाजिक एकता होना एक बिलकुल ही अनहोनी बात थी। समय और सम्पन्नताके साथ हिन्दुओके ये भीतरी भेद-भाव बराबर बढ़ते ही गए। मुसलमानी शासन-कालमे अनेकानेक भीतरी प्रवृत्तियोके फलस्वरूप प्रत्येक जातिमे निरन्तर बननेवाली नई-नई उपजातियोसे हिन्दू समाज और भी अधिक अशक्त हो गया।

हिन्दुओंके उद्धारके लिए इस समय कोई भी ज्ञान-सम्पन्न देश-प्रेमी धर्माचार्य नही पैदा हुआ। छिन्न-भिन्न कर देनेकी यह प्रवृत्ति समाजके साथ ही हिन्दू धर्ममें भी पाई जाती है। मोक्ष-मार्ग सम्बन्धी हिन्दू-धर्मके मूल सिद्धान्त ऐसे है कि उनके कारण हिन्दू धार्मिक समाजमे न तो धर्माचार्योका कोई सशक्त दल बन सकता है, और न ईसाई धार्मिक संगठनके समान यहाँ किसी एकीभूत शासकीय धार्मिक सत्ताका सगठन ही किया जा सकता है। अपना-अपना रास्ता लेनेवाले ये असगठित धर्म-जिज्ञासु सरलतापूर्वक झूठे ढोंगियो और विषयासक्त रंगे-सियारोंके पजोमे जा फँसते है। वल्लभाचार्य सम्प्रदाय की धार्मिक प्रक्रियाओंमे अन्तत॰ जाकर जिस प्रकार मानव-पूजाको अपनाया गया था, या कर्ताभज और अन्य सम्प्रदायवाले जैसे गुरु-पूजा करते है, या मन्दिरोमे देवदासियो तथा मुरलियोंके रहनेसे वहाँ जो अनाचार फैलता है, इन सब बातो तथा अन्य निन्दनीय आचारवाले छोटे-छोटे सम्प्रदायोकी भी उपेक्षा करके यदि हम करोड़ों साधारण मूर्ति-पूजकोकी ओर दृष्टि डाले तो हमे देख पड़ता है कि हिन्दू पण्डे पुजारी इन पूज्य मूर्तियोका ऐसा प्रदर्शन करते है, जिससे अनेक आस्थावान् भक्त पूजकोमे बुद्धिका विकास नही होने पाता है। ये मूर्तियाँ भोजन करती है, सोती है, (जगन्नाथ जैसी मूर्तियाँ प्रति वर्ष एक सप्ताह तक) ज्वर पीड़ित भी रहती है, और ऐसे-ऐसे कामुकतामय नृत्य देखती है जिन्हे देखकर अवधके नवाबको भी ईर्ष्या होती और अपने हरममे जिनका अनुकरण करवानेको कुतुबशाह भी लालायित हो उठता। जन-साधारण द्वारा माने जानेवाले सामान्य हिन्दू धर्ममें कोई सुधार

सम्भव नही था। उसमे दृढ आस्था न रखनेवाले ऐसे लोगोके छोटे-छोटे दल ही हिन्दू धर्ममे इन आवश्यक सुधारोको अपना सकते थे, जो सत्यको अपनाकर उसका अनुसरण करनेमे सब-कुछ छोड देनेको तत्पर रहते थे। किन्तु ऐसे सुधारक दलोमे भी दो-तीन पीढियोके बाद गुरु-पूजाका पूर्ण प्राधान्य हो जाता था।

१८. भारतमें हिन्दू और मुसलमान किस प्रकार साथ-साथ रहते थे, यदा-कदा मेल हो जाता था, परन्तु आपसी युद्धका अप्रकट डर सदैव बना रहता

ऊपर जो कुछ लिखा जा चुका है, वह सब होते हुए भी कई एक बातोमे हिन्दू और मुसलमान दोनो ही समाजोका एक-दूसरेसे सम्बन्ध आए बिना नही रहता। पूर्ण ब्रह्म परमात्माकी उपासना, सासारिक भोग-विलासका त्याग और सब प्राणियोके प्रति दयाके सच्चे धार्मिक आदर्श दोनों ही धर्मोंमें समान रूपसे पाए जाते थे। किन्तु धर्मान्ध व्यक्ति तथा जनसाधारणके लिए इन ऊँचे विचारो तक उठना कदापि सम्भव नही था। कठोर तपस्या करनेवाले या सिद्धि-प्राप्त चमत्कार कर सकनेवाले प्रसिद्ध मुसलमान सन्तोको हिन्दू राजा-रईस और साधारण जनता भी आदरकी दृष्टिसे देखते थे। इसी प्रकार सूफी मत भी इन दोनो धर्मावलम्बियोको एकत्र कर उनमे मेल उत्पन्न करता था। किन्तु सूफी मत प्रधानतया केवल भावनापूर्ण बौद्धिक सुखास्वाद था, वह कोई जीवनपूर्ण धर्म नही था, पुन सूफी मतका प्रभाव इने-गिने पढे-लिखो और अधिकारी वर्गके लोगो तक ही सीमित था।

गम्भीर एक-ईश्वरवाद और विश्व-व्यापी मानव-भ्रातृत्वकी ऊँची भावनाओको जन-साधारण ठीक तरह समझ भी नही सकते थे। विचार-वान् तत्त्वज्ञानियोकी अपेक्षा धर्मान्ध व्यक्तियोका जनताके हृदयपर अधिक अधिकार था। प्रारम्भमे हिन्दू और मुसलमानो या मुसलमानोमे भी शिया और सुन्नियोमे आपसी झगड़े चलते रहे, जिनमें राज्यकी सेना सदैव मुसलमानो और उनमें भी कट्टर सुन्नियोंका पक्ष लेती थी। कुछ समय बाद प्रत्येक बस्तीके विभिन्न धर्मो या मतोवाले निम्न श्रेणीके लोगोमे आपसी समझौता हो गया और हर धर्म या मतवालोने अपने-अपने अधिकारो तथा मर्यादाओकी सीमाएँ समझ ली, जो यथेष्ट समय बीतनेपर

पवित्र रीति-रिवाजके रूपमें मानी जाने लगी। इस प्रकार अपनी इन निश्चित संकीर्ण सीमाओमे वे मिल-जुल कर रहने लगे। किन्तु जहाँ तक स्थानीय समाज स्थिर रहता था वहाँ तक ही यह धार्मिक विराम-सन्धि बनी रहती थी। दोनो धर्मवालोंकी सख्याओ या उनके विचारोमे कुछ भी उलट-फेर होने, बाहरसे किसी कट्टर धर्म-प्रचारकके वहाँ आने, या किसी कट्टर शासकके गद्दीपर बैठनेके फलस्वरूप जन-समूहकी धार्मिक असहनशीलताकी सोई हुई भावनाएँ फिर भड़क उठती थी, जिनके उदाहरण सन् १६८५मे श्रीनगरमे (कश्मीरमे) शियाओका सर्व-संहार, औरगजेबका हिन्दू मन्दिरोको ध्वस तथा भ्रष्ट करवाना, मालवाके राजपूतोका जजिया वसूल करनेवालेकी दाढी उखड़वा डालना, बहुत ही आवेशपूर्ण कई राठौड और मराठे शासकोंका मसजिदे तुडवाकर बदला लेना, जैसी घटनाओमें देख पड़ते है। अतएव औरगजेबके शासन-कालमे मिश्रित आबादीवाली हर एक बस्तीके भारतीय समाजकी हालत निरन्तर डाँवाडोल ही बनी रहती थी।

१९. भारतीय लोगोंमें प्रगतिकी भावनाका अभाव, जिससे उनका ह्रास

अन्तत मुगल कालीन भारतीय लोग, हिन्दू और मुसलमान दोनों ही गतिहीन थे, अपने पूर्वजोकी बुद्धिमानीकी प्रशंसा कर अपने युगको निकृष्ट समझते थे तथा उसका तिरस्कार करते थे। अतएव हर प्रकारके नये प्रयोगो या स्वतन्त्र विचारोकी निन्दा ही की जाती थी और उन्हे पिछले समयके महापुरुषोंकी पूजनीय प्रमाण-स्वरूप बातोंपर धर्म-विरुद्ध शंकाएँ उठाना तथा अपने समकालीन युगके छोटी बुद्धिवाले उद्धत लोगोंका उनकी तुलनामे अपना महत्त्व बतानेकी ढीठता करना ही समझा जाता था। अकबरकी मृत्युके साथ ही भारतमें प्रगतिकी भावनाका अन्त हो गया। उसके बाद भारतीय सस्कृति स्थिर ही बनी रही, और उसमें जब कोई भी उन्नति करना सम्भव नही रहा, तब उस संस्कृतिका ह्रास होना सर्वथा अवश्यम्भावी ही हो जाता है।

"इस्लामकी लड़ाईके कारण उस धर्मके अनुयायी सब ही देशोमे एक हद तक बराबर सफल होते गए; किन्तु वही तक जाकर उनकी उन्नति रुक गई, जब कि जीवित जगत्‌का नियम आगे भी उन्नति करते

ही जाना है। युरोपमे वरावर उन्नति होती जा रही थी, परन्तु इधर उसकी तुलनामे प्रगति विहीन पूर्वी देश निन्तर पिछडते ही जा रहे थे। यो प्रत्येक बीते हुए वर्षके साथ एशिया और यूरोपके ज्ञान, सगठन, सचित साधनो और प्राप्त योग्यतामे दूरी अधिकाधिक वढती ही गई, जिससे युरोपीय लोगोका मुकावला करना एशियाई लोगोके लिए दिनो-दिन अधिक कठिन होता गया। अपने ही समाजमे जिस प्रकार अकर्मण्य आत्म सतुष्ट घरानोको पीछे ढकेलकर साहसी और उद्योगी घराने स्वय उसके नेता वन जाते है, उसी प्रकार संसारमे भी प्रगतिशील जातियाँ पुरातनप्रेमी जातियोको निकाल बाहर कर उनका स्थान स्वयं ग्रहण करती है। अतएव अग्रेजोका मुगल साम्राज्यको जीतना समूचे अफ्रीका और एशियापर यूरोपीय जातियोके अवश्यम्भावी आधिपत्यकी प्रक्रियाका ही एक पहलू-मात्र था।"

(मेरा ग्रन्थ, 'मुगल एडमिनिस्ट्रेशन', तीसरा सस्करण, पृष्ठ २५५-६)।

२०. औरंगजेबके शासन-कालका महत्त्व : किस प्रकार भारतीय राष्ट्र संगठित हो सकता है ?

पचास वर्ष लम्बे इस उद्योगपूर्ण शासन-कालके सविस्तार अध्ययनसे एक ही सत्य हमारे सामने सुस्पष्ट हो जाता है। यदि भारत कभी एक संगठित राष्ट्रकी जन्म-भूमि बनकर भीतरी शान्ति बनाए रखना, अपनी वाहरी सीमाओकी ठीक तरह सुरक्षा करना, अपने आथिक साधनोकी पूरी-पूरो उन्नति तथा अपने साहित्य, कला एव विज्ञानका समुचित विकास करना चाहता है तो हिन्दू और इस्लाम दोनो ही धर्मोका पुवर्जन्म अत्यावश्यक होगा। हर एक धर्मको नव-जागरण और साधनाकी बहुत ही कड़ी तपस्याएँ करनी होगी, तथा तर्क एवं विज्ञानके आदेशानुसार उनका अत्यावश्यक कायाकल्प करवाना होगा। स्मर्नाके विजेता कमालपाशाने इसी शताब्दीके प्रारम्भिक युगोमे यह बात करके दिखा दी कि इस्लाम धर्मका पुनर्जन्म सर्वथा असम्भव नही है। गाजी मुस्तफा कमालपाशाने यह प्रमाणित कर दिया है कि अपने समयका सबसे बड़ा मुसलमानी राज्य भी अपने सविधानको धर्म-निरपेक्ष बना सकता है, बहु-विवाह और स्त्रियोको बलपूर्वक पर्देमे रखनेकी प्रथाओका अन्त कर

सकता है, सब धर्मावलम्बियोको समान राजनैतिक अधिकार दे सकता है और फिर भी वह देश मुसलमानोका ही राज्य बना रह सकता है।

औरंगजेबकी प्रजा उनसे कही अधिक सम्मिश्रित थी, सारे भारतीय ससारपर अकेले औरंगजेबका ही एकाधिपत्य था और उसके इस साम्राज्यपर अधिकार करनेके लिए लालायित युरोपीय राष्ट्र भी तब वहाँ ताक लगाए नही बैठे थे, तथापि औरगजेबने कमालपाशाके इस आदर्शको कार्य-रूपमे परिणत करनेका कोई प्रयत्न नही किया। राज्यारूढ़ होनेके समय औरगजेबको कई विशेष सुविधाएँ प्राप्त थी, और उसकी प्रारम्भिक सुशिक्षा एवं उसके उच्च नैतिक चरित्रने औरगजेबको एक आदर्श मुसलमान बना दिया था, तथापि औरगजेब एक विफल शासक ही रहा, जिससे ससारको इस शाश्वत सत्यका सुस्पष्ट प्रमाण मिल गया कि किसी देशकी जनताके महान् हुए बिना वह साम्राज्य न तो महान् बन सकता है और न किसी प्रकार स्थायी ही। किसी भी देशकी जनताके महान् बननेके लिए यह अत्यावश्यक है कि वह अपने यहाँकी सब जातियोवालोको समान अधिकार और समान साधन तथा सुविधाएँ दे और यो एक सुसंगठित राष्ट्रका निर्माण करे। ऐसे राष्ट्रके सारे ही अगोमे एक-जातीयताकी भावना होनी चाहिए, जीवन और विचारोकी सारी मुख्य बातोमे उनमे मतभेद नही होना चाहिए और साथ ही दूसरी छोटी-छोटी बातो या घरेलू जीवनमे पाई जानेवाली व्यक्तिगत विभिन्नताएँ भी सहर्ष सहन की जाती हो और यो व्यक्तिगत स्वाधीनताके आधारपर ही विभिन्न जातियोंकी स्वाधीनता स्वीकृति की गई हो। राष्ट्रीय हितोंको ही आगे बढ़ाना ऐसे राष्ट्रके शासनका एकमात्र उद्देश्य होना चाहिए; उनके विरोधमें किन्ही स्थानीय या साम्प्रदायिक हितोकी पूर्ण उपेक्षा ही होनी चाहिए। ऐसे राष्ट्रके समाजके लिए यह अत्यावश्यक है कि बिना किसी डर या आशकाके तथा बिना किसी प्रकारकी रोक या बाधाके ज्ञानको विकसित करनेके लिए वह निरन्तर प्रयत्नशील रहे। साधुता, कल्याण और सत्यकी इस विशुद्ध ज्योतिको अपनानेसे ही भारतीय राष्ट्रीयताका पूर्ण विकास हो सकता है।

अध्याय २०

औरंगजेबका साम्राज्य : उसके साधन, व्यापार और उसकी शासन-व्यवस्था

१. मुगल साम्राज्य : उसका विस्तार और आमदनी

सन् १७०७ ई०में जब औरगजेबकी मृत्यु हुई तब उसका सारा साम्राज्य २० विभिन्न प्रान्तो अथवा सूबोमे बँटा हुआ था, जिनमेसे १४ सूबे उत्तरी भारत अर्थात् हिन्दुस्तानमे थे तथा ६ सूबे दक्षिणमे थे, इनके सिवाय एक सूबा काबुलका था जो अफगानिस्तानके अन्तर्गत है। इन सब सूबोके नाम ये है—

(१) हिन्दुस्तानके सूबे—आगरा, अजमेर, इलाहाबाद, बगाल, बिहार, दिल्ली, गुजरात, कश्मोर, लाहौर, मालवा, मुलतान, उडीसा, अवध और थत्ता (अथवा सिन्ध)।

(२) दक्षिणके सूबे—खानबेश, बरार, औरगाबाद (जो पहिले अहमदनगर कहलाता था), बीदर (पुराना तेलगाना), बीजापुर और हैदराबाद।

एक शताब्दी पहिले सन् १६०५ ई०मे अकबरकी मृत्युके समय उत्तरी भारतके चौदहों सूबे तथा दक्षिणके पहिले दो सूबे मुगल साम्राज्यके अधीन हो चुके थे। अहमदनगरका सूबा तब नाम-मात्रके लिए ही मुगल साम्राज्यमे मिल गया था। शाही कागज-पत्रोमे कधार अथवा दक्षिणी अफगानिस्तानको बहुत समय पहिले ही मुगल साम्राज्यका एक सूबा मान लिया गया था, परन्तु इस प्रदेशपर अधिकार बारम्बार बदलता रहता था, कभी उसपर ईरानके शाहका अधिकार हो जाता था और कभी वह फिर दिल्लीके मुगलोके हाथमे आ जाता। अन्तमे सन् १६४९ ई०मे वह सदाके लिए मुगलोके अधिकारसे निकल गया। जब मुगलोका उसपर पूर्ण अधिकार था तब भी कधार सूबा उपजाऊ नही था, एव उस

प्रान्तमें साम्राज्यको हानि ही उठानी पड़ती थी। काबुल अथवा उत्तरी अफ़गानिस्तानपर मुग़लोंका आधिपत्य सन् १७३९ ई० तक बराबर बना रहा, तब नादिरशाहने उसे अपने अधीन कर लिया। किन्तु अकबरके समयमें उस सूबेकी वार्षिक आमदनी २० लाख रुपये ही थी, जो औरंगजेबके समयमें बढ़कर ४० लाख रुपये हो गई, किन्तु इसमेंसे बहुत ही थोड़ा रुपया वहाँसे वसूल हो पाता था। अतएव इस अध्यायमें अफ़गानिस्तानके इन दोनों सूबोंपर विचार नहीं किया जावेगा।

औरंगजेबके मुग़ल साम्राज्यमें उत्तरी और कश्मीर तथा हिन्दूकुशके दक्षिणका सारा ही अफ़गानिस्तान सम्मिलित था। दक्षिण-पश्चिममें गजनीसे कोई ३६ मील दक्षिणमें ईरान राज्यसे मुग़ल साम्राज्यकी सीमा मिलती थी। पश्चिमी तटपर यों कहनेको तो मुग़ल साम्राज्यकी सीमा पुर्तगालियोंके अधीन गोआके प्रदेशके उत्तरी सीमापर होती हुई भीतरकी ओर घुसकर कनाड़ा प्रदेशमें (बम्बई प्रान्तके कर्नाटकके) बेलगाँव जिले और तुंगभद्रा नदी तक पहुँच जाती थी। इसके बाद यह सीमा मैसूरके मध्यके लगभग पश्चिमसे पूर्वको जानेवाली रेखाके रूपमें चलती थी, परन्तु यहाँकी सीमाके लिए निरन्तर कशमकश चलती रहती थी और वह सदैव आगे-पीछे सरकती रहती थी। दक्षिण-पूर्वी अन्तिम सिरेपर पहुँचकर वह नीचेको झुक जाती थी और तंजोरके उत्तरमें कोलेरून नदीके साथ-साथ चलती थी। उत्तर-पूर्वके सिरेपर गोहाटीसे दक्षिणमें बहनेवाली मोनास नदी मुग़ल साम्राज्य तथा स्वाधीन आसाम राज्यके बीचकी सीमाको निश्चित करती थी। किन्तु यह बात सदैव ध्यानमें रखनी चाहिए कि साम्राज्यकी दक्षिण-पश्चिमी, दक्षिणी तथा दक्षिण-पूर्वी सीमाओंपर समूचे महाराष्ट्र, कनाडा, मैसूर और पूर्वी कर्नाटकमें सम्राट्के शासनके विरुद्ध कशमकश चलती ही रहती थी, जिससे इन भागोंके कई स्थानोंमें दो अमली शासन होता था और वहाँ एक ही साथ दो विभिन्न शासक या रुपया वसूल करनेवाले अधिकारी बने रहते थे। अंग्रेज और फरासीसी कोठियोंके कागज-पत्रोंमें ऐसे दो अमली शासनका बहुत ही दुःखजनक वर्णन मिलता है।

अकबरके समय अफगानिस्तानको छोड़ते हुए बाकी रहे सारे मुग़ल साम्राज्यकी आमदनी कुल मिलाकर १३ करोड़ २१ लाखकी होती थी, औरगजेबके समय वह बढकर ३३ करोड़ २५ लाख हो गई। [illegible]

रूपमें प्रमाण रूप या अधिक-से-अधिक जो कुछ भी वसूल हो सकता था उसकी कुल रकम इतनी होती थी, परन्तु यह पूरी रकम कभी वसूल नही होती थी और वास्तवमे असल आमदनो कम ही होती थी। ऊपर दी हुई आयमे केवल मालगुजारीकी ही आमदनी गिनी गई है, जकात, जजिया, आदि करोसे प्राप्त होनेवाली सारी आमदनी इसके सिवाय ही थी। जकात करके रूपमे केवल मुसलमानोसे उनकी वार्षिक आमदनीका ४० वॉ हिस्सा अर्थात् ढाई रुपया सैकडा वसूल होता था, उसकी सारी आय केवल धार्मिक दान-पुण्य, आदिमे ही व्यय की जाती थी। औरगजेबके शासन-कालमे विभिन्न करोसे गुजरात प्रान्तमे होनेवाली सरकारी आमदनीके ऑकड़ोसे तुलनात्मक अनुपातका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है;—मालगुजारी—११३ लाख रुपये, जजिया—५ लाख रुपये, केवल सूरतके बन्दरगाहपर बाहरसे आनेवाले सामानपर लिए गए महसूलसे—१२ लाख रुपये। (मुगल साम्राज्यके दूसरे बन्दरगाहोके द्वारा बहुत ही कम विदेशी व्यापार होता था, शासन-कालके पिछले वर्षोमे अवश्य हुगली और मछलीपट्टम्के बन्दरगाहोका विदेशी व्यापार बढ गया था)। प्रान्तकी कितनी धरती 'खालसा शरीफ'मे थी और कितनी मनसबदारोको जागीरमे दी हुई थी इसका भी सन् १६९० ई०के लगभगकी सारे साम्राज्यकी मालगुजारी, आदिके इन ऑकड़ोसे कुछ अन्दाजा लग सकता है;—जागीरोको निर्धारित मालगुजारी—२७.६४ करोड़, और खालसा भागकी निर्धारित मालगुजारी—५ ८१ करोड रुपये।

२. साम्राज्यके अमीर और राजा

मुगल साम्राज्यका शासन-प्रबन्ध तथा सारी सैनिक-व्यवस्था ऐसे अधिकारियो द्वारा होती थी, जिनके नाम मुगल सेनाके मनसबदारोकी सूचीमे उनके मनसबके अनुसार क्रमश लिखे रहते थे। इस सूचीमे नाममात्रके बीस हजार घुडसवारोके मनसबसे लेकर केवल बीस (अकबरके समयमे दस) घुडसवारो तकके मनसबवालोके नाम रहते थे। इनमेसे तीन हजारीसे अधिकके मनसबवाले 'उमरा-इ-आजम' अर्थात् बड़े सेनानायक कहलाते थे। तीन हजारीसे कम मनसबवाले केवल 'मनसबदार' कहलाते थे।

	सन् १५५६ के लगभग	सन् १६२० के लगभग	सन् १६७४में	सन् १६९० के लगभग
उमरा (तीन हजारी-से अधिक मनसब-वाले जिनमें शाह-जादे भी सम्मिलित है) :—	६३	११२	९९	–
कुल संख्या, उमरा और मनसबदार सब मिलाकर—	१,८०३	२,९४५	८,०००	१४,४४९

इन आँकड़ोंसे ही यह स्पष्ट हो जावेगा कि औरगजेबके समय मनसबदारोकी यह सूची कितनी अधिक बढ गई थी और उससे कितना ज्यादा आर्थिक भार पड़ता होगा।

औरगजेबके समय इन १४,४४९ मनसबदारोमेसे ७,०००के लगभग जागीरदार थे और ७,४५० नकदी, जिन्हे मनसबका वेतन नकद सिक्कोंमे मिलता था, ये दोनों प्रकारके मनसबदारोकी संख्या लगभग आधी-आधी थी। शाहजहाँके शासनकालमे प्रचलित किए गए नियमोके अनुसार यह आवश्यक होता था कि प्रत्येक मनसबदार निश्चित सख्याके एक चौथाई सैनिक अवश्य ही रखे। ऐसे रखे जानेवाले सैनिकोका वेतन शामिल करते हुए विभिन्न मनसबदारोंको उनका वेतन आदि मिलाकर प्रति वर्ष नीचे लिखे अनुसार रुपया मिलता था।

७–हजारी — ३.५ लाख रुपये।
५–हजारी — २.५ लाख रुपये।
हजारी — ५० हज़ार रुपये।
२०का मनसबदार— एक हज़ार रुपये।

सन् १६४७में साम्राज्यके सैनिकोंकी वास्तविक संख्या इस प्रकार थी :—

२ लाख घुड़सवार एकत्र हुए और जिनके घोड़े दागे गए;
८ हज़ार मनसबदार;
७ हज़ार अहदी और बरकंदाज़;

१,८५,००० ताबईन या शाहजादो, उमराओ और मनसबदारोके और घुड़सवार,—और

४०,००० पैदल बन्दूकची, गोलदाज, आदि ।

औरगजेबके समय ज्यो-ज्यो नए युद्ध छिडते गए और जब दक्षिणको भी साम्राज्यमे सम्मिलित कर लिया गया, त्यो-त्यो मुगल सैनिकोकी सख्या बढती ही गई, यहाँ तक कि सेनाके व्ययका भार उसकी आयके लिए असहनीय हो गया, और तब सैनिकोको समयपर वेतन भी नही मिलता था ।

मुगल-साम्राज्यमे यह प्रथा प्रचलित थी कि शाही सेवा करते हुए जो कोई भी मर जाता था, उसकी सारी सम्पत्ति सम्राट् ज़ब्त कर लेता था । इसके अनुसार अमीरोकी अपनी कोई वशपरम्पगत सम्पत्ति थी ही नही । इस तरह सारी सम्पत्ति ज़ब्त किए जानेकी प्रथाका राजनैतिक परिणाम बहुत ही हानिकारक हुआ । इसी प्रथाके कारण भारतमे तब स्वाधीन वशपरम्परागत सामन्त वर्गकी स्थापना नही हो पाई और यो यहाँके सम्राटोकी निरकुशतापर लग सकनेवाली सबसे शक्तिशाली रोक भी न रही । सामन्त वर्गके वशपरम्परागत होनेकी हालतमे प्रत्येक पीढी को अपनी पदवी और घरानेकी सम्पत्तिके लिए एकमात्र सम्राट्की कृपा-पर ही निर्भर नही रहना पडता, और तब वे साहसपूर्वक सम्राट्के अत्याचारोका विरोध भी कर सकते थे । इसी प्रथाके कारण मुगल अमीर बहुत ही स्वार्थी हो गए और उत्तराधिकारके लिए होनेवाले युद्धो या विदेशियोके आक्रमणके समय वे विजयी पक्षके साथ जा मिलनेमे बडी ही तत्परता दिखाते थे, क्योकि वे जानते थे कि उनके अधिकारकी धरती तथा उनकी निजी सम्पत्तिपर उनका हक कानून द्वारा भी किसी प्रकार सुनिश्चित तथा सुरक्षित नही था, किन्तु वे भी केवल उस समयके वास्तविक शासककी इच्छापर निर्भर रहते थे । मध्यकालीन भारतमे न तो कोई स्वाधीन अमीर या राजा ही थे और न प्रभावशाली सशक्त व्यापारी वर्ग ही कि वे तत्कालीन शासन-व्यवस्थामे सबसे ऊपर सर्व-शक्तिमान सम्राट् और सबसे नीचे अनगिनित दरिद्री किसानो एव मज-दूरोके बीचमे अत्यावश्यक रुकावटोका काम दे सकते । ऐसी परिस्थितिमे इन साम्राज्योकी शासन-व्यवस्था अस्थायी तथा दोषपूर्ण ही रही ।

३. उद्योग-धंधे और व्यापार

भारतमें अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनीके व्यापार प्रारम्भ करनेके बाद पहले साठ वर्षोंके (१६१२-१६७२) भारतसे बाहर जानेवाले भारतीय मालके मूल्यका औसत एक लाख पाउण्ड अथवा आठ लाख रुपये प्रति वर्षसे अधिकांशका नही था। सन् १६८१ ई०में यह बढ गया और केवल बगालसे ही २,३०,००० पाउण्डका माल बाहर गया। भारतमें व्यापार करनेवाली डच कम्पनीका व्यापार भी (१६९०में) बहुत करके अंग्रेजी कम्पनीके बराबर था, पुर्तगालियोका व्यापार अवश्य ही इन दोनोसे कम था। समुद्र मार्ग द्वारा भारतीय भी बाहरी देशोसे विशेष मात्रामे व्यापार करते थे इसका कोई प्रमाण नही मिलता है। थल मार्गसे ईरान, तुर्की और तिब्बतके साथ भी थोड़ा-बहुत व्यापार चलता ही रहता था। सोने-चाँदी, जैसे बहुमूल्य धातुओ तथा धनिकोंके ऐश्वर्य-विलासकी कुछ वस्तुओके अतिरिक्त विदेशोसे बहुत ही थोड़ा माल तब भारतमे आता था, और उन सबके बदलेमे यहाँसे भेजा जाता था सूती कपड़ा तथा काली मिर्च, नील और शोरे, जैसी इनी-गिनी किस्मोका कच्चा माल। यों आर्थिक दृष्टिसे भारतकी हालत ठीक थी और वह बहुत-कुछ आत्म-निर्भर ही था। (सी० जे० हेमिल्टन, ३२-३३)।

सत्रहवी शताब्दीके पूर्वार्द्धमें अग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनीका पूर्वीय देशोके साथका व्यापार प्रधानतया पाँच तरहके माल तक ही सीमित था। इगलैण्डके बाजारमे मलाया प्रायद्वीप और पूर्वी द्वीपोके गरम मसालो, ईरानके कच्चे रेशम और भारतके शोरे और नीलकी बहुत माँग रहती थी। बहुत-सा पतला सूती कपडा और कुछ बना-बनाया रेशमी माल भी इंगलैण्ड अवश्य जाता था, किन्तु अग्रेजी कम्पनी जितना भी सूती माल भारतसे मोल लेती थी वह सारा ही इगलैण्डके लिए नही होता था, किन्तु उसका बहुत बडा भाग सुदूर-पूर्व तथा ईरान ले जाकर उसे वहाँ बेचती थी। विदेशी बाजारोमे बना-बनाया सूती कपड़ा केवल भारतसे ही पहुँचता था, किन्तु रेशमी मालके बारेमे भारतकी यह स्थिति नही थी। बहुत ही थोड़ा रेशमी माल यहाँसे बाहर जाता था। इंगलैण्डमे कच्चा रेशम प्रधानतया ईरान और चीनसे ही आता था। १७वी शताब्दीके पूर्वार्द्धमे चीनके साथ रेशमका व्यापार बहुत बढ़

गया और तब इगलैण्डमे आनेवाले बने बनाए रेशमी मालका अधिकतर हिस्सा चीनसे ही आने लगा। (सी० जे० हेमिल्टन, पृ० ३१-३२)।

मुगल कालमे विदेशोसे भारतमे प्रधानतया बहुमूल्य धातु, चाँदी और सोना, ही आते थे, थोडा बहुत ताँबा और शोशा भी आ जाता था। इन सब धातुओके लिए भारतको विदेशोपर ही निर्भर रहना पड़ता था। लोहा और इस्पात भारतमे प्राप्य थे, परन्तु विदेशोसे यहाँ आनेवाले ये धातु सस्ते पडते थे एव उनकी भी माँग यहाँ बनी रहती थी। भारतमे सारा बढिया ऊनी कपडा यूरप और विशेषकर फ्रांससे आता था, जिसे सकरलात कहते थे। विदेशोसे आनेवाला बहुत-सा दोहरा कपडा तथा अन्य ऊनी माल भारतके शाही दरबार और यहांके धनिकोमे विक जाता था। बाहरसे आनेवाली वस्तुओमे घोड़े भी कम महत्त्वके न थे। वे विशेषतया ईरानकी खाड़ीसे समुद्रकी राह, या ख़ुरासन, मध्य एशिया और काबुलसे थल मार्ग द्वारा उत्तर-पश्चिमी घाटियोमेसे होकर भारत आते थे। पहाडी टट्टू, जिन्हे टाँगन या गुण्ट कहते है, पूर्वी हिमालयके राज्यो, तिब्बत और भूटानसे बगाल, कूचबिहार, मोरग और अवध होते हुए आते थे। सर्दी के दिनोंमे ताजे और गर्मीके दिनोमे सूखे फल उत्तरी भारतमे बहुतायतसे पाए जाते थे, अतएव बहुत अधिक परिमाणमे वे मध्य एशिया, अफगानिस्तान और ईरानसे आते थे। गरम मसाले—लौंग, जायफल, दाल चीनी और इलायची—डच लोग हिन्द एशियाके पूर्वी टापुओंसे लाकर यहाँ बेचते थे; ये मसाले उन्ही टापुओसे आते थे। भोग-विलास और वैभवकी वस्तुएँ अनेकानेक विदेशोसे आती थी, कस्तूरी और चीनीके बर्तन चीनसे, मोती ईरानकी खाडीमे बहरीन और लंकासे, हाथी लका और पेगूसे, बढिया किस्मकी तम्बाकू अमेरिकासे, काँचके बर्तन शराब और अनेकानेक कौतूहलोत्पादक वस्तुएँ यूरपसे, और दास अबीसीनियासे आते थे, किन्तु इन सबकी माँग बहुत कम और मूल्य बहुत अधिक होता था, जिससे वे बहुत ही कम परिमाणमे यहाँ आती थी। स्थानीय शासकोको एकाएक आवश्यकता पडनेपर युरोपीय व्यापारी कभी-कभी उन्हे कुछ तोपे और गोला-बारूद भी बेच देते थे। परन्तु इनका कोई नियमित व्यापार नही होता था, गैर-कानूनी होनेके कारण ये इने-गिने सौदे प्राय. बहुत ही गुप्त रूपसे किए जाते थे। हिमालय प्रदेशसे पहिले अवध होकर और बादमे पटनाकी राहसे व्यापारी-यात्रियोके कुछ काफिले भारतमे आ जाया करते थे, टट्टुओ और भेड़ो-

प्र (!) लादे वे अपने साथ थोड़े-थोड़े परिमाणमें सोना, ताँबा, कस्तूरी और यकाकी पूँछे (जो पखो या चँवरीके तौरपर काममें आती थी), तथा बेचनेको कुछ खाली पहाड़ी टट्टू भी ले आते थे। इनके बदलेमें वे यहाँसे नमक, रूई, काँचके बर्तन, आदि अपने साथ ले जाते थे। पुर्तगाली ही पहिले-पहल यूरपमें बना हुआ कागज भारतमें लाए, एवं बादमे डच लोग भी उसे लाने लगे (फिर भी अब तक उसे साधारणतया बोलचालमे 'पुर्तगाली कागज' ही कहते है); इस युरोपीय कागजकी खपत दक्षिणके स्वाधीन राज्योमें बहुत होती थी। परन्तु उनके निजी उपयोगके लिए बहुत ही बढ़िया कागज बनानेके लिए कश्मीर तथा कुछ अन्य स्थानोमें मुगल सम्राटोके राजकीय कारखाने थे, उसी किस्मका कागज आज भी यूरपमें 'इण्डिया पेपर' कहलाता है। दफ्तरोके साधारण काम तथा दूसरे लोगोंके निजी कार्यके लिए कागजी कहलानेवाले मुसलमान लोग आवश्यक कागज बना देते थे। प्रत्येक नगरमें कागजियोका यह उद्योग-धंधा चलता रहता था और सूबोके केन्द्रोंमें तो शहरसे लगा हुआ उनका अपना अलग पुरा ही होता था।

भारतसे उन दिनों विदेशोमे जानेवाली वस्तुओमे सबसे महत्त्वपूर्ण था साधारण सूती कपड़ा, जिसे 'केलिको' कहते थे; यह या तो सादा होता था या छापा हुआ, जिसे 'छीट' कहते थे। पूर्वी टापुओमें इन छींटों-की बहुत खपत होती थी, और १७वी शताब्दीके अन्त तक इंगलैण्डमें भी इनकी माँग बहुत बढने लगी थी। महीन सूती कपड़ा 'मलमल' भी भारतसे ही जाता था। इनके अतिरिक्त शोरे, नील, रेशम और भोजन बनानेमें उपयोगी कुछ और मसालोके साथ ही काली मिर्च जैसा कच्चा माल भारतसे ले जाते थे। हुगलीसे सफेद शक्कर, मछलीपट्टम् होकर हीरे और माणक, बंगाल और मद्रासससे दास, और इंगलैण्डमें मोमबत्तियाँ बनानेके लिए सूतका धागा भी थोडे-थोड़े परिणाममें बाहर जाता था। १७वी शताब्दीका अन्त होते-होते रेशमी ताफ़्ता और कलाबत्तूके कामके रेशमी कपड़े बहुतायतसे बाहर जाने लगे और अंग्रेजी कम्पनीके प्रयत्नोंसे बंगालमे रेशमकी रगाई एवं बुनाईके काममे बहुत सुधार हो गए। मछलीपट्टमूसे लेकर पाँडीचेरी तकके मद्रासके सारे समुद्र तटपर और उसके बाद, यद्यपि वह प्रदेश इससे बहुत पीछे था, हुबलीसे लेकर कार-वारके सारे कन्नड देशमे भी तब भारतके सबसे अधिक माल पैदा करने-

वाले सूतके उद्योग-धंधे थे। किन्तु गोलकुण्डा राज्यका अन्त होने तथा मराठोके उत्थानके बाद इस प्रदेशमे जो युद्ध प्रारम्भ हुए उनसे यह सारा प्रदेश बरबाद हो गया और १८वी शताब्दीके प्रारम्भमे बगाल ही सूतके उद्योग-धंधोका प्रमुख केन्द्र बन गया।

४. मुगल साम्राज्यकी शासन-पद्धति

मुसलमानी राज्य वास्तवमें सैनिक शासन होता था, और अपने अस्तित्वके लिए उसे बादशाहकी निरकुश सत्तापर ही निर्भर रहना पडता था क्योकि युद्धके समय बादशाह ही मुसलमानोका सर्वोच्च सेनापति होता था। उसके कोई नियमित मन्त्रि-मण्डल नही होता था। सम्राट्के बाद वजीर या दीवान ही राज्यका सबसे बडा अधिकारी होता था; दूसरे मन्त्री किसी भी तरह वजीर या दीवानके साथी नही माने जा सकते थे क्योकि उनका पद निश्चित रूपसे उससे हीन होता था। दूसरे मन्त्रियोकी जानकारीके बिना ही कई महत्त्वपूर्ण प्रश्नोको सम्राट् और वजीर ही मिलकर तय कर डालते थे। साधारण मन्त्रियोकी बात तो दूर रही वजीर स्वय भी सम्राट्के आदेशोपर किसी प्रकारकी रोक नही लगा सकता था; सम्राट्की इच्छापर ही उन पदोपर उनका बना रहना निर्भर था। अतएव उस समयके मन्त्रीगण किसी भी प्रकार आधुनिक ढगका मन्त्रीमण्डल (केबीनेट) नही बना सकते थे। यथार्थ मूल सिद्धान्तोके अनुसार प्रत्येक मुसलमान बादशाह धर्म और राज्य दोनोका ही समान रूपसे एकमात्र मुखिया होता है, अपनी प्रजाके लिए तो वह उस समयका खलीफा ही है।

मुगल शासनमे ये प्रधान महकमे होते थे —

१—साम्राज्यका कोष और माली विभाग, जिनका प्रबन्ध, 'दीवान' के हाथमे रहता था।

२—शाही दरबार और महलोका विभाग, जिसकी देखभाल 'खान-इ-सामान' करता था।

३—वेतन चुकाने और हिसाब दफ्तरका विभाग, जिने 'बख्शी' सम्हालता था।

४—धार्मिक कानून, जिसका भार काजियोका काज़ी उठाता था।

५—धार्मिक वृत्तियों और दान-पुण्यका विभाग, जिसका प्रबन्ध सदरके हाथमे था।

६—सार्वजनिक आचारोंको कुरानके अनुसार नियन्त्रित करनेका विभाग, जिसके अधिकार मुहतसिबको थे।

इनसे कुछ निम्नतर श्रेणीके परन्तु ऐसे ही महकमोंके समान थे :—

७—तोपखाना, जिसका प्रधान मीर आतिश (या दारोगा-इ-तोपखाना) होता था, और

८—खबरों और डाकका विभाग, जो डाक-चौकियोके दारोगाकी देख-रेखमे रहता था।

माली मामलो सम्बन्धी सारो लिखा-पढी, सूबोसे तथा युद्ध-क्षेत्रपर गई हुई सेनाओसे आनेवाले सारे सरकारी कागज-पत्र शाही दीवानके पास ही पहुँचते थे, और जमाबन्दी निश्चित करने या मालगुजारी वसूल करने सम्बन्धी सारे प्रश्नोको भी वही तय करता था। विभिन्न सूबोके दीवानोकी नियुक्ति तथा उनका नियन्त्रण भी उसीके हाथमे रहता था। कोई भी रुपया चुकाने सम्बन्धी सारे आदेशोपर उसके हस्ताक्षर होने आवश्यक थे। सम्राट्के आदेशोंकी सूचना देनेके लिए वह स्वयं 'हस्ब-उल्-हुक्म' (सम्राट्के आदेशसे लिखे गए पत्र) लिखता था, और कई बार महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों या विदेशी राज्योके बादशाहोके नाम लिखे जानेवाले शाही पत्रोके मसौदे भी वह बनाता था।

सेनासे सम्बद्ध या दूसरे महकमोंमे नियुक्त सभी शाही अधिकारी शाही मनसबदार होते थे, एव उन सबके वेतनका हिसाब बख्शी ही करता था और तब उनको चुकानेको स्वीकृति भी बख्शीको देनी होती थी। चढ़ाईपर गई हुई सेनाको वेतन चुकानेका काम भी बख्शीके विभागको करना पडता था। साम्राज्यके बहुत बढ़ जानेसे औरंगजेबके शासन-कालके अन्तिम दिनोंमें एक मुख्य बख्शी होता था, जो पहला बख्शी कहलाता था, और उसके हाथके नीचे तीन सहकारी होते थे जो क्रमशः दूसरा, तीसरा और चौथा बख्शी कहलाते थे। चढ़ाईपर जानेवाली प्रत्येक सेनापर उस बारके लिए एक प्रधान सेनापति नियुक्त किया जाता था। कई बार कुछ अधिकारियोंको 'सिपहसालार'का खिताब दिया गया, परन्तु यह एक विशेष आदर-सचक पदवी ही थी, सारी मुगल सेनाके

प्रधान सेनापतिका अधिकार उन लोगोको कभी सौपा नही गया। समस्त मुगल सेनाका प्रधान सेनापति एकमात्र सम्राट् ही था।

शाही राजभवन-विभागका प्रमुख अधिकारी 'खान-इ-सामान' होता था। सम्राट्के निजी नौकरोकी देख-रेख, सम्राट्के दैनिक व्यय, भोजन, भण्डार आदिका सारा प्रबन्ध वही करता था। यात्राओके समय वह सदैव सम्राट्के साथ जाता था। शाही कारखानो अथवा उद्योग-धधोका प्रबन्ध एव उनके वेतन आदिका व्यय चुकानेका काम भी इसी विभागसे होता था।

सिद्धान्तत बादशाह ही सारे साम्राज्यका सर्वोच्च न्यायाधीश भी था, और हर एक बुधवारको वह स्वय मुकद्दमो मामलोकी सुनवाई करता था। किन्तु उसके इस न्यायालयमे किसी मामलेकी प्रारम्भिक सुनवाई नही होती थी। यह तो अपीले सुनने या दूसरे न्यायाधीशो द्वारा दिए गए फैसलोंपर पुनर्विचारका ही सर्वोच्च न्यायालय था। मुसलमानोके सारेके सारे फौजदारी मामलो तथा बहुतसे दीवानी मुकद्दमोकी सुनवाई प्रधान न्यायाधीशके रूपमे काजी करता था। मुसलमानी कानूनके अनुसार ही यह कार्यवाही चलती थी। काजीकी सहायताके लिए एक मुफ्ती रहता था, जो न्याय-शास्त्रपर अरबीमे लिखी गई पुस्तकोको पढ-पढाकर उस मामलेके उपयुक्त आवश्यक कानूनी सिद्धान्तोंके सारको काजीके सम्मुख रख देता था, तब उन सब बातोपर विचार कर काजी अपना फैसला देता था।

शाही काजी 'काजी-उल्-कजात' कहलाता था। वह सदैव सम्राट्के साथ रहा करता था। प्रत्येक सूबेके नगरो या बड़े-बडे गाँवोके स्थानीय काजियोको वही नियुक्त या पदच्युत करता था।

मुख्य सदर 'सद्र-उस्-सदूर' कहलाता था। सम्राट् और शाहजादों द्वारा धार्मिक लोगो, विद्वानो तथा फकीरोके निर्वाहका प्रबन्ध करनेके लिए धर्मार्थ दी हुई धरतीका प्रबन्ध तथा आवश्यक देख-रेख करनेका काम उसके विभागका था। धर्मार्थ दिया हुआ द्रव्य समुचित रूपसे काममे आ रहा है या नही यह देखना उसका कर्तव्य होता था। दान-पुण्य या निर्वाहके लिए नए प्रार्थियोके निवेदनोकी जाँच और उनके सम्बन्धमे निर्णय करनेका काम भी उसीका था। सम्राट्की ओरसे खैरात भी वही बाँटता था और साम्राज्यका धर्मादा विभाग भी उसीके जिम्मे

रहता था। सूबेके सदरोंकी नियुक्ति और उनकी देख-रेख भी वही करता था।

जन-साधारणका जीवन कुरानके नियमोंके अनुसार ठीक तौरपर चल रहा है या नही, यह देख-भाल कर उसको उचित रूपमे नियमित करते रहनेका काम मुहतसिबका था। पैगम्बरके आदेशोंके अनुसार सब तरहकी शराबे, भाँग और अन्य नशीली वस्तुओके सेवनको सख्तीके साथ रोकना, खुले-आम जुआ न खेलने देना तथा सार्वजनिक रूपसे वेश्यावृत्ति नही चलने देना भी उसक कर्त्तव्य था। इस्लाममे नही विश्वास करनेवालोको, पैगम्बरके निन्दकों, प्रति दिन नियमित रूपसे पाँच बार नमाज़ नहीं पढ़नेवालों तथा रमज़ानके महीनोंमे उपवास न रखनेवालोको उपयुक्त दण्ड देना भी उसके अधिकारकी बात थी। नए बने हुए मन्दिरोको तुड़वानेका काम भी उसे ही सौपा गया था।

मुगल साम्राज्यके सूबोंका प्रान्तीय शासन केन्द्रीय व्यवस्थाका ही छोटा नमूना-मात्र होता था। प्रान्तके सर्वोच्च अधिकारीको शासकीय तौरपर 'नाजिम' कहते थे, परन्तु वह प्रायः 'सूबेदार' ही कहलाता था। उसके नीचे दीवान, बख्शी, काजी, सदर, शाही मालका संरक्षक और मुहतसिब होते थे। सूबोंमे 'ख़ान-इ-सामान' अवश्य ही नही होता था। अपने-अपने प्रान्तमें प्रत्येक सूबेदार सम्राट्के समान ही व्यवहार करता था।

प्रान्तीय शासन-व्यवस्था सूबेके मुख्य नगरमे ही केन्द्रित रहती थी। सूबेके अन्य महत्त्वपूर्ण स्थानो या परगनोंमें फ़ौजदार रहते थे जो वहाँ शान्ति बनाए रखते थे, विद्रोहियों और अपराधियोको दण्ड देते थे और मालगुज़ारी वसूल न होनेकी हालतमें माली अधिकारियोकी भी सहायता करते थे। गाँवोकी ओर तो कोई ध्यान ही नहीं दिया जाता था। अपनी अयोग्यताके कारण या गाँवोके प्रति उनकी तिरस्कार-भावनासे ही क्यो न हो शाही अधिकारी गाँवोमे चलते जानेवाले जीवनसे कोई छेड़-छाड़ नही करते थे और गाँवोके लोग अपनी स्वयं-शासित पंचायतों द्वारा अपना काम आप ही निबटा लेते थे।

बड़े शहरोमें कोतवाल रहता था। वहाँ शान्ति और सुव्यवस्था बनाए रखनेके अतिरिक्त उसे कई अन्य कार्य भी सम्हालने पड़ते थे। शहरकी सफ़ाई, बाजारमे वज़न-तोल और भावोपर नियन्त्रण, और

कुरानके आदेशोंके अनुसार सदाचारिता बनाए रखना भी उसका कर्त्तव्य था ।

देशके भिन्न-भिन्न भागोमे क्या हो रहा है इसकी जानकारी प्राप्त करनेके लिए केन्द्रीय अधिकारी गुप्तचर और सूचना देनेवाले नियुक्त करते थे, इनमेसे कईकी नियुक्ति गुप्त भी रहती थी। तदर्थ नियुक्त किए गए प्रतिनिधि चार प्रकारके होते थे, वाकया-नवीस, सवानह-निगार, खुफिया-(गुप्त पत्र-लेखक) और हरकारा (गुप्तचर और पत्रवाहक)। उन्हे निश्चित समयपर नियमित रूपसे सूचनाएँ भेजनी पडती थी। प्रत्येक राजकीय अधिकारीके साथ एक-एक 'अखबार-नवीस' रहता था, जो प्रति दिनकी घटनाओका विवरण संक्षेपमे लिख लेता था। साम्राज्यके सब भागोसे आनेवाली ये सारी सूचनाएँ दारोगा-इ-डाक-चौकीके द्वारा सम्राट्-के पास पहुँचती थी।

सम्राटोके बारम्बार निषेध करनेपर भी बहुतसे स्थानीय अधिकारी और सूबेदार तक कई अवैध महसूल, जिन्हे 'अबवाव' कहते थे, वसूल कर लेते थे। कई विभिन्न नामोंसे ये महसूल सब तरहके कारीगरो, व्यापारियो, मजदूरो और साधारण लोगोसे वसूल किए जाते थे। कुछ सूबेदारोके अत्याचारका एक दूसरा तरीका यह था कि उनके सूबेमे हो-कर जाते हुए मालको वे बलात् छीन लेते थे, और या तो व्यापारियोको उनके उस मालका मूल्य चुकाया ही नही जाता था, और यदि उसके बदलेमें वे उन्हे कुछ द्रव्य देते भी थे तो वह बहुत ही कम होता था। तब इस छीने हुए मालमेसे अपनी पसन्दकी वस्तुएँ वे अपने काममे लेते थे या उन्हे खुले बाजारमें पूरी कीमतपर बेचकर स्वयं नफा कमाते थे। सूबेदारोके ऐसे अत्याचारोको एक सशक्त जागरूक कड़ा सम्राट् ही बन्द कर सकता था।

❁

घटनावली

[इस ग्रंथकी सारी ईसवी तारीखे इंगलेण्डमें १७५२ ई० तक प्रच-लित पुराने असंशोधित ईसाई पंचांगके अनुसार है। उन्हें संशोधित नए ग्रेगरी पंचांगकी तारीखोंमें परिणत करनेके लिए दस और कहीं-कहीं ग्यारह दिन जोड़ने चाहिए। तदर्थ स्वामी कन्नू पिल्लाई कृत 'इण्डियन एफ़ीमेरीज़' देखो।]

१६१८—२४ अक्तूबर—औरंगजेबका जन्म।

१६२७—१० अप्रेल—शिवाजीका जन्म।

१६२८—४ फरवरी—शाहजहाँका स्वयंको सम्राट् घोषित करना, (२९ अक्तूबर, १६२७को जहाँगीरकी मृत्यु हुई)।

१६३३—२८ मई—औरंगजेबकी हाथीसे मुठभेड़।

१६३५—सितम्बर-दिसम्बर—बुन्देला युद्धमें औरंगजेवका प्रथम सेनापतित्व।

१६३६—मई—शाहजहाँ और आदिलशाहमे बॅटवारेकी सन्धि।
अक्तूबर—मुगलोंके हाथो शाहजी भोसलेकी पूर्ण पराजय; शाहजीका बीजापुरकी नौकरीमे प्रविष्ट होना।

१६३७—८ मई—औरंगजेबका दिल्रसबानूसे विवाह; (उसकी मृत्यु ७ अक्तूबर, १६५७को हुई)।

१६३८—१५ फरवरी—औरंगजेबकी ज्येष्ठ सन्तान जेबुन्निसाका जन्म; (मृत्यु हुई—२६ मई, १७०२)।
जून—बगलाना प्रदेशपर औरगजेबका अधिकार करना।

१६३९—१९ दिसम्बर—मुहम्मद सुलतानका जन्म; (मृत्यु—३ दिसम्बर, १६७६)।

१६४३—४ अक्तूबर—मुअज्जमका (शाहआलम प्रथमका) जन्म।

१६४४—मई औरंगजेबके प्रति शाहजहाँकी अप्रसन्नता तथा उसका दक्षिणकी सूबेदारीसे पदच्युत किया जाना।
नवम्बर—औरंगजेबको पुनः मनसब मिलना।

१६४५—फरवरी जनवरी, १६४७—औरंगजेबका गुजरातकी सूबेदारी करना।

१६४७—७ मार्च—दादाजी कोण्डदेवकी मृत्यु, शिवाजीका स्वाधीन होकर आदिलशाही किलोपर अधिकार करने लगना।

२५ मई—औरगजेबका बल्ख़ नगरमे पहुँचकर अक्तूबरमे वहाँसे वापस लौटना।

१६४८—मार्चसे जुलाई, १६५२—औरगज़ेबका मुलतान और सिन्धकी सूबेदारी करना।

१६४९—१४ मई–५ सितम्बर—औरंगजेब द्वारा कन्धारका पहला घेरा।

१६५२—२ मई–९ जुलाई—औरगजेब द्वारा कन्धारका दूसरा घेरा।

१६५२—१६५८ तक—औरगजेबका दूसरी बार दक्षिणकी सूबेदारी करना।

१६५५—२१ नवम्बर—कुतुबशाहका मीरजुमलाके पुत्रको कैद करना।

१६५६—१५ जनवरी—शिवाजीका जावली जीतना; और ६ अप्रेलको रायगढका किला लेना।

जनवरी—औरंगजेबका गोलकुण्डापर आक्रमण, २३ जनवरीको मुगलोका हैदराबादपर अधिकार करना।

७ फरवरीसे ३० मार्च—औरगजेबका गोलकुण्डाका घेरा डालना, अप्रेलमे सन्धि हो गई।

जुलाई—मीरजुमलाका दिल्ली पहुँचना और वहाँ उसका मुगल साम्राज्यका वज़ीर नियुक्त होना।

४ नवम्बर—मुहम्मद आदिलशाहकी मृत्यु; अली द्वितीयका राज्यारोहण।

१६५७—औरंगजेबका बीजापुरपर आक्रमण।

२से २९ मार्च—बीदरका घेरा डालकर अन्तमे औरगजेबका उसे जीत लेना।

४ मई–९ अगस्त—कल्याणीके किलेका घेरा डालना तथा उसे जीतना।

४ अक्तूबर—औरंगजेबका इस चढाईसे वापस लौटना।

६ सितम्बर—दिल्लीमे शाहजहाँका बीमार होना; और २६ अक्तूबरको उसका आगरा पहुँचना।

नवम्बर—बगालमे शुजाका स्वयं ही सिंहासनारूढ होना।

५ दिसम्बर—मुरादका गुजरातमे स्वत राज्याभिषेक करना।
२० दिसम्बर—सूरतपर अधिकार करके मुरादका उसे लूटना।

१६५८—५ फरवरी—राज्याधिकारके हेतु युद्धके लिए औरंगजेबका औरगाबादसे रवाना होना।
१४ फरवरी—सुलेमान शिकोहका बहादुरपुरके युद्धमे शुजाको हराना।
१५ अप्रेल—धरमतके युद्धमें औरगजेब और मुरादका जसवन्त-को हराना।
२३ मई—शाही आज्ञा द्वारा निश्चित औरगजेबके राज्यकालके प्रथम वर्षका आरम्भ।
२९ मई—सामूगढमे दाराकी हार।
८ जून—आगराके किलेमें शाहजहाँका क़ैद किया जाना।
२५ जून—औरंगजेबका मुरादको कैद करना, (जिसको ४ दिसम्बर, १६६१को मार डाला गया)।
२१ जुलाई—औरंगजेबका प्रथम राज्याभिषेक।

१६५९—५ जनवरी—खजवाके युद्धमें शुजाकी हार।
१३ मार्च—दो राईके युद्धमें औरंगजेबके हाथों दाराकी आखिरी पराजय।
५ जून—औरंगजेबके द्वितीय विधिवत् राज्याभिषेकका समारोह।
९ जून—दारा और सिपरशिकोहका कैद होना।
३० अगस्त—दाराको मृत्यु-दण्ड।
१० नवम्बर—शिवाजीका अफजलखाँको मारना।

१६६०—६ मई—शुजाका ढाकासे भागना और तब मीरजुमलाका वहाँ अधिकार करना; (फरवरी, १६६१में शुजाका अराकानमें अन्त)।
९ मई—पूनापर शायेस्ताखाँका अधिकार होना और १५ अगस्त-को चाकणपर अधिकार करना।
२७ दिसम्बर—सुलेमान शिकोहका कैदी बनाकर दिल्ली लाया जाना; (मई, १६६२में उसका मारा जाना)।

१६६१—३ फरवरी—उमरखिण्डमें शिवाजीका कारतलखाँको हराना।
मई—मुगलोंका शिवाजीसे कल्याण ले लेना।
२२ मई—ईरानके राजदूत वुदकबेगकी औरंगजेबसे भेंट।

१९ दिसम्बर—मीरजुमलाका कूचबिहार नगरपर अधिकार करना।

१६६२—१७ मार्च आसामकी राजधानी गढगाँवपर मीरजुमलाका अधिकार करना।

१२ मई—औरंगजेबका बीमार पडना; २४ जूनको वह पूर्णतया निरोग हो गया।

१६६३—१ जनवरी—मीरजुमलाके साथ आसामके राजाका सन्धि करना, १० जनवरीको मीरजुमला वापिस लौट पडा; और ३१ मार्चको वह मर गया।

५ अप्रेल—रातके समय शायेस्ताखाँके डेरेपर शिवाजीका आक्रमण।

१४ मई–१६ अगस्त—औरंगजेबकी कश्मीर-यात्रा।

१६६४—६ से १० जनवरी—शिवाजीका पहली बार सूरत बन्दरको लूटना।

२३ जनवरी—शाहजी भोसलेकी मृत्यु।

१६६५—३० मार्च—जयसिंहका पुरन्दर किलेका घेरा डालना।

११ जून—शिवाजीकी जयसिंहसे भेट।

१३ जून—पुरन्दरकी सन्धि।

१० अप्रेल—हिन्दुओपर लगनेवाली चुंगीको औरंगजेबका दुगुनी कर देना।

२० नवम्बर—जयसिंहका बीजापुरपर आक्रमण, वहाँसे ५ जनवरी, १६६६को लौटना और २८ अगस्त, १६६७को बुरहानपुरमे उसकी मृत्यु।

१६६६—२२ जनवरी—शाहजहाँकी मृत्यु।

२६ जनवरी—शायेस्ताखाँका चटगाँवको जीतना।

१२ मई—औरंगजेबके शाही दरबारमे शिवाजीका उपस्थित होना।

१९ अगस्त—शिवाजीका आगरासे भाग निकलना, १२ सितम्बरको शिवाजीका रायगढ़ पहुँचना; अप्रेल, १६६७ ई०मे शिवाजीका औरंगजेबकी अधीनता स्वीकार करना।

१६६७—२४ फरवरी—कामबख्शका जन्म।

मार्च—पेशावरमे यूसुफजाइयोका विद्रोह।

१६६८—फरवरी—औरंगजेबका शाही दरबारमें संगीत बन्द करना। औरंगजेबका शिवाजीको राजा मान लेना।

१६६९—९ अप्रेल—सारे मुगल साम्राज्यमे मन्दिर तोडनेके लिए औरंगजेबका हुक्म देना। अगस्तमें बनारसका विश्वनाथ मन्दिर तोड़ा गया। अगली जनवरीमे मथुराके केशवरायके मन्दिरका ध्वंस हुआ।

१६७०—१ जनवरीके लगभग—शिवाजीका मुगलोसे फिर युद्ध आरम्भ करना, अपने किलोंको वापिस लेना और मुगल-प्रदेशपर दूर-दूर तक आक्रमण करना।

३-५ अक्तूबर—शिवाजीका दूसरी बार सूरत लूटना।
१७ अक्तूबर—डिंडोरीके युद्धमे शिवाजीका दाऊदखाँको हराना।
दिसम्बर—शिवाजीका खानदेश और बरारको लूटना।

१६७१—जनवरी—माल महकमेंसे औरंगजेबका सारे हिन्दू कर्मचारियोंको हटाना। बुन्देलखण्डमें औरगजेबके विरुद्ध छत्रसालके युद्धका आरम्भ; (राजा बनकर १७३१में उसकी मृत्यु हुई)।

१६७२—अकमलखाँके नेतृत्वमें अफरीदियोंका विद्रोह।
मार्च—सतनामियोका विद्रोह।
२१ अप्रेल—अब्दुल्ला कुतुबशाहकी मृत्यु; अबुलहसनका राज्यारूढ होना।
२४ नवम्बर—अली आदिलशाह द्वितीयकी मृत्यु, सिकन्दरका राज्यारोहण। खवासखाँका बीजापुरमे वजीर बनना; (११ नवम्बर, १६७५को वह अधिकारच्युत किया गया)।

१६७३—शिवाजीका ६ मार्चको पन्हाला, १ अप्रेलको पार्ली, और २७ जुलाईको सताराका किला जीतना।

१६७४—२४ फरवरी—नेसरीमें प्रतापरावके मारे जानेपर हम्बीररावको सेनापति बनाना।

७ अप्रेल—औरगजेबका हसन अब्दालके लिए दिल्लीसे रवाना होना और दिसम्बर, १६७५ तक औरगजेबका वहाँ ठहरना।
६ जून—शिवाजीका राज्याभिषेक।
१८ जून—जीजाबाईकी मृत्यु।

१६७५—अप्रेल-मई—शिवाजीका फोंडा किले और कारवारके जिलेको हस्तगत करना।

११ नवम्बर—बहलोलख़ाँका बीजापुरका वज़ीर बनना, (२३ दिसम्बर, १६७७को उसकी मृत्यु हुई)।

दिसम्बर—गुरु तेगबहादुरका शिरच्छेदन, तजोरपर आक्रमण कर व्यकोजीका वहाँ अधिकार स्थापित करना।

१६७६—१ जून—हलसगीमे बहलोलका बहादुरख़ाँको हराना, इस्लामखाँका मारा जाना।

८ अक्तूबर—औरंगजेबका असदख़ाँको मुगल साम्राज्यका वजीर बनाना।

१६७७—१ जनवरी—कर्नाटकपर चढाईके लिए शिवाजीका प्रस्थान, फरवरीमे हैदराबादमे ठहरना, २४ मार्चसे १ अप्रेल तक श्री शैलमे निवास, १३ मईके लगभग जिंजीके किलेपर शिवाजीका अधिकार होना, २३ मईके लगभग शिवाजीका वेलूरके किलेका घेरा डालना, (जुलाई २१, १६७८को वेलूरके किलेपर शिवाजीका अधिकार हो गया), २६ जूनको तिरुवाडीमे शेरख़ाँ लोदीको हराना, १८-२३ जुलाईके लगभग तिरुमलवाडीमे व्यकोजीके साथ शिवाजीकी भेट, महाराष्ट्र लौटते समय ५ नवम्बरको मैसूरके पठारपर शिवाजीका चढना, १६ नवम्बरको व्यकोजीका संताजीपर आक्रमण, ४ अप्रेल, १६७८के लगभग शिवाजीका पन्हाला पहुँच जाना।

१९ मार्च—अमीरख़ाँका अफगानिस्तानकी सूबेदारीपर नियुक्त होना, (८ जून १६७८को वह वहाँ पहुँचा और २८ अप्रैल, १६९८ को मृत्यु होने तक वह उसी पदपर बना रहा)।

७ जुलाई—बहादुरख़ाँका कुलबर्गा जीतना, अगस्तमे बहादुरखाँके स्थानपर दिलेरख़ाँकी नियुक्ति, दिलेरकी गोलकुण्डापर चढाई एव सितम्बरमे मालखेड़मे दिलेरकी हार।

१८ नवम्बर—औरंगजेबका शाही दरबारमे बहुत सादगीपूर्ण चाल-चलनका प्रारम्भ करना।

१६७८—२१ फरवरी-सिद्दी मसूदका बीजापुरका वजीर बनना, दिसम्बर, १६८३मे उसके त्यागपत्र देनेपर आका खुरोसका वजीर बनना।

आक़ा ख़ुसरो ११ अक्तूबर, १६८४को मर गया।
१० दिसम्बर—जमरूदमें जसवन्तसिहकी मृत्यु।
१३ दिसम्बर—शम्भूजीका भागकर दिलेरख़ाँसे मिलना;
४ दिसम्बर, १६७९के लगभग शम्भूजी वापस पन्हाला लौटे।

१६७९—१९ फरवरी—औरंगजेबका अजमेर पहुँचना; मारवाडपर मुगल आक्रमण और २६ मईके दिन इन्द्रसिहको मारवाड देना।
२ अप्रेल—इस्लामके अतिरिक्त अन्य सारे धर्मावलम्बियोपर औरंगजेबका जज़िया कर लगाना।
१५—जुलाई दुर्गादासका बालक अजीतको दिल्लीसे निकाल ले जाना।
२५ सितम्बर—औरंगजेबका दूसरी बार अजमेर पहुँचना, अक्तूबरमे मारवाड़को मुगल साम्राज्यमें सम्मिलित करना।
७ अक्तूबर—१४ नवम्बर—दिलेरख़ाँका बीजापुर किलेपर चढ़ाई करना तथा बादमे आसपासके प्रदेशमे उसका लूटमार करना।
४ नवम्बर—शिवाजीका मुगलोंपर आक्रमण कर १५-१८ नवबरको जालनाको लूटना, परन्तु रणमस्तख़ाँ द्वारा हराए जानेपर २१ नवम्बरके लगभग शिवाजीका पट्टाको वापस लौटना।

१६८०—२३ जनवरी—औरंगजेबका उदयपुर नगरमें प्रवेश; २३ फरवरीको चित्तौड होते हुए २२ मार्चको उसका वापस अजमेर जा पहुँचना।

४ अप्रैल—शिवाजीकी मृत्यु।
१८ जून—मराठोके राजा बनकर शंभूजीका रायगढ़में प्रवेश।
२२ अक्तूबर—महाराणा राजसिहकी मृत्यु; जयसिहका महाराणा बनना। शायेस्ताख़ाँका दूसरी बार बगालका सूबेदार नियुक्त किया जाना।

१६८१—१ जनवरी—शाहजादे अकबरका स्वयको सम्राट् घोषित करना।
१६ जनवरी—विद्रोहके असफल होनेपर शाहजादे अकबरका दौराईके युद्ध-क्षेत्रसे भागना। तब १ जूनको महाराष्ट्रमे पाली नामक स्थानपर शम्भूजीके आश्रयमे अकवरका जा पहुँचना।
३० जनवरी—१ फरवरी—मराठोंका बुरहानपुरके उपनगरोको लूटना।

मार्च—बिहारमे विद्रोही गगाराम नागरका पटनाके किलेको घेरना, (१६८४मे गगारामकी मृत्यु हुई) ।

१४ जून—महाराणा जयसिहका औरगजेबके साथ राजसमुद्रकी सन्धि करना ।

६ सितम्बर—जहाँनआराकी मृत्यु ।

८ सितम्बर—औरगजेबका अजमेरसे दक्षिणके लिए रवाना होना; १३ नवम्बरको उसका बुरहानपुर और २२ मार्च १६८२ को औरगाबाद पहुँचना ।

अक्तूबर—शम्भूजीका सोयराबाई, अन्नाजी, आदि षड्यन्त्र-कारियोको मृत्यु-दण्ड देना ।

१३ नवम्बर—पालीमे शम्भूजीको अकबरसे भेट ।

१६८२—जनवरी—जजीरापर शम्भूजीका गोलाबारी करना ।

अप्रैल—मुगलोका रामसेजका घेरा डालना, एव विफल होनेपर अक्तूबरमे वहाँसे उनका वापिस लौटना ।

१८ मई—शाहूका (अथवा द्वितीय शिवाजीका) जन्म ।

नवम्बर—मुगलोका कल्याणपर अधिकार, अगले २३ मार्चको उनका कल्याण खाली कर देना ।

दिसम्बर—अकबरका पालीसे बाँदा आना ।

१६८३—५ अप्रैल—शम्भूजीका पुर्तगालियोके साथ युद्ध ।

सितम्बर—अकबरका बिचोलिम पहुँचना और वहाँसे ईरान जानेके लिए एक जहाज़ किराये करनेका प्रयत्न करना ।

२०—सितम्बर—रामघाटपर चढाई करनेके लिए शाहआलमका औरगाबादसे रवाना होना ।

२२ अक्तूबर—गोआके वाइसरायका फोण्डाके किलेको घेरना, और ३१ अक्तूबरको हारकर उसका वहाँसे वापस लौटना ।

१४ नवम्बर—मराठोका सान्ते इस्तेवाओको जीतकर गोआपर चढाई करना ।

१ दिसम्बर—मराठोका वरदेस और साष्टी जिलोपर आक्रमण कर वहाँ एक माह तक लूटमार करना ।

१६८४—५ जनवरी—शाहआलमका विचोलिम होते हुए गोआकी ओर बढ़ना, सावन्तवाड़ी और दक्षिणी रत्नागिरीको लूटते हुए २०

फरवरीको रामघाट लौटना, और १८ मईको शाहआलमका अहमदनगर पहुँचना।

२० जनवरी—भीमगढ़मे अकबरका शम्भूजी और पुर्तगालियोंमे सन्धि करवाना।

मई—बम्बईके अंग्रेजोंके साथ शम्भूजीका मित्रतापूर्ण सन्धि करना। श्रीनगर (कश्मीरमें) शिया और सुन्नियोका आपसी झगड़ा।

१६८५—जनवरी—व्यंकोजीकी मृत्यु; तंजोरमें शाहजी द्वितीयका राज्यारोहण।

फरवरी—खेम सावन्तका शम्भूजीके विरुद्ध विद्रोह।

१ अप्रैल—मुगलों द्वारा डाले गए बीजापुरके घेरेका प्रारम्भ। राजारामके नेतृत्वमे जाटोके विद्रोहका आरम्भ होना।

८ अक्तूबर के लगभग—मुगलोका दूसरी बार हैदराबाद शहरपर अधिकार कर लेना।

अक्तूबर—धर्मांध कट्टर खोजाओका भडौचके किलेपर अधिकार कर लेना।

दिसम्बर—मालवामे मुलूकचन्दका पहाड़सिह गौड़को मारना; परन्तु गौड़ोंका यह विद्रोह फिर भी १६९२ तक चलता ही रहा।

१६८६—७ मार्च—गोलकुण्डामे मादन्नाका वध।

३ जुलाई—बीजापुरका घेरा लगानेवाले मुगल सैनिक पड़ावमें औरंगजेबका पहुँचना।

१२ सितम्बर—बीजापुरका पतन; सिकन्दर आदिलशाहका राज्यच्युत किया जाना, (१७००में उसकी मृत्यु)।

२८ अक्तूबर—बंगालमें अग्रेजोका हुगलीका घेरा डालकर मुगलोंके विरुद्ध युद्ध छेड़ना।

१६८७—२८ जनवरी—हैदराबादपर मुगलोका अधिकार होना। ७ फरवरीको गोलकुण्डाके घेरेका आरम्भ; २१ सितम्बरको गोलकुण्डाका पतन।

२१ फरवरी—शाहआलमका कैद किया जाना।

फरवरी—अकबरका जहाज पर ईरानके लिए प्रस्थान; २४ जून, १६८९को उसका इस्फ़हान पहुँचना; (१७०४मे मृत्यु)।

मार्च—दुर्गादासका वापस मारवाडको लौटना, राठौडोका मुगलोको दबाना, दुर्जनसाल हाडाका बूँदीपर अधिकार कर लेना।

११ जून—अंग्रेज विद्रोहियोका हुगली छोड़कर भागना।

२८ नवम्बर—पाम नायकका आत्मसमर्पण कर बेरडकी अपनी राजधानी सागरको मुगलोको सौप देना, उसकी मृत्यु १ जनवरी, १६८८को हुई।

१६८८—११ जनवरी—मराठोका काजीवरम्‌को लूटना।

फरवरीके लगभग—राजाराम जाढका सिकन्दरामे स्थित अकबरका मकबरा लूटना।

मार्च—आजमका बेलगॉवके किलेपर अधिकार करना।

६ अगस्त—सिद्दी मसूदका अडौनीका किला मुगलोको देना।

अक्तूबर—अंग्रेज व्यापारियोका भारतके पश्चिमी समुद्री तटपर औरगजेबसे युद्ध।

नवम्बर—बीजापुरमे प्लेगका प्रारम्भ, जो दो माह तक चलता रहा।

१६८९—१ फरवरी—शम्भूजी और कविकलशका पकड़ा जाकर १५ फरवरीको उनका शाही पडावमे पहुँचना, ११ मार्चको दोनोका शिरच्छेदन।

८ फरवरी—रायगढमे राजारामका राज्याभिषेक, ५ अप्रैलको राजारामका रायगढसे निकल भागना, और १ नवम्बरको उसका जिजी पहुँचना।

२७ मार्च—मातबरख़ॉका कल्याण वापस जीतना।

१९ अक्तूबर—जुल्फिकारख़ॉका रायगढका किला लेना और साथ ही शाहूको भी कैद कर लेना।

२५ दिसम्बर—औरगजेबका अंग्रेजोको क्षमा करना और उनके साथ सुलह हो जाना।

१६९०—२८ जनवरी—मुगलोका सनसनीपर धावा।

२१ मई—औरगजेबका गलगलामे पडाव, जो मार्च, १६९१से लेकर मई, १६९२ तकके कालको छोडकर मार्च, १६९५ तक बना रहा।

२४ अगस्त—अंग्रेजोका कलकत्ता बसाना।

अगस्त—जुल्फिकारख़ॉका कॉंजीवरम्‌ पहुँचना।

१६९१—१६ दिसम्बर—असदख़ाँ और कामबख़्शका जिंजी पहुँचना।

१६९२—१३ दिसम्बर—सन्ता घोरपड़ेका काँजीवरम्‌के फौजदार अलीमर्दानख़ाँको पकड़ना।

१६ दिसम्बर—धन्ना ज़ादवका जिंजीसे बाहर इस्माइलख़ाँ मकाको कैद करना।

२० दिसम्बरके लगभग—असदख़ाँका कामबख़्शको कैद करना।

१६९३—२३ जनवरी—जुल्फिकारखाँका जिंजीका घेरा उठाकर वाडिवाशको भागना।

मातबरख़ाँका उत्तरी कोकणके पुर्तगालियोपर धावा।

१६९४—फरवरी-मई—गुल्फिकारख़ाँका तंजोरसे वसूल करना और दक्षिणी अर्काट जिलेको जीतना।

सितम्बर—जुल्फिकारख़ाँका पुनः जिंजीका घेरा डालना; दिसम्बर, १६९५मे घेरेको उठाकर जनवरी, १६९६से मार्च, १६९७ तक उसका अर्काटमें पड़ाव डाले रहना। अकबरकी पुत्रीको दुर्गादासका औरगजेबके पास पहुँचा देना।

१६९५—२१ मईसे १९ अक्तूबर, १६९९—औरगजेबका इस्लामपुरीमें पड़ाव।

मई—शाहआलमका क़ैदसे छूटनेपर पजाबका सूबेदार बनाया जाना।

८ सितम्बर—गज-इ-सवाई जहाज़की समुद्री लूट।

अक्तूबर—मुगलोका वेलोरका घेरा डालना, १४ अगस्त १७०२-को वेलोरपर मुगलोंका अधिकार हुआ।

नवम्बर—सन्ता घोरपड़ेका दुडेरीमें कासिमख़ाँको घेरना; वही कासिमख़ाँकी मृत्यु हुई।

१६९६—२० जनवरी—वसवापट्टणमें सन्ताका हिम्मतख़ाँको मारना।

मार्च—सन्ताका पूर्वी कर्नाटक पहुँचना, नवम्बर-दिसम्बरसें मध्य मैसूरपर आक्रमण।

मई—शोभासिह और रहीमख़ाँका बगालमे विद्रोह। देवगढ़में बख़्तबुलन्द गोण्डका युद्ध आरम्भ करना।

१६९७—मार्च—सतारामें धन्नाका सन्ताको हराना।

जून—सन्ताकी हत्या होना ।

मई-जून—जबरदस्तखाँका विद्रोही रहीमखाँको मार भगाना, रहीमखाँका अगस्त, १६९८मे मारा जाना ।

नवम्बर—बगालके नये सूबेदार अजीमुश्शानका वर्धमान पहुँचना । जुल्फिकारखाँका पुन जिजीका घेरा डालना ।

१६९८—८ जनवरी—जुल्फिकारखाँका जिंजीके किलेको जीत लेना ।

मई—दुर्गादासका अकबरके पुत्र बुलन्दअख्तरको औरगजेबको सौपना । औरगजेबका दुर्गादास और अजीत दोनोको ही मनसब और जागीरे देकर उन्हे अनुगृहीत करना ।

१६९९—फरवरी—राजारामका विशालगढ जा पहुँचना ।

मार्च—औरगजेब और युरोपीय सौदागरोमे हिन्द सागरको सुरक्षा सम्बन्धी समझौता ।

१९ अक्तूबर—मराठा किलोका घेरा लगानेके लिए औरगजेबका इस्लामपुरीसे प्रस्थान ।

२६ अक्तूबर—राजारामका सतारासे चल देना ।

नवम्बर—कृष्णा सावन्तके नेतृत्वमे मालवापर मराठोका प्रथम आक्रमण ।

९ दिसम्बर—औरगजेबका सताराका घेरा डालना; २९ अप्रेल, १७००को सतारापर मुगलोका अधिकार हुआ ।

१७००—२ मार्च—सिहगढमे राजारामकी मृत्यु, उसके पुत्र कर्णका गद्दीपर बैठना और २३ मार्चको उसकी मृत्यु होना, तब ताराबाईके पुत्रको शिवाजी तृतीयके नामसे गद्दीपर बैठाना ।

९ जून—औरगजेबका पार्लीपर अधिकार कर लेना ।

१ अक्तूबर—खवासपुरमे शाही पड़ावका मान नदीकी बाढमे बह जाना, बादशाहका घुटना उखड जाना ।

१७०१—९ मार्च—औरगजेबका पन्हालाके किलेका घेरा डालना ।

अप्रैल—सर विलियम नारिसका अग्रेजोके दूतके रूपमे औरगजेबसे भेट करना । मुर्शिदकुलीखाँका बगालका दीवान नियुक्त किया जाना ।

१७०२—१६ जनवरी—औरगजेबका खेलना पहुँचकर उस किलेका घेरा

डालना और ७ जूनको उसपर अधिकार कर लेना। दुर्गादास और अजीतका औरगजेबके विरुद्ध पुन विद्रोह करना।
२७ दिसम्बर—औरगजेबका कोण्डानाके किलेको घेरकर ८ अप्रैल, १७०३के दिन उसे जीत लेना।

१७०३—अक्तूबर—नीमा सिन्धियाका मालवा और वरारपर आक्रमण।
२ दिसम्बर—औरंगजेब रायगढके किलेका घेरा लगा कर १६ फरवरी १७०४को उसपर अधिकार कर लेना।

१७०४—२६ फरवरी—औरंगजेब तोरणाके किलेका घेरा डालकर १० मार्चको जीत लेना।

१७०५—८ फरवरी—औरगजेबका बागिनखेडाको घेरकर २७ अप्रैलके दिन उसपर अधिकार कर लेना।
मई—अक्तूबर—देवापुरमे औरगजेबका ठहरना और वहाँ उसका बीमार पड जाना।
नवम्बर—दुर्गादासका फिरसे आत्मसमर्पण कर अगले अप्रैलमे उसका पुन विद्रोह करना।

१७०६—२० जनवरी—औरगजेबका अहमदनगर पहुँचना।
मार्च—मराठोका गुजरातपर आक्रमण, रतनपुरके युद्धमे १५ मार्चको एव बाबा प्याराके घाटेके युद्धमे भी मुगलोकी करारी हारे, मराठोका बडौदाको लूटना।

१७०७—९ फरवरी—औरगजेब कामबख्शको बीजापुर जानेके लिए विदा करना, १३ फरवरी—मालवा जानेके लिए आजमको रवाना करना, १७ फरवरीको औरगजेबका बीमार पडकर २० फरवरीको उसकी मृत्यु होना।
८ मार्च—जोधपुर पर पुन. अजीतसिहका अधिकार कर लेना।